Durga Sah Municipal Library
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class no. 891.3
Book no. Si 63 S
Reg no. 5521

सप्तशील

भारतवर्ष का सनातन स्वधर्म प्रतीची से आगत असुरतन्त्र के साथ संघर्ष कर रहा है। प्रतीची की आसुरी-सम्पद् अनेक नाम से विख्यात है : पूँजीवाद, समाजवाद, कम्यूनिज़म, प्रयोगवाद इत्यादि; किन्तु ये समस्त सम्प्रदाय एक ही जननी—जडवाद—की सहोदर सन्तान हैं। जडवाद मनुष्य को एक अकस्मात् आविर्भूत पशु से अधिक कुछ नहीं मानता। इसका महामन्त्र है इन्द्रियसौख्य का अनन्त परिग्रह।

प्राचीन भारतवर्ष के प्रांगण में भी एक ऐसा ही संघर्ष हुआ था। वैशाली में केन्द्रस्थ लिच्छवि-गण के वृज्जिसंघ का पतन उस संघर्ष का उपाख्यान है।

मगधराज अजातशत्रु ने वृज्जिसंघ के साथ युद्ध में असफल रहकर, वृज्जिसंघ के स्वधर्म को नष्ट करने का कुचक्र रचा था। उस कुचक्र में वृज्जिसंघ के शासक, लिच्छवि-गण ने अजातशत्रु की सहायता की थी। लिच्छवि-गण का एक वर्ग पारसीक असुरतन्त्र का उपासक होने के कारण अधर्म का अनुयायी था। दूसरा वर्ग, स्वधर्म की परम्परा का प्रज्ञाविहीन उपासक मात्र। अधर्म के आघात से वृज्जिसंघ अपने स्वधर्म से स्खलित हो गया। और वृज्जि महाजनपद को मगधराज ने जीत लिया।

समशील

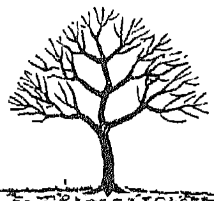

सप्तशील

सीताराम गोयल

भारती साहित्य सदन – नई दिल्ली

प्रकाशक :
ज्योत्स्ना प्रकाशन, दिल्ली ।

• • •

वितरक :
भारती साहित्य सदन—@
३०/६० कनॉट सरकस, नई दिल्ली—१

• • •

प्रथम बार : श्रावण,
मूल्य : ८॥)

आवरण शिल्पी :
पाल बंधु

• • •

मुद्रक :
श्री गोपीनाथ सेठ,
नवीन प्रेस, दिल्ली ।

Received on

कि कम्यूनिजम तथा पूंजीवाद इत्यादि परस्पर विपक्षी हैं। यह एक भयानक भूल है। इतिहास साक्षी है कि पूंजीवाद तथा समाजवाद आदि की सहायता से ही कम्यूनिजम का इतना प्रचार-प्रसार हो सका है।

भारतवर्ष का शासन अधुना जिस वर्ग के हाथ में है वह, प्रतीची के विद्यापीठों में शिक्षित होने के कारण, प्रतीची के असुर-तन्त्र का ही अनुयायी है। शासकवर्ग का अधिकांश, सत्तारूढ़ होने के निमेष से, अनवरत ही, कम्यूनिजम का समर्थन करता रहा है। कम्यूनिजम ने यूरोप तथा एशिया के अनेक स्वाधीन राष्ट्रों का स्वातन्त्र्य हरण करके, उन राष्ट्रों के स्वधर्म का उच्छेद किया और उनकी जनता पर अभूतपूर्व अनय-व्यसन आपातित किया। हमारे शासकवर्ग ने तुरन्त ही स्वीकार कर लिया कि कम्यूनिष्ट साम्राज्य उनकी पुण्यभूमि है और कम्यूनिष्ट नेता उनके मर्यादा-पुरुषोत्तम। कम्यूनिष्ट नामधारी हिंस्र पिशाचों के गले में माला डालकर तथा उनके पादाग्र का अवलेह करके हमारा शासकवर्ग अभी तक नहीं अघाया।

अब, सहसा, कम्यूनिजम की सैन्यवाहिनी भारतवर्ष के उत्तरवर्ती सीमान्त पर आक्रान्त है। भारतवर्ष के अभ्यन्तर कम्यूनिजम का एक विशाल, सम्बल-सम्पन्न तथा दृढ़ानुशासित कृत्यपक्ष अनवरत कर्मरत है। किन्तु शासकवर्ग ने अभी तक अपने विलास-विगलित नेत्र उन्मीलित नहीं किए। यदि किसी-किसी का मानस आशङ्कित हुआ है तो वह यह मान कर सन्तोष कर लेता है कि यूरोप तथा अमेरिका के पूंजीवादी एवं समाजवादी देश, हमारे अपने हाथों से हमारे अपने घर में लगाई आग का शमन कर देंगे। यह भी विनाश का पथ है।

भारत का परित्राण यदि सम्भव है तो उसी अवस्था में जब कि भारत का सनातन स्वधर्म पुनरोत्थान करे। एक बार पहिले भी, ऐसी ही स्थिति में, स्वधर्म का पुनरोत्थान हुआ था। उस पुनरोत्थान के प्रतिष्ठाता थे प्रातःस्मरणीय छत्रपति शिवाजी तथा गुरु गोविन्दसिंह। किन्तु उन महापुरुषों का क्षात्र अभिव्यक्त होने के पूर्व भारत में ब्राह्मण्य अभिव्यक्त हो चुका था। आज भारत में ब्राह्मण्य का अभाव है। फलस्वरूप क्षात्र का भी। शेष रह गई है वणिक्-वृत्ति तथा शूद्र-समवाय की तमस्तन्द्रा।

: ६ :

यह सम्भव है कि उपन्यास के कतिपय पात्रों में, पाठक-गण को, भारत के कतिपय वर्तमान महामात्यों की प्रतिकृति का आभास मिले। यदि ऐसी कोई समानता है तो वह अनायास ही अनुष्ठित हुई है। अधर्म-रत व्यक्तियों की सार्वकालीनता के कारण। लेखक के किसी पूर्वकल्पित प्रयास के कारण नहीं। अधर्म के अनुयायी, प्रत्येक युग में, नित्यनूतन जन्म धारण करते हैं। वृज्जिसंघ के राजा रत्नकीर्ति तथा दण्डबल-महामात्य सुनक्खत तो केवल अतीत काल के ही अभिनेता नहीं। वे वर्तमान में भी विद्यमान हैं।

: ७ :

उपन्यास की भाषा के विषय में भी मुझे कुछ कहना है। शुद्ध हिन्दी का उपहास मैंने अनेक बार सुना है। किन्तु फिर भी शुद्ध हिन्दी में मेरा विश्वास अचल है। 'प्रगतिवाद' के पुजारी जिस 'जनवाणी' का डिण्डिम-घोष अहर्निश करते रहते हैं उसके प्रति मैंने कभी लोभ का अनुभव नहीं किया।

उपन्यास की कथावस्तु अति-प्राचीन होने के कारण मैंने कतिपय ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो बहुत दिन से प्रचलित नहीं रहे। विशेषकर, संगीत, स्थापत्य, शस्त्रास्त्र तथा शासनव्यवस्था के सम्बन्ध में। मैंने वे शब्द कौटल्य के अर्थशास्त्र, भरत के नाट्यशास्त्र तथा त्रिपिटक के विविध ग्रन्थों से लिए हैं। उनके अर्थ की एक सूची उपन्यास के अन्त में उपलब्ध है। पाठक-गण पाठारम्भ के पूर्व सूची का अवलोकन कर लें।

भाषा के सम्बन्ध में मेरी धारणा है कि वह विचार का वाहन होनी चाहिए। समय एवं स्थान के विविध वैशिष्ट्य का वाहन भी। २५०० वर्ष पूर्व के पात्रों को 'जनवाणी' में मुखरित करने का साहस मैं नहीं कर पाया।

उपभोगवाद का विचार वहन करने के लिए 'जनवाणी' सर्वथा समर्थ है। वह विचार केवल वस्तुसमुदाय के क्रय-विक्रय तथा नरनारी के मिथुन-संयोजन पर विवाद करके अपनी पराकाष्ठा प्राप्त कर लेता है। किन्तु जिसको क्रय-विक्रय तथा मिथुनसंयोजन के परे भी कुछ कहना है उसको

यथायोग्य भाषा का ही आश्रय लेना पड़ेगा।

उपभोगवाद का उपासक हमारा शासकवर्ग, मुहुर्मुहु, 'जनता' की दुहाई देता है। किन्तु केवल भाषा के विषय में ही। जब-जब उपभोग की मात्रा का प्रसंग प्रस्तुत होता है तब-तब 'जनता के नेताओं' की दृष्टि, जनजीवन पर से अपसरित होकर, न्यूयार्क की फिफ्थ ऐवेन्यू पर निविष्ट हो जाती है। यह मिथ्याचार है, प्रवञ्चना है।

मैं उपभोग की उसी मात्रा को वाञ्छनीय मानता हूँ जो हमारी जनता को, अपने सम्बल से, अपने देश में ही, समानरूप से उपलब्ध हो सके। किन्तु भाषा के विषय में मैं जनता की शरण लेने के लिए प्रस्तुत नहीं। भाषा के विषय में भारतवर्ष के मनीषी तथा महाकवि ही मेरे लिए प्रमाण हैं। जिस जनता ने उनको अपनाया है वह, जागृत होते ही, मेरा भी तिरस्कार नहीं करेगी।

: ८ :

उपन्यास को लिपिबद्ध मैंने किया है। किन्तु इसकी कथावस्तु, भाषा, भाव, शैली, चरित्र-चित्रण आदि के विकास में, मेरे मित्र श्रीमुकुन्द ने मेरी अनवरत सहायता की है। मुकुन्द के समान संस्कृतज्ञ तथा शास्त्राध्यायी के सहयोग विना उपन्यास में अनेक त्रुटियाँ रह जातीं।

मैं यह नहीं कहता कि उपन्यास त्रुटिविहीन है। इसकी अनेक त्रुटियों से तो मैं स्वयं अवगत हूँ। सामर्थ्य के अभाव में जानते हुए भी, मैं उन त्रुटियों को दूर नहीं कर पाया। ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का मेरा यह प्रथम प्रयास है।

उपन्यास में ऐसी भी अनेक त्रुटियाँ हैं जिनको मैं, अहंकारवश, अपने-आप नहीं देख पा रहा। आशा है कि सहृदय पाठक-गण मेरा ध्यान उस ओर आकृष्ट करके मुझे अनुगृहीत करेंगे।

१६/११, शक्तिनगर, दिल्ली।
ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमी,
विक्रमाब्द २०१७।

सीताराम गोयल

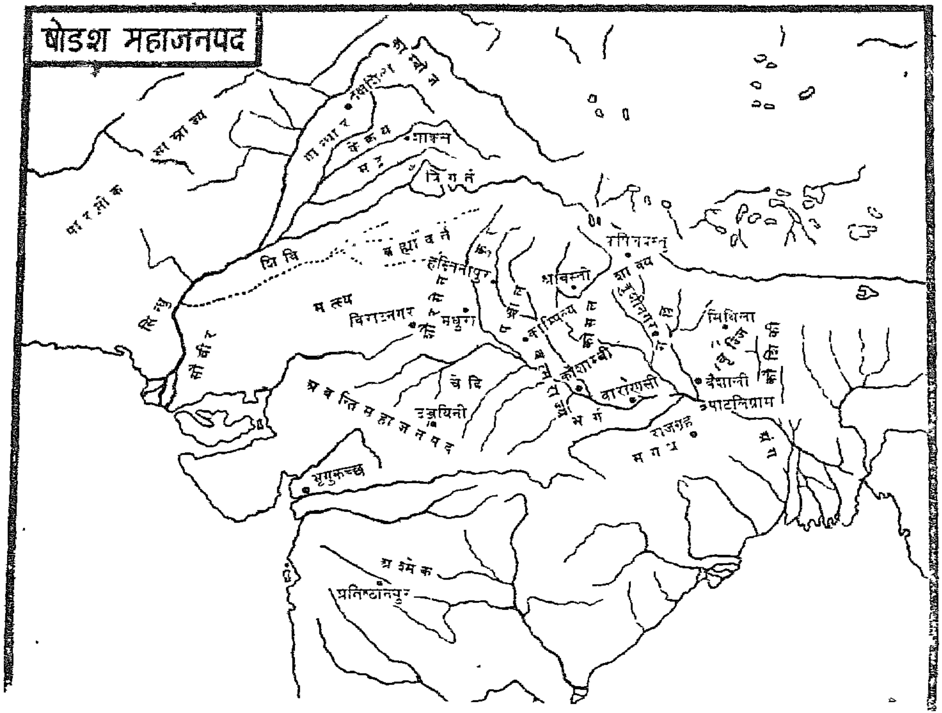

षोडश महाजनपद
तक्षशिला
गान्धार
कम्बोज
केकय
शाकल
मद्र
त्रिगर्त
पारसीक
ब्रह्मावर्त
हस्तिनापुर
सिन्धु
मत्स्य
विराटनगर
मधुरा
सौवीर
चेदि
अवन्ति महाजनपद
उज्जयिनी
भृगुकच्छ
श्रावस्ती
काम्पिल्य
कौशाम्बी
वाराणसी
भर्ग
कपिलवस्तु
कुशीनगर
मिथिला
वैशाली
पाटलिग्राम
राजगृह
मगध
अंग
अश्मक
प्रतिष्ठानपुर

आवास के अलिन्द पर ध्यानावस्थित, महास्थविर पूर्ण मैत्रायणी-पुत्र ने, नेत्र उन्मीलित करके, अपने सन्मुख परिवेण मे प्रस्तुत, तरुण श्रमण को दृष्टिगोचर किया।

श्रमण सर्वथा दर्शनाभिराम थे। दीर्घाकार प्रतनु देहभार। उन्नत ललाट। वर्तुलाकार वक्त्र। अर्धोत्फुल्लित अरविन्द-सा अक्षियुगल। रक्ताभ रेखामात्र मे अभिव्यक्त अधरोष्ठ। उन्नमित नासिका। सिंह-सदृश स्नायु-पुष्ट स्कन्ध। प्रशस्त वक्षस्थल। आजानु भुजदण्ड। प्रत्येक अवयव मानो सौष्ठव का पराकाष्ठा-प्रतीक था। काषायवस्त्रो मे विकीर्ण होकर भी विद्युत्-द्युति-सा देदीप्यमान था उनके अनावृत गात्रो का गौरवर्ण।

श्रमण की वयस तीस वर्ष से अधिक नही थी। उस सत्त्व-सम्पदा की सृष्टि करते समय विधाता ने कदाचित ही यह कल्पना की हो कि उसमे सहज-स्फूर्त शौर्य-शक्ति, एक दिन, सयम से शुद्ध होकर, शान्त एव शीतल हो जाएगी। उसमे आकर्षण का अतिरेक अवास्थित करते समय अनगदेव को यह आशका नही थी कि, एक दिन, वह समस्त सौन्दर्य-राशि, सहसा, सुरा एव सुन्दरी की आराधना त्यागकर, एक अन्य साधना की ओर उन्मुख हो उठेगी।

किन्तु परमार्थ-परायण पुरुष ने, परिपूर्ण यौवन के पूर्वाह्न मे ही, विधाता का विधान विफल कर दिया था। उनके गात्रपुज मे गौरवान्वित, मन्मथ की मनोकामना, मरण का वरण करके, मूक हो गई थी। जो शरीर, शौर्य एवं शृङ्गार की रसोर्मियो पर दो दिन दोलायमान होकर, शिशिर में शीर्ण शतपत्र के समान अनन्त काल के आवर्त मे अन्तर्हित हो जाता, वही शरीर अब सतत् सन्तोष की क्षुरधार पर निस्पन्द निष्ठायमान होकर अर्हत्व-अर्जन के लिए आत्मा का अनुयायी बना था।

तरुण श्रमण ने, बद्धाञ्जलि अभिवादन अर्पण करके, महास्थविर को सम्बोधित किया : "भन्ते ! क्या आपको इस समय अवकाश है ?"

महास्थविर ने, मुस्करा कर, उत्तर दिया : "आवुस उदय ! मैं तेरी ही प्रतीक्षा में उपासीन हूँ। जा, आसन ले आ।"

आयुष्मान उदय, अलिन्द पर आरोहण कर, आवास में प्रविष्ट हो गए।

महास्थविर की दृष्टि किंचित उन्नमित हुई और अपने दृष्टिपथ पर उन्नत-शीर्ष कौशाम्बी की सौधशृङ्गमाला पर निविष्ट हो गई। सूर्योदय की अनिन्द्य अरुणिमा से आलम्पित-से थे वे अभ्रभेदी हर्म्यशिखर। किन्तु प्रत्येक प्रासाद के गर्भ में, गतरात्रि में संगृहीत आलस्य अभी तक अक्षुण्ण था। प्रासाद-प्रासाद के शयनकक्षों में, स्वर्ण-विरचित, मणि-खचित, तूल-गर्भित तल्पास्तीर्ण पर्यंकों पर, कौशाम्बी के कुलपुत्र एवं कुलस्त्रियाँ शायमान थे।

कालिन्दी-कूल के हिमशीतल वीचि-विलास से विक्षुब्ध-सा, प्रातःकाल का प्रगल्भ पवन, वत्सराज उदयन की क्रीड़ास्थली के अवरुद्ध वातायनों से विफल विग्रह करके विरक्त हो गया था। प्रभात की प्रथम प्रकाशरेखा के साथ शत-शत स्वरों में प्रस्फुटित, विहगकुल का विमल कलरव, जागृत जनजीवन के कोलाहल ने कवलित कर लिया था। प्रासादमाला के उत्संग-उत्संग से उद्घोषित, तूर्यवाद्य की उद्बोधन-ध्वनि, वारम्वार, तारसप्तक तक आरोह करके मन्द्रस्थान पर अवरोह कर चुकी थी।

किन्तु कौशाम्बी के क्लान्त-कलेवर कुलपुत्रों तथा कुलाङ्गनाओं ने, न नेत्रोन्मीलन किया, न पार्श्व-परिवर्तन। शिशिर-ऋतु की शृंगारमयी शर्वरी को, गीत, वाद्य, नृत्य, आपान एवं अभिसार के समारोह में अति-वाहित करने वाले वे अनंग के अनन्य आराधक, अपराह्ण के समय शय्या-त्याग करने के अभ्यासी थे। उस वेला तक उनके विलास-विगलित वपु, एक अन्य मधुयामिनी में मन्मथ-महोत्सव मनाने के लिये, पुनरेण अधीर होने लगते थे।

कौशाम्बी से अनतिदूर, धर्मसंघ के विहार, घोषिताराम, में प्रत्यूष की प्रथम किरण के साथ शय्यात्याग करने वाला भिक्षुसंघ, नित्यकर्म से निवृत्त होकर, तथागत द्वारा कथित शिक्षापदों के श्रवण-श्रावण तथा पठन-पाठन में दत्तचित्त था—विलास से विषाक्त वातावरण को मन्त्र-पूत करता हुआ सा।

आर्यावर्त के प्राच्य प्रान्त तथा मध्यमण्डल में, पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण, सर्वत्र स्थापित थे ऐसे ही अनेक संघाराम—ऐहिक ऐषणा की मृगमरीचिका में मार्ग-भ्रष्ट तथा प्राणिहिंसा के पापपंक में परि-मज्जित पुण्यभूमि को, पुनरेण, आत्मान्वेषण तथा धर्माचरण के पावन पथ पर प्रतिष्ठित करने के लिए। आर्यावर्त के अनेकानेक परमार्थ-परायण स्त्री-पुरुषों ने, केश-श्मश्रु मुण्डित करवा कर, काषाय-वस्त्र धारण करके आगार से अनागारिक होकर, तपस्या एवं ब्रह्मचर्य के पुण्य-पथ पर पदार्पण किया था।

मैत्रायणीपुत्र का, उपेक्षा से उपलिप्त मुखमण्डल, कौशाम्बी के कलु-षित कलेवर की ओर से अपसरित होकर, अपने सन्मुख उपासीन आयुष्मान उदय की ओर अवनत हुआ। शिष्य ने, विनम्र वाणी में, आचार्य को सम्बो-धित किया : "भन्ते ! आप अनुज्ञा दें तो मैं महापरिनिर्वाण सूक्त का अनुश्रावण करूँ।"

महास्थविर ने पूछा : "आवुस ! क्या तूने सम्पूर्ण सूक्त मुखस्थ कर लिया है ?"

"भन्ते ! मैंने सम्पूर्ण सूक्त मुखस्थ कर लिया। किन्तु......"

आयुष्मान उदय ने, अपना कथन समाप्त किए बिना ही, मुख अवनत कर लिया।

महास्थविर तुरन्त समझ गए कि शिष्य को किसी शंका का समाधान अपेक्षित है। तरुण श्रमण का मानस किसी द्वन्द्व से दिग्ध था। किन्तु प्रश्न पूछ कर शिष्य की मनोभावना से अवगत होना, महास्थविर की शिक्षण-प्रणाली के प्रतिकूल था। महास्थविर का विश्वास था कि प्रत्येक साधक, यथासाध्य आत्मान्वेषण करके, अपनी शंका का समाधान स्वयं ही खोजे तो साधना सुदृढ़तर होती है। शिष्य के लिए आचार्य से साहाय्य-याचना उसी अवस्था में उचित थी, जब कि वह स्वयं अपनी शंका का समाधान पाने में, अन्ततः असफल रहे।

मैत्रायणीपुत्र ने अपने नेत्र निमीलित करके कहा : "आवुस ! मुखस्थ का अनुश्रावण कर। मैं तेरे मुख से महापरिनिर्वाण सूक्त का श्रवण करूँगा।"

आयुष्मान उदय सावधान होकर उपासीन हुए। फिर वे, महास्थविर के मुखमण्डल पर अपनी दृष्टि आविष्ट करके, श्रद्धासम्पन्न स्वर-ग्राम में, सूक्त का अनुश्रावरण करने लगे:

"मैंने ऐसा सुना है।

"एक समय भगवान राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर विहार कर रहे थे। उस समय मगधराज अजातशत्रु वैदेहीपुत्र ने, वृज्जियों पर अभियान करने की कामना से, सोचा: 'मैं इन महर्द्धिक, महानुभाव वृज्जियों को उच्छिन्न करूँगा, वृज्जियों का विनाश करूँगा, वृज्जियों पर अनय-व्यसन आपातित करूँगा।'

"तब मगधराज अजातशत्रु वैदेहीपुत्र ने मगध के महामात्य, वर्षकार ब्राह्मण को बुलाकर कहा: 'ब्राह्मण! तुम जाओ। जहाँ भगवान हैं वहाँ जाओ। जाकर, मेरी ओर से, भगवान के चरणों में शिरसा वन्दना करो। अल्प-आबाध, अल्प-आतंक, लघु-उत्थान, सुखविहार पूछो। भगवान से कहो कि भन्ते! मगधराज अजातशत्रु वैदेहीपुत्र, भगवान के चरणों में, शिरसा वन्दना करता है; अल्प-आबाध, अल्प-आतंक, लघु-उत्थान, सुखविहार पूछता है। और भगवान से कहो कि भन्ते! मगधराज अजातशत्रु वैदेहीपुत्र, वृज्जियों पर अभियान करने की कामना से सोचता है—मैं इन महर्द्धिक, महानुभाव वृज्जियों को उच्छिन्न करूँगा, वृज्जियों का विनाश करूँगा, वृज्जियों पर अनय-व्यसन आपातित करूँगा। भगवान तुमसे जो कहें वह सम्यक्-रूपेण ग्रहण करके मुझे बतलाओ। तथागत कभी वितथ्य नहीं कहते।'

"मगध का महामात्य, वर्षकार ब्राह्मण, मगधराज अजातशत्रु वैदेहीपुत्र की बात सुन कर, 'अच्छा, भो!' कहकर, सुन्दर-सुन्दर यान जुतवा कर, सुन्दर यान पर आरोहण करके, सुन्दर-सुन्दर यानों के साथ, राजगृह से निकला। जहाँ गृध्रकूट पर्वत था वहाँ गया। जितना यान का मार्ग था उतना यान से जाकर, यान से अवरोहण करके, पदाति ही भगवान के समीप गया। जाकर भगवान का सम्मोदन किया। सम्मोदन जिस प्रकार किया जाता है उसी प्रकार करके, एक ओर उपासीन हो गया। एक ओर उपासीन होकर, मगध का महामात्य, वर्षकार ब्राह्मण, भगवान से बोला:

'हे गौतम ! मगधराज अजातशत्रु वैदेहीपुत्र आप गौतम के चरणों में शिरसा वन्दना करता है; अल्प-आबाध, अल्प-आतंक, लघु-उत्थान, सुखविहार पूछता है । हे गौतम ! मगधराज अजातशत्रु वैदेहीपुत्र वृज्जियों पर अभियान करने की कामना से सोचता है—मैं इन महर्द्धिक, महानुभाव वृज्जियों को उच्छिन्न करूँगा, वृज्जियों का विनाश करूँगा, वृज्जियों पर अनय-व्यसन आपातित करूँगा ।'

"उस समय आयुष्मान आनन्द, भगवान के पीछे की ओर उपस्थान करके, भगवान पर व्यजन आन्दोलित कर रहे थे । तब भगवान ने आयुष्मान आनन्द को सम्बोधित किया :

'आनन्द ! क्या तूने सुना है कि वृज्जि-गण अभिन्न-सन्निपात हैं, सन्निपात-बहुल हैं ?'

'भन्ते ! मैंने सुना है कि वृज्जिगण अभिन्न-सन्निपात हैं, सन्निपात-बहुल हैं ।'

'जब तक, आनन्द ! वृज्जि-गण अभिन्न-सन्निपात, सन्निपात-बहुल रहेंगे, तब तक, आनन्द ! वृज्जि-गण की वृद्धि ही समझना, हानि नहीं ।

'आनन्द ! क्या तूने सुना है कि वृज्जि-गण सम्भूत होकर सन्निपात करते हैं, सम्भूत होकर समुत्थान करते हैं, सम्भूत होकर करणीय कर्म करते है ?'

'भन्ते ! मैंने सुना है कि वृज्जि-गण सम्भूत होकर सन्निपात करते हैं, सम्भूत होकर समुत्थान करते हैं, सम्भूत होकर करणीय कर्म करते हैं ।'

'जब तक, आनन्द ! वृज्जि-गण सम्भूत होकर सन्निपात करते रहेंगे, सम्भूत होकर समुत्थान करते रहेंगे, सम्भूत होकर करणीय कर्म करते रहेंगे, तब तक, आनन्द ! वृज्जि-गण की वृद्धि ही समझना, हानि नहीं ।'

'आनन्द ! क्या तूने सुना है कि वृज्जि-गण अप्रज्ञप्त को प्रज्ञप्त नहीं करते, प्रज्ञप्त का उच्छेद नहीं करते और, जिस प्रकार प्रज्ञप्त है उसी प्रकार सनातन वृज्जि-धर्म को ग्रहण करके, आचरण करते हैं ?'

'भन्ते ! मैंने सुना है कि वृज्जि-गण अप्रज्ञप्त को प्रज्ञप्त नहीं करते, प्रज्ञप्त का उच्छेद नहीं करते और, जिस प्रकार प्रज्ञप्त है उसी प्रकार सनातन वृज्जिधर्म को ग्रहण करके, आचरण करते हैं ।'

'जब तक, आनन्द ! वृज्जि-गण अप्रज्ञप्त को प्रज्ञप्त नहीं करेंगे, प्रज्ञप्त का उच्छेद नहीं करेंगे और, जिस प्रकार प्रज्ञप्त है उसी प्रकार सनातन वृज्जि-धर्म को ग्रहण करके, आचरण करते रहेंगे, तब तक, आनन्द ! वृज्जि-गण की वृद्धि ही समझना, हानि नहीं ।

'आनन्द ! क्या तूने सुना है कि वृज्जि-गण अपने वृज्जि-जनपद के वृज्जि-गुरुजनों का सत्कार करते हैं, गुरुकार करते हैं, मान करते हैं और, गुरुजनों की पूजा करके, उनकी श्रोतव्य बातों का श्रवण करते हैं ?'

'भन्ते ! मैंने सुना है कि वृज्जि-गण अपने वृज्जि-जनपद के वृज्जि-गुरुजनों का सत्कार करते हैं, गुरुकार करते हैं, मान करते हैं और, गुरुजनों की पूजा करके, उनकी श्रोतव्य बातों का श्रवण करते हैं ।'

'जब तक, आनन्द ! वृज्जि-गण अपने वृज्जि-जनपद के वृज्जि-गुरु-जनों का सत्कार करते रहेंगे, गुरुकार करते रहेंगे, मान करते रहेंगे और, गुरुजनों की पूजा करके, उनकी श्रोतव्य बातों का श्रवण करते रहेंगे, तब तक, आनन्द ! वृज्जि-गण की वृद्धि ही समझना, हानि नहीं ।

'आनन्द ! क्या तूने सुना है कि वृज्जि-गण अपनी कुलस्त्रियों अथवा कुलकुमारियों का अपहरण करके बलात् उन्हें अपने आवास में अवरुद्ध नहीं करते ?'

'भन्ते ! मैंने सुना है कि वृज्जि-गण अपनी कुलस्त्रियों अथवा कुल-कुमारियों का अपहरण करके बलात् उन्हें अपने आवास में अवरुद्ध नहीं करते ।'

'जब तक, आनन्द ! वृज्जि-गण अपनी कुलस्त्रियों अथवा कुलकुमा-रियों का अपहरण करके बलात् उन्हें अपने आवास में अवरुद्ध नहीं करते रहेंगे, तब तक, आनन्द ! वृज्जि-गण की वृद्धि ही समझना, हानि नहीं ।

'आनन्द ! क्या तूने सुना है कि वृज्जि-गण अपने वृज्जिनगर के आभ्यन्तर एवं बाह्यान्तर वृज्जि-चैत्यों का सत्कार करते हैं, गुरुकार करते हैं, मान करते हैं और, उन चैत्यों की पूजा करके, उनकी पूर्वकृत, पूर्वदत्त धार्मिक बलि का परिहार नहीं करते ?'

'भन्ते ! मैंने सुना है कि वृज्जि-गण अपने वृज्जिनगर के आभ्यन्तर एवं बाह्यान्तर वृज्जिचैत्यों का सत्कार करते हैं, गुरुकार करते हैं, मान

करते हैं और, उन चैत्यों की पूजा करके, उनकी पूर्वकृत, पूर्वदत्त धार्मिक बलि का परिहार नहीं करते।'

'जब तक, आनन्द ! वृज्जि-गण अपने वृज्जिनगर के आभ्यन्तर एवं बाह्यान्तर वृज्जि-चैत्यों का सत्कार करते रहेंगे, गुरुकार करते रहेंगे, मान करते रहेंगे और, उन चैत्यों की पूजा करते हुए, उनकी पूर्वकृत, पूर्वदत्त धार्मिक बलि का परिहार नहीं करते रहेंगे, तब तक, आनन्द ! वृज्जि-गण की वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।

'आनन्द ! क्या तूने सुना है कि वृज्जि-गण अर्हतों की धार्मिक रक्षा, आवरण, गुप्ति सम्यक्-रूपेण करते हैं, जिससे कि अनागत अर्हत् उनके राज्य में आवें तथा आगत अर्हत् राज्य में सुख से विहार करें ?'

'भन्ते ! मैंने सुना है कि वृज्जि-गण अर्हतों की धार्मिक रक्षा, आवरण, गुप्ति सम्यक्-रूपेण करते है, जिससे कि अनागत अर्हत् उनके राज्य में आवें तथा आगत अर्हत राज्य में सुख से विहार करें।'

'जब तक, आनन्द ! वृज्जि-गण अर्हतों की धार्मिक रक्षा, आवरण, गुप्ति सम्यक्-रूपेण करते रहेंगे, जिससे कि अनागत अर्हत् उनके राज्य में आते रहें तथा आगत अर्हत् राज्य में सुख से विहार करते रहें, तब तक, आनन्द ! वृज्जि-गण की वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।'

"तब भगवान ने मगध के महामात्य, वर्षकार ब्राह्मण, को सम्बोधित किया : 'ब्राह्मण ! एक समय मैं वैशाली के सारदन्द चैत्य में विहार कर रहा था। वहाँ मैंने वृज्जि-गण को इन सात अपरिहाणीय धर्मों का उपदेश दिया था। जब तक, ब्राह्मण ! वृज्जि-गण में ये सात अपरिहाणीय धर्म विद्यमान रहेंगे और वृज्जि-गण इन सात अपरिहाणीय धर्मों का आचरण करते रहेंगे, तब तक, ब्राह्मण ! वृज्जि-गण की वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।'

"यह सुनकर मगध का महामात्य, वर्षकार ब्राह्मण, बोला : 'हे गौतम ! एक ही अपरिहाणीय धर्म में स्थित रहने पर वृज्जिगण की वृद्धि समझनी चाहिए, हानि नहीं। सात अपरिहाणीय धर्मों की तो बात ही क्या है। हे गौतम ! मगधराज अजातशत्रु वैदेहीपुत्र के लिए यह उचित नहीं कि, उपजाप अथवा भेद की नीति का त्याग करके, वृज्जिगण के साथ युद्ध

करें। हन्त ! हे गौतम ! अब मैं जाता हूँ। मैं बहुकृत्य, बहुकरणीय हूँ।'

'ब्राह्मण ! इस समय तू जिस कर्म का काल समझता है।'

"तब मगध का महामात्य, वर्षकार ब्राह्मण, भगवान के भाषण का अभिनन्दन तथा अनुमोदन करके, आसन से उठकर, चला गया......।"

आयुष्मान उदय का शब्दप्रवाह, सहसा, संरुद्ध हो गया। मैत्रायणीपुत्र के मुख पर सन्तोष अंकित था। शिष्य ने, सूक्त के अनुश्रावण में, किसी स्थल पर भी, एक अनुस्वार की भूल नहीं की थी। आचार्य कुछ क्षण तक प्रतीक्षा करते रहे कि शिष्य, मध्य में विस्मृत वाक्य का स्मरण करके, पुनरेण अनुश्रावण आरम्भ करे। सूक्त की प्रथम भाणवार का भी अधिकांश अभी अवशिष्ट था।

तब महास्थविर ने, शिष्य की सहायता के निमित्त, अनन्तर वाक्य का श्रावण किया : "तब भगवान ने, मगध के महामात्य, वर्षकार ब्राह्मण, के चले जाने पर, तुरन्त ही, आयुष्मान आनन्द को सम्बोधित किया......।"

किन्तु आयुष्मान उदय पूर्ववत् मौन रहे। मैत्रायणीपुत्र ने, नेत्र उन्मीलित करके, शिष्य की ओर देखा। फिर उदय को, विजड़ित-सा उपासीन पाकर, उन्होंने कोमल स्वर में उपालम्भ किया : "आवुस उदय ! महापरिनिर्वाण सूक्त तथागत का अन्तिम धर्मोपदेश है। इस सूक्त के अनुश्रावण में असावधानता उचित नहीं।"

आयुष्मान उदय ने, विनयपूर्ण वाणी में, निवेदन किया : "भन्ते ! सूक्त का सूत्र मुझसे विस्मृत नहीं हुआ।"

"तब ?"

"भन्ते ! जब-जब मैं महापरिनिर्वाण सूक्त की इस प्रथम भाणवार पर मनन करता हूँ तब-तब मेरे मानस में एक आशंका का उदय होता है।"

"कैसी आशंका, आवुस !"

"भन्ते ! मैंने सुना है कि वर्षकार ब्राह्मण इस समय वैशाली में विद्यमान है।"

"हाँ, आवुस ! वर्षकार ब्राह्मण, प्रायः पाँच वर्ष से, वृज्जिसंघ का विनिश्चय-महामात्य है।"

"भन्ते ! मैंने यह भी सुना है कि वैशाली के लिच्छविगण, अपने अपरिहाणीय धर्मों का परित्याग करके, अधर्म का आचरण कर रहे हैं।"

"यह समाचार भी सत्य है, आवुस ! वैशाली से प्रत्यागत प्रत्येक पुरुष लिच्छवि-गण के अनाचार की कथा कहता है।"

"भन्ते ! जब-जब मैं महापरिनिर्वाण सूक्त की प्रथम भाणवार पर मनन करता हूँ तब-तब मेरा मन कहता है कि वर्षकार ब्राह्मण मगधराज अजातशत्रु का गूढ़पुरुष है और उसने, उपजाप एवं भेदनीति से वृज्जिसंघ का विनाश करने के लिए ही, लिच्छवि-गण का विश्वास प्राप्त किया है। वर्षकार ब्राह्मण ही वस्तुतः वैशाली में अनाचार को प्रोत्साहित कर रहा है।"

महास्थविर का मुखमण्डल एक व्यंगमयी मुस्कान से सिक्त हो गया। उस व्यंग में विद्वेष अथवा उपहास का नहीं, स्नेह का ही उद्रेक था। एक क्षण मौन रह कर, वे बोले : "आवुस उदय ! सूक्त का सूत्र तो तुझसे विस्मृत नहीं हुआ। किन्तु यह अवश्य विस्मृत हो गया कि तू, इस समय, वैशाली का क्षत्रियकुमार उदय लिच्छविपुत्र नहीं वरन् धर्मसंघ में उपसम्पन्न उदय भिक्षु है।"

आयुष्मान उदय ने अपना मुख अवनत कर लिया। आचार्य की भर्त्सना का उत्तर उनके पास नहीं था। उत्तर होता तो भी आचार्य के साथ विवाद करना धर्मविनय के विपरीत था। तब मैत्रायणीपुत्र ने, मैत्री का भाव धारण करके, शिष्य से कहा : "आवुस उदय ! उत्तर दे। तू किस मनोभावना से प्रेरित होकर वृज्जिसंघ के विषय में विकल होता है ?"

आयुष्मान उदय बोले : "भन्ते ! आपने जो कहा वही मेरी बुद्धि का भी एक पक्ष मुझसे, वारम्वार, कहता रहता है।"

"और द्वितीय पक्ष ?"

"भन्ते ! मेरी बुद्धि का द्वितीय पक्ष, वारम्वार, कहता है कि मेरी आशंका में धर्म की ही प्रेरणा है।"

"प्रमाण ?"

"भन्ते ! भगवान ने सनातन आर्य धर्म का पुनरोद्धार करने के लिए ही धरा पर देह धारण की थी। भगवान ने सनातन आर्य धर्म की वृद्धि

के लिए ही धर्मचक्र-प्रवर्तन किया था; सनातन आर्य धर्म की स्थापना के लिए ही, दीर्घ पञ्चत्वारिंशत वर्ष तक, प्राची तथा मध्यमण्डल में चारिका करके अपने विमल धर्मोपदेश को विस्तृत किया था। भगवान सर्वदैव अधर्म का विरोध करते रहे। उन्होंने कभी भी अधर्म के प्रति उदासीनता का भाव धारण नहीं किया।"

"किन्तु, आवुस ! अब तो भगवान इस धरा पर नहीं हैं।"

"भन्ते ! भगवान का धर्मसंघ तो है। धर्मसंघ ने भगवान से धर्म-दायाद पाया है। अधर्म का प्रसार देख कर धर्मसंघ मौन नहीं रह सकता।"

मैत्रायणीपुत्र ने शिष्य की स्थापना का प्रत्युत्तर नहीं दिया। वे, अपने नेत्र निमीलित करके, ध्यानावस्थित हो गए। आयुष्मान उदय, आचार्य के आदेश की अपेक्षा में, मौनभाव से उपासीन रहे।

कुछ क्षण उपरान्त, महास्थविर ने अपने नेत्र उन्मीलित करके पूछा : "आवुस ! क्या तुझे लिच्छवि-गण के बाहुबल पर विश्वास नहीं है ? क्या लिच्छवि-गण स्वयमेव अपनी रक्षा नहीं कर सकते ?"

आयुष्मान उदय ने उत्तर दिया : "भन्ते ! लिच्छवि-गण के बाहुबल पर मुझे विश्वास है। किन्तु मैं लिच्छवि-गण के बुद्धिबल पर विश्वास नहीं कर सकता। विदेश में शिक्षा-प्राप्त अनेक लिच्छविपुत्रों की बुद्धि सर्वथा नष्ट हो चुकी है। अवशिष्ट लिच्छविपुत्र सरल हैं। वे वर्षकार ब्राह्मण जैसे प्रवीण नीतिविद् के नैपुण्य से अपना त्राण नहीं कर सकते। जिन्होंने कुचक्र रचने की शिक्षा कभी ग्रहण नहीं की, वे कुचक्र को सृष्ट होते दृष्टिगत भी नहीं कर सकते। यही लिच्छवि-गण की महानता है, और यही उनकी दुर्निवार्य दुर्बलता।"

"आवुस ! तू उचित कहता है। किन्तु धर्मसंघ के द्वारा करणीय-अकरणीय के विषय में तो धर्मसंघ ही एकमात्र प्रमाण है। तू धर्मसंघ के समक्ष अपनी आशंका उपस्थित कर।"

"भन्ते ! इस विषय में किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए धर्मसंघ प्रमाण माँगेगा। मेरे पास, मेरे अपने विश्वास के अतिरिक्त, कोई अन्य प्रमाण नहीं।"

"क्या तू प्रमाण संग्रह कर सकता है, आवुस !"

"भन्ते ! यदि मेरी बुद्धि इस विषय में स्थिर हो जाती तो मैं प्रमाण-संग्रह की चेष्टा करता। किन्तु......"

"किन्तु क्या, आवुस !"

"कभी-कभी मेरा मन कहने लगता है कि सम्भवत: मेरे लिच्छवि संस्कार ही मुझे धर्म की ऐसी व्याख्या करने के लिए विवश कर रहे हैं।"

"आवुस ! यह तेरे वैराग्य की परीक्षा है।"

"किन्तु, भन्ते! मुझे परीक्षा पार करने का मार्ग नहीं दिखाई देता।"

"मार्ग है, आवुस ! तुझे यह परीक्षा पार करने के लिए वैशाली की ओर प्रस्थान करना होगा। तू वैशाली-यात्रा का समारम्भ कर।"

आयुष्मान उदय, एक क्षण के लिए, किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गए। उन को वैशाली में जाना होगा !! जिस जीवन से विरक्त होकर वे धर्मसंघ की शरण में आए थे, उसी जीवन को ओर ! भिक्षुत्व की भर्त्सना करके ! निर्वाण के मार्ग से परावृत्त होकर !! ऐसा वे नहीं कर सकते ! ऐसा उन्हें नहीं करना चाहिए !!

आयुष्मान उदय, आतङ्कित-से, संतापित-से, आचार्य की ओर देखने लगे। मैत्रायणीपुत्र ने, अपनी अन्तर्दृष्टि से, शिष्य के मानस में उद्वेलित भय एवं ग्लानि को देख लिया। वे शिष्य के मस्तक पर अपना करतल व्यस्त करके बोले : "भय नहीं है, आवुस ! भय नहीं है। भिक्षुत्व की भर्त्सना करके नहीं, भिक्षुत्व की परीक्षा के लिए ही तू वैशाली चला जा। तेरे अन्तर में यदि लिच्छवि संस्कार अवशिष्ट हैं तो तेरे श्रामण्य-धर्म से उन संस्कारों का संघर्ष होगा। वृज्जिसंघ के रङ्गशीर्ष पर। मुझे विश्वास है कि तू श्रामण्य की मर्यादा को कलङ्कित नहीं होने देगा।"

आयुष्मान उदय ने, उत्थान करके, आचार्य के चरणों में अपना मस्तक अवनत कर दिया।

महास्थविर भी, अपने आसन से उत्तिष्ठ होकर, आवास में चले गए। पिण्डचार की वेला उपस्थित थी।

आयुष्मान उदय, आचार्य का अनुगमन करने के लिए, भिक्षापात्र तथा संघाटी लेने, अपने आवास की ओर लौट पड़े। अब उनके मानस में निश्चयजनित शान्ति का साम्राज्य था।

पूर्वार्ध

प्रथम अंक

परवर्ती इतिहास के दृष्टिपथ से पर्यवेक्षण करने पर, भगवान शाक्य-सिंह के समकालीन आर्यावर्त का इतिवृत्त, मगध-साम्राज्य की समुत्थान-कथा का परिच्छेद-मात्र प्रतीत होता है। किन्तु भगवान कुशीनगर में महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए उस समय तक भी, सम्भवतः कोई त्रिकाल-वेत्ता ही निश्चयपूर्वक यह सूचना दे सकता था कि, निकट भविष्य में, आर्यावर्त पर ही नहीं, अपितु अखिल भारतवर्ष पर, मगध के सार्वभौम साम्राज्य का विजयध्वज उत्तोलित होगा।

तथागत कपिलवस्तु में अवतीर्ण हुए तब भारतवर्ष में षोडश स्वाधीन महाजनपद विद्यमान थे।

उत्तरापथ में काम्बोज तथा गान्धार। मध्यमण्डल में कुरु, पञ्चाल, शूरसेन, मत्स्य, चेदि, वत्स, काशी तथा कोसल। प्राची में अङ्ग, मगध, वृज्जि तथा मल्ल। प्रतीची में अवन्ति। दक्षिणापथ में अश्मक।

मगध इन महाजनपदों में से एक था। सो भी किसी दृष्टि से अग्र-गण्य नहीं।

तत्कालीन साहित्य एवं अन्यान्य सूत्रों से उपलब्ध उल्लेखानुसार आर्यावर्त के प्राचीन राजवंश अधिकतर उच्छिन्न हो चुके थे। अवशिष्ट राजवंश मरणोन्मुख थे। और राजवंशों के स्थान में महाप्रतापी तथा ऐश्वर्यशाली गणराज्यों का उदय हो रहा था। राजवंशों के अधीनस्थ राष्ट्रों में भी एकाधिक गणराज्यों के स्वतन्त्र संस्थागार स्थापित होने लगे थे।

मध्यमण्डल के कुरु, पञ्चाल, शूरसेन तथा मत्स्य में गणराज्य सृष्ट हो चुके थे। प्राची के मल्ल तथा वृज्जि महाजनपदों में भी गणराज्य की शासनप्रणाली प्रचलित थी।

गान्धार महाजनपद में केकय, मद्र, यौद्धेय, त्रिगर्त, शिबि तथा अम्बष्ठ आदि कुल गणराज्य की स्थापना के लिए सचेष्ट थे। कोसल के उत्तर-पूर्ववर्ती अंचल में शाक्य, मोरिय, कोलिय तथा बुलिय इत्यादि कुल अपने-अपने स्वाधीन संस्थागारों में सन्निपात करने लगे थे। वत्स के पूर्ववर्ती प्रान्त, भर्गदेश में, भर्गगण, कौशाम्बी में विराजमान वत्सराज की अवहेलना करके, सुंसमारगिरि में समाहूत अपनी परिषद को ही प्रमाण मानते थे।

ये समस्त गणराज्य, साधरणतया, राजकुलोचित विजिगीषु-वृत्ति से विरत रहते थे। विविध राजवंशों द्वारा सतत संचालित षाड्गुण्य-प्रयोग से न इनका परिचय था, न प्रयोजन, न सम्पर्क। किसी गणराज्य के स्वातन्त्र्य पर किसी साम्राज्य-लोलुप राजकुल की दृष्टि आकृष्ट होती थी तो उस गणराज्य का शासककुल, आबाल-वृद्ध, प्राणोत्सर्ग करने के लिए उद्यत हो जाता था। किन्तु किसी अन्य राष्ट्र के स्वातन्त्र्य पर दृष्टिपात करना भी गणराज्य के लिए महापाप था। गणराज्यों की परम्परा थी अपनी-अपनी शान्त, सम्पन्न एवं संयत लोकयात्रा का निर्बाध निर्वाह।

दूसरी ओर, कोई राजकुल भी किसी प्रतिवेशी गणराज्य के साथ, वैमनस्य का दुर्वह दायित्व वहन करने के लिए, सहसा प्रस्तुत नहीं होता था। साम तथा दान द्वारा प्रतिवेशी गणराज्यों की सुदृढ़ मैत्री संग्रह करना ही राजकुलोचित दण्डनीति का विधान था। गणराज्य के साथ विद्वेष अथवा विग्रह उत्पन्न होने पर, उसके दमन के लिए जितने कोश का व्यय तथा बल का सन्निवेश अनिवार्य हो जाता था, उतने उपकरण से किसी राजकुलाधीन राष्ट्र को कई बार ध्वस्त अथवा हस्तगत करना सुकर था। प्रत्येक गणराज्य, अपनी अपरिमेय संघातशक्ति के कारण, प्रायः अधृष्य माना जाता था।

उस समय विद्यमान गणराज्यों में सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वशक्तिमान था प्राची का वृज्जिसंघ। भगवान बुद्ध का जन्म हुआ तब वैशाली के लिच्छविगण, मिथिला के विदेहगण, कुशीनगर के मल्लगण तथा कोसल के शाक्य, मोरिय, बुलिय एवं कोलिय इत्यादि कुल, सम्भूत होकर समुत्थान करते थे। प्रत्येक कुल का अपना स्वाधीन संस्थागार था। किन्तु गणराज्य का

सन्निपात लिच्छवियों की वैशाली में सम्पन्न होता था।

भगवान ने कपिलवस्तु से महाभिनिष्क्रमरा किया, उसके कतिपय वर्ष पूर्व, मगध महाजनपद के राजवंश का, वृज्जिसंघ से, अनायास ही वैमनस्य हो गया।

राजगृह के राजसिंहासन पर, शिशुनागकुल-तिलक, महाप्रतापी, महाप्राण, महारथी महाराजा श्रेणिक बिम्बिसार विराजमान थे। मेधावी मन्त्रिगण, प्रवीण पुरोहित तथा अध्यवसायरत अमात्यपरिषद की सहायता से, मगधराज ने अपने राष्ट्र को अनय-व्यसन से मुक्त करके, धन-धान्य तथा सुख-समृद्धि से सम्पन्न किया था। राज्य के कोशबल तथा दण्डबल में अभूतपूर्व वृद्धि हुई थी।

तब मगधराज बिम्बिसार ने विजिगीषु की विहङ्गम-दृष्टि से आर्यावर्त का अवलोकन किया। मगध के पश्चिम सीमान्त पर वत्स तथा काशी क्षयग्रस्त थे। इन दोनों राष्ट्रों की विजय से समृद्ध मगध के सन्मुख, अनेक दिन तक अपराजेय रहना, कोसल के लिए अशक्य था। और कोसल को परास्त करने वाला सम्राट, सहज ही, चेदि का अतिक्रमण करके, अवन्ति की ओर अभिमुख हो सकता था। मगधराज बिम्बिसार, तुरन्त ही, विद्यमान मण्डलयोनि का मन्थन करने के लिए महोत्साही हो गए।

पश्चिम की ओर पराक्रमोन्मुख मगध के पूर्ववर्ती पृष्ठ पर आसीन, अङ्ग का राजकुल मगध के राजकुल का प्रबल पार्ष्णिग्राह था। अङ्ग की मित्रता थी मगध के पश्चिमवर्ती प्रतिवेशी राष्ट्र काशी से। अतएव, इन दो राष्ट्रों में से एक के व्यसनग्रस्त अथवा उदासीन हुए बिना मगध के लिए किसी के साथ भी विग्रहरत होना दुःसाध्य रहता।

बिम्बिसार अभी पार्ष्णिग्राह-चिन्ता में व्यस्त थे कि, उनके अदृष्टबल से, कोसल तथा काशी का परम्परागत कलह एक और युद्ध में परिणत हो गया। अंग महाजनपद अब मित्रविहीन था। मगधराज, इच्छा करते ही, अंग की शक्ति को ध्वस्त करके पार्ष्णिग्राह से मुक्त हो सकते थे।

वत्सराज उदयन के उज्जयिनी में बन्दी होने के कारण, वत्स महाजनपद व्यसनग्रस्त हो गया। अवन्ति के अधीश्वर इस समय मध्यमण्डल के प्रति उदासीन थे। उनकी दृष्टि आविष्ट थी, उत्तरापथ के पार आर्या-

वर्त के प्रत्यन्त पर, जहाँ पारसीक असुरसाम्राज्य की म्लेच्छवाहिनी, काम्बोज को पददलित करने के उपरान्त, क्षयोन्मुख गान्धार के प्रति आक्रान्त थी।

सुअवसर का लाभ उठा कर मगधराज की चतुरंगिणी ने अंग पर प्रबल आक्रमण किया। अंग के अधिपति बिम्बिसार के प्रचण्ड प्रहार का प्रतिरोध नहीं कर पाए। मगधराज ने अंग की अलंकारभूता महानगरी चम्पा में प्रवेश किया।

किन्तु इसी समय मगधराज को समाचार मिला कि काशी तथा कोसल, परस्पर सन्धि करके, अपनी समवेत शक्ति द्वारा मगध का मान-मर्दन करने का मनोरथ कर रहे हैं। राजगृह की अमात्यपरिषद ने, एक-मत हो, बिम्बिसार को परामर्श दिया कि वे, काशी-कोसल को अवकाश न देकर, अकस्मात् भागीरथी का अतिक्रमण करें और वाराणसी के राज-प्रासाद में विराजमान हो जाएँ।

तब मगध महाजनपद की विजयोन्मत्त सेना ने, कोसल तथा काशी की समवेत सेना से संग्राम करने के लिए, पश्चिम की ओर प्रस्थान किया। भीषण संग्राम था वह। अनेक नदियों की जलधार से परिपुष्ट भागीरथी के विशाल वक्षस्थल पर जल-संग्राम। काशी महाजनपद की त्रस्त-ध्वस्त धरित्री पर स्थल-संग्राम। मगध के पक्ष में, मन्त्रशक्ति तथा प्रभावशक्ति के अतिरिक्त, उत्साहशक्ति भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान थी। वाराणसी पर बिम्बिसार का विजयध्वज उच्छ्रित हुआ। कोसल को पद-पद पर पराभूत होना पड़ा। अन्ततः श्रावस्ती की अमात्यपरिषद ने कोस-लेश्वर को परामर्श दिया कि वे मगधेश्वर से सन्धि की प्रार्थना करें।

महाराज महाकोसल, स्वयं भी, सन्धि करना ही श्रेयस्कर समझते थे। किन्तु सन्धि-प्रस्ताव प्रेषित करने के पूर्व वे प्रत्यायित होना चाहते थे कि मगधेश्वर भी सन्धि स्वीकार कर लेंगे। मगधराज का दिग्विजय-मनोरथ अब आर्यावर्त के दिग्दिगन्त में विज्ञात था। अतएव कोशलपति को आशंका हुई कि मगधाधिप कदाचित्, उनको अपना समकक्ष मानकर उनके साथ सन्धि करना स्वीकार न करें।

मगधराज को सन्धि के लिए विवश करने का एक ही उपाय था।

मगध के विरुद्ध एक अन्य पार्ष्णिग्राह की प्राप्ति एवं प्रयोग। वह पार्ष्णि-ग्राह केवल वृज्जिसंघ ही हो सकता था। किन्तु वृज्जिसंघ को मगध के साथ अकारण विग्रह के लिए कटिबद्ध कौन करता ?

आपदा के इस अवसर पर, कोसल के युवराज प्रसेनजित् ने कुशी-नगर जा कर अपने परम मित्र बन्धुल मल्ल की शरण ली। बंधुल मल्ल तथा प्रसेनजित्, पूर्व समय में, तक्षशिला जाकर एक ही आचार्य के शिष्य रह चुके थे। वृज्जिसंघ में, विख्यात धनुर्धर बन्धुल मल्ल का अप्रतिम प्रभाव था। युवराज का युक्तितर्क सुनकर बन्धुल मल्ल को विश्वास हो गया कि कोसल का पराभव हो जाने पर, मगध की अपराजेय शक्ति, शीघ्र ही वृज्जिसंघ के लिए भी घोर संकट उपस्थित करने में समर्थ हो जाएगी।

इस प्रकार कोशलराज ने विजयी बिम्बिसार को परास्त करने के लिए द्वैधीभाव का आश्रय लिया। बिम्बिसार, वाराणसी में निविष्ट हो कर, श्रावस्ती की ओर प्रयाण का समारम्भ कर रहे थे कि राजगृह से एक द्रुतगामी दूत दुःसमाचार लेकर आ पहुँचा। वृज्जिसंघ की वाहिनी, भागीरथी को पार करके, राजगृह की ओर जा रही थी।

मगधराज ने तुरन्त ही कोशलेश्वर से सन्धि कर ली। कोसलराज की दुहिता और युवराज प्रसेनजित् की सोदरा भगिनी को, मगधराज ने अग्रमहिषीपद पर प्रतिष्ठित किया। और मगध की सम्राज्ञी का प्रसाधन-व्यय वहन करने के लिए, कोशलपति ने काशी महाजनपद का एक ग्राम मगधाधिप को समर्पित कर दिया।

किन्तु वृज्जिसंघ द्वारा अज्ञानवश जो अक्षम्य अपराध मगध के प्रति अनुष्ठित हुआ था, उसने अद्यापर्यन्त मित्र राष्ट्रों के मध्य एक विषबीज बो दिया। समय पाकर वह बीज एक शाखा-प्रशाखा-प्रवृद्ध विषवृक्ष बन गया। और उस वृक्ष से प्रवाहित विषवातास ने, एक दिन, मगध एवं कोसल की औरस परम्परा को ही नहीं, अपितु वृज्जिसंघ को भी विध्वस्त कर दिया।

तत्काल कोई विशेष विग्रह नहीं हुआ। मगध की महती सेना के प्रत्यावर्तन का समाचार प्राप्त होते ही वृज्जिसंघ की सेना गंगा के उत्तर

में चली गई। मगधराज ने विश्वासघाती गणराज्य को समुचित दण्ड देने का मनोरथ किया। भागीरथी की पापहारिणी भवतारिणी पावन जल-धारा पुनः शोणित-प्रवाह में परिणत होने वाली थी। किन्तु वह दुर्दिन अभी दूरस्थ ही रह गया।

रणवाद्यों के तुमुलघोष में मगधराज ने सहसा एक शान्त, स्निग्ध, शीतल शिक्षापद का श्रवण किया। मनोहारिणी एवं महिमामयी थी उस शिक्षापद की स्वरमाधुरी। उस माधुरी से मुग्ध होकर रणवाद्य मौन हो गए।

नेरञ्जरा नदी के तट पर उरुवेला में संबोधिप्राप्त, वाराणसी के निकट ऋषिपत्तन मृगदाव में धर्मचक्र के प्रवर्तक, शाक्यश्रमण भगवान सम्यक्-सम्बुद्ध, भिक्षुसंघ सहित, राजगृह के समीपस्थ यष्टिवन के सुप्रतिष्ठित चैत्य में देदीप्यमान हुए थे। उन भगवान का विमल यश मगध के नगर-नगर, ग्राम-ग्राम में प्रसार पा चुका था। अद्भुत शक्ति से सम्पन्न थे वे तथागत जिनके एक ही शिक्षापद के श्रवण मात्र से, वाराणसी के विख्यात श्रेष्ठीपुत्र, यश, ने यौवन की प्रातर्वेला में, प्रमदा-प्रसेवित हर्म्यतल से अधीर अवरोहण करके, केशश्मश्रु मुण्डवा, काषायवस्त्र पहिन, आगार से अनागारिक हो, धर्मसंघ में प्रव्रज्या ग्रहण की थी। अपूर्व शास्ता थे वे सुगत, जिनकी परीक्षा लेने के आशय से आगत, मगध के प्रसिद्ध परिव्राजक, उरुवेल काश्यप, नदी काश्यप और गया काश्यप, अपने जटिल-धर्म को जलाञ्जलि देकर, एक सहस्र शिष्य-प्रशिष्य-समवाय सहित, धर्मसंघ के श्रमण बने थे।

मगधराज बिम्बिसार ने भी, राजगृह के प्रमुख ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा गृहपतिक अपने साथ लेकर, शाक्यसिंह की प्रदक्षिणा तथा वन्दना की। मारजित् की अमृतवाणी का श्रवण करते ही, सुप्रशस्त साम्राज्य के वे एकछत्र अधीश्वर, धर्मसंघ के बद्धाञ्जलि उपासक बन गए। बुद्धोपदेश को हृदयंगम करके, महाराज बिम्बिसार ने उसी क्षण, उसी स्थल पर विजिगीषु-वृत्ति का परित्याग कर दिया।

मगधाधिप अब वृज्जिसंघ के साथ मैत्री करने के लिए कृतमनोरथ थे। तब वृज्जिसंघ के संस्थागार में समाहूत, वृज्जिवृद्धों की परिषद् ने, एकमत

से, प्रतिज्ञा धारण की कि वृज्जिसंघ के राजा, आर्यश्रेष्ठ चेटक, की दुहिता, राजकुमारी चेल्लना का, विवाह महाराज बिम्बिसार के साथ कर दिया जाए। वैशाली की कुलपुत्री ने राजगृह के राजवेश्म में प्रवेश किया। और दो प्रतिवेशी राष्ट्रों में पुनरेण मैत्री की स्थापना हो गई। चेल्लना-देवी ने ही मगध के भावी सम्राट और वृज्जिसंघ के जन्मजात वैरी कुणीक अजातशत्रु वैदेहीपुत्र को जन्म दिया।

राजगृह में तीन वर्षावास करके दशबल ने वैशाली को अपनी पदरज से पावन किया। उनके मंगलवचन सुन कर वृज्जिसंघ के कुलपुत्र एवं कुलस्त्रियाँ मुग्ध हो गए। तदनन्तर कुशीनगर के मल्लगण, कपिलवस्तु के शाक्यगण, रामग्राम के कोलिय, अल्लकप्प के बुलिय तथा पिप्पलीवन के मोरिय भगवान की शरण में आए। श्रावस्ती के जेतवनाराम में शास्ता का सिंहनाद सुन कर, कोसल के नवीन पृथ्वीपति, महाराज प्रसेनजित्, भी धर्मसंघ के उपासक बने। चम्पा के ब्राह्मण तथा क्षत्रिय कुलमुख्यों ने समन्तभद्र का स्तुतिवादन किया। कोसल, काशी, अंग, मगध, मल्ल, तथा वृज्जि—छः महाजनपदों के जनजीवन में एक नवीन मन्त्र ध्वनित होने लगा : बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि। उस पावन मन्त्र से पूत होकर प्राची का प्राङ्गण विद्वेष एवं वैमनस्य के विष से विहीन होता जा रहा था।

तब, वृज्जिसंघ में, सहसा, एक भयंकर विस्फोट हुआ। कुशीनगर के कुलपुत्र, बन्धुल मल्ल, ने किसी कारण से अपने ज्ञातिबन्धुओं के प्रति कोपाविष्ट होकर, श्रावस्ती में महाराज प्रसेनजित् की शरण ले ली। कोसलाधिपति ने अपने वीर वयस्य को कोसल के सेनापति-पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। कुछ काल उपरान्त, बन्धुल मल्ल की परमरूप-गुणवती भार्या, देवी मल्लिका, ने दोहद प्रगट किया कि वह वैशाली जाकर लिच्छविगण की पुण्यसलिला अभिषेक-पुष्करिणी में स्नान एवं जलपान करना चाहती है। प्रिया को रथारूढ़ करके, बन्धुल मल्ल ने एक प्रत्यूष के समय वैशाली में प्रवेश किया। पुष्करिणी के प्रहरीगण बन्धुल मल्ल के प्रचण्ड प्रहार से भयभीत होकर पलायन कर गए। और मल्ल धनुर्धर ने पुष्करिणी का लोहजाल काट कर देवी मल्लिका का मनोरथ पूर्ण

कर दिया।

बन्धुल मल्ल ने प्रभाक्रान्त ही वैशाली से प्रयाण किया। किन्तु वे अधिक दूर नहीं गए थे कि वृज्जिसंघ के राजा, आर्यश्रेष्ठ महाली, ने पञ्चशत लिच्छवि महारथियों को साथ ले कर उनको बन्दी बनाना चाहा। गण्डकी के पश्चिमवर्ती तीर पर लिच्छवि-गण तथा, बन्धुलमल्ल की सहायता के लिए सम्भूत, मल्लगण के मध्य एक दुर्धर्ष युद्ध हुआ। बन्धुल मल्ल ने अनेक लिच्छवियों को धराशायी किया। स्वयं आर्यश्रेष्ठ महाली का ओष्ठ उस युद्ध में क्षतविक्षत हो गया, जिसके कारण वे मरण-पर्यन्त महाली ओष्ठार्त्र कहलाए। किन्तु लिच्छवि-गण मल्ल-गण का मानमर्दन करके, ही, गण्डकी के इस पार आए।

लिच्छवि-गण की आकांक्षा थी कि वे पुनरेण पराक्रम करके मल्लगण को यथोचित दण्ड दें। किन्तु आर्यश्रेष्ठ महाली ने संघभेद के भय से शान्ति-स्थापना को ही श्रेयस्कर समझा। बन्धुल मल्ल श्रावस्ती की ओर प्रयाण कर चुके थे। रक्तबान्धव के लिए अनायास रोषान्वित मल्लगण को राजा महाली ने क्षमा कर दिया। उनको प्रत्याशा थी कि शान्त होकर मल्लगण भी अपने कुकृत्य पर पश्चाताप प्रगट करेंगे।

किन्तु मल्लगण ने राजा महाली की आशा के विपरीत आचरण किया। शान्ति-सन्देश लेकर कुशीनगर में आगत, लिच्छवि-गण के कुल-वृद्धों को, मल्लगण ने अपमानित करके लौटा दिया। परिणाम-स्वरूप वैमनस्य की वृद्धि होने लगी। आर्यश्रेष्ठ महाली के असीम धैर्य के कारण लिच्छवि-गण तथा मल्लगण के मध्य पुनः युद्ध तो नहीं हो सका। किन्तु वृज्जिसंघ में विभेद हो गया। मल्लगण ने वैशाली की वृज्जिपरिषद का प्रत्याख्यान किया। और मल्लगण का अनुसरण किया कपिलवस्तु के शाक्यगण ने, रामग्राम के कोलियगण ने, अल्लकप्प के बुलियगण ने, तथा पिप्पलीवन के मोरियगण ने।

वृज्जिसंघ को दुर्बल देखकर मगध के युवराज, कुणीक अजातशत्रु वैदेहीपुत्र, ने महाराज बिम्बिसार को परामर्श दिया कि वे सुअवसर का समुचित लाभ उठा कर लिच्छवि-गण तथा मल्लगण को, उनके पुराने विश्वासघात के विनिमय में, समुचित दण्ड दें। धर्मप्राणपिता ने, पराक्रम

परायण पुत्र को, सुपथ पर प्रतिष्ठित होने के निमित्त, भगवान की शरण में जाने का उपदेश दिया। 'किन्तु शास्ता के शिक्षापद द्वारा अनुशासित न हो कर, अजातशत्रु संघभेदक देवदत्त के अनुयायी बन गए। तब पिता ने पुत्र को मगध की अधीनस्थ पुरी, चम्पा, में प्रवासित कर दिया। और प्रवास के अपमान से अधीर होकर अजातशत्रु ने जिस कुचक्र की रचना की, उसके परिणामस्वरूप महाप्राण महाराज बिम्बिसार को प्रथमतः अपना सिंहासन तथा अन्ततः अपना धर्मपरायण जीवन भी विसर्जित करना पड़ा। कुणीक द्वारा कृत पितृघात के पापाचार से भारत की धर्माविरुद्ध दण्डनीति का अनन्त इतिहास कलंक की प्रथम कालिमा से कलुषित हो गया।

अजातशत्रु, मगध का सिंहासन प्राप्त करते ही, वृज्जिसंघ पर अभियान करने का आयोजन करने लगे। मगध की स्थलसेना आर्यावर्त के के प्राच्य अंचल में अजेय थी। किन्तु जलसेना जर्जर होने के कारण वे अपनी स्थलसेना का उचित उपयोग नहीं कर सके। वृज्जिसंघ की जलवाहिनी विश्वविख्यात थी। उसको परास्त किए बिना अजातशत्रु वृज्जिमहाजनपद की भूमि पर पदार्पण नहीं कर सकते थे। अतएव, अजातशत्रु एक ऐसी नौकावाहिनी के संग्रह में संलग्न हुए जो विप्णुपदी की वीचिवीचि से सुपरिचित हो। उन्होने, उच्च वेतन प्रदान करके, सुह्म, वंग, उत्कल तथा कलिंग आदि समुद्राजीवी शबरदेशों से, अनेक कारुशिल्पी, शासक, नियामक, दात्रग्राहक, रश्मिग्राहक तथा उत्सेचक मगध में बुला लिए। पाटलिग्राम के नदीतीर्थ के निकट मगध की नवीन नौकावाहिनी निविष्ट होने लगी।

वृज्जिसंघ की नौसेना सर्वप्रकारेण सुदक्ष थी। वैशाली के सार्थवाह समुद्रसंगम से लेकर प्रयाग तक जलयात्रा करने में चिराभ्यस्त थे। जलदस्यु-वृन्द से बारम्बार जलयुद्ध करने वाली वृज्जिसंघ की नौसेना ने तुरन्त ही मगध की नवीन नौकावाहिनी को नष्ट करना आरम्भ कर दिया। और अनेक वर्ष के उपरान्त, मगध तथा वृज्जिसंघ के मध्य युद्ध की ज्वाला पुनरेण जल उठी। कई वर्ष व्यतीत हो गए किन्तु वैशाली के वीरशिरोमणि लिच्छवि-गण ने मगध का एक पदाति भी भागीरथी के पार

नहीं उतरने दिया ।

इस ओर, अजातशत्रु ने अपने कारावरुद्ध पिता की हत्या करवा दी । कोसलपति प्रसेनजित् ने, भागिनिपति के निर्मम निधन का समाचार पा कर, काशीग्राम से राजगृह के प्रति प्रेषणीय वार्षिक कर का प्रतिहार कर लिया । अजातशत्रु को मातुल का यह विरुद्धाचरण सह्य न हुआ । और वे सेना सजा कर कोसल पर आक्रमण कर बैठे । किन्तु बन्धुल मल्ल द्वारा संचालित कोसल के कटक ने, तुरन्त ही मगधराज का मानमर्दन कर दिया । भग्नबल अजातशत्रु बन्दी बना कर श्रावस्ती ले जाए गए ।

वृज्जिसंघ ने इस सुअवसर का समुचित लाभ उठाया । दूरदर्शी आर्य-श्रेष्ठ महाली को विश्वास हो गया था कि अजातशत्रु, प्रसेनजित् द्वारा परास्त होकर भी, राजगृह में प्रत्यावर्तित होते ही, वृज्जिसंघ से विकट विग्रह करेंगे । अतएव, वृज्जिसंघ के राजा ने ससैन्य भागीरथी पार कर के पाटलिग्राम में एक लिच्छवि-दुर्ग का निर्माण कर डाला । उस दुर्ग में लिच्छवि-सेना का सुव्यवस्थित सन्निवेश बन गया । पाटलिग्राम के लिच्छवि-गण को परास्त किए विना अब मगधराज भागीरथी के वक्ष पर पदार्पण नहीं कर सकते थे ।

श्रावस्ती की अमात्यपरिषद ने प्रसेनजित् को परामर्श दिया कि वे पितृ-घातक पापिष्ठ अजातशत्रु को प्राणदण्ड दें । किन्तु श्रावस्ती में बिराजमान भगवान लोकजित् ने कोसलेश्वर को क्षमाधर्म का उपदेश दिया । परिणामस्वरूप, महाराज प्रसेनजित् ने अजातशत्रु को मुक्त ही नहीं किया, अपितु, मगधराज को अपने प्रेमपाश में आबद्ध करने के हेतु, अपनी दुहिता, राजकुमारी वजिरा, का पाणिपल्लव भी कुपात्र की कराल करमुष्टि में दे दिया । काशीग्राम का कर, राजकुमारी के दाय-रूप में, पुनरेण राजगृह की ओर प्रेषित होने लगा ।

किन्तु श्रावस्ती की रूप-यौवन-सम्पन्ना राजदुहिता तथा काशीग्राम की कोशसम्पदा प्राप्त करके भी, मगधराज के मानस में प्रतिहिंसा का परिताप प्रशान्त नहीं हुआ । अब वे अपने पराभव का प्रतिकार करने के लिए भी लालायित हो उठे । वे केवल कोसल से ही पराभूत नहीं हुए थे । उनके घोरतर शत्रु लिच्छविगण ने भी मगध की धरा पर दुर्गनिवेश करने

का दुःसाहस दिखाया था।

व्यसनग्रस्त अजातशत्रु ने मगध के महामात्य, वर्षकार ब्राह्मण, का परामर्श ग्रहण किया। महामात्य का प्रथम परामर्श था कि मगधराज तुरन्त ही, संघभेदक देवदत्त का पक्ष त्याग कर, शाक्यसंघ के बद्धाञ्जलि उपासक बनें। शास्ता के धर्मशासन का अप्रतिम प्रताप, अजातशत्रु ने, श्रावस्ती में कारावरुद्ध होकर, अपनी आँखों से देखा था। कोसल के पौर-जानपद द्वारा व्यक्त जनमत तथा अमात्यपरिषद के परामर्श की अवहेलना करके, प्रसेनजित् ने दशबल द्वारा दर्शित धर्ममार्ग का ही अवलम्बन किया था। कुशीनगर के मल्लगण तथा वैशाली के लिच्छवि-गण भी शास्ता के धर्मशासन में श्रद्धा करते थे। वर्षकार ने अजातशत्रु को विश्वास दिलाया कि यदि वे धर्मसंघ के उपासक बन जाएँ, तो कोसल, मल्ल तथा वृज्जि महाजनपदों में सर्वत्र सुप्रतिष्ठित धर्ममत का संग्रह, उनके लिए, शीघ्र ही, सुलभ हो जाएगा। तदुपरान्त, मगध के प्रतिपक्षी राष्ट्रों के शासकवर्ग में भेद की उत्पत्ति करना, मगध के लिए किसी दिन भी कष्ट-साध्य नहीं रहेगा।

वर्षकार ब्राह्मण की मन्त्रणा ग्रहण करके कुणीक अजातशत्रु, राज-गृह के समीपस्थ जीवक कौमारभत्य के आम्रवन में गए। वहाँ पर, उस समय, भगवान तथागत विहार कर रहे थे। तब, तथागत के साथ प्रश्नोत्तर में कुछ काल व्यतीत करके, अजातशत्रु धर्मसंघ के बद्धाञ्जलि उपासक बन गए। तथागत की दिव्यदृष्टि प्राणीमात्र के अन्तःकरण में अन्तर्हित भावना का अवलोकन करने में समर्थ थी। तथागत तुरन्त जान गए कि अजातशत्रु धर्मध्वजी बनकर अधर्माचरण करना चाहता है। किन्तु तथागत तो तथागत थे। मृत्तिका के कलेवर से कलुषीकृत मानव-मात्र नहीं। मैत्री एवं करुणा के पारावार। उपेक्षा के अगाध अम्बुधि। मुदिता के मूर्त अवतार। अजातशत्रु का मिथ्याचार जानकर भी वे मौन रहे।

धर्मसंघ का उपासक बनकर अजातशत्रु ने वृज्जिसंघ के विरुद्ध संग्राम-सज्जा की। राजगृह की सेना ने, लिच्छवि-दुर्ग को ध्वस्त करने के लिए, पाटलिग्राम की ओर प्रस्थान किया। वैशाली से भी, दल-पर-दल दुर्दमनीय लिच्छवि योद्धा पाटलिग्राम में आने लगे। मगधराज को विश्वास

था कि एक दिन वैशाली का लिच्छवि-वंश रणबांकुरों से रीता हो जाएगा। तब वे जाह्नवी की जलधार का अतिक्रमण करके वैशाली को ध्वस्त कर सकेंगे। उस महान अभियान का आयोजन करने के लिए ही वर्षकार ब्राह्मण पाटलिग्राम में एक मागध दुर्ग का निवेश करने लगे।

तदनन्तर, घटनाचक्र और भी त्वरित गति से अग्रसर हुआ। श्रावस्ती की अमात्यपरिषद में मगधराज का कृत्यपक्ष गठित हो चुका था। उस पक्ष ने, कोसल के युवराज विदूरथ के मुख से, महाराज प्रसेनजित् को बन्धुल मल्ल के विरुद्ध उत्तेजित किया। युवराज ने कह दिया कि बन्धुल मल्ल, कोसल के इक्ष्वाकु-वंश का उच्छेद करके, स्वयं श्रावस्ती के सिंहासन पर आसीन होना चाहते हैं। और प्रसेनजित् ने भयभीत होकर अपने विश्वासपात्र वयस्य तथा सुविख्यात सेनापति का उपांशु-वध करवा दिया।

किन्तु कोसलेश को, तुरन्त ही, अपनी भयानक भूल का ज्ञान हो गया। पश्चाताप से प्रताड़ित प्रसेनजित्, प्रायश्चित पूछने के लिए, भगवान तथागत की शरण में गए। भगवान उस समय शाक्यदेश में चारिका कर रहे थे। कोसलराज ने अपना किरीटविहीन मस्तक भगवान के चरणों में अवनत कर दिया। भगवान की कृपादृष्टि से उनका मानस शान्त हो गया। किन्तु कोसल का किरीट वे पुनरेण अपने मस्तक पर धारण नहीं कर सके।

प्रसेनजित् की अनुपस्थिति में, बन्धुल मल्ल के भागनेय दीर्घ कारायण ने युवराज विदूरथ को प्रोत्साहित किया कि वह श्रावस्ती के सिंहासन पर स्वयं आसीन हो जाए। युवराज ने वैसा ही किया। महाराज प्रसेनजित्, कुपुत्र के विरुद्ध जमाता की सहायता लेने के लिए, राजगृह की ओर प्रधावमान हुए। किन्तु महानगरी में प्रविष्ट होने के पूर्व ही विसूचिका ने उनकी इहलीला का समापन कर दिया।

महापरिनिर्वाण के लिए कृतनिश्चय तथागत, चारिका करते हुए, राजगृह में पधारे। अजातशत्रु, अनेक वर्ष तक लिच्छवि-गण से युद्ध करके अवसन्न हो चुके थे। वृज्जिसंघ की अपराजेयता का कारण जानने के लिए अतीव उत्सुक अजातशत्रु ने महामात्य वर्षकार ब्राह्मण को भगवान की शरण में भेजा। भगवान ने अपने उपस्थापक आयुष्मान आनन्द से

प्रश्नोत्तर के प्रसंगवश, वृज्जिसंघ के सप्तशील का स्तुतिवादन किया। और वर्षकार ब्राह्मण को विश्वास हो गया कि वृज्जिसंघ जब तक अपने सप्त-शील का पालन करता रहेगा, तब तक वह मगध के लिए अपराजेय ही रहेगा।

भगवान अपने परमप्रिय उपासक, बन्धुल मल्ल, की मातृभूमि, कुशी-नगर, में जाकर महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए। धर्मसंघ के विनयधर एवं सूत्रधर स्थविर, विनय तथा धर्म का संगायन करने के उद्देश्य से, राजगृह के समीपस्थ वैभार पर्वत की शतपर्णी गिरिगुहा में समवेत होने लगे। वहाँ पर, मगधराज अजातशत्रु धर्मसंघ का आतिथ्यसत्कार कर रहे थे।

कोसल के कुलाङ्गार विदूरथ ने, धर्मसंघ के ध्रुव शत्रु और कोसल के नवीन दण्ड-नायक, दीर्घ कारायण, की मन्त्रणा ग्रहण करके, शाक्यसंघ के राजा, महानाम, के पास प्रस्ताव प्रेषित किया कि वे अपनी पुत्रवधू और शाक्य-देश की जनपदकल्याणी, जयन्ती, को श्रावस्ती के राजवेश्म में प्रविष्ट कर दें। विदूरथ ने महानाम पर दोष लगाया कि उन्होंने, पूर्व समय में प्रवञ्चना करके, अपनी दासीपुत्री वासवक्षत्रिया को, शाक्य-दुहिता के नाम से, महाराज प्रसेनजित् की महिषी बनाया था। शाक्यसंघ के इस अक्षम्य अपराध की मार्जना तभी सम्भव थी जब कि शाक्य-गण, अपने रक्तगौरव का अभिमान त्याग कर, कोसलराज का श्वसुरकुल बनना स्वीकार करें। वस्तुतः, विदूरथ जयन्ती पर आसक्त था। उसने, एक समय, मृगया के हेतु शाक्यभूमि का अटन करते हुए, महानाम शाक्य के प्रमदोद्यान में क्रीडारत जयन्ती को देख लिया था। तभी से वह मदन-व्याधि से विकल था।

कोसल का यह घृणास्पद प्रस्ताव कपिलवस्तु की ओर गया उसके पूर्व ही, कोसल का एक अन्य दूत मैत्री का प्रस्ताव लेकर वैशाली में जा पहुँचा। दूत के कथनानुसार कोसलराज, अजातशत्रु के विरुद्ध, वृज्जिसंघ से मैत्री करना चाहते थे। अनेक वर्ष तक एकाकी ही मगध के साथ अनवरत युद्ध करने वाले लिच्छवि-गण ने उस मैत्रीप्रस्ताव का स्वागत किया। और वैशाली के संस्थागार में समाहूत लिच्छवि परिषद ने कोसल के साथ मैत्री-स्थापना की प्रतिज्ञा धारण कर ली।

तब, अकस्मात्, वृज्जिसंघ पर मानो वज्रपात हुआ। श्रावस्ती से समाचार आया कि कोसल की सेना, काशी के सीमान्त पर समवेत न होकर, *कपिलवस्तु की ओर प्रयाण कर रही है।* तदुपरान्त, कोसलराज द्वारा शाक्यसंघ से किये गए अभद्र अनुरोध का समाचार वैशाली में प्राप्त हुआ। आर्यश्रेष्ठ महाली ने, वृज्जिसंघ के अष्टकुलिक से परामर्श करके, एक लिच्छवि-वृद्ध को कपिलवस्तु प्रेषित किया। वृद्ध ने शाक्यप्रमुख महानाम को सन्देश दिया कि वृज्जिसंघ, कोसल के साथ सद्य-स्थापित मैत्री-सम्बन्ध की अवहेलना करके, शाक्यसंघ की मानरक्षा के लिए मर मिटने को उद्यत है। किन्तु मैत्री-सम्बन्ध का समाचार पाते ही शाक्यगण वृज्जिसंघ पर कुपित हो चुके थे। शाक्यपरिषद ने लिच्छवि-वृद्ध को अपमानित करके, वैशाली लौटा दिया।

कपिलवस्तु के संस्थागार में कोसलेश्वर का पापपूर्ण प्रस्ताव तिरस्कृत हुआ। और दीर्घ कारायण ने, कपिलवस्तु पर आक्रमण करके, शाक्यसंघ पर अनय-व्यसन आपातित किया। शाक्य-पुरुषों का, आबाल-वृद्ध, संहार हुआ। दीर्घ कारायण, शाक्य-कुल की वराङ्गनाओं का बलात् अपहरण करके, विजय-वाद्य बजाता हुआ श्रावस्ती की ओर लौटा। उस ओर, अचिरवती के तीर पर शिविरस्थ विदूरथ, शाक्यदेश की सुन्दरियों को अपने अङ्क में आरोपित करने के लिए, अधीर उपासीन था।···

: २ :

नववधू-सी नयनाभिराम है शरद ऋतु की विविधवर्ण-वर्णित वैकाल-वेला। वृज्जि महाजनपद की विगत-सस्य-वसना वसुन्धरा के विशाल वक्षस्थल पर शिथिलायमान-सी। ममता-मयी माता से विदा माँगती हुई, श्वसुर-गृह-गमनाभिमुख, लालित ललना के समान।

अस्तायमान अंशुमालि के पाटल-प्रकाश में प्रवाल-पुञ्ज से प्रोज्ज्वलित हैं, वैशाली के प्राकार-त्रय पर प्रस्थापित, अनेक अट्टालक, प्रतोली तथा इन्द्रकोष।

दक्षिण-दिशा की ओर से प्लुतगति प्रधावमान अश्वारोही ने, सहसा वल्गा विकर्षित करके, अपने शरभक्रीड सैन्धव को संरुद्ध कर लिया। *अश्व का अग्रपादद्वय, अनायास ही,* अन्तरिक्ष में उन्नतावनत हो गया।

मानो, वैशाली-दर्शन से विनीत होकर वह साधुवाही, द्वाराट्टालक के तोरणश्रृङ्ग पर उड्डीयमान, वृज्जिसंघ के प्रताप-प्रतीक, सिंह-लाञ्छनाङ्कित लिच्छविध्वज को बद्धाञ्जलि अभिवादन अर्पण कर रहा हो।

अश्व तथा अश्वारोही, दोनों के ही गर्वित गात्र अध्वश्रम के स्वेद-जल से सम्पूर्ण स्नात थे। स्वामी ने, स्नेहपूर्ण पाणिस्पर्श द्वारा, सेवक के शिरोग्रीव का वारम्वार सवाहन किया। फिर वे, अपने उत्तरीय के आंचल से, अपना गौरवपूर्ण, गौरवर्ण मुख पोंछने लगे।

अश्वारोही की आयु, तीस वर्ष का अतिक्रमण करके भी, कैशोर के कूल पर ही कल्लोल कर रही थी। उनके शरीर पर विशेष वेपभूषा नहीं थी। कार्पासिक का शुभ्रवर्ण अधोवस्त्र। क्षौमविनिर्मित पीतद्युति उत्तरीय-पट। शिर पर साधारण स्थूलशाट का लोहिताभ उष्णीष। वाम स्कन्ध से वेणुकाष्ठ-विरचित कोदण्ड विलम्बित था। दक्षिण स्कन्ध पर ईषत् उत्तुङ्ग था, पृष्ठप्रदेश से परिवेष्टित और लक्ष्यवेधी बाणसमूह से परिपूर्ण निषङ्ग। खड्ग तथा खेटक अश्वपर्याण पर आरोपित थे।

पुरुषश्रेष्ठ का ललाटतट दिनमणि-सा दीप्तिमान था। तेजोप्रभ थे प्रफुल्ल-लोचन-युगल। श्मश्रुल वदनारविन्द की प्रत्येक रेखा में अप्रतिम पराक्रम प्रस्फुटित था। कम्बुकन्धर कुञ्चित केशपाश से आच्छादित था। वृषभ-स्कन्ध-द्वय से आजानु आलम्बित था दुर्ग-द्वार-परिघ-सन्निभ भुज-दण्ड द्वय। हर्यक्ष-सदृश दृप्त, प्रशस्त वक्षस्थल श्वासोच्छ्वास-गति से प्रकम्पित था। उनकी दिव्य मूर्ति का अवलोकन करके, एक क्षण, भ्रम होता था कि साक्षात् देवेन्द्र शक्र, सहसा, पृथ्वी पर शोभायमान हुए हैं।

अश्वारोही का इतस्ततः प्रसारित दृष्टिपात सूचना दे रहा था कि वे किंचित् किंकर्त्तव्यविमूढ़ हैं। वैशाली के प्रथम प्राचीर-द्वय को पार करके अन्तर्दुर्ग की ओर अग्रसर हों, अथवा महापथ के पार्श्व-द्वय पर पांति-पांति प्रतिष्ठित वाटिका-वृन्द में से, किसी एक की शरण लेकर, कुछ क्षण विश्राम करें।

इसी समय, आर्य पद्मकीर्ति के प्रमदोद्यान से निष्क्रमण करते हुए, एक अन्य अश्वारोही ने, पृष्ठदेश की ओर से आकर, प्रथम अश्वारोही को सम्बोधित किया : "अकिञ्चन का अभिवादन ग्रहण कीजिए, आर्य दुर्ग-

पाल !"

दुर्गपाल ने, मुख परावृत्त करके, नवागन्तुक को निहारा। तब वे एक स्नेहसिक्त स्मित से तरुण का स्पर्श करते हुए बोले : "अहो ! सुमेध ! तुम कहाँ से आ रहे हो, सौम्य ! और कहाँ जा रहे हो ?"

सुमेध ने उत्तर दिया : "आर्य पद्मकीर्ति के प्रमदोद्यान में कियत्काल के लिए प्रवसित कुमारी पुलोमजा के कार्य से अन्तर्दुर्ग में जा रहा हूँ, आर्य !"

"पुलोमजा प्रमदोद्यान में है ! उसने विदेश-यात्रा से कब प्रत्यागमन किया ?"

"एक सप्ताह से अधिक हो गया, आर्य ! यदि आपके कार्य में बाधा न हो तो आप......

'हाँ, हाँ, अवश्य। पुलोमजा से मिलने के लिए तो मैं प्रतिपल प्रस्तुत हूँ।"

दुर्गपाल ने, पार्ष्णिप्रहार करके, अपना अश्व विपरावृत्त किया। और तब वे, सुमेध का अनुसरण करते हुए, प्रमदोद्यान में प्रविष्ट हो गए।

यह उद्यान, अखिल वृज्जि महाजनपद में, विख्यात था। दुर्गपाल ने एक रमणीय वीथिकापथ को पार किया। उद्यान के मध्य प्रान्त में उन्नत-शीर्ष, सप्तभूमि क्रीडाप्रासाद के प्राङ्गण में पहुँच कर दुर्गपाल की दृष्टि अलिन्द पर आविष्ट हो गई। वहाँ आसन्दिका पर उपासीन थी एक अनिन्द्य-सुन्दरी अङ्गना। शुभ्र-वर्ण, वैहारिक परिधान से परिमण्डित। पुष्पाभरण से आपादमस्तक अलंकृत। उन्मना-सी, अन्तरिक्ष में अव-लोकन करती हुई।

दुर्गपाल ने, अश्व से अवरोहण करते हुए, सुन्दरी को सम्बोधित किया : "अहे ! पुलोमजे !"

सुन्दरी ने ससंभ्रम चितवन से दुर्गपाल को देखा। और आसन से उत्थान करने का उपक्रम किए बिना ही वह कूक उठी : "अनिरुद्ध ! तुम ! इस समय ! यहाँ !"

अनिरुद्ध ने, अलिन्द की ओर अग्रसर होकर, कहा : "पाटलिग्राम से आ रहा था। मार्ग में सुमेध से भेंट हो गई।"

पुलोमजा ने, सुमेध को देख कर, भ्रूद्वय कुञ्चित करते हुए, कठोर स्वर में कहा :

"तुमको तो वैशाली जाना था, सुमेध !"

सुमेध, हतप्रभ होकर, इतस्ततः करता हुआ बोला : "उस ओर ही जा रहा था, शुभे ! मार्ग में......

पुलोमजा, अपने कण्ठस्वर को और भी प्रखर करके, बोली : "अनिरुद्ध इस ओर के मार्ग से परिचित है। वह अपने आप चला आता।"

सुमेध, विजडित-सा खड़ा, मूक हो गया। तब पुलोमजा चीत्कार कर उठी : "अब तुम्हारा यहाँ क्या काम है ! तुरन्त जाओ ! ! इसी क्षण ! ! !

सुमेध लौट गया। अनिरुद्ध, किंचित कुण्ठित होकर, अलिन्द की सोपान-श्रेणी पर ही अचल हो गए थे। उनको देखकर पुलोमजा मुस्कराने लगी। फिर, अपना स्वर-माधुर्य पुनरेण विकसित करके, वह बोली : "तुम क्यों रुक गए, अनिरुद्ध ! तुम मेरे समीप आओ !"

अनिरुद्ध ने कहा : "मुझे भी वैशाली जाना है, पुलोमजे !"

"मैं जानती हूँ। मैंने तो यह नहीं कहा कि तुम मुझसे मिलने के लिए पाटलिग्राम से आए हो।"

"तुम्हारे आने का समाचार ही मुझे कब मिला ?"

"तुम न जाने कौन से संसार में रहते हो, अनिरुद्ध ! मेरे प्रत्यागमन का समाचार तो वैशाली की वीथि-वीथि में विदित है।"

"किन्तु मैं तो पाटलिग्राम में रहता हूँ, पुलोमजे !"

"एक बार मैंने विचार किया था कि पाटलिग्राम जाकर......तुम वहाँ सोपान-श्रेणी पर क्यों खड़े रह गए, अनिरुद्ध ! ऊपर आओ !"

पुलोमजा ने अपने आसन से उत्थान किया। अनिरुद्ध भी, अवशिष्ट सोपान-पथ का आरोहण करके, अलिन्द पर चढ़ गए।

पुलोमजा ने, अपने पाणि-पद्म-द्वय से, अनिरुद्ध के स्कन्ध-द्वय का स्पर्श करके कहा : "दो क्षण इस मञ्चिका पर बैठो। परिचारिका से कह देती हूँ कि, स्नानागार में सुगन्धित जल तथा स्नान-चूर्ण प्रस्तुत करे। तुम्हारे शरीर से स्वेद की गन्ध निकल रही है। हाय ! कितने क्लान्त हो गए हो, अनिरुद्ध !"

पुलोमजा के अन्तिम वाक्य में मर्मभेदी ममता थी। किन्तु अनिरुद्ध ने, उस आह्वान की अवहेलना करके, कह दिया: "मुझे शीघ्रातिशीघ्र अन्तर्दुर्ग में जाना है, कल्याणि ! अलिन्द में ही मुखोदक प्राप्त हो जाए तो......

पुलोमजा बोली: "मै जाने दूँगी तभी तो तुम वैशाली जाओगे।"

उत्तर दिए बिना ही, अनिरुद्ध ने अपना उष्णीष उतार कर एक ओर रख दिया। फिर वे पृष्ठ पर बँधे तूणीर को खोलने लगे। शरासन उन्होने, अलिन्द पर आरोहण करने के पूर्व ही, सोपान-श्रेणी पर रख दिया था।

दुर्गपाल के अस्त-व्यस्त केशश्मश्रु देख कर पुलोमजा बोली: "तुम्हारे पाटलिग्राम में क्या नापित नहीं है, अनिरुद्ध ! तुमको देखकर तो भय लगता है।"

अनिरुद्ध हँसने लगे। फिर उन्होंने कहा: "भय उपजाने के लिए ही तो लिच्छवि पुरुष शरीर धारण करता है।"

"धिक् ! कैसा प्रलाप करते हो ! अपने शरीर के प्रति यह अन्याय किसी के लिए भी अक्षम्य अपराध है।"

दुर्गपाल अपने विषय में वार्तालाप करने के लिए प्रस्तुत नहीं थे। वार्तालाप का प्रसंग परिवर्तित करने के आशय से उन्होंने पूछा: "आर्य रत्नकीर्ति भी लौट आए ना, पुलोमजे !"

पुलोमजा ने, दुःखित-सी होकर, उत्तर दिया: "नहीं तो। वे अभी तक विदेश में ही हैं। कौशाम्बी पहुँचे तब तक वैशाली-वैशाली जप रहे थे। किन्तु कौशाम्बी में सहसा न जाने क्या सूझी कि उज्जयिनी की ओर चल दिए।"

"तुम उनके साथ नहीं गई ? उज्जयिनी देख आतीं।"

"मेरी भी यही इच्छा थी। किन्तु पिताजी ने मुझे वैशाली भेज दिया। उनके प्रत्यागमन के पूर्व मुझे प्रासाद परिष्कृत करवाना है।"

"इसीलिए तुम उद्यान में वनवास कर रही हो ?"

"वैशाली से तो यह वनवास ही सुखकर है, अनिरुद्ध ! शृङ्गाटक पर अब मेरा श्वास रुद्ध होने लगता है।"

"क्यों ?"

"मैंने इन आँखों से आर्यावर्त का कोना-कोना देखा है। और आर्यावर्त के पार भी अनेक देश। अब वैशाली एक असभ्य ग्राम-सा लगता है।"

"तब तो तुम्हारे दिन बड़ी कठिनाई से कटते होंगे ?"

"हाँ। पितामह की परम कृपा से, वैशाली में इस समय अनेक ऐसे पुरुष विद्यमान हैं, जिन्होंने मेरे समान विदेश में कुछ काल व्यतीत किया है। उनमें से कोई-न-कोई इस ओर आ जाता है तो रस तथा संस्कार के विषय में ये दो बातें हो जाती हैं। अन्यथा तो मैं आत्मघात कर लेती। यह क्या मनुष्य के रहने योग्य स्थान है ?"

अनिरुद्ध की मुखभङ्गिमा कठोर होने लगी। वैशाली के विरुद्ध किसी समय, कुछ भी सुनना, उनके लिए सर्वथा असह्य था। इसके अतिरिक्त, पुलोमजा ने उन लिच्छवियों की प्रशंसा की थी, जो विदेशों में शिक्षा-ग्रहण करके, अपने आपको किसी अन्य लोक के प्राणी समझने लगे थे। अनिरुद्ध का उन विदेश-प्रेमी लिच्छवियों से पर्याप्त परिचय था। यदि उनको अधिकार होता तो वे, उसी क्षण, उन सबको वृज्जिसंघ से निर्वासित कर देते। उनका अभिमत था कि जो जिस देश की भक्ति करता है, वह उसी देश में जाकर निवास करे। एक देश का अन्नजल ग्रहण करके, एक अन्य देश के गीत गाते फिरना, उनके निकट शठता थी। षण्ढत्व भी।

पुलोमजा के प्रति अप्रकृत संवेदना प्रगट करते हुए, दुर्गपाल ने पूछा : "तुम्हारे लिए तो सब देशों के द्वार अपावृत हैं, पुलोमजे ! तब तुमने वैशाली में आने की भूल क्यों की ?"

पुलोमजा ने, किंचित् लजा कर, मुख अवनत कर लिया। फिर वह बोली : "इस प्रश्न का उत्तर क्या तुम्हें देना होगा, अनिरुद्ध ! तुम क्या नहीं जानते कि मैं वैशाली में क्यों आई हूँ ?"

अनिरुद्ध की दृष्टि, एक क्षण, पुलोमजा के घननील कबरीपाश में ग्रथित शशाङ्क-सन्निभ शेखरापीड़ पर निबद्ध हो गई। नवमल्लिका का प्रसून-पुञ्ज उन्होंने अनेक बार देखा था। किन्तु ऐसा शिल्प-चातुर्य कभी नहीं। वे पुलोमजा के प्रश्न का उत्तर देना भूल गए। उनका हृदय पुलोमजा के प्रत्यागमन का रहस्य जानता था।

मञ्चिका पर उपासीन हो कर, अनिरुद्ध ने कहा : " पुलोमजे ! एक अधोवस्त्र तथा अङ्गोञ्छक मिल जाए तो पुष्करिणी में स्नान कर आऊं ।"

पुलोमजा ने, मुख ऊपर उठा कर, पूछा, "पुष्करिणी में क्यों ? स्नानागार में क्यों नहीं ?"

"तुम जानती हो कि युद्धकाल में लिच्छवि सैनिक स्नानागार में पदार्पण नहीं करता ।"

"किन्तु तुम तो सैनिक मात्र नहीं हो, अनिरुद्ध ! तुम तो दुर्गपाल हो ।"

"दुर्गपाल भी सैनिक ही होता है, पुलोमजे !"

पुलोमजा ने परिचारिका को पुकार कर वस्त्रादि ले आने का आदेश दे दिया । वह स्वयं, अनिरुद्ध को आकर्षित करने के लिए, अलिन्द पर पदचार करने लगी । किन्तु अनिरुद्ध की दृष्टि अलिन्द के मणिकुट्टिम पर आवद्ध रही । रूप-गर्विता रमणी की समस्त सौन्दर्यश्री, विशिष्ट वेषभूषा, माधवीलता-सी देहयष्टि, और उस देहयष्टि और उस देह द्वारा प्रसारित महार्घ अंगराग का सौरभसार, वज्रहृदय दुर्गपाल का अन्तर आन्दोलित करने में असमर्थ रहे ।

परिचारिका वस्त्र लेकर आई तब पुलोमजा ने परिहास के स्वर में पूछा : "स्नान के उपरान्त पाटलिग्राम के दुर्गपाल किस पेय का पान करेंगे ? आसव, प्रसन्ना, मधु, मैरेय......अथवा जाह्नवी का निर्मल, निरुन्मादक जल ?"

अनिरुद्ध ने, अलिन्द से अवरोहण करते हुए, अत्यन्त शान्त स्वर में, परिमित-सा उत्तर दिया : "जाह्नवी का जल ।"

परिचारिका द्वारा आनीत प्रसाधन-द्रव्य की ओर दुर्गपाल की उपेक्षा को उपलक्ष्य कर के, पुलोमजा ने अनुरोध किया : "स्नानचूर्ण तो ले जाओ, अनिरुद्ध !"

अनिरुद्ध ने सोपान-श्रेणी पर अग्रसर होते हुए कहा : "नहीं, उसकी आवश्यकता नहीं होगी ।"

स्नानचूर्ण का पात्र हाथ में लेकर अनिरुद्ध का अनुसरण करती हुई

पुलोमजा ने अनुनय की "स्वेदपङ्क से सिक्त तुम्हारी देह अन्यथा शुद्ध नहीं हो सकेगी, अनिरुद्ध !"

दुर्गपाल ने पुलोमजा की ओर देखे बिना ही कह दिया : लिच्छवी सैनिक के लिए स्वेदपङ्क ही चन्दन-पङ्क है, पुलोमजे !"

पुलोमजा ने क्षुब्ध होकर स्नानचूर्ण का पात्र पृथ्वी पर पटक दिया। किन्तु दुर्गपाल ने, एक बार भी मुख परावृत्त करके उस ओर नहीं देखा। न वाणी से पुलोमजा के कृत्य की विवेचना की। वे द्रुतपद वीथिका-मार्ग को पार करते हुए, पुष्करिणी की ओर चले गए।

आर्य पद्मकीर्ति के प्रमदोद्यान की पुष्करिणी भी प्रख्यात थी। शिलाबद्ध पार्श्व-चतुष्टय। पाषाण-प्रस्तर-विरचित तल पर प्रतिष्ठित विमल जलराशि। अपरिमेय शिरीषपुष्प-सी। दुर्गपाल ने, प्रफुल्ल-चित्त होकर, एक बार, उस जलाशय को निहारा। और फिर, अवगाहन के लिए अधीर से होकर, वे शुद्ध स्फटिक की सोपान-श्रेणी का अवरोहण करने लगे।

दुर्गपाल विलक्षण प्लवनकर्त्ता थे। अन्य दिन होता तो वे सोपान-पथ से पुष्करिणी मे प्रवेश नहीं करते। पुष्करिणी की प्राकार पर से अवस्कन्द करना ही उनका सहज स्वभाव था। किन्तु अत्यधिक श्रान्त अथवा अन्यमनस्क होने के कारण, आज वे बालक के समान, सोपान पर उपासीन होकर ही, स्नान करने लगे।

अस्तगत मरिचिमालि ने अपना मयूखजाल सहृत करके, शरद्-पूर्णिमा के पूर्णबिम्ब राकेश को आमन्त्रित किया कि वह, वियत्प्राङ्गण में प्रवेश करके, अपनी असख्य तारिका-वधुओ के साथ अभिसार का आयोजन करे। मन्दवाही वातास मे लास्य के अगणित अङ्गहार आस्पन्द-मान थे।

अनिरुद्ध, अनेक क्षण तक, जडप्रतिमा के समान सोपान पर उपासीन होकर, जलोत्सेक करते रहे। तब, सोपान-श्रेणी पर ध्वनित पदचाप ने, सहसा उनकी समाधि भङ्ग कर दी। दुर्गपाल ने, मुख परावृत्त करके, सोपान-पथ की ओर देखा। और वे स्तम्भित रह गए।

अर्धोरुक के अतिरिक्त समस्त वस्त्र त्याग कर, मुक्तकुन्तला पुलो-

मजा पुष्करिणी की ओर अवरोहण कर रही थी। अतिमुक्तक-से अवदात अवयव पर अस्त-व्यस्त विलुण्ठित अलकजाल से, अपने अनावृत्त पयोधर-द्वय को आच्छादित करने का उपक्रम करती हुई पुलोमजा को देख कर, दुर्गपाल एक क्षण भ्रम में पड़ गए कि अलकापुरी की यक्षकन्या, पथ-भ्रान्त होकर, धरा पर अवतरित हो गई है।

किन्तु दूसरे क्षण सर्वथा सावधान होकर, उन्होंने उत्थान किया। और एक उत्क्रमण में सोपान-पथ का अतिक्रमण करने के लिए अधीर अनिरुद्ध, ऊपर की ओर आरोहण करने लगे।

दुर्गपाल को पलायमान पा कर, पुलोमजा ने भी पथप्रान्त में उपस्थान किया। बाहु-लता-द्वय के प्रसार द्वारा अनिरुद्ध का मार्ग अवरुद्ध करती हुई, पुलोमजा बोली : "मैं प्रेत नहीं हूँ, पाटलिग्राम के दुर्गपाल ! मुझसे इतने भयभीत क्यों हो गए ?"

पुलोमला की विवस्त्र देह पर दृष्टिपात करने के अनिच्छुक अनिरुद्ध ने, अवनत-मुख होकर, कहा : "मैं स्नान कर चुका, पुलोमजे !"

"किन्तु मेरा स्नान अभी नहीं हुआ।"

"तुम स्नान करके आओ। तब तक मैं वस्त्र धारण कर लेता हूँ।"

"किन्तु मैं एकाकी स्नान करने नहीं आई, अनिरुद्ध ! तुम्हारे साथ प्लवनक्रीड़ा करने आई हूँ।"

"क्रीड़ा आज नहीं होगी, पुलोमजे ! फिर किसी दिन आऊँगा।"

"आज क्यों नहीं ?"

"आज मैं अत्यन्त क्लान्त हूँ।"

"मैं नहीं मानती। आर्य पद्मकीर्ति की पुष्करिणी में प्रवेश करके कोई भी क्लान्त नहीं रह सकता।"

"मेरे वचन पर विश्वास करो, पुलोमजे !"

"कैसे विश्वास करूँ, अनिरुद्ध ! मैंने देखा जो है कि तुम मेरे आते ही सहसा क्लान्त हो गए।"

"नहीं तो......

"तुम मुख उठाकर एक बार मुझे देख लो तो अन्धे नहीं हो जाओगे।"

"तुम्हारी देह पर न शाटिका है, न स्तनपट्ट, न उत्तरीय......

"देह तो तुम्हारी भी अनाच्छादित है।"

"मैं पुरुष हूँ, पुलोमजे !"

"और मैं नारी ! किन्तु नारीदेह क्या इतनी कलुषित है कि वह सर्वदैव वस्त्रावृत ही रहे।"

"मैं तुम्हारे साथ विवाद नहीं करूँगा।"

"विवाद करने के लिए मैं भी नहीं आई। मैं तो प्लवन-क्रीड़ा करने आई हूँ।"

"लिच्छवि सैनिक के लिए, युद्धकाल में युवतिजन के साथ जलक्रीड़ा निषिद्ध है।"

"लिच्छवि सैनिक तथा उसके विधि-निषेध की शास्त्रचर्चा में मुझे तनिक भी रुचि नहीं। मैं तो अपने अनिरुद्ध से अपने अधिकार की याचना कर रही हूँ।"

"मैं विवश हूँ, पुलोमजे !"

अनिरुद्ध ने, एक पार्श्व में पदार्पण करके, पलायन करने की चेष्टा की। किन्तु पुलोमजा ने, तुरन्त ही, अपनी बाहुलता उनके भुजदण्ड पर आवेष्टित कर दी। अनिरुद्ध का रोम-रोम कण्टकित हो उठा। वे अनुनय के स्वर में बोले : "हठ न करो, पुलोमजे ! इस बार मैं तुम्हारे पास एक अतिथि के रूप में आया हूँ। अतिथि के साथ......

पुलोमजा ने सहसा अनिरुद्ध का हाथ मुक्त कर दिया। उसके नयनों में अश्रु उभर आए थे। अनिरुद्ध ने द्रवित होकर कहा : "छि : ! रोते नहीं !"

पुलमोजा ने, अधरोष्ठ कुञ्चित करके, आर्द्रस्वर में उत्तर दिया : "रोते नहीं !! वज्रहृदय प्रणयी के समक्ष पुलोमजा को, हर्षोन्मत्त हो कर, नृत्य करना चाहिये ना ?"

अनिरुद्ध, उस उपालम्भ से, और भी दयार्द्र हो उठे। पुलोमजा के अनावृत स्कन्ध का स्पर्श करके वे बोले : "मैं तुम्हें दुःखित करना नहीं चाहता, पुलोमजे ! तुम पुष्करिणी में प्लवन करो। मैं, सोपान पर उपासीन होकर, तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।"

"मैं जलमग्न हो गई तो तुम प्रलयकाल तक मेरी प्रतीक्षा किए

जाना।"

"तुम जलमग्न क्यों होने लगीं ? तुम तो प्लवनक्रिया से पूर्णतया परिचित हो, पुलोमजे !"

"मेरा अभ्यास अभी अधूरा है।"

"तो प्लवन मत करो।"

अनिरुद्ध पुनरेण प्रत्यावर्तन के लिए प्रस्तुत हो गए। तब पुलोमजा ने विनीत स्वर में कहा : "तुम यहाँ सोपान पर उपाविष्ट हो जाओ, अनिरुद्ध ! मैं प्लवन करती हूँ। किन्तु यदि जलमग्न होने लगूँ तो तुम मेरा त्राण करना।"

अनिरुद्ध मौन रह कर सोपान-पथ पर आसीन हो गए। और पुलोमजा ने, सोपान-श्रेणी का अवरोहण करके, पुष्करिणी में प्रवेश किया।

कुछ क्षण के अनन्तर, खिन्नमना दुर्गपाल, नेत्र निमीलित करके, विचारमग्न हो गए। पुष्करिणी के वक्ष-विस्तार पर क्रीड़ा-कल्लोल करती हुई नारी की नग्न देह पर उन्होंने एक बार भी दृष्टिपात नहीं किया। पुलोमजा का वह निर्लज्ज व्यापार उनको रुचा नहीं था। वैशाली के लिच्छविगण में प्रतिष्ठाप्राप्त आर्य पद्मकीर्ति की दुहिता थी वह। वृज्जि-संघ की विमल कुलांगना। पाटलिग्राम के दुर्गपाल की वाग्दत्ता। उसके द्वारा यह सत्य विस्मृत होना उचित नहीं था कि उस समय वृज्जिसंघ, मगधराज अजातशत्रु के विरुद्ध, एक अनेक-वर्ष-व्यापी युद्ध में व्यूढ था। युद्धकाल में वृज्जिसंघ के लिच्छवि योद्धा सब प्रकार के विलास से विरत रहते थे। लिच्छवि सैनिक संयम धारण करते थे, इसीलिए वृज्जिसंघ सुरक्षित था, इसीलिए सुरक्षित थी लिच्छवि-गण की मान-मर्यादा, और इसीलिए......

पुष्करिणी में प्लवनरत पुलोमजा ने सहसा उनका नाम लेकर पुकारा। दुर्गपाल ने नेत्र उन्मीलित करके देखा कि वह जलाशय के मध्य देश में जा पहुँची है। जलार्द्र अलकजाल से पुलोमजा के कपोल एवं बाहु-मूल आवृत थे। उसके आनवृत मुख को देखकर, अनिरुद्ध को एक क्षण ऐसा आभास हुआ कि वारि-चत्वर पर विकच कुमुद विकसित हुआ है।

दुर्गपाल को अपनी ओर आकृष्ट-दृष्टि देख कर, पुलोमजा ने उत्क्रोश

किया : "मैं क्लान्त हो गई हूँ, अनिरुद्ध !"

अनिरुद्ध ने तटप्रान्त पर जा कर उत्तर दिया : "तो लौट आओ, पुलोमजे !"

"लौट आने की सामर्थ्य रही हो, तब तो लौटूँ।"

"धैर्य का त्याग न करो, पुलोमजे ! धीरे-धीरे लौट आओ। मेरी ओर देखती हुई लौट आओ।"

"मुझे तुरन्त निकालो, अनिरुद्ध ! अन्यथा मैं जलमग्न हो जाऊँगी।"

"तुम लिच्छवि-कन्या हो, पुलोमजे ! लिच्छवि कभी हतोत्साह नहीं होते।"

"मृत्युमुख से मेरा उद्धार करो, अनिरुद्ध ! तदुपरान्त मैं दत्तचित्त हो कर, शतवार तुम्हारी लिच्छवि-गुण-गाथा का श्रवण करूँगी।"

किन्तु दुर्गपाल अपने स्थान पर दण्डायमान रहे। उनको विश्वास ही नहीं हुआ कि पुलोमजा की यौवन-परिपुष्ट देह, इतने अल्पकाल में, निश्चेष्ट हो सकती है। इसके अतिरिक्त, पुलोमजा की स्वरभंगी से यह अनुमान नहीं हो रहा था कि वह वस्तुतः आर्त है।

पुलोमजा, सहसा, निमज्जोन्मज्जन करने लगी। अन्तरिक्ष एक अस्त-व्यस्त चीत्कार से सिहर उठा। और अनिरुद्ध, तडित्-पात की भाँति, उत्पतित हो कर, त्वरितगति से पुष्करिणी में प्रविष्ट हो गए। किन्तु वे पुलोमजा के समीप पहुँचे उसके पूर्व ही वह जलाशय में तिरोहित हो चुकी थी।

अनिरुद्ध का हृदय अवसन्न होने लगा। रात्रि की वेला और वह अगाध जलाशय। पुलोमजा को वे कहाँ खोजें ? विमूढ़-से होकर, उन्होंने एक बार पुष्करिणी के चारों ओर दृष्टिप्रसार किया। प्रासाद की ओर अवस्थित प्राकार पर परिचारक-परिचारिकाओं का एक दल खड़ा था। पुलोमजा का चीत्कार चतुर्दिक सुन पड़ा होगा।

किन्तु इसके पूर्व कि दुर्गपाल कोई निश्चय करते एक मृणालतन्तु-सा मृदुल बाहुपाश उनके कण्ठ में आलम्बित हो गया। और वह कुमुद पुनरेण जल के ऊपर उभर आया। मुक्तहास करती हुई पुलोमजा की मुक्तावलि-शुभ्र दशनावलि, कौमुदी में भी कौंध गई। दो पयोधराग्र

दुर्गपाल के दृढ़ वक्षस्थल में प्रवेश पाने के लिए परिश्रम-परायण थे।

ग्लानि के अतिरेक से, अनिरुद्ध के अवयव आकुल हो गए। दूसरे क्षण, क्रोधाविष्ट अनिरुद्ध ने पुलोमजा के चूर्ण केश अपनी करमुष्टि में कस लिए—अभिसार के हित आतुर पुलोमजा की दूषित देह को, बल-प्रयोग द्वारा, विदूरित करने के लिए। केश-कर्षण से क्लेशित पुलोमजा ने अनिरुद्ध से प्रार्थना की : "यह क्या व्यापार है, प्राणेश्वर! प्रणय के विनिमय में पीड़ा का प्रदान क्यों?"

अनिरुद्ध ने अपना अधर काटते हुए भर्त्सना की : "मृषावादिनी! मर क्यों नहीं गई?"

"प्रणयोन्मादिनी कहो, प्राणनाथ! तुम्हारे इस धरा पर विद्यमान रहने मरण को आमन्त्रण नहीं दिया जाता।"

पुलोमजा के प्रत्युत्तर में माधुर्य मुखरित था। किन्तु अनिरुद्ध के कर्ण-कुहरों में मानो किसी दुष्ट सरीसृप ने दंशन किया हो। वे भ्रू कुञ्चित करके दारुण दृष्टि से पुलोमजा को देखने लगे। अमर्ष के आवेश से उनका मुख मूक हो गया।

तब, पुलोमजा ने तर्जनी से, अनिरुद्ध की चिबुक का स्पर्श करके, कहा : "कटाक्ष इतना कुटिल क्यों है, कान्त! मेरा रोम-रोम क्षत-विक्षत हुआ जाता है। चुम्बन के चन्दन से मेरे हृदय के व्रण चर्चित कर दो।"

पुलोमजा ने, उद्ग्रीव होकर, अनिरुद्ध का अधर चूमने की चेष्टा की। किन्तु अनिरुद्ध ने अपना मुख परावृत्त कर लिया। उनके मुख से अनायास ही निकल गया : "छिः! निर्लज्ज!"

पुलोमजा कूक उठी : "मैं निर्लज्ज नहीं हूँ, अनिरुद्ध! तुम निष्ठुर हो।"

दुर्गपाल ने सहसा स्मरण किया कि पुष्करिणी के कूल पर संकुल पारचारक-परिचारिका-वृन्द, पुलोमजा का कुकृत्य देख रहे हैं। अपनी स्वामिनी के स्वेच्छाचार से, सम्भवतः सुपरिचित थे वे सब। किन्तु पाटलिग्राम के लब्धप्रतिष्ठ दुर्गपाल के विषय में वे क्या सोचेंगे? उनके द्वारा न जाने क्या-क्या अपवाद वैशाली की वीथि-वीथि में विस्तृत होगा? अनिरुद्ध का क्रोधावेश, एक निमेष में, लुप्त हो गया। कीर्ति-कलुषा के भय

से क्लिन्न अनिरुद्ध ने, पुलोमजा का मसृण मूर्धज-जाल मुक्त करके, क्लीब कण्ठ से अनुनय की : "मुझको मुक्त कर दो, पुलोमजे !"

पुलोमजा ने प्रणयविह्वल वाणी मे उत्तर दिया : "चुम्बन द्वारा चर्चित हुए बिना नही छोडूँगी, अनिरुद्ध !"

"पुष्करिणी के कूल पर खडे परिचारक-वृन्द हमे देख रहे है।"

"देखने दो। पारसीकपुरी के पुरुष, परिचारक-वृन्द से पर्यवसित होकर ही, अपनी प्रणयिनी से प्रेमालाप करते है।"

"किन्तु यह तो पारसीकपुरी नही है, पुलोमजे ! यह तो लिच्छवि-गण की वैशाली है।"

"वैशाली को पारसीकपुरी मे परिणत करने का पुण्य प्रण करके ही तो मै प्रत्यावर्तित हुई हूँ, प्राणनाथ !"

दुर्गपाल असमजस मे पड गये। पुलोमजा अपने हठ पर अटल थी। और वे, परिचारकवृन्द के समक्ष, एक लिच्छवि कन्या पर बलप्रयोग करके उसका अपमान करने के अनिच्छुक थे। कौशल-प्रयोग के अतिरिक्त, पुलोमजा ने उनके समस्त मार्ग अवरुद्ध कर दिए थे। अन्तत., मन ही मन एक निश्चय करके, वे बोले : "परिचारक-वृन्द को अपसरित कर दो, पुलोमजे !"

पुलोमजा ने कहा : "अधरामृत-प्रदान का प्रतिवचन दे दो, अनिरुद्ध ! परिचारक-गण इसी क्षण चले जाएगे।"

"वचन देता हूँ।"

"मेरे अधरोष्ठ मे आविर्भूत अनंगाग्नि का प्रशमन करोगे ?"

"तुम जो आदेश दोगी, उसी का पालन करूँगा, पुलोमजे !"

अनिरुद्ध अधीर हो उठे। उन्होने कभी स्वप्न मे भी नही सोचा था कि वृज्जि महाजनपद की विमल वसुन्धरा पर, वैशाली की दुर्गप्राचीर से अनतिदूर, कोई लिच्छवि इस प्रकार का लाञ्छनीय कृत्य कर सकता है।

पुलोमजा ने, हाथ के सकेत से, परिचारक-वृन्द को अपसारित कर दिया। तब वह बोली : "तुम तो बड़े लोकभयभीरू हो, पाटलिग्राम के दुर्गपाल !"

किन्तु अनिरुद्ध ने उसका उपालम्भ अनसुना कर दिया। वे, बलपूर्वक

अपने आपको उस अनिष्ट आलिङ्गन से विमुक्त करके, तीर की ओर प्लवन करने लगे—प्रवञ्चिता पुलोमजा के निन्दात्मक निनाद पर कर्णपात किए बिना।

और इसके पूर्व कि पुलोमजा, प्रासाद पर आकर, उन्हें पुनरेण प्रतारित करने का प्रयत्न करती वे वस्त्र पहिन कर, अपने सैन्धव पर आरूढ हो, आर्य पद्मकीर्ति के प्रमदोद्यान से निष्क्रमण कर गए।

: ३ :

दुर्गपाल अनिरुद्ध ने, वैशाली महानगर की प्रथम दुर्गप्राचीर पार करके, पुर में प्रवेश किया तब त्रियामा का प्रथम याम अधिकांशत: अतिवाहित हो चुका था। शरद्-पूर्णिमा का पूर्ण-बिम्ब निशाकर, निरभ्र नीलाकाश मे निर्बाध विचरण कर रहा था। तमिस्र पक्ष मे प्रभूत प्रलिप्त कालिमा के अन्तिम अवलेश को, अपनी जगन्नन्दिनी ज्योत्स्ना के ज्वार से, धोने के लिए कृतप्रातज्ञ-सा।

वैशाली के बाह्यान्त दुर्ग में, पश्चिम की ओर प्रसृत, वणिक्-ग्राम सर्वथा शान्त था। पूर्व की ओर अवस्थित कर्मकार-ग्राम भी।

एक गव्यूति दूर जाकर, अनिरुद्ध ने द्वितीय दुर्गप्राचीर से परिवेष्टित क्षत्रियग्राम में प्रवेश किया। पुर का यह प्रमुख प्रान्त भी नितान्त नीरव था।

अनिरुद्ध के अन्तर्मन में अन्तर्हित स्मृतिपट पर, शैशव तथा कैशोर में देखे हुए, कितने ही कोजागर कल्लोल करने लगे।

यदि युद्ध की विभीषिका ने वैशाली को विकल न किया होता, तो इस विलक्षण विभावरी में वैशाली के वैभवशाली पुरवासी, कौमुदी महोत्सव मनाते। गीत, वाद्य, नृत्य के परमाह्लाद से वैशाली का प्रत्येक पार्श्व परिप्लावित हो जाता। वैहारिक परिधान में प्रफुल्लित पौरगण का परस्पर परिहास, प्रेम की पयस्विनी प्रवाहित करता।

यही तो वह पुण्य पर्व था जिसके अवसर पर, वर्ष प्रतिवर्ष, लिच्छविवंश के तरुण एवं तरुणियाँ, राजोद्यान में आमन्त्रित होकर, चन्द्रिका के वितान तले, प्रणयपथ पर पदार्पण करते थे। कोजागर के कुमुन्दबान्धव को साक्षी बनाकर, प्रथम प्रणय-निवेदन करना लिच्छवि-गण की सनातन

आर्यपरम्परा थी।

कई वर्ष पूर्व, पाटलिग्राम के लिच्छवि-दुर्ग पर मगध का प्रथम आक्रमण हुआ उस शरद् ऋतु की कौमुदी में, ऐसे ही एक अवसर पर, अनिरुद्ध ने पुलोमजा का प्रणय प्राप्त किया था। अबोध-बालिका-सी थी उस समय, आर्य पद्मकीर्त्ति की पौत्री, आर्य रत्नकीर्ति की एकमात्र अपत्य, कुमारी पुलोमजा। धर्मप्राण, धर्मभीरु, धर्मचर्चा में रत। धर्मव्याख्या के के एक प्रसंग में, दुर्विनीत अनिरुद्ध ने पुलोमजा की श्रद्धा-सम्पद् पर प्रबल प्रहार किया था। किन्तु, दुर्विनय के विनिमय में, उनको मिला था पुलोमजा का प्रणय-प्रसाद।

भगवान शाक्यसिंह तथा उनके विमल धर्म-विनय पर विभोर पुलोमजा, भगवान की अपरिमेय कीर्ति-कथा कह रही थी। अनिरुद्ध ने, सहिष्णु होकर, परिहास के स्वर में उससे प्रश्न किया था "कुमारि! कोटिग्राम से वैशाली आने वाले महापथ पर, अपने प्रमदोद्यान से अनतिदूर, न्यग्रोधवृक्ष का शुष्कप्राय अस्थिपञ्जर क्या आपने देखा है?"

पुलोमजा ने उत्सुक होकर कहा था: "नहीं तो। किन्तु क्यों?"

"जब-जब मैं उस पथ से यात्रा करता हूँ, तब-तब, नतमस्तक तथा बद्धाञ्जलि होकर, उस वृक्षराज की वन्दना करता हूँ।"

"चैत्यवृक्ष होगा?"

"नहीं, कुमारि! नहीं। मुझे वह वृक्ष देखकर महाश्रमण का स्मरण हो जाता है।"

"छिः! छिः!! ऐसा नहीं कहते, कुमार!"

पुलोमजा ने अपने वाम हस्त के पाणिपल्लव द्वारा अनिरुद्ध का वाणी-द्वार अवरुद्ध कर दिया था। किन्तु पुलोमजा का करतल अपसरित करके अनिरुद्ध ने कहा था: "न्यग्रोधवृक्ष परिनिवृत्त हो चुका, कुमारि! अब उसके लिए न जन्म-मरण का भय है, न जरा-व्याधि की विभीषिका। विपरीत पक्ष में, अपने प्रमदवन की वराकी माधवी-लता का अवलोकन करो। फूलती है, झर जाती है। पुनः फूलती है, पुनः झर जाती है। उसके सन्ताप की भी कोई सीमा है, कुमारि! च्च्! च्च्!"

कहने को तो अनिरुद्ध ने यह सब कह दिया था। किन्तु पुलोमजा

का अश्रु-विह्वल मुख देखकर, वे अपने आप ही अप्रतिभ भी हो गए थे। पुलोमजा के पाणि-पल्लव का स्पर्श करते समय उनका रोम-रोम एक अपूर्व अनुभूति से भर गया था। एक दुर्वह उन्माद का माधुर्य था उस अनुभूति में। हृदयवेधी व्यथा भी। अनिरुद्ध उसी क्षण उस गोष्ठी से उठ कर पलायन कर गये थे।

फिर, महोत्सव के मध्यम याम में, जब वे स्फटिक के शिलासन पर एकाकी आसीन होकर, स्वप्नलोक में विचरण कर रहे थे, तब किसी ने, पृष्ठदेश की ओर से आकर, अकस्मात् उनके नेत्रद्वय पर अपने करकिसलय न्यस्त कर दिए थे। वही मर्मवेधी स्पर्श······वही माधुर्य का उन्माद······वही व्यथा······

स्मृतिविह्वल अनिरुद्ध ने, सहसा अपना अश्व रोक कर, प्रकृतिस्थ होने के लिए, अपने गात्र स्पन्दित किये।

अतीत की बातें थीं वे सब। उस पुलोमजा की प्रणयकथा जो अब अन्तर्हित हो चुकी थी। परदेश से प्रत्यागत, इस नवीन पुलोमजा से उस पुरातन पुलोमजा का कोई परिचय नहीं था।

नूतन तथा पुरातन पुलोमजा-द्वय का स्मरण करके, अनिरुद्ध निर्णय नहीं कर पाए कि उनमें से कौन-सी पुलोमजा सत्य है एवं कौन-सी मिथ्या।

नूतन पुलोमजा ने पुरातन पुलोमजा का प्राणहरण किया था, लिच्छवि-परम्परा को पददलित किया था। लिच्छवि योद्धा की प्रणयिनी की नृशंस हत्या भी। नूतन पुलोमजा का अपराध अक्षम्य था।

पाटलिग्राम से प्रस्थान करते समय, अनिरुद्ध को आशंका नहीं थी कि उनका सतत सहचर स्वप्न, इस प्रकार, एक क्षण में, वास्तव के एक आघात से, धूलिसात् हो जाएगा। कितनी बार, रात्रि के मध्यम याम में, पाटलिग्राम के लिच्छवि दुर्ग की प्राचीर पर पदचार करते-करते, अनिरुद्ध ने उस दिवस की अभीप्सा की थी जिस दिन वे, अपनी पुलोमजा को अपने प्रणयालिङ्गन में भर कर......

किन्तु अनिरुद्ध की पुलोमजा तो लिच्छवि-दुहिता थी। लिच्छवि-कुलाङ्गना-सुलभ व्रीड़ा के वशीभूत। लिच्छवि-परम्परा पर प्राणोत्सर्ग करने वाली।

और परदेश से प्रत्यागत पुलोमजा ? नही। यह उनकी पुलोमजा नही हो सकती। पारसीकपुरी की पुंश्चली के समान पापाचार-परायण पुलोमजा उनकी प्रणयिनी नही हो सकती.........

सतप्त-हृदय दुर्गपाल ने, पार्ष्णिप्रहार द्वारा, अपने सैन्धव को अग्रसर किया। उनकी शून्य-सी दृष्टि, चारों ओर प्रसारित होकर, सान्त्वना खोजने लगी।

वैशाली के ज्योत्स्ना-स्नात सौधशिखर, आकाशपट पर अंकित आलिम्पन के समान, चित्र-विचित्र प्रतीत हो रहे थे।

एक समय था जब प्रत्येक हर्म्योत्सग से वीणा का क्वणन एवं नूपुर का रणन निर्झरित हुआ करता। कोकिलकण्ठा की काकलि वातास को विकल कर देती थी।

किन्तु आज ! चन्द्रमा की चन्द्रिका से चमत्कृत होकर भी वे प्रासाद, क्लेश की कालिमा से कलुषित-से दीख पडते थे। नौ वर्ष से अनवरत चल रहा था वृज्जिसघ तथा मगध के मध्य वह अनिवार्य युद्ध। वैशाली का कोई लिच्छवि-परिवार उस युद्ध की विभिषिका से नही बचा था।

शोकातिरेक से सयमच्युत होकर विलाप करना लिच्छवि-मर्यादा के विरुद्ध था। किन्तु लिच्छवि-गण के हृदय तो क्षत-विक्षत थे। माता-पिता का हृदय क्षत-विक्षत था पुत्र के लिए। भ्राता का भ्राता के लिए। भार्या का भर्ता के लिए। सहोदरा का सहोदर के लिए। सखा का सहचर के लिए। उस हृदय को लेकर वीणावादन सम्भव नही था। न नृत्य, न गीत, न कौमुदी-महोत्सव।

दुर्गपाल, महापथ से न जाकर, एक रथ्यामार्ग से अन्तर्दुर्ग की ओर अग्रसर हो रहे थे। प्रासादमाला की प्रतिच्छाया मे पथ पार करते हुए पाटलिग्राम के प्रथम पुरुष को किसी ने नही पहिचाना। अन्यथा, अनेक अभिवादन अङ्गीकार करते हुए अनिरुद्ध को, चिन्तानिमग्न होने का अवकाश नही मिलता।

विलम्ब होता देखकर, दुर्गपाल ने कशाघात द्वारा, सैन्धव का कायस्पर्श किया। अश्व उड्डीयमान होने के लिए उद्यत हो गया।

किन्तु, अकस्मात्, वैशाली का मन्थरवाही वातास एक करुण क्रन्दन

के कठोर आघात से विकल हो उठा। निरभ्र नीलाकाश से वज्रपात हुआ हो जैसे। अश्व ने अवरुद्ध होकर, आरोही के आदेश की याचना की। दुर्गपाल ने, अपने स्कन्धदेश से कोदण्ड उतार कर, शरसन्धान कर लिया। महानगर के प्रान्त-प्रान्त से कोलाहल उत्थापित हो रहा था।

अनिरुद्ध, त्वरितगति से अश्व प्रधावमान करके, अन्तर्दुर्ग की ओर अग्रसर हुए। क्रन्दन-ध्वनि उसी ओर से आ रही थी।

किन्तु अन्तर्दुर्ग के द्वारदेश पर पहुँच कर, दुर्गपाल ने देखा कि क्षत्रिय-नगर के निवासियों का एक समवाय वहाँ पर एकत्रित है। उन्होंने दूर पर ही अश्व से अवरोहण किया। तब अपने उत्तरीय से मुख आच्छादित करके, वे जन-समवाय में प्रविष्ट हो गए।

उन्होंने, प्रतिपल परिष्कृत कौमुदी के प्रकाश में, निर्निमेष नयनों से देखा कि अन्तर्दुर्ग के द्वारदेश पर एक नारीदेह दण्डायमान है। मानो कोई यायावर शिल्पकार मृण्मयी पुत्तलिका गढ कर रख गया हो। वह करुण क्रन्दन उस पुत्तलिका में से ही मुखरित हो रहा था। निमीलित था पुत्त-लिका का नयनद्वय। निश्चेष्ट थी नवलता सी देहयष्टि। ईषत् प्रकम्पित अधरोष्ठ के अतिरिक्त, प्राण-संचार का कोई अन्य संकेत ही नहीं था पुत्त-लिका में। मानो उसकी समस्त संज्ञा स्वरशक्ति में एकीभूत हो गई हो।

धूलि-धूसरित था पुत्तलिका का देहभार। किन्तु सौष्ठव से आपाद-मस्तक आप्लावित। वियोग-विकल यौवन-श्री मानो मुड़-मुड़कर उसे उत्फुल्लित करना चाहती हो। कपोल पाण्डुर थे। किन्तु मुखकमल की रेखा-रेखा में प्रसुप्त लावण्य पुनरेण विकसित हुआ चाहता था। वातास द्वारा विच्छिन्न कुन्तलराशि से वारम्वार कुहरगत होकर भी कौंध-कौंध जाता था वह लावण्य। पथपांशु से स्पृष्ट होकर श्रीहीन हो गया था वह अस्नात एवं अस्त-व्यस्त अलकजाल। किन्तु, वातास रुद्ध होते ही, जब-जब वह पुत्तलिका के पृष्ठदेश पर विलुण्ठित होता था, तब-तब सूचना देता था कि कुछ दिवस पूर्व, किसी प्रसाधन-प्रवीण सैरन्ध्री की कुशल करांगु-लियों ने, उसको नव-कुरवक तथा केसर-किसलय से कुसुमित किया होगा।

वस्त्राभरण नहीं थे उस वराङ्गना की देह पर। एक खुल-खुल जाने वाला स्तनपट्ट। पुत्तलिका के दीर्घपक्ष्म नयनों से अविरल प्रवाहित अश्रु-

धार द्वारा पङ्किल। एक जराजीर्ण, मल-मलिन कौशेय-शाटिका। पवन के आघात से, किसी भी क्षण, नीवीबन्ध का अवलम्बन त्याग देने के लिए आतुर-सी।

पुत्तलिका क्रन्दन नहीं कर रही थी। वह गा रही थी। उसके गीत मे, उसका भग्न मानस, स्वर-कारुण्य एव कण्ठ-माधुर्य का अवलम्बन लेकर, मुखरित हो रहा था। एक दुर्निवार आग्रह था उस गीत में। नभ से, धराशायी हो जाने का। तारावलियों से, अश्रु बनकर बह जाने का। गिरिराज से, धूलि बनकर दिग्दिगन्त में विलीन हो जाने का। वसुन्धरा से, विदीर्ण हो जाने का। शैशव से, शीर्ण हो जाने का। लावण्य से, लुप्त हो जाने का। प्रणय से, प्रतारणा में परिणति पाने का। चराचर जगत् को, एक स्वर में रुलाने का आग्रह था उस गायन मे। मानो रुदन के अतिरिक्त, ब्रह्माण्ड के आङ्गन में, अन्य कुछ भी अवशिष्ट न रह गया हो।

जनगण के कोलाहल से भी, उस अज्ञात-कुल-शीला अङ्गना का आर्तनाद अवरुद्ध न हुआ। तब, अनेक दर्शक-वृन्द के अधीर कण्ठ एक स्वर से, प्रश्न कर उठे: "परदेशिनि! आप कौन है?"

पुत्तलिका, आपाद-मस्तक सिहर कर, मूक हो गई। उसकी अवसन्न-सी आलम्बित बाहुलताएँ, उसके अनावृत कुचकलश-द्वय को आच्छादित करने के लिए, ऊपर उठीं। अश्रुभार से अभिभूत नेत्र-सम्पुट-द्वय ने उन्मीलित होने का उपक्रम किया। किन्तु पुत्तलिका ने पौरगण के प्रश्न का प्रत्युत्तर नहीं दिया।

दुर्गद्वार से निष्क्रमण करती हुई, राजकुमारी वत्सला ने, स्वर-सौहार्द्र से पुत्तलिका का स्पर्श करते हुए, अनुरोध किया: "भद्रे! आप अपना परिचय दीजिए।"

परिचारिका-द्वितीया राजकुमारी को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि वे, द्वारदेश पर आर्तनाद सुनते ही, ससंभ्रम उठकर चली आई है। उनकी प्रस्थान-त्वरा उनकी अस्तव्यस्त वेशभूषा पर अङ्कित थी। नीलोत्पल से कमनीय कलेवर पर साधारण कार्पास-वस्त्र की शुभ्रवर्ण शाटिका। आगुल्फ आलम्बित। शुभ्र कार्पास-वस्त्र का ही उत्तरीय-पट्ट। शिर उष्णीष विहीन। एक कवरी में कर्षित केशपाश। राजकुमारी की देह पर एक भी

आभूषण नहीं था। न उस देह के अङ्गराग ने वातास को सौरभसिक्त किया।

पुत्तलिका का गगनभेदी कण्ठ-सामर्थ्य न जाने सहसा कहाँ विलुप्त हो गया। उसके मुख से केवल एक क्षीण आक्रोश ही निर्गत हुआ : "पथप्रान्त में प्रताड़ित भिक्षुकी का भी कोई परिचय होता है !"

राजकुमारी ने आग्रह किया : "आप पथ-प्रान्त में नहीं, वैशाली में हैं। लिच्छवि-गण की वैशाली में। आर्त को अभय-दान देना लिच्छवि-गण की आर्य-परम्परा है। परिचय आपको देना ही होगा, शुभे !"

पुत्तलिका ने भ्रू कुञ्चित करके कहा : "धृष्टता क्षमा करें, राजकुमारि ! एक मास पूर्व, जब कोसल के हिंस्र व्याघ्र, विदूरथ, ने निर्दोष शाक्यकुल का संहार किया था तब लिच्छवि-गण की आर्य-परम्परा कहाँ गई थी ? शाक्य शिशुओं के शोणित से उस दिन दिग्दिगन्त रञ्जित हो गए थे। कपिलवस्तु की कुलाङ्गनाओं के क्रन्दन ने, उस दिन, धैर्यध्रुवा धरित्री का वक्ष विदीर्ण कर दिया था, निर्लिप्त नभमण्डल से निरन्तर अश्रुमोचन करवाया था। उस दिन······

शाक्यदुहिता का उपालम्भ पूरा होने के पूर्व ही पौरगण ने कोलाहल किया : "अरे ! यह तो शाक्यदुहिता है। कपिलवस्तु की कुलाङ्गना। अरे ! यह तो विदूरथ द्वारा जन्मभूमि से विदूरीकृत······

कुमारी पुलोमजा ने, जनसमवाय के बीच से निकल कर, कहा : "उस दिन राजकुमारी वत्सला, राजप्रासाद के प्रधान कक्ष में, कोसलराज द्वारा प्रेषित श्रावस्ती के सन्धि-विग्रह-महामात्य से मन्त्रणा कर रही थीं।"

किन्तु राजकुमारी ने पुलोमजा के कटाक्ष की अवहेलना कर दी। वे शाक्यदुहिता को सम्बोधित करके बोलीं : "भद्रे ! अपने पिता का नाम प्रगट कीजिए।"

पुत्तलिका ने उत्तर दिया : "उनका वंशप्रदीप निर्वापित हो चुका, राजकुमारि ! नाम प्रगट करके उनका अपयश न होने दूँगी।"

"क्या आप किसी शाक्य-कुल की कुल-वधू हैं ?"

"मेरे प्राणपति का निर्मम वध न हुआ होता तो मैं आज के दिन, इस समय, उनके प्रणयपावन पर्यङ्क पर पदार्पण करती।"

जनसमुदाय के मुख से संवेदना का सीत्कार निकल गया। अश्रुविह्वल

राजकुमारी ने अपना बाहुद्वय प्रसारित करके कहा : "भगिनि ! आप मेरे साथ आइये । वृज्जिगण का राजप्रासाद आपका परित्राण करेगा ।"

शाक्यदुहिता ने कठोर स्वर में उत्तर दिया : "शाक्यों ने कभी किसी से परित्राण की भिक्षा नहीं माँगी ।"

राजकुमारी ने संयम धारण करके कहा : "आप मुझे क्षमा करें, शाक्यकुमारि ! मुझसे भूल हुई । आप एक लिच्छवि के आवास में आतिथ्य ग्रहण करें ।"

पुलोमजा ने पुनरेण कटाक्ष किया : "हाँ, हाँ, शाक्यकुमारि ! राजकुमारी का आतिथ्य आप अवश्य ग्रहण करें । श्रावस्ती के महामात्य ने भी इनका आतिथ्य ग्रहण किया था । आप तो तुच्छ कपिलवस्तु की अकिंचन कुलवधू मात्र हैं ।"

भयानक व्यंग था पुलोमजा के वाग्बाण में । जितना कठोर, उतना ही कुत्सित भी ।

जनसमवाय में खड़े दुर्गपाल ने एक बार वत्सला को निहारा । फिर पुलोमजा को । मानो, मन-ही-मन, दोनों की तुलना कर रहे हों ।

लिच्छवि-कन्या-सुलभ व्यायाम से कृशाङ्गी वत्सला की देह पर लिच्छवि-मर्यादा-सुलभ वेशभूषा थी । अपनी प्रकृत रूप-राशि को चमत्कृत करने अथवा अपने अवयव के किसी अवगुण को आच्छादित करने के लिए उन्होंने किसी प्रसाधन-द्रव्य का प्रयोग नहीं किया था ।

दुर्गपाल की दृष्टि राजकुमारी की मुख-भङ्गिमा पर आविष्ट होकर रह गई ।

भ्रूयुगल के उत्क्षेप से तरंगायित अतल सागर के समान गहन-गम्भीर प्रशस्त ललाट-तट । विस्मय से विस्फारित दो दीर्घपक्ष्म, तडिद्द्युति, निर्निमेष नयन । अन्तर में उद्वेलित उत्तेजना से उच्छ्वसित, किंचित उन्नमित तिलपुष्प-सन्निभ नासिका । जिह्वाग्र पर जीवन्त प्रत्युत्तर को प्रतिहत करने के प्रयत्न में प्रतिपल प्रकम्पित, अधरराग से अपरिचित किन्तु निसर्ग-रक्तिम अधरोष्ठ । चिरन्तन चिन्तन से चिन्हित चिबुक ।

वत्सला का सहज श्यामल वदनोत्पल अंगारक की-सी आभा धारण कर रहा था । उस मुख से उद्भूत स्फुल्लिंग मानो पुलोमजा को भस्म-

मान् कर देंगे ।

और पुलोमजा ! पण्यभूमि से पदच्युत प्रसाधन-पेटिका थी वह। वस्त्राभरण के भार तथा अंगराग के आवरण में उसकी अर्धनग्न देह भी अन्तर्हित हो गई थी। दुर्गपाल ने पुलोमजा के गौरवर्ण मुख पर दृष्टि-पात किया। अनेक राग तथा चूर्ण द्वारा प्रसाधित वह गौरवर्ण मुख, उस को धारण करने वाली के अन्तर मे आपूरित अहंकार को, आवृत करने मे सर्वथा अक्षम था। मानो अपनी दुर्निवार्य द्वेष की दावाग्नि से पुलोमजा दिग्दिगन्त को दग्ध कर देगी।

तब वत्सला ने, शान्त स्वर में, पुलोमजा को सम्बोधित किया : "मिथ्या का प्रचार मत करो, पुलोमजे ! तुमने भी लिच्छवि-वंश में जन्म लिया है।"

उत्तर में पुलोमजा ने और भी विषाक्त व्यंग किया। अपने आनन को उन्नतावनत करती हुई, वह बोली : "धन्य हो, राजकुमारि ! आज आपने अपने से अतिरिक्त एक अन्य व्यक्ति को लिच्छवि-वंश का वंशज तो माना !"

जनसमवाय कोलाहल कर उठा : "राजकुमारि ! अभियोग की मार्जना होनी चाहिए।"

राजकुमारी ने, सिंहनी के समान, गर्जना की : "अभियोग आद्योपान्त मिथ्या है। मिथ्या की कोई मार्जना नहीं होती।"

किन्तु पुलोमजा ने पराजय स्वीकार नहीं की। वह, व्यंगमय हँसी हँस कर, बोली : "तो क्या कोसलराज विदूरथ के साथ वृज्जिसंघ की मैत्री का सन्धिपत्र आपने जला दिया, राजकुमारि !"

वत्सला ने दृढ़स्वर में उत्तर दिया : "वह सन्धि, राजगृह के राजन्य की साम्राज्यलिप्सा का विरोध करने के लिए की गई थी।"

पुलोमजा मानो प्रत्युत्तर के लिए प्रस्तुत थी। वह अधर कुञ्चित करके कहने लगी : "छि: छि:, राजकुमारि ! एक प्रतिवेशी गणराज्य का समूल विध्वंस होता रहा। सो भी श्रावस्ती के राजन्य द्वारा। और वृज्जिसंघ विजड़ित-सा विरक्त रहा। आप यह क्यों नहीं मान लेतीं कि कोसलराज के साथ की गई सन्धि ने हमारे पाँव पंगु कर दिये थे, हमारे बाहुबल को

क्षीण कर दिया था ?"

"वृज्जिसंघ की आकांक्षा थी कि शाक्यसंघ की सहायता करे। किन्तु शाक्य-गण ने हमारी सहायता स्वीकार नहीं की। कपिलवस्तु के संस्थागार से, जिस दिन विदूरथ का दूत असफल होकर लौटा, उसके कुछ दिन उपरान्त वृज्जिसघ का वृद्ध दूत भी भर्त्सना पाकर लौट आया।"

"वह इसलिए कि शाक्य-गण को कोसल के साथ वृज्जिसंघ की संधि का समाचार मिल चुका था।"

"किन्तु शाक्यगण को यह भी ज्ञात था कि सन्धि में, मगध के विरुद्ध एक होकर युद्ध करने के अतिरिक्त, अन्य कोई भी प्रतिबन्ध नही है।"

"उनको यह किस प्रकार ज्ञात होता, राजकुमारि ! सन्धिपत्र क्या आपने शाक्य-परिषद का परामर्श ले कर लिखा था।"

"मैंने कोई सन्धिपत्र नहीं लिखा। वैशाली के संस्थागार में समाहूत लिच्छवि-परिषद से परामर्श करके वृज्जिसंघ के अष्टकुलिक ने लिखा था वह सन्धिपत्र। आर्यश्रेष्ठ से मन्त्रणा करके ही मान्य हुआ था वह सन्धिपत्र।"

"अष्टकुलिक और आर्यश्रेष्ठ ! हूँ !!"

"और लिच्छवि-परिषद ? परिषद को भी एक हूँ से उड़ा दो, पुलोमजे !"

पुलोमजा से वत्सला के व्यंग का प्रत्युत्तर न बन पड़ा। उसने आवेश के आवर्त में, आर्यश्रेष्ठ तथा अष्टकुलिक के प्रति अवज्ञा का प्रदर्शन किया था। वैशाली का लिच्छवि-समवाय, एक क्षण के लिए, सन्न रह गया। उनके अन्तर में आर्यश्रेष्ठ महाली ओष्ठाध के लिए अपरिमेय श्रद्धा विद्यमान थी। आर्यश्रेष्ठ के एक इंगित पर प्राणोत्सर्ग करने वाले थे वे सब।

किन्तु दूसरी ओर, आर्य पद्मकीर्ति की पौत्री पुलोजमा की अवहेलना करना भी वैशाली-वासियों के लिए अशक्य था।

पुलोजमा को मौन देख कर कुछ लिच्छवि पुरुषों ने कहा : "शाक्यकुल के घातक विदूरथ के साथ वृज्जिसंघ की वह सन्धि अमान्य होनी चाहिए, राजकुमारि !"

राजकुमारी ने धीर वाणी में उत्तर दिया : "सन्धि विदूरथ के साथ नहीं, कोसल के साथ की गई है, आर्यवृन्द ! अन्यथा, जिस दिन विदूरथ अचिरवती की जलधारा में निमज्जित होकर मर गया, उसी दिन वह सन्धि अमान्य हो जाती।"

जनसमवाय चीत्कार कर उठा : "वृज्जिसंघ को कोसल के साथ किसी प्रकार की सन्धि नहीं रखनी चाहिए। हम कोसल के विरुद्ध अभियान चाहते हैं।"

भयानक आवेश था उस चीत्कार में। उत्कट उत्तेजना द्वारा उत्पादित आवेश। वत्सला को सहसा वे दिन स्मरण हुए जब शाक्यसंहार का समाचार सर्वप्रथम वैशाली में आया था।

वैशाली में विस्फोट हुआ था। सर्वत्र एक ही मत व्याप्त था : वर्णसंकर विदूरथ ने क्षत्रियश्रेष्ठ महानाम की पुत्रवधू पर कैसे दृष्टिपात किया ? एक तुच्छ राजन्य का यह साहस कैसे हुआ कि महाश्रमण के पावन कुल का, आबालवृद्ध, संहार करे ? वैशाली के वृज्जिसंघ को क्या सांप सूँघ गया था उस दिन ? लिच्छवि-गण का भुजबल क्या उधार चला गया था ? क्या लिच्छवि-गण का कृपाण कुण्ठित हो गया था उस दिन ? तूणीर में तीर नहीं थे ? धनुष की प्रत्यञ्चा गल गई थी ?

उस समय, वृज्जि महाजनपद की जनता यह भूल गई थी कि एक अन्य राजन्य उनकी रक्तमर्यादा को दूषित करने के लिए कटिबद्ध है, उनकी वैशाली का विध्वंस करना चाहता है, उनका स्वातन्त्र्य हरण करने के लिए कृतसंकल्प है। उस समय वृज्जि महाजनपद में उत्पात एवं उपद्रव हुआ था। वैशाली की पण्यवीथियों में कोसल के सार्थवाह लुटे थे। भागीरथी तथा गण्डकी में कोसल के यानपात्र डूबे थे। और कोसल के निवासियों को इतस्ततः पलायन करके अपने प्राणों का त्राण करना पड़ा था।

वृज्जिसंघ के दण्डबल-महामात्य ने आर्यश्रेष्ठ से आदेश माँगा था कि उपद्रव का दमन करने के लिए बलप्रयोग किया जाए। किन्तु आर्यश्रेष्ठ ने अनुमति नहीं दी थी। लिच्छवि-गण का भुजबल शत्रु का दमन करने के लिए ही संगृहीत हुआ था। स्वदेश में आतंक आरोपित करने के

लिए नही। आर्यश्रेष्ठ ने राजकुमारी को आदेश दिया था कि वे अपने प्राणों से खेल कर उपद्रव का उपशमन करें। अतिशय रुग्ण होने के कारण वे स्वयं उस समय अशक्त थे। पिता का आशीर्वाद शिरोधार्य करके राजकुमारी ने राजप्रासाद का परित्याग किया था।

वत्सला का द्रुतवाही पारियाणिक रथ वृज्जि महाजनपद के इस छोर से उस छोर तक प्रधावित हुआ था। पूर्वोत्तर प्रदेश अपेक्षाकृत शांत था। किन्तु पश्चिम तथा दक्षिण के ग्राम-ग्राम मे वत्सला को जाना पड़ा था। धूलि-धूसरित, म्लान-वसना वत्सला अनुपम धैर्य धारण करके, वाणी मे विक्षोभ का लवलेश भी लिए बिना, संयत स्वर से, वृज्जिसंघ की प्रजा को शान्त रहने की शिक्षा दे रही थीं।

दुर्गपाल अनिरुद्ध के दूत ने पाटलिग्राम से आकर आवेदन किया था कि वे स्वयं वत्सला की सहायता के लिए उपस्थित होना चाहते है। प्रत्युत्तर मे वत्सला ने कहला दिया था कि दुर्गपाल पाटलिग्राम में ही रह कर अपना मुख राजगृह की ओर रक्खे और पीठ वैशाली की ओर।

वृज्जिसघ मे सब ओर से एक ही प्रस्ताव किया जा रहा था : वृज्जि-सघ को उचित है कि कोसल के साथ की गई सन्धि को अमान्य करे; वृज्जिसघ का कर्त्तव्य है कि अन्यान्य गणराज्यों के साथ सम्भूत होकर, कोशल को उसके कुकृत्य का समुचित दण्ड दे।

वत्सला ने किसी के, साथ विवाद नही किया था। सब स्थान पर, सबसे वे एक ही बात कहती रही थी : सन्धि-विग्रह का अधिकार वैशाली की लिच्छवि-परिषद को हे; उपद्रव शान्त होते ही परिषद अवश्य इस प्रश्न पर विचार करेगी; उपद्रव तुरन्त शान्त होना चाहिये।

अभी, उस दिन ही तो, उतरी थी वह आवेग की आँधी। अभी, उस दिन ही तो, राजकुमारी ने राजप्रासाद में प्रत्यावर्तन किया था। वत्सला को विदित था कि आवेग रुद्ध हो गया है, मिटा नहीं। वैशाली में, प्रति-दिन, विदूरथ द्वारा किए हुए अनाचार के नित्यनूतन समाचार प्राप्त हो रहे थे। रुद्ध आवेग किसी पल भी पुनरेण एक विस्फोट की सृष्टि कर सकता था। आर्यश्रेष्ठ अब भी अस्वस्थ थे। और वैशाली के लिच्छवि-गण उन्माद-ग्रस्त। वत्सला नहीं चाहती थी कि ऐसी अवस्था मे लिच्छवि-

परिषद का सन्निपात हो। लिच्छवि-गण से उसे यह आशा नहीं थी कि वे विवेक से काम लेंगे।

वत्सला ने अपने दण्डनीतिविद् आचार्य से यही शिक्षा प्राप्त की थी कि भावाविष्ट व्यक्ति को मन्त्रणा देने का अधिकार नहीं होता। अन्यथा वे क्या लिच्छविदुहिता नहीं थीं? उन्होंने क्या रण-प्राङ्गण में, प्रमुदित मुख से, प्राण-विसर्जन करना नहीं सीखा था? वे क्या आर्त-त्राण की लिच्छवि आर्यपरम्परा से अनभिज्ञ थीं? निर्दोष शाक्यकुल का विनाश सुनकर उनके अपने हृदय में जो दावानल जली थी वह तो समस्त कोसल का कवल करके भी शान्त नहीं होती।

किन्तु राजकुमारी ने, विचार के अंकुश से, आवेश के मत्त वारण का विरोध किया था। शाक्य जनपद में जो हुआ था, वह हो चुका था। बीती बात थी वह। अतीत के अन्तर में अस्तायमान एक अभूतपूर्व अनाचार। हतप्राण शाक्य-गण को अब पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता था। कपिलवस्तु का नव-निर्माण सम्भव था। किन्तु कपिलवस्तु में वास करने के लिए शाक्यकुल कहाँ था? विदूरथ ने महापाप किया था। विधाता ने तुरन्त ही उस दुष्ट को कठोर दण्ड भी दिया था। अचिरवती के तट पर शिविरस्थ विदूरथ, शाक्य-कुल की कुलाङ्गनाओं को दूषित करने के पूर्व ही, परिप्लावन में विलुप्त हो गया था।

सम्प्रति प्रश्न था वृज्जिसंघ के आत्मत्राण का। वृज्जिसंघ को विलुप्त होने से बचाने का प्रश्न था। भागीरथी के उस पार, राजगृह का राजन्य, अजातशत्रु, पाटलिग्राम की ओर अभियानोन्मुख था। यदि वृज्जिसंघ ने कोसल के विरुद्ध अभियान करने का आयोजन किया तो सम्भव था कि कोसल और मगध के मध्य, वृज्जिसंघ के विरुद्ध, सन्धि हो जाए। दो-दो प्रबल पराक्रमकारियों को परास्त करना लिच्छवि-गण के लिए भी असाध्य था।

आज, अकस्मात्, वैशाली में उसी उन्माद ने पुनरेण शिर उन्नत किया था। राजकुमारी ने भी अपने पुराने प्रत्युत्तर की पुनरावृत्ति कर दी: "आर्यवृन्द! सन्धि-विग्रह का अधिकार एकमात्र लिच्छवि-परिषद में सन्निहित है। परिषद के सन्निपात से पूर्व किसी प्रकार का निर्णय सम्भव

नही।"

समवाय मे से किसी ने राजकुमारी से प्रश्न पूछा "इस प्रसग मे आपका क्या अभिमत है, राजकुमारि !"

राजकुमारी ने, जनसमवाय के भावावेश पर सूक्ष्म-सा व्यङ्ग करते हुए, उत्तर दिया . "इस प्रसग मे मेरे मतामत का कोई मूल्य नही। परिषद की सदस्य नही हूँ मै। आर्यश्रेष्ठ अथवा अष्टकुलिक को परामर्श देने का अधिकार भी मुझे प्राप्त नही।"

प्रश्नकर्त्ता ने हठ की "वैशाली का जनगण फिर भी आपके मतामत से अवगत होना चाहता है, राजकुमारि !"

राजकुमारी ने कहा "मेरा कोई मतामत नही। मै भाव विलासिनी नही हूं।"

वत्सला की बात मे पुन व्यङ्ग का पुट था। साधारणतया व्यङ्ग करना उनका स्वभाव नही था। वैशाली के लिच्छविगण के प्रति व्यग करने का विचार-मात्र भी उनके अन्तर मे नही उपजता। किन्तु आज पुलोमजा की उपस्थिति तथा आचरण ने राजकुमारी को किंचित विचलित कर दिया था।

पुलोमजा को फिर अवसर मिल गया। राजकुमारी के अन्तिम वाक्य की विवेचना करती हुई वह बोली "अहे! राजकुमारि! आप भाव-विलासिनी नही हे!! तो फिर, शाक्यदुहिता को देख कर, आपने जो अश्रुमोचन किया वह किस प्रकार सम्भव हुआ ? भाव-विलास के बिना भी क्या कोई अश्रुमोचन कर सकता है ? भावविलासिनी नही तो क्या आप मायाविनी हे ?"

वत्सला, पुनरेण, पुलोमजा के साथ विवाद करना नही चाहती थी। अपने प्रति पुलोमजा के मलिन मनोभाव का पर्याप्त परिचय पा चुकी थी वे। अब उनके अन्तर मे पश्चाताप ही था कि एक बार भी क्यो उन्होने पुलोमजा के साथ प्रश्नोत्तर मे अशग्रहण किया। पुलोमजा की ओर दृष्टिपात करते ही उनके गात्र कण्टकित होने लगे। अब वे, एक पल भी, उस स्थल पर रुकने के लिए प्रस्तुत नही थी।

एक जुगुप्सापूर्ण दृष्टि से पुलोमजा को आपाद-मस्तक निहारकर, राज-

कुमारी वत्सला परावृत्त हुई और अन्तर्दुर्ग में चली गई।

अनिरुद्ध ने यह समस्त नाटक अपनी आँखों से देखा था। वे, और कुछ क्षण तक, जनसमवाय का कोलाहल कर्णागत करते रहे। पुलोमजा उच्चस्वर से कह रही थी कि वत्सला के विरोध के कारण ही लिच्छवि-परिषद् का सन्निपात नहीं हो रहा।

दुर्गपाल की दृष्टि शाक्यदुहिता पर निबद्ध थी। उनका मन कह रहा था कि, इस प्रकार नाटकीय ढंग से, जन समवाय में आवेश की सृष्टि करने वाली उस नारीदेह के आवरण में किसी धुरन्धर कूटनीतिज्ञ का कुचक्र चल रहा है। उन्होंने निश्चय किया कि जनगण के विकीर्ण होते ही वे, शाक्यदुहिता का अनुसरण करके, सत्यासत्य का अन्वेषण करेंगे।

किन्तु पुलोमजा ने उनको वह अवसर नहीं दिया। सहसा, उसने अपना बहुमूल्य दुकूल शाक्यदुहिता के शरीर पर विस्तीर्ण कर दिया। फिर वह, शाक्य-दुहिता का हाथ अपने हाथ में लेकर, चल खड़ी हुई।

दुर्गपाल ने, द्वारदेश को जनशून्य पा कर, पुनः अपने अश्व पर आरोहण किया। वे अन्तर्दुर्ग में चले गए।

: ४ :

वैशाली की तृतीय दुर्गप्राचीर से पर्यवसित, महानगर का अन्तर्दुर्ग, क्षत्रियग्राम के उत्तरवर्ती प्रान्त में प्रतिष्ठित था। अन्तर्दुर्ग में प्रवेश करने के लिए प्राचीर के चतुर्पार्श्व में अनेक द्वार अपावृत होते थे। किन्तु अन्तर्दुर्ग का सिंहद्वार था दक्षिण प्राकार के मध्यभाग में, जहाँ क्षत्रियग्राम के शृङ्गाटक से उत्तरवाही राजपथ, अन्तर्दुर्ग के साथ संगम करता था।

सिंहद्वार से प्रवेश करने पर, एक प्रशस्त पथ उस पुण्यसलिला पुष्करिणी की ओर जाता था, जिसमें अवगाहन करके लिच्छवि-वंश के वर-पुरुष, मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय कहलाते थे। लिच्छवि-गण के अतिरिक्त, किसी अन्य को उस पुष्करिणी में, स्नान अथवा जलपान का अधिकार अप्राप्य था। प्रचण्ड प्रहरीगण द्वारा प्रतिपल परिपालित, अभिषेक पुष्करिणी अन्तर्दुर्ग की मध्यभूमि में तरंगायित थी।

अन्तर्दुर्ग के एक वास्तुविभाग में, पुष्करिणी के दक्षिणपूर्व, प्रसृत थे वृज्जिसंघ के कोष्ठागार, कुप्यशाला, कोशगृह, विनिश्चय-शाला तथा

अन्यान्य राजकीय-कर्म-शाला-समूह । दूसरे वास्तु-विभाग में, पुष्करिणी के उत्तर-पश्चिम, प्रस्थापित था, अनेक कक्ष-प्रकोष्ठ-परिगत, पञ्चभूमि राजप्रासाद, जिसमें वृज्जिसंघ के प्रमुख पुरुष, आर्यश्रेष्ठ राजा, सपरिवार वास करते थे ।

राजप्रासाद के पूर्व पार्श्व से लेकर अन्तर्दुर्ग के पूर्वोत्तर प्राकार तक, राजोद्यान के लता-वितान, विटप-वृक्ष, वन-वीथि, क्रीड़ाशैल तथा समुद्र-गृह आदि सुशोभित थे । विशेष-विशेष अवसरों पर, इस राजोद्यान में लिच्छवि-गण के उत्सव-समाज समाहूत होते थे ।

राजप्रासाद का मुख्य-द्वार दक्षिण की ओर था । द्वार के सन्मुख था राजप्रासाद का प्रशस्त प्रांगण । प्रांगण के पार, पथ के दोनों ओर, राजो-पयोग के अनुरूप अश्वशाला, हस्तिशाला तथा रथशाला अवस्थित थीं । तदनन्तर था राजप्रासाद का तोरणद्वार, जिससे होकर, साधारण समय में, राजप्रासाद के निवासी क्षत्रियनगर तक यातायात किया करते । इसी द्वार में से प्रविष्ट होकर, वैशाली का कोई भी वासी, किसी समय भी, वृज्जिसंघ के राजा से आवेदन कर सकता था ।

आज इसी द्वार पर, शाक्यदुहिता का आर्तनाद सुन कर, जनसमवाय एकत्र हुआ था । राजकुमारी वत्सला ने भी, इसी द्वार से निष्क्रमण करके द्वारदेश पर पदार्पण किया था । दुर्गपाल अनिरुद्ध ने, एकान्त पाकर, इस द्वार से अन्तर्दुर्ग में प्रवेश किया ।

राजप्रासाद में पहुँच कर, अनिरुद्ध ने परिचारिका के मुख से सुना कि राजकुमारी वत्सला, हर्म्यतल के एक विविक्त प्रान्त में उपासीन हो-कर, वीणावादन के लिए, विपञ्ची के निबन्धन न्यस्त कर रही हैं । दुर्ग-पाल को विदित था कि राजकुमारी वत्सला, स्वभाव से ही, विविक्तसेवी हैं । उनके साथ एकान्त में मन्त्रणा करने के मनोरथ से ही, वे रात्रि का प्रथम याम अन्यत्र अतिवाहित करके राजप्रासाद में उपस्थित हुए थे । किन्तु द्वारदेश पर वह दुर्घटना देख लेने के उपरान्त, दुर्गपाल असमंजस में पड़ गए कि राजकुमारी को उस समय वार्तालाप के लिए विवश करना, आनुषङ्गिक भी होगा अथवा नहीं ।

दुर्गपाल सम्भवतः यही निर्णय करते कि मन्त्रणा स्थगित कर दी

जाए। स्वयं उनका मानस भी गहन ग्लानि से ग्रस्त था। किन्तु राजकुमारी की सतत सहचरी, उत्पलवर्णा, ने दुर्गपाल से अनुरोध किया कि वे तुरन्त हर्म्यतल पर आरोहण करें। राजकुमारी को उनके आगमन का समाचार मिल चुका था। और उनका आदेश था कि दुर्गपाल, राजप्रासाद में प्रविष्ट होते ही, उनके समीप प्रस्तुत हों।

प्रासादतल पर पदार्पण करते ही, दुर्गपाल ने, अभिवादन करते हुए कहा : "राजकुमारी की जय हो !"

प्रत्युत्थान करती हुई वत्सला, अपने वाम हस्त को निषेधात्मक मुद्रा में उत्थित करके, बोलीं : "वृज्जिसंघ की जय बोलिए, दुर्गपाल ! लिच्छवि गण की जय।"

अनिरुद्ध ने आग्रह किया : "राजकुमारी वृज्जिसंघ की जनपदकल्याणी हैं।"

"आश्चर्य है, दुर्गपाल! मैं वैशाली में रहती हूँ। आप, पावनसलिला के उस पार, पाटलिग्राम में। मुझे अभी तक यह समाचार नहीं मिला कि लिच्छवि-परिषद ने मुझे जनपद-कल्याणी के पद पर प्रतिष्ठित किया है। आपने यह समाचार, मुझसे पूर्व, किस प्रकार पा लिया ?"

"परिषद ने प्रतिज्ञा धारण नहीं की तो क्या हुआ, राजकुमारि ! परिषद की प्रतिज्ञा तो पात्रता का प्रमाण नहीं।"

"आप मैथिलीपुत्र हैं, दुर्गपाल ! अतएव परिषद की अवज्ञा कर सकते हैं। किन्तु मैं उभय-पक्ष से सुजात लिच्छवि-कन्या हूँ। मेरे लिए परिषद ही प्रमाण है।"

परिहास का उत्तर परिहास से देते हुए, दुर्गपाल ने कहा: "पुलोमजा भी तो उभय-पक्ष से सुजात लिच्छवि-कन्या है, राजकुमारि ! परिषद की अवगणना में उसका वह फूत्कार भी मैंने अपने इन कानों से सुना है।"

वत्सला ने विस्मित होकर पूछा : "तो क्या आप भी उस समवाय में समुपस्थित थे, दुर्गपाल !"

"हाँ, राजकुमारि ! मैंने वह समस्त नाटक आद्योपान्त देख लिया है।"

वत्सला अपनी पीठिका पर उपासीन हो गई। दुर्गपाल की ओर से मुख परावृत्त करके। राजकुमारी का शिर अवनत था। अनिरुद्ध देख नहीं

पाए, किन्तु उनको यह समझाने में समय नहीं लगा कि राजकुमारी का हृदय उच्छ्वसित है, कण्ठ आर्द्र और नयन अश्रुसिक्त। जनसमवाय के समक्ष, पुलोमजा द्वारा आरोपित लाञ्छना के प्रति राजकुमारी ने जुगुप्सा प्रगट की थी। किन्तु पुलोमजा के वाक्पारुष्य ने उनका मर्म बेध दिया था। संवेदना पाकर वह मर्म सहसा स्रवित हो गया।

कुछ क्षरण उपरान्त, प्रकृतिस्थ होकर, वत्सला ने दुर्गपाल की ओर मुख फेरा। उनको दण्डायमान देखकर, राजकुमारी ने कहा: "आसन ग्रहरण कीजिए, दुर्गपाल ! मैं आपके स्नान-भोजन का प्रबन्ध करती हूँ।"

अनिरुद्ध, आसन्दी पर उपासीन होकर, बोले : "भोजन के लिए मैं अत्यन्त अधीर हूँ, राजकुमारि ! भक्ष्य-भोज्य जो कुछ भी तुरन्त उपलब्ध हो, यहाँ मंगवा दीजिए।"

"आप स्नान किए बिना भोजन करेंगे ? तब तो ब्रह्मावर्त के ब्राह्मणों का यह अभियोग कि लिच्छवि-गरण व्रात्य है, सत्य हो जाएगा।"

"मैं स्नान कर चुका, राजकुमारि !"

"कहाँ ?"

"यह न पूछिए। अन्यथा......

बात को पूरी किए बिना ही अनिरुद्ध अन्यमनस्क हो गए। तब वत्सला ने प्रश्न किया : "अन्यथा क्या, दुर्गपाल !"

अनिरुद्ध ने, आवेश में आकर, उत्तर दिया : "मैं इसी क्षरण अभिषेक-पुष्करिणी में डूब मरूँगा। मेरी काया पर कण्टकित कलुष मुझसे सहन नहीं हो रहा।"

राजकुमारी ने अपना कर-किसलय दुर्गपाल के अधरोष्ठ पर रख दिया। वारण करती हुई, वे बोलीं : "ऐसा न कहिए, दुर्गपाल !"

अनिरुद्ध के अन्तर में एक अन्य कर-किसलय की स्मृति आविर्भूत हुई। पुलोमजा ने भी एक दिन इसी प्रकार उनका वाणीद्वार अवरुद्ध किया था। वह दिन और यह दिन ! वह कर-किसलय और यह कर-किसलय ! हर्ष और विषाद के भावसङ्गम पर, उन्हें पाँव टिकाने का स्थान नहीं मिला।

ज्योत्स्ना का ज्वारोद्वेग, प्रासादतल के मरिणकुट्टिम पर, सहस्र

धाराओं में विकीर्ण होकर विलुण्ठित था। प्रासादतल के एक प्रान्त में, क्षौम के बहुरंग तन्तुओं से, चित्रविचित्र विरचित आस्तरण पर, वाद्य-वृन्द पड़ा था। वादयित्री का मूक आह्वान करता हुआ। उस ओर दृष्टि-पात करके दुर्गपाल ने कहा: "मैने आपके मनोविनोद में बाधा उपस्थित कर दी, राजकुमारि!"

राजकुमारी ने उत्तर दिया, "कैसा मनोविनोद, दुर्गपाल! आज कुछ आयोजन किया था, किन्तु अदृष्ट को अस्वीकार हो तो······

वत्सला ने, एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर, वाक्य को अधूरा ही रहने दिया। वे अपने दीर्घपक्ष्म नयनों से, निर्निमेष, अनिरुद्ध की ओर देखने लगीं। ज्वालामुखी का आभास था उस नेत्रद्युति में। ऐसा ज्वालामुखी जो सब कुछ जला कर भस्म कर दे। दुर्गपाल ने, सहसा उत्सुक होकर, पूछ लिया: "आपने, पुलोमजा के अन्तिम आक्षेप का उत्तर क्यों नहीं दिया, राजकुमारि!"

राजकुमारी मुस्कराने लगीं। फिर वे बोलीं: "मैं आशा कर रही थी कि उसके आक्षेप का उत्तर कोई अन्य लिच्छवि देगा। आप भी तो वहाँ थे, दुर्गपाल! आपने क्यों नहीं उत्तर दिया?"

"मैं सर्वथा असमर्थ था। नाटक प्रारम्भ होने के पूर्व ही मुझे पुलो-मजा का परिचय मिल चुका था। तदुपरान्त उससे विवाद करने की इच्छा ही नहीं रही।"

"इच्छा नहीं रही अथवा साहस नहीं हुआ?"

"यही मान लीजिए कि साहस नहीं हुआ।"

"पुलोमजा में ऐसा कौनसा पराक्रम देख लिया, दुर्गपाल!"

"वंशदारु के अन्तःसारहीन वेणुवाद्य में जो पराक्रम होता है, वही। उसके पास अपना कहने को कुछ नहीं होता। जैसी फूँक दी जाती है, वैसा ही स्वर विनिर्गत होता है। उसके साथ स्पर्धा कौन करे?"

"आप उस वराकी पर व्यर्थ ही इतने रुष्ट हो गए हैं, दुर्गपाल! बहुत दिन उपरान्त वैशाली में प्रत्यावर्तित हुई है वह। विदेश में, वृज्जि-संघ के विरोधी दल से न जाने क्या-क्या सुनकर आई है। अबोध-बालिका है पुलोमजा। मतिविभ्रम हो गया। शनैः शनैः सब समझ जाएगी।"

"वैशाली में आने के पूर्व ही वह मर जाती तो एक लिच्छवि-दुहिता की स्मृति तो बच जाती। एक लिच्छवि-कुल तो कलङ्कित न होता।"

"छि: छि:, दुर्गपाल। आप यह सब क्या कह रहे हैं! पुलोमजा आपकी वाग्दत्ता है।"

"मेरी वाग्दत्ता! वह वाराङ्गना!"

अनिरुद्ध ने ग्लानि से मुख परावृत्त कर लिया। राजकुमारी ने उस प्रसंग पर और चर्चा नहीं की।

भोजनोपरान्त, वत्सला की आज्ञा पाकर, अनिरुद्ध ने कहा, "राजकुमारि! मगध के साथ दीर्घ-काल से चले आए इस सर्वनाशी संग्राम का समापन होना चाहिए।"

राजकुमारी बोलीं: "लिच्छवि मात्र की यही अभिलाषा है, दुर्गपाल! वृज्जिसंघ के स्वातन्त्र्य को अक्षुण्ण रखकर यदि शान्ति की स्थापना सम्भव हो तो कोई लिच्छवि उस अवसर की अवगणना नहीं करेगा। किन्तु मगध के सिंहासन पर जब तक वह पितृघातक अनार्य आसीन है तब तक आशा कैसे की जाए? युद्ध के अतिरिक्त हमारे अन्य सब मार्ग अवरुद्ध हैं।"

"आर्यधर्म के अनुयायी वृज्जिसंघ का यह कर्त्तव्य है कि मगध के सिंहासन को उस अनार्य नराधम से मुक्त करे।"

"आक्रमणात्मक अभियान के बिना यह सम्भव नहीं, दुर्गपाल! मगध को ध्वस्त करने की शक्ति वृज्जिसंघ में इस समय नहीं रही। शक्ति हो तो भी, विजिगीषु-वृत्ति से विरत वृज्जिसंघ के लिए एतादृश अभियान अचिन्तनीय है।"

"मेरा भी यह आशय नहीं कि वृज्जिसंघ विजिगीषु-वृत्ति धारण करे। किन्तु आत्मत्राण के लिए कभी-कभी आक्रमण करना अनिवार्य हो जाता है। सर्प के दंशन से बचते फिरने की अपेक्षा क्या यह श्रेयस्कर नहीं कि विवर में ही सर्प का शिरोच्छेद कर दिया जाए?"

"श्रेयस्कर है, दुर्गपाल! किन्तु शक्य है क्या?"

"सर्वथा शक्य है, राजकुमारि! मगध के विरुद्ध हमें प्राची तथा मध्यदेश में, मण्डल-प्रोत्साहन करना चाहिए।"

"निर्णय के पूर्व आपकी पूर्ण योजना सुनना चाहती हूँ।"

"अङ्ग में विद्रोह की उत्पत्ति। पश्चिम की ओर से वत्स तथा उत्तर की ओर से कोसल, समवेत होकर, मगध के प्रत्यन्त पर आक्रमण करें। तब पाटलिग्राम का लिच्छवि-सैन्य, सहज ही, राजगृह पर अधिकार कर लेगा। अजातशत्रु के लिए, अरण्याटवी के अतिरिक्त, अन्य आश्रयस्थान नहीं रह जाएगा।"

दुर्गपाल की मण्डलयोजना सुनकर राजकुमारी एक क्षण विचारमग्न हो गई। यदि योजना के विविध अवयव साध्य हों तो योजना में रंचमात्र भी त्रुटि नहीं थी। कोई छिद्र अथवा दुर्बल स्थल भी नहीं। एक-एक अवयव का, पृथक्-पृथक् अन्वीक्षण करने के उद्देश्य से, वत्सला ने मन्त्रणा का प्रोत्साहन किया। उन्होंने पूछा: "अङ्ग में विद्रोह किस प्रकार सम्पन्न होगा, दुर्गपाल!"

दुर्गपाल ने उत्तर दिया: "अजातशत्रु के अभूतपूर्व एवं नित्यनूतन अनाचार के कारण वहाँ विद्रोह की वह्निज्वाल जल चुकी है। वहाँ किसी समय भी विस्फोट हो सकता है। यदि विद्रोही दल को सहायता न मिली तो अजातशत्रु अवश्य उनका दमन कर देंगे। किन्तु सहायता पाकर वह विद्रोह अजातशत्रु का अन्त कर सकता है। हमें चम्पा में अपने कृत्यपक्ष का संग्रह करना चाहिए। चम्पा में क्रुद्धवर्ग विद्यमान है। मानिवर्ग भी। अङ्ग के प्राचीन राजकुल का वंशज एक राजपुत्र भी, सहायता-प्राप्ति के लिए, कई बार पाटलिग्राम आ चुका है। राजपुत्र की सहायता करके वृज्जिसंघ, अङ्ग महाजनपद में, अजातशत्रु के लिए एक व्यापक व्यसन की सृष्टि कर सकता है।"

वत्सला मौन रहीं। दुर्गपाल के परामर्श पर सम्यक् विचार करने के लिए। फिर उन्होंने योजना के एक दूसरे अवयव का अन्वीक्षण करने के लिए प्रश्न किया: "चेदि के समान प्रबल पार्ष्णिग्राह की अवहेलना करके, वत्स किस प्रकार मगध की ओर अभिमुख हो सकेगा?"

दुर्गपाल ने उत्तर दिया: "चेदि इस समय अवन्ति द्वारा आक्रान्त है।"

"और अवन्ति, चेदि के मित्र, पारसीक असुर-साम्राज्य द्वारा।"

"यह पुराना समाचार है, राजकुमारि! पारसीक असुरसाम्राज्य की

म्लेच्छावाहिनी शीघ्र ही अपने पश्चिमवर्ती प्रत्यन्त की ओर प्रयाण करेगी। वहाँ, यवनभूमि के गणराज्यों की समवेत शक्ति ने, पारसीक सैन्य को एक बार परास्त कर दिया है।"

राजकुमारी, सहसा, हँसने लगीं। फिर उन्होंने कहा : "वत्स के विषय में एक बात तो आपसे विस्मृत ही हो गई, दुर्गपाल ! वत्सराज उदयन तो, अपने वीणावादन तथा सुरतनैपुण्य के बल पर, देश-देशान्तर के सुन्दरी-समवाय से, अपना अन्तःपुर आपूरित करने में व्यस्त हैं। वे भला क्यों मगध के विरुद्ध युद्ध की विभीषिका स्वीकार करने लगे ?"

"उदयन से हमारा प्रयोजन नहीं, राजकुमारि ! कौशाम्बी के महामात्य यौगन्धरायण ही इस विषय में प्रमाण हैं। मुझे विश्वास है कि वे हमारा आमन्त्रण स्वीकार कर लेंगे।"

"यदि यौगन्धरायण ने हठ किया कि सन्धि के पूर्व, वैशाली की किसी लिच्छवि रूपसी को, कौशाम्बी के अवरोध में प्रवेश करना होगा, तब आप क्या करेंगे, दुर्गपाल ?"

अब की बार अनिरुद्ध भी हँसने लगे। उदयन के उल्लेख मात्र से लिच्छवि-गण को परिहास सूझता था। फिर वे बोले : "यौगन्धरायण लिच्छवि-गण की वंशमर्यादा से सर्वथा परिचित हैं। वे ऐसा कहेंगे नहीं। और यदि उन्होंने किसी अलिच्छवि क्षत्रिय-कन्या की याचना की तो हम विचार कर देखेंगे।"

"आप भूल कर रहे है, दुर्गपाल ! वत्स महाजनपद का महामहिम महाराज, वृज्जिसंघ की राजकुमारी के अतिरिक्त, किसी अन्य कन्या का पाणिग्रहण क्यों करेंगे ?"

"हम कह देंगे कि वैशाली में कौशाम्बी जैसे राजा राज्य नहीं करते, अतएव कौशाम्बी के अन्तःपुर में प्रवेश करने योग्य राजकुमारी भी नहीं हैं।"

"उपयुक्त ही होगा यह उपक्रम। मैं तो झूठमूठ की राजकुमारी हूँ ही।"

"आप तो सचमुच की राजकुमारी हैं। कौशाम्बी का वह राजा ही झूठमूठ का है।"

"वैशाली की राजकुमारी पर आज जो बीती है, उसका स्मरण करके मेरा मन तो संशयग्रस्त हो गया है, दुर्गपाल ! मैं......किन्तु जाने दीजिए वह बात। आप तृतीय अवयव सिद्ध कीजिए।"

"काशीग्राम के कारण कोसल एवं मगध में के मध्य सर्वदैव विग्रह की सम्भावना है।"

"सम्भावना तो है। किन्तु क्या वह सम्भावना हमारी सुविधा के अनुसार साध्य हो सकेगी।"

"अवश्य। यदि आप कोसल के साथ वृज्जिसंघ की सन्धि का विच्छिन्न सूत्र, पुनरेण सँभालने के लिए प्रस्तुत हो जाएँ, तो कोसल की शक्ति हमारी शक्ति से समवेत हो जाएगी।"

"एक बार सन्धि करके तो फल भोग लिया, दुर्गपाल ! दूसरी बार वैसा करने का साहस कैसे करूँ ?"

"साहस आपको करना ही होगा, राजकुमारि ! श्रावस्ती के सिंहासन पर अब दुष्ट विदूरथ नहीं रहा। कुचक्र रचने वाला कुबुद्धि दीर्घ कारायण भी परलोक को प्रयाण कर चुका है। राज्य का संचालन राजमाता नन्दिनी के हाथ में है। वे धर्मप्राण हैं। आपके धर्मसम्मत परामर्श का वे प्रत्याख्यान नहीं करेंगी।"

वत्सला की आँखों में, अभी कुछ समय पूर्व का वह दृश्य नाच उठा। कोलाहल करता हुआ जनसमवाय। पुलोमजा का विष-वमन। एक बार वे सिहर उठीं। किन्तु वृज्जिसंघ की सेवा में वे सहस्र-कोटि लाञ्छना एवं अपमान सहने के लिए सतत धृतव्रता थीं। दुर्गपाल की मन्त्रणा को उन्होंने मौन रह कर स्वीकार कर लिया।

एक क्षण उपरान्त, वे बोलीं : "योजना का चतुर्थ एवं अन्तिम अवयव कैसे सिद्ध होगा, दुर्गपाल !"

"वह अवयव सिद्ध होने की पूर्ण सम्भावना है, इसीलिए आज आपके समीप उपस्थित हुआ हूँ।"

"पाटलिग्राम के मागध दुर्ग का अतिक्रमण करके, यदि आपने राजगृह की ओर अभियान किया तो आपका पृष्ठ संकटग्रस्त हो जाएगा।"

"किन्तु यदि हम मागध दुर्ग को हस्तगत करके अभियान करें तो ?"

"राजगृह तक आपका मार्ग अपावृत है।"

"तो योजना सर्वाङ्ग-सिद्ध है, राजकुमारि !"

वत्सला ने करुण दृष्टि से अनिरुद्ध को निहारा। जैसे माँ अपने अधीर बालक को निहारती है। दुर्गपाल राजकुमारी के अन्तःकरण में उत्थित ऊहापोह को समझ गए। समाधान के लिए तत्पर होकर वे बोले : "क्या आपको कोई शंका है, राजकुमारि !"

वत्सला ने उत्तर दिया : "दुर्गपाल ! आपकी योजना का मूलबन्ध है मागध दुर्ग का उपलम्भ। विद्रोह से विदीर्ण एवं समवेत आक्रमण से संत्रस्त मगध कितना ही दुर्बल क्यों न हो जाए, पाटलिग्राम के मागध दुर्ग को हस्तगत करने के लिए हमें अपार शक्ति का व्यय करना पड़ेगा। मुझे भय है कि उस व्यय का भार वहन कर लेने पर, राजगृह की ओर अभियान करने के लिए हमारे पास अधिक सम्बल नहीं रह जाएगा।"

"यदि शक्ति का अपव्यय अनिवार्य होता तो मैं यह योजना लेकर आता ही नहीं, राजकुमारि ! योजना का मूलाधार है दुर्गपर्यवसन के बिना ही दुर्गोपलम्भ। मैं दुर्गोपलम्भ का उपांशु उपाय लेकर ही आया हूँ।"

राजकुमारी सावधान होकर बैठ गईं। दुर्गपाल के अन्तिम वाक्य में किसी गूढ़ रहस्य का इंगित था। उन्होंने उत्सुक होकर पूछा : "दुर्गोपलम्भ का उपांशु उपाय आपको कहाँ से उपलब्ध हुआ, दुर्गपाल ! आपकी किसी गूढ़-प्रणिधि का समाचार तो इसके पूर्व मैंने कभी नहीं सुना।"

"मैंने किसी गूढ़पुरुष का नियोजन नहीं किया, राजकुमारि ! गूढ़पुरुष स्वेच्छा से ही मेरे पास चला आया।"

"उससे प्राप्त चाररहस्य की सम्यक् समालोचना आप कर चुके ?"

"आद्योपान्त।"

"दुर्गोपलम्भ के उपकरण क्या होंगे ?"

"विवेक-बुद्धि-साहस-सम्पन्ना, रूपयौवनयुक्ता शिल्पगुणनिपुणा एक नर्तकी। और सुरंगसंचार द्वारा दुर्ग में प्रच्छन्न-प्रवेश करने वाले लिच्छवि-सुभट-समवाय के पञ्च पञ्चाशतक।"

राजकुमारी का मुख हर्ष से प्रफुल्लित हो गया। पाटलिग्राम के दुर्ग-

पाल अप्रतिम योद्धा ही नहीं, कृतबुद्धि कूटनीतिज्ञ भी थे। वत्सला का मानन अनिरुद्ध के प्रति श्रद्धा से भर गया।

किन्तु दूसरे ही क्षण, वे चिन्ताग्रस्त हो कर बोलीं : "दुर्गपाल ! योजना तो सर्वांगसम्पूर्ण है। किन्तु वृज्जिसंघ के लिए यह सम्भव नहीं कि वह परिषद में परामर्श किए बिना कोई भी समारम्भ करे।"

दुर्गपाल ने निश्चय-पूर्वक कहा : "परिषद में परामर्श करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता, राजकुमारि ! मैं तो अष्टकुलिक का परामर्श लेने के लिए भी प्रस्तुत नहीं हूँ।"

"मन्त्रभेद का भय है। अष्टकुलिक अब पूर्वसमय के समान अविच्छिन्न नहीं रहा।"

"आप आर्यश्रेष्ठ की आज्ञा प्राप्त कीजिये।"

"प्रयास व्यर्थ रहेगा, दुर्गपाल ! परिषद के परामर्श बिना आर्यश्रेष्ठ कुछ भी करना अंगीकार नहीं करेंगे।"

"अब समस्त भार आप पर न्यस्त है। मैं अपने कर्त्तव्य की पूर्ति कर चुका। अब मुझे आज्ञा दीजिये।"

अनिरुद्ध उत्थान के लिए उद्यत हुए। राजकुमारी ने उनके उत्तरीय का आंचल खींचकर कहा : "अभी बैठिए। कुछ काल और। आप अनेक दिवस के उपरान्त राजप्रासाद में आए हैं। पाटलिग्राम के अन्यान्य समाचार सुनाइए।"

दुर्गपाल ने पराजितप्राय द्यूतकार की भाँति अन्तिम अक्षपात का निश्चय कर लिया। उस अक्ष का अवसरण अन्य अवसर पर विहित था। अभी उसका उद्घाटन होने पर भय था कि सर्वस्व स्वाहा हो जाए। किन्तु वत्सला का अनिश्चय देख कर अनिरुद्ध विवश हो गए। प्रथम पण का प्रतिबन्ध करते हुए वे बोले : "यह तो आपने सुना ही है कि अजातशत्रु ने अपने महामात्य, वर्षकार ब्राह्मण, को अपमानित करके मगध महाजनपद से निर्वासित कर दिया है ?"

वत्सला ने असहिष्णु होकर उत्तर दिया : "अजातशत्रु ने क्षुरिका का सदुपयोग नहीं किया, दुर्गपाल ! ब्राह्मणकुल-कलंक के केशश्मश्रु मुण्डित करवा कर ही उसको मुक्त कर दिया। उसी क्षुरिका से उस कुबुद्धि

का कण्ठकर्तन भी करवा देना उचित था। अथवा उसको शूलविद्ध करवा दिया होता। सुना है कि मगध मे इस प्रकार के चित्रदण्ड विहित है…… ''

अनिरुद्ध हँसने लगे। फिर वे बोले : "क्यो, राजकुमारि ! क्या आप वृज्जिसघ मे भी वैसे ही चित्रदण्ड विहित करवाना चाहती है ?"

"वृज्जिसघ मे न वैसे शठ निवास करते है, न वैसा दण्डविधान विनियोज्य है। आप भयभीत न हो, दुर्गपाल !"

"वर्षकार ब्राह्मण के शठ होने पर क्या आपको किचितमात्र भी सन्देह नही ?"

"यदि किसी को सन्देह हो तो मै उसकी सज्जनता पर सन्देह करूंगी।"

"क्या आपको ज्ञात है कि राजगृह के राजन्य ने किस प्रसग पर प्रकुपित होकर महामात्य का निर्वासन किया है ?"

"ज्ञात है। जनश्रुति है कि ब्राह्मण ने राजन्य को वृज्जिसघ के साथ शाति स्थापित करने का परामर्श दिया था।"

"तब तो आपको वर्षकार से विद्वेष नही करना चाहिए।"

"किसी प्रमाण के बिना ही जनश्रुति पर विश्वास कर लूं ? बालिका हू, किन्तु अबोध नही हूं, दुर्गपाल !"

"प्रमाण मेरे पास है, राजकुमारि ! अकाट्य प्रमाण।"

"प्रस्तुत कीजिए।"

"महामात्य ने हमारे पाटलिग्रामस्थ दुर्ग मे आ कर वृज्जिसघ से शरणयाचना की है।"

वत्सला सहसा सतर्क हो गई। फिर उन्होने पूछा " इस समय वह ब्राह्मण कहाँ है ?"

दुर्गपाल ने सम्पूर्ण साहस सजोकर उत्तर दिया ' लिच्छवि दुर्ग मे।"

प्रासादतल पर से जैसे झञ्झा का झोका निकल गया। वत्सला ने अपने आसन से उत्थान किया। उनके नयनो से अग्निस्फुलिग झर रहे थे। मुख से प्रलयकारी प्रकोप। प्रासादतल पर पदाघात करके, दक्षिणहस्त की तर्जनी से दुर्गपाल की ताडना करती हुई, वे चीत्कार कर उठी : "दुर्गपाल !! वृज्जिसघ के लिए विषधर व्याल के समान उस ब्राह्मण को आपने लिच्छवि सन्निवेश मे क्यो पदार्पण करने दिया ?"

किन्तु अनिरुद्ध पर राजकुमारी के प्रचण्ड प्रकोप का प्रभाव नहीं पड़ा। इस प्रकार की प्रश्न प्रतिक्रिया के लिए सर्वथा प्रस्तुत होकर ही उन्होंने वह भेद वत्सला पर खोला था। उन्होंने किंचितमात्र भी विचलित हुए बिना कह दिया : "शरणापन्न का तिरस्कार मैं कैसे कर देता, राजकुमारि ! मैं लिच्छवि हूँ।"

वत्सला ने क्रोध के आवेश में कहा : "मैथिली माँ के पुत्र हैं आप ! इसीलिए आप यह समझ बैठे कि वृज्जिसंघ संसार के शठ-समुदाय की अवस्थानशालार है।"

"आप क्या करतीं ?"

"ब्राह्मण को जाह्नवी की जलधार दिखा कर कह देती कि महापापिष्ट के लिए वही एकमात्र शरण्य-स्थान है।"

दुर्गपाल मौन होकर उपासीन रहे। वे जानते थे कि लिच्छवि-गण के मतानुसार, मगधराज अजातशत्रु की अपेक्षा उनके महामात्य, वर्षकार ब्राह्मण, ही अधिक दोषी हैं। वैशाली में सर्वत्र यह प्रचार था कि ब्राह्मण की कुमन्त्रणा से प्रेरित होकर ही अजातशत्रु ने वृज्जिसंघ के साथ वह सर्वनाशी संग्राम आरम्भ किया था।

आज वैशाली में ऐसे लिच्छवि माता-पिता नहीं थे जिनके एक पुत्र ने पाटलिग्राम में प्राण न दिए हों। ऐसा भ्राता नहीं था जिसका एक सहोदर रणप्राङ्गण में सदा के लिए न सोया हो। ऐसी भगिनी नहीं थी जो एक भ्राता के लिए न रोई हो। वैशाली के आवास-आवास में उपासीन नवयौवना कुलाङ्गनाएँ, असमय में वैधव्य की विभीषिका का वहन कर रही थीं। सुकुमार शिशु-वृन्द पिता के प्रेम से वञ्चित थे। वर्षकार ब्राह्मण के कुचक्र के कारण।

एक समय धन-धान्य से परिपूर्ण, विपुल वैभव से आढ्य तथा स्वच्छन्द शान्ति का जीवन यापन करने वाली वैशाली—निरीह, निर्दोष वैशाली—आज श्मशान की नाईं अवसन्न थी।

स्वयं वत्सला के चार सहोदर, एक के अनन्तर एक, पाटलिग्राम जाकर प्रत्यागत नहीं हुए थे। दो विवाहित अग्रजों की नवोढा स्त्रियाँ, राजप्रासाद में प्रतिपल विलाप कर रही थीं। पुत्रहीन पिता, अपनी असह्य

व्यथा का भार एकाकी वहन करके, जर्जर हो चले थे। वत्सला का अपना हृदय क्षत-विक्षत था।

किन्तु वत्सला तो केवल अपने दुख से दुखी होने वाली नहीं थीं। उनके विशाल मानस में प्रत्येक माता, प्रत्येक पिता, प्रत्येक भ्राता और प्रत्येक भगिनी का दुःखभार संचित हुआ था। प्रत्येक भार्या, प्रत्येक पुत्र, प्रत्येक सहचर, प्रत्येक प्रणयिनी की व्यथा उनकी अपनी व्यथा बनकर कसक रही थी।

दुर्गपाल ने वैशाली की उस पुञ्जीभूत व्यथा की उपेक्षा की थी। विद्वेष तो होता ही। दुर्गपाल को मौन देखकर वत्सला ने भर्त्सना की : "मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए, दुर्गपाल!"

अनिरुद्ध ने शान्त स्वर में कहा : "आपने प्रश्न ही कब किया है जो उत्तर दूँ?"

"परिषद् आपको इस धृष्टता का समुचित दण्ड देगी।"

"शरणागत को शरण देना यदि धृष्टता है तो मैं सहर्ष उस दण्ड को शिरोधार्य करूँगा।"

"शरणागत को शरण देने का अधिकार सस्थागार में समाहूत लिच्छवि परिषद् को है। आपने यह अनधिकार चेष्टा क्यों की?"

"परिषद् के समक्ष प्रश्न प्रस्तुत होने से पूर्व ही, ब्राह्मण के शौचा-शौच का निर्णय करने के लिए।"

"निर्णय कर लिया?"

"हाँ, कर लिया। ब्राह्मण विश्वास का पात्र है।"

"प्रमाण?"

"दुर्गोपलम्भ का उपांशु उपाय मुझे ब्राह्मण ने ही बतलाया है।"

वत्सला स्तम्भित होकर पीठिका पर उपासीन हो गई। अनिरुद्ध ने गात्रोत्थान करके कहा : "मुझे आज्ञा दीजिए, राजकुमारि! कल अपराधी बनकर परिषद् के समक्ष उपस्थित हूँगा। अपराध की मार्जना का अब अन्य मार्ग ही नहीं रहा।"

किन्तु वत्सला ने, एक बार पुनः उनके उत्तरीय का आंचल पकड़ लिया। अनिरुद्ध का उसी क्षण उठ कर चला जाना भी निषिद्ध था।

द्वितीय अंक

कार्तिक शुक्लपक्ष की सप्तमी का शशांक, तारावलि का तिरस्कार करके, तिरोहित हो गया। विरह-विह्वल तारा-वधू-वृन्द के अजस्र अश्रुपात से, अवनि का आङ्गन आर्द्र होने लगा।

कूटस्थ कालसागर के कूल पर, उन्मन-सा उदासीन है यामिनी का मध्यम याम। अपने अचिर अस्तित्व की लघु लहरियों का लेखा लेता हुआ-सा। वसुन्धरा के विशाल वक्षस्थल पर विनिद्रित चराचर जगत, निशीथ के निस्सीम पारावार में, परवश-सा प्रवाहमान है।

शृगाल-संघ की परुष परिदेवना, श्रान्त होकर, सो गई। उलूक का निर्मम निनाद अभी निर्गत नहीं हुआ। केवल जह्नु-कन्या की जलधार का कलस्वन, निशादेवी का कीर्तिस्तवन कर रहा है।

जाह्नवी तथा शोण के सङ्गम पर सन्निविष्ट, पाटलिग्राम के मागध दुर्ग का कलेवर, अन्तरिक्ष में आलिखित छायाचित्र-सा छबिमान है। दुर्ग के प्राचीर-पथ से प्रत्युत्थित, प्रहरीगण का अवघोष-शब्द, बारम्बार, महाशून्य का वक्ष विदीर्ण करके निस्तब्धता में निमज्जित हो जाता है।

दुर्ग से राजगृह की ओर जाने वाले राज-पथ पर, दुर्ग से पञ्चशत दण्ड दूर, आम्रकुञ्ज के आश्रय में दण्डायमान दो पुरुष सहसा सतर्क हो गए। दुर्ग की ओर से उलूक का उद्घोष श्रुतिगत हुआ था। एक पुरुष ने कहा : "अपने मन्त्री का संकेत है, नायक !"

"मेरा भी यही अनुमान है, आर्य ! किन्तु......

द्वितीय पुरुष का कथन समाप्त होने के पूर्व ही, प्रथम पुरुष ने अपना करतल उसके मुख पर रख दिया। उलूक का उद्घोष पुनरेण प्रत्युत्थित हो रहा था। दोनों पुरुषों के अधर कम्पित हुए। मानो, मन ही मन,

गणित कर रहे हों। तब द्वितीय पुरुष ने कहा : "संकेत सूचित करता है कि समस्त समारम्भ समुचित है।"

प्रथम पुरुष ने अनुमोदन किया : "हाँ, नायक! अब अन्तिम संकेत की प्रतीक्षा करनी चाहिए।"

एक क्षण के लिए दोनों पुरुष मौन हो गए। किन्तु तृतीय उद्बोष तुरन्त नहीं उठा। तब प्रथम पुरुष ने प्रश्न किया : "पिलिन्दि और भल्लिक क्या लौट आए होंगे, नायक!"

द्वितीय पुरुष ने उत्तर दिया : "लौट तो आना चाहिए, आर्य!"

"वे भी यदि ऐसा ही शुभ समाचार सुना दें तो......

पुरुष ने अपना कथन पूरा नहीं किया। जैसे भविष्य के गर्भ में निहित किसी अपूर्व निधि की कल्पना करके, वे विभोर हो गए हों। द्वितीय पुरुष ने, कातर वाणी में कहा : "मेरा मन, किन्तु, उद्विग्न है, आर्य?"

प्रथम पुरुष ने पूछा : "क्या भयभीत हो गए, इन्द्रगुप्त?"

"भयभीत नहीं, आर्य! केवल आपके निमित्त आशंकित।"

"मेरे लिए कैसी आशङ्का, नायक!"

"आप अपने अमूल्य प्राण व्यर्थ ही आपन्न कर रहे हैं, आर्य! यह कार्य तो आपके हम जैसे अकिञ्चन अनुयायी अनुष्ठित कर सकते हैं। यदि किसी प्रकार की प्रवञ्चना हुई तो......

"इसी कारण तो मैं जा रहा हूँ, इन्द्रगुप्त! जहाँ प्रवञ्चना की रंच-मात्र भी सम्भावना हो, वहाँ सबके आगे जाना ही मेरा धर्म है। मैं प्रतिदिन तुम्हारे प्राणों का पण लगाता हूँ, तुम्हारे पराक्रम से क्रीडा करता हूँ। किन्तु तुम्हारे विश्वास से किसी दिन भी नहीं खेल सकूँगा, नायक!"

"यदि आपको कुछ हो गया तो, आर्य! लिच्छवि दुर्ग संकटग्रस्त हो जाएगा। तब, वैशाली की ओर प्रधावमान मागध सैन्य का पथ कौन अवरुद्ध करेगा?"

प्रथम पुरुष ने विक्षुब्ध होकर पृथ्वी पर पदाघात किया। पाँव के नीचे पड़े शुष्क तृण-पत्र क्रन्दन कर उठे। कण्ठस्वर को किंचित प्रखर करके, प्रथम पुरुष बोले : "वैशाली की अवज्ञा करते हो, नायक! वृज्जिसंघ में

क्या अतिरथियों का अभाव है ? लिच्छवि माताएँ क्या वीरप्रसूता नहीं रहीं ? वैशाली क्या अपने वज्र-व्रत से विरत हो गई ? यदि ऐसा दुर्दिन किसी दिन दुर्निवार्य हुआ तो यही श्रेयस्कर है कि उसे देखने के लिए मैं प्राणधारण न करूँ । तुम जीवित रहना चाहोगे, नायक !"

किन्तु इसके पूर्व कि द्वितीय पुरुष कुछ उत्तर देता, उलूक का उद्घोष पुनः कर्णगोचर हुआ । दोनों पुरुष फिर, ध्यानस्थ-से होकर, गणित करने लगे । अन्ततः, प्रथम पुरुष ने हँस कर द्वितीय पुरुष को सम्बोधित किया : "नायक ! उलूक-स्वर की श्रुतियाँ गिन रहे थे अथवा अपने हृदय की उद्वेलन-ध्वनियाँ ?"

द्वितीय पुरुष ने उत्तर नहीं दिया । उत्तर अपेक्षित भी नहीं था । प्रथम पुरुष ने कहा : "चलो, चैत्य में चलें । अब विलम्ब करना वाञ्छनीय नहीं । मन्त्री ने तीन बार सूचित किया है कि कोई विघ्न उपस्थित नहीं होगा ।"

दोनों पुरुष, द्रुतपद से, किन्तु मौन रह कर, दक्षिण-दिशा की ओर चल पड़े ।

मागध दुर्ग की प्राकार से प्रायः एक सहस्र दण्ड की दूरी पर, वनवृक्षों से सर्वतः पर्यवमित, एक चैत्य था । उसके अनपावृत कपाट पर प्रथम पुरुष ने गूढ़-संकेत-गर्भित मृदुल कराघात किया । कपाट तुरन्त अपावृत हुआ और दोनों पुरुष अभ्यन्तर में प्रविष्ट हो गए ।

चैत्य का गर्भगृह आयताकार था । पञ्चदश अरत्नि आयाम । दैर्घ्य पञ्चविंश अरत्नि । उत्सेध द्वादश अरत्नि से किंचित अधिक । सम्पूर्ण वास्तुकर्म काष्ठदारुमय था । केवल पृष्ठभित्ति पर प्रथित देवमूर्ति ही पाषाण-विनिर्मित थी । देवमूर्ति के दक्षिण पार्श्व में, एक पीठिका पर, प्रज्वलित था प्रखर-प्रकाश तैलप्रदीप ।

नवागन्तुकों के अभिवादन-निमित्त, चैत्य में उपस्थित पाँच अन्य पुरुषों ने प्रत्युत्थान किया । प्रदीपालोक में दिखाई दिया कि सातों पुरुष, आपाद-मस्तक, सांग्रामिक सुवेष में सज्जित हैं ।

शिर पर लोहनिर्मित शिरस्त्राण । ग्रीवा पर परिवेष्टित, आस्कन्ध आलम्बित, लोहसूत्रकङ्कट । भुजदण्डद्वय पर लोहपट्ट । मुण्डपरिगाह पर

लोहजालिका। कटि से जानु पर्यन्त वारवाण। हस्तांगुलियों पर नागोद-रिका। पादद्वय में सानाह्य पदत्राण।

शस्त्रास्त्र-समूह से संकुल थे पुरुष-वृन्द के सुदृढ़ शरीर। दक्षिण स्कन्ध पर विलम्बित कोदण्ड अथवा कार्मुक। वाम स्कन्ध पर उत्थित-शिराग्र, छेदन-भेदन-ताड़न के उपयुक्त मुखाग्र से समन्वित नाराच-शर-समूह से आपूर्ण, तूणीर। कटिसूत्र से आबद्ध मण्डलाग्र निस्त्रिंश अथवा असियष्टि खड्ग। करमुष्टि में दृढग्रहीत हस्तिकर्ण अथवा बलाहकान्त खेटक।

प्रथम पुरुष के नाम से परिचित, दुर्गपाल अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र, भूमि पर एक ओर उपविष्ट हो गए। अन्यान्य पुरुष भी, उनके सम्मुख अर्ध-मंडलाकार होकर, उपासीन हुए। तब दुर्गपाल ने, अपना शिरस्त्राण किंचित उत्कृष्ट करके, एक पुरुष को सम्बोधित किया : "नायक पिलिन्दि ! दुर्ग के पश्चिमवर्ती प्राकार पर कितने प्रहरी हैं ?"

पिलिन्दि ने प्रत्युत्तर दिया : "द्वाराट्टालक के दक्षिण प्रान्त पर तीन, उत्तरवर्ती प्रान्त पर दो।"

"दक्षिणवर्ती प्राकार पर ?"

"द्वाराट्टालक के पश्चिमवर्ती प्रान्त में दो, पूर्ववर्ती प्रान्त में तीन।

"पदचार-गति ?"

"पश्चिमवर्ती प्राकार पर द्रुत, दक्षिणवर्ती प्राकार पर विलम्बित।"

"अवघोष-क्रम ?"

"अर्ध-घटिका के अन्तर पर।"

"अवघोष का स्वर एवं श्रुति-ग्राम हृदयंगम कर लिया ?"

"हृदयंगम कर लिया, आर्य !"

दुर्गपाल ने एक अन्य पुरुष को सम्बोधित किया :"नायक भल्लिक ! तुम क्या चारवृत्तान्त लाए हो ?"

भल्लिक बोला : "आर्य ! उत्तरवर्ती प्राकार पर केवल एक प्रहरी द्रुत-पदचार-रत है।"

"जलद्वार के बहिर्मुख पर ?"

"कोई नहीं।"

"प्राकार पर प्रश्रित नौका कितनी हैं ?"

"त्रयस्त्रिंशाधिक द्विशत ।"

"नाविक सतर्क हैं ?"

"सतर्क हैं, आर्य !"

तब अनिरुद्ध इन्द्रगुप्त की ओर अभिमुख हुए : "इन्द्रगुप्त ! तुम जाओ । लिच्छवि सैन्य को सावधान करो । दुर्ग के दक्षिण द्वाराट्टालक से अग्निबाण उन्मुञ्चित होते ही, तुम्हारे वन-प्रच्छन्न पदातिक दुर्ग के अपावृत द्वार पर अधिकार करेंगे । अधिकार तब तक अक्षुण्ण रहना चाहिए जब तक कि हमारे दुर्गस्थ अश्वारोही एवं रथाति वहाँ न पहुँच जाएँ । किसी प्रकार की भूल न हो ।"

इन्द्रगुप्त ने उत्तिष्ठ होकर कहा : "आप सर्वथा आश्वस्त रहें, आर्य! आपके आदेश का यथावत् अनुष्ठान होगा ।"

इन्द्रगुप्त कपाट खोलकर चैत्य के बाहर चला गया । अनिरुद्ध ने एक अन्य पुरुष से प्रश्न किया : "नायक कूटदन्त ! तुम्हारी नौकावाहिनी सर्वथा सावधान है ?"

कूटदन्त ने उत्तर दिया : "सावधान है, आर्य !"

"मध्यद्वीपवर्त्ती विपिन में कितनी नौका हैं ?"

"एक शत ।"

"उल्काचेल में ?"

"तीन शत ।"

"जलयुद्ध में विचक्षण वीर ?"

"एक सहस्र ।"

"किन्तु मागध नाविक सतर्क हैं, नायक !"

"हमारे जलगर्भचारी तीक्ष्ण मागध नौकाओं के तलप्रदेश में छिद्र कर देंगे, आर्य !"

"मागध नौकाओं में उत्सेचक हैं ।"

"उत्सेचक उन नौकाओं का त्राण नहीं कर सकते ।"

"संकेत मिलने पर, द्वीपस्थ सैन्य कितने समय में जलद्वार तक पहुँच जाएगा ?"

"पाद घटिका में ।"

"तुम जाओ, कूटदन्त ! उल्काचेल से आने वाली नौकावाहिनी पहुँचने तक तुम्हें जलद्वार अपावृत रखना होगा।"

"आपका आदेश शिरोधार्य है, आर्य !"

कूटदन्त भी चैत्य के बाहर चला गया। तदुपरान्त दुर्गपाल ने, अपने समक्षवर्ती भूमितल को वस्त्रखण्ड से परिष्कृत करके, खटीवर्तिका द्वारा उस पर एक आलेख्य अङ्कित किया। फिर चैत्य में अवशिष्ट चार पुरुषों की दृष्टि उस ओर आकर्षित करके, एक नाराच के मुखाग्र से स्थल-सकेत करते हुए, वे कहने लगे :

"देखिए, नायक-वृन्द ! यह है सुरुङ्गसंचार का दुर्गस्थ मुखद्वार। दक्षिण तथा पश्चिम प्राकार के सन्धि-स्थल पर, इस प्रधाश्रिलिका की सोपान-श्रेणी के तलप्रदेश में। दुर्ग का यह पश्चिमवर्ती द्वार यहाँ से द्विशत दण्ड दूर है, प्राकार के साथ-साथ जाने पर। पश्चिमवर्ती द्वार से, द्विशत दण्ड पश्चिमवर्ती प्राकार के साथ चलकर और त्रिशत दण्ड उत्तरवर्ती प्राकार के साथ जाकर, दुर्ग का यह उत्तरस्थ जलद्वार मिलेगा।

"यह है दुर्ग का व्यायाम-प्राङ्गण। पूर्ववर्ती द्वार से एक शत दण्ड अभ्यन्तर। प्राङ्गण का आयाम, उत्तर से दक्षिण, द्विशत दण्ड है। पूर्व से पश्चिम दैर्घ्य त्रिशत दण्ड। प्राङ्गण के चारों प्रत्यन्त गुल्म-वितान से परिमण्डित हैं। सुरुङ्गसंचार के मुखद्वार से, प्राङ्गण का यह पश्चिमवर्ती प्रत्यन्त, दक्षिणवर्ती प्राकार के साथ जाकर द्विशत दण्ड और फिर उत्तराभिमुख चलकर एकशत दण्ड है।

"प्राङ्गण के उत्तरवर्ती पार्श्व पर प्रतिष्ठित है यह आयुधागार। आयुधागार के पूर्ववर्ती पार्श्व में यह हस्तिशाला है, और यह अश्वशाला।"

दुर्गदर्शन समाप्त करके, अनिरुद्ध ने अपना मुख उन्नत किया। फिर वे चारों पुरुषों को सम्बोधित करके बोले : "दुर्ग के गम्भीर एवं दुर्बल स्थल पूर्ण-प्रकारेण हृदयङ्गम कर लिए, नायकवृन्द !"

चारों पुरुषों ने, शिर स्पन्दित करके, सम्मति प्रगट की। तब उनमें से एक की ओर अभिमुख होकर, अनिरुद्ध बोले : "नायक पिलिन्दि! तुमको दुर्ग का पश्चिमवर्ती द्वार हस्तगत करना है। उसके पूर्व प्राकारस्थ प्रहरीगण का प्रबन्ध हो जाना चाहिए।"

पिलिन्दि ने सोत्साह उत्तर दिया : "उनको एक पल में परलोक पठा दिया जाएगा, आर्य !"

"उनका वध किए बिना बन्धन सम्भव हो तो वैसा ही करना, नायक ! मगध के सैनिक निरीह हैं। उनका प्राणहरण आवश्यक नहीं।"

"जो आज्ञा, आर्य !"

दुर्गपाल ने दूसरे नायक की ओर देखकर कहा : "नायक भल्लिक ! तुम, पिलिन्दि के साथ जाकर, पश्चिमवर्ती द्वार तथा प्राकार पर अधिकार होने तक, इनकी सहायता करोगे। तदुपरान्त तुमको जलद्वार तथा उत्तरवर्ती प्राकार को हस्तगत करना है।"

भल्लिक ने उत्तर दिया : "जो आज्ञा, आर्य !"

अनिरुद्ध तृतीय नायक से बोले : "नायक धनञ्जय ! तुमको आयुधागार, हस्तिशाला तथा अश्वशाला पर अधिकार करना है। जब तक दुर्ग पर हमारा पूर्ण प्रभुत्व न हो जाए, तब तक एक भी मागध, इन शालाओं में प्रवेश पाकर, किसी उपकरण का उपयोग करने में समर्थ न हो।"

धनञ्जय ने नतमस्तक होकर कहा : "ऐसा ही होगा, आर्य !"

अन्त में अनिरुद्ध ने चतुर्थ नायक को सम्बोधित किया : "नायक सुन्दरिक ! तुम अपने पञ्चाशतक सहित मेरे साथ रहोगे।"

सुन्दरिक ने उत्तर दिया : "सेवक सर्वथा प्रस्तुत है, आर्य !"

दुर्गपाल, उत्थान करके, देवमूर्ति की ओर अग्रसर हुए। उनके पाणिद्वय द्वारा परावर्तित होकर, देवमूर्ति का मस्तक कबन्ध से विच्छिन्न हो गया। मस्तक को एक ओर रख कर, दुर्गपाल ने देवमूर्ति के ग्रीवा-विवर में हस्तप्रसार किया और वे अन्तराल में अवस्थित किसी गूढ़यन्त्र का सञ्चालन करने लगे। देवमूर्ति धीरे-धीरे आगे की ओर अवनत होने लगी तथा कुछ क्षण उपरान्त पूर्णतया अधोमुख शायमान हो गई। तैल-प्रदीप के प्रकाश में नायकवृन्द ने देखा कि देवमूर्ति के आसनस्थान पर एक सोपान-श्रेणी नीचे की ओर जा रही है।

दुर्गपाल ने, एक पल सांस ले कर, नायक पिलिन्दि को आदेश दिया : "पिलिन्दि ! तुम तैलप्रदीप लेकर मेरे साथ चलो।"

तदनन्तर वे अवशिष्ट नायकत्रय से बोले : "पिलिन्दि का पञ्चाशतक

पहिले आए। तदुपरान्त नायक भत्तिलक अपने पञ्चाशतक के साथ। फिर नायक धनञ्जय और उनका पञ्चाशतक। सब के अन्त में नायक सुन्दरिक मेरे और अपने अधीनस्थ एक शत सुभट लेकर आएँ। सुरंगसञ्चार में तैलप्रदीप का प्रयोग अथवा किसी प्रकार का वार्तालाप निषिद्ध है।"

एक क्षण रुक कर दुर्गपाल ने सुन्दरिक को सम्बोधित किया : "सुन्दरिक ! सुरंगसञ्चार में प्रविष्ट होने के पूर्व, तुम नायक रेवतक को भली भाँति शिक्षित कर देना कि, सञ्चार का मुख अपावृत रख कर, चैत्य में सावधान रहे और शत्रु की ओर से किसी प्रकार की शङ्का होने पर द्रुतगामी दूत द्वारा मुझको सूचित करे।"

दुर्गपाल, पिलिन्दि को पुरस्सर करके, सुरंगसञ्चार में अवरोहण के लिए उद्यत हो गए। तब सहसा नायक धनञ्जय ने उनसे अनुनय की : "आर्य ! आप आगे न जाइए। हममें से एक किसी को यन्त्ररहस्य समझा कर भेज दीजिए।"

अनिरुद्ध ने हँस कर कहा : "मेरे आगे-आगे पिलिन्दि जा रहे हैं, धनञ्जय नायक !"

"किन्तु आपका जीवन भी......

दुर्गपाल ने हस्त उत्थापित करके धनञ्जय को रोक दिया। फिर वे बोले : "नायक ! यदि तुम जानते कि मेरे जीवन से सहस्रातिसहस्र-गुण अधिक मूल्यवान एक अन्य लिच्छवि जीवन, इस समय, मागध-दुर्ग में, संकट की अवहेलना करके, स्वकर्त्तव्यरत है तो तुम ऐसी बात न कहते।"

चारों नायक, उत्सुक होकर, एक स्वर में पूछ बैठे : "किसका जीवन, आर्य !"

"समय आने पर सुविज्ञात हो जाएगा। तब तक तुम सब, उनका स्मरण करते हुए, अपना-अपना कर्त्तव्य कर्म करो।"

दुर्गपाल हँसने लगे। किन्तु उनकी हँसी के आवरण में अश्रुपात प्रच्छन्न था।

तब अनिरुद्ध ने, पिलिन्दि को साथ ले कर, सोपान-श्रेणी पर अवरोहण किया। चैत्य में अन्धकार भर गया। नायकत्रय एक अन्य तैलप्रदीप का आयोजन करने लगे।

प्रदीप के प्रकाश में, पिलिन्दि ने देखा कि सुरंगसञ्चार प्रशस्त है। तीन पुरुष, समकक्ष हो कर,यातायात कर सके इतना आयाम। दुर्गपाल के सदृश दीर्घतनु पुरुष भी उन्नतशिर खड़ा हो सके, इतना उत्सेध। संचार का छाद, तल तथा दोनों पार्श्व पृथुल प्रस्तरशिला-समूह से समावेष्टित थे। अतएव भूगर्भस्थ जलार्द्रता का प्रवेश असम्भव था। धुरन्धर धनुर्धारी द्वारा सन्धान किए गए शर के समान सीधा चला गया था संचारपथ।

सुरुङ्ग के निवासी सरीसृप, आशङ्कित हो कर, इतस्तत: अन्तर्हित होने लगे। पिलिन्दि यह नहीं समझ पाया कि सचार-पथ में प्रच्छन्न होने का स्थान उन जन्तुओं को कहाँ मिल रहा है। किन्तु शुद्ध एवं शीतल पवन ने, बारम्बार, उसके मुख का स्पर्श करके, उसे सूचित किया कि पवन के प्रवेश-निमित्त निगूढ छिद्रवातायन भी सुरंगसंचार के पाषाण-कलेवर में कहीं पर प्रच्छन्न है।

सुरंग के दूसरे प्रत्यन्त पर पहुँच कर, दुर्गपाल ने पिलिन्दि से अनुरोध किया कि वह प्रदीप को, अपने शिरस्त्राण से, इस प्रकार आच्छादित कर ले कि आलोक की एक सूक्ष्म किरण भी ऊपर जाते हुए सोपान-पथ पर न पड़ने पाए। तब वे स्वयं सोपान-श्रेणी का आरोहण करने लगे। नायक पिलिन्दि नीचे खड़ा रहा।

मुखद्वार एक स्थूल शिलाखण्ड से आच्छादित था। शिलाखण्ड के एक पार्श्व में कान लगाकर, दुर्गपाल कोई शब्द सुनने के लिए चेष्टायमान हुए। उनका श्वासोच्छ्वास अवरुद्ध था।

दुर्ग के अभ्यन्तर से पदग गीत एवं वाद्य की ध्वनि सुस्पष्ट सुन पड़ी। किन्तु नुपुर का रणन अथवा करधनी का किङ्किणस्वन कर्णगोचर नहीं हुआ। तो भी, गीत-वाद्य के विलम्बित लय-विन्यास से दुर्गपाल ने अनुमान लगाया कि नृत्य अभी आरम्भ ही हुआ है और पराकाष्ठा प्राप्त होने में अभी विलम्ब है।

दुर्गपाल ने, अवरोहण करके, सोपान-श्रेणी के निम्नतम सोपान का परीक्षण किया। शिला अपसरित होते ही एक निगूढ यन्त्र उनको दिखाई दिया। तब उन्होंने पिलिन्दि से कहा : "नायक! प्रदीप निर्वापित कर दो।"

अनिरुद्ध, अन्धकार में ही, यन्त्रसंचालन करने लगे। पिलिन्दि ने मुख

उन्नत करके देखा कि मुखद्वार पर प्रसृत शिलाखण्ड निःशब्द ऊपर की ओर उठ रहा है। मुखद्वार के चारों कोणों पर से, शनैः शनैः उत्सृत होते हुए, चार स्तम्भ उस शिलाखण्ड को अपने शीर्ष पर धारण किए थे। देखते देखते, सुरुङ्गसंचार का मुखद्वार एक मण्डपिका से मण्डित हो गया। साथ ही गीत-वाद्य की मधुरध्वनि तथा नूपुर-मेखला के रणन-शिञ्जन ने पिलिन्दि के कर्णकूप-द्वय को रस-विह्वल कर दिया।

नायक ने, स्तम्भित होकर, दुर्गपाल से कहा : "दुर्ग के भीतर नृत्य हो रहा है, आर्य !"

अनिरुद्ध बोले : "एतादृश आयोजन के विना, तुम सब का कण्ठकर्तन करवाने वाला तुम्हारा दुर्गपाल नहीं है, नायक !"

"तब तो हमारे साहस-समारम्भ में विशेष सुविधा रहेगी।"

"सुविधा तो रहेगी ही। किन्तु भय भी है। मागध सैन्य को मनोरंजन-रत मानकर, अथवा गीतवाद्य से विमुग्ध हो कर, लिच्छवि सुभट कहीं प्रमाद न कर बैठें।"

"आप आश्वस्त रहें, आर्य ! सुभट-समवाय का चयन करने के पूर्व मैंने एक-एक सुभट का निर्मम निरीक्षण किया है।"

दुर्गपाल ने, सोपान-श्रेणी पर एक ओर प्रस्थापित, कृष्णकाय मृत्तिका-भाण्ड तथा वंशदारु का एक दीर्घाकार लगुड अपने हाथों में उठाया। फिर भाण्ड को लगुड के शीर्ष पर पिहित करके, उन्होंने मुखद्वार से उत्थापित कर दिया। जैसे कोई मानुष शरीर, अपना केशसमन्वित मस्तक उन्नत करके, मण्डपिका में उपासीन हो। और तब वे, साँस रोक कर, प्रतीक्षा करने लगे। किसी ओर से कोई शब्द नहीं सुन पड़ा। न किसी चेष्टा का संकेत मिला। केवल संगीत का स्वर-ग्राम मन्द्रस्थान से मध्य-स्थान की ओर आरोह कर रहा था।

दुर्गपाल ने, निश्चिन्त निश्वास छोड़कर, कहा : "द्वारदेश सर्वथा शून्य है।"

इसी समय, पिलिन्दि नायक के पचास सुभट उपस्थित होने लगे। नायक को अन्तिम अनुशासन देकर, दुर्गपाल ने, उसके सुभट-समवाय सहित मागध दुर्ग में प्रविष्ट कर दिया। तदनन्तर, भल्लिक तथा धनञ्जय भी

अपने-अपने सुभट-समवाय मे अनुसरित होकर, निःशब्द, अपना-अपना नियोग अनुष्ठित करने चले गए।

अवशिष्ट एकशत सैनिकों में से कुछ को, दुर्गपाल ने आदेश दिया कि वे, तुरन्त ऊपर जाकर, दुर्ग के दक्षिणवर्ती प्राकार पर मागध प्रहरी-गण का स्थान ग्रहण करें।

फिर वे, सोपान पथ के एक प्रान्त में अवरुद्ध होकर, नायक सुन्दरिक से परामर्श करने लगे।

: २ :

मागध दुर्ग के व्यायाम-प्राङ्गण में संगीत-समाज का समारोह है। पाँति-पाँति दण्डप्रदीप द्वारा प्रकाशित उच्चकाय रङ्गमंच पर, एक निरुपम शिल्प-निपुणा नर्तकी, लोक-गीत का आश्रय लेकर, लोक-सुलभ लास्य कर रही है।

नर्तकी की शोणितवर्ण शाटिका आजानु आलम्बित है। हरितद्युति स्तनांशुक में स्तूपीकृत हैं नर्तकी के कुच-कलश। प्रक्षीण क्षौमवस्त्र के पीताभ उत्तरीय-पट को, वारम्वार, शिर के ऊपर से चिवुक तक खींचकर नर्तकी अवगुण्ठन का अभिनय कर रही है। किन्तु अवगुण्ठन से अन्तर्हित होकर भी, अपूर्व आलोक का प्रसार कर रहा है, नर्तकी का नीलोत्पल-सन्निभ आनन-बिम्ब।

नर्तकी के पृष्ठप्रान्त पर, आनितम्ब आलम्बित है, उसकी कुसुम-विरचित, एक-वेणी-सञ्चित, कुंचित, केशराशि। नर्तन के प्रत्येक परावर्तन के साथ काल-सर्प सी स्फूर्त्त। बाहुमृणाल-द्वय पर मण्डलीकृत हैं, अवदात अतिमुक्तक-मुकुल के वलय तथा केयूर। हस्तमुद्रा के विक्षेप-विक्षेप पर विक्षुब्ध। कृश कटितट पर किङ्किणित करधनी वीणा के क्वणन को विनिन्दित कर रही है। और गीत-वाद्य के आरोह-अवरोह की अनिन्द्य आवृति कर रहा है, पादपद्मद्वय पर पिहित, नूपुर का रणन-आराव।

रंगमंच के पृष्ठभाग पर गायक-वादक-वृन्द उपासीन हैं। तत, वितत, सुषिर एवं घन वाद्यवर्ग के समन्वित स्वरोन्मेष से, श्रोतागण के मानस का मन्थन करते हुए। विविध कण्ठ से विनिर्गत निस्वन द्वारा, नर्तकी की प्रत्येक नृत्यचेष्टा में नानार्थ-संग्रह करते हुए-से।

मागध सुभट-समवाय, रंगमंच के पुरस्तात प्रान्त में, भूमितल पर उपासीन है। गीत-वाद्य-नृत्य की ताल-ताल पर तिग्म तरंगायित। रंगपीठ के समीपतम उपासीन प्रेक्षिवृन्द की वेशभूषा से स्पष्ट है कि वे मागध सैन्य के मुख्य है। उनके मध्य में कल्लोल करती हुई किशोरी, कटि पर टिके मधु-कलश को एक बाहुलता से वलयित करके, दूसरी बाहुलता द्वारा विविध विक्षेप विकीर्ण करती हुई, मधु-मैरेय वितरित कर रही है।

प्रांगण के पश्चिमवर्ती प्रत्यन्त पर, गुल्म-वितान-विस्तार से प्रच्छन्न होकर, नर्तकी का नृत्यनैपुण्य निहारते हुए अनिरुद्ध से नायक सुन्दरिक ने कहा :

"आर्य ! मागध सुभट-समवाय की मख्या एक सहस्र से अधिक नहीं है। सबके सब शस्त्र-सज्जित है।"

दुर्गपाल ने प्रश्न किया : "कितनी बार गणना की है, नायक !"

"तीन बार, आर्य ! एक बार मैंने स्वयं। एक-एक बार अन्य दो लिच्छवि सैनिकों ने।"

"सम्यक् है, नायक ! संघर्ष के पूर्व, मागध सैन्य को अपने भूशायित शरासन उठाने का अवसर नहीं मिलना चाहिए।"

"अकस्मात् आक्रमण होने पर इनको वैसा अवसर नहीं मिलेगा, आर्य !"

"जलद्वार से समाचार लेकर दूत नहीं आया ?"

"आता ही होगा, आर्य !"

गीतवाद्य की लयताल, मध्यगति से द्रुतगति की ओर आरोहण करने लगी। स्वरोन्मेष भी तारसप्तक की ओर अग्रसर हुआ। नर्तकी का किंचित चलित वक्रगति लास्य, महसा, वृत्तगति नर्तन में परिवर्तित होने लगा। मागध सुभट मुग्ध होकर धन्य-धन्य कह उठे।

रंगमंच की ओर निबद्ध-दृष्टि दुर्गपाल ने सुन्दरिक से पूछा : "नायक ! नर्तकी को पहिचानते हो ?"

सुन्दरिक ने, संदिग्ध स्वर में, उत्तर दिया : "मुखाकृति अवश्य पूर्व-परिचित-सी प्रतीत होती है। किन्तु......यह कौन है, आर्य !"

"इनके प्रति अवज्ञा का प्रदर्शन न करो, नायक !"

मुन्दरिक दुर्गपाल का आशय नहीं समझ पाए। दुर्गपाल ने कहा : "प्रांगण पर आक्रमण करते ही, सर्वप्रथम इनका परित्राण प्रयोजनीय है!"

नायक ने उत्सुक होकर पूछा : "किन का परित्राण, आर्य!"

"जिनके जीवन के कारण आज वृज्जिसंघ का जीवन सफल हो गया," जिनके गौरव से आज वैशाली गर्वान्वित है, जिनके......

दुर्गपाल अपना कथन पूरा नहीं कर सके। रंगमंच पर एक अप्रत्याशित काण्ड देख कर वे मर्माहत हो गए। एक सुराप्रमत्त मागध मुख्य ने, नर्तकी को अपने आलिंगन में आबद्ध करने के आशय से भुजद्वय प्रसारित करके, रंगमंच पर आरोहण किया था। गायक-वादक-वृन्द, गात्रोत्थान करके, नर्तकी का परित्राण करने के लिए, पुरस्सरित हो रहे थे। और नर्तकी, नयन विस्फारित करके, सिंहनी के समान गर्जना करती हुई, रंगमंच के पृष्ठभाग की ओर अपसरण कर रही थी।

अनिरुद्ध ने, उसी क्षण, अपने स्कन्ध से शरासन उतार कर शर-सन्धान कर लिया।

हठात् अनेक मागध-मुख्य, अपने सहचर की सहायता के लिए रंग-मंच पर आरोहण करके, गायक-वादक-वृन्द से विवाद करने लगे। निरस्त्र नर्तकी तथा गायक-वादक-गण अब सर्वथा असहाय थे। किसी क्षण भी नर्तकी की देह, मागध मुख्य के करस्पर्श से, दूषित हो सकती थी।

अपनी आपन्न अवस्था का अतिक्रमण करने के लिए, नर्तकी ने, अकस्मात्, रंगमंच से अवस्कन्द किया। मागध मुख्य भी, नर्तकी का अनुसरण करता हुआ, प्रांगण के पश्चिमवर्ती प्रत्यन्त की ओर प्रधावमान नर्तकी के पीछे दौड़ा। मागध सुभट-समवाय, कोलाहल करता हुआ, उसी ओर अग्रसर होने लगा।

तब दुर्गपाल ने प्रचण्ड हुँकार की : "मुन्दरिक! मागध सैन्य का मार्ग अवरुद्ध करो।"

साथ ही, दुर्गपाल के शरासन से विमुञ्चित नाराच ने नर्तकी के पीछे प्रधावमान मागध मुख्य का वक्ष विदीर्ण कर दिया। उसी क्षण, नर्तकी भी छिन्नमूल वृक्ष की भाँति धराशायी हो गई।

लिच्छवि सुभट-समवाय द्वारा विमुञ्चित बाण-वर्षण से विद्ध होकर

हतोत्साह मागध सैनिक पूर्व की ओर प्रधावमान होने लगे।

दुर्गपाल ने, तडित्-गति से, एक ही उत्पतन में गुल्म-वितान का अतिक्रमण करके, प्रांगण में प्रवेश किया। उनके अनुगामी लिच्छवि सुभट भी उनका अनुसरण कर रहे थे। लिच्छवि-गण को आते देखकर, धरा पर शायमान नर्तकी भी, विद्युत्शिखा-सी स्फूर्त होकर, उत्तिष्ठ हो गई।

मागध मुख्यों का तिरस्कार सुन कर मागध सुभट-समवाय पुनरेण स्थिर हो गया। मागध सैनिक, सहसा, पश्चिम की ओर मुख परावृत्त करके, पंक्तिबद्ध होकर अपने शरासनों पर शरसन्धान करने लगे।

दुर्गपाल ने भीमगर्जन किया: "सुन्दरिक! मागध सैन्य बाणवर्षण न करने पाए।"

दूसरे क्षण, लिच्छवि-सैन्य का अधिकांश, कोष से कृपाण निकाल कर, मागध सेना से द्वन्द्वयुद्ध करने के लिए, प्रांगण को पार कर गया। दुर्धर्ष धर्षण से त्रस्त मागध सैन्य हाहाकार कर उठा। नायक सुन्दरिक, स्वयं अग्रगामी होकर, लिच्छवि सैन्य का नेतृत्व कर रहे थे।

दूर खड़े दुर्गपाल स्थिति का निरीक्षण करने लगे। उनके दक्षिण पार्श्व में, उनके स्कन्ध पर अपना करतल न्यस्त करके, खड़ी थी निर्निमेष-नयना नर्तकी।

दुर्गपाल ने पश्चिमवर्ती द्वाराट्टालक की ओर दृष्टिपात किया। अग्नि-बाण-विमुञ्चन में विलम्ब होता देख कर उनका मानस आशङ्का से आपूरित हो रहा था।

सुन्दरिक का लिच्छवि सैन्य परिमाण में अत्यल्प था। मागध सैन्य ने, संभल कर, तुरन्त ही लिच्छवि-गण को पर्यवसित कर लिया। और मागध सुभट-समवाय का एक दल उस ओर प्रधावमान हुआ जहाँ दुर्गपाल, अपने सैनिकों द्वारा नर्तकी के चारों ओर मण्डलव्यूह बना कर, प्रांगण से निष्क्रमण करने के लिए प्रयत्नशील थे।

दुर्गपाल का पञ्चाशतक, मागधों से विकट विग्रह करता हुआ, पश्चिम की ओर अपसरण करने लगा। दुर्गपाल ने एक क्षण में निश्चय कर लिया था कि यदि बहिरस्थ लिच्छवि वाहिनी, किसी कारणवश, दुर्ग में प्रवेश न कर पाई तो वे सुरंग-सञ्चार के पथ से दुर्ग का परित्याग

करेंगे ।

दुर्गपाल का लिच्छवि बल, प्रतिपल, क्षीण से क्षीणतर होने लगा। सुन्दरिक को आदेश था कि वे अपने पञ्चाशतक को दुर्गपाल के पञ्चाशतक से समवेत करके, नर्तकी के परित्राण में ही प्राण लड़ाएँ। किन्तु अनपेक्षित घटनाक्रम के कारण, सुन्दरिक का दल दुर्गपाल के दल से विदूरित हो गया था। अपने चारों ओर संकुल मागध सैन्य का अतिक्रमण करके दुर्गपाल की ओर आना, सुन्दरिक के लिए प्रयत्न करने पर भी सम्भव न हो सका। मागध सैन्य ने, समवेत होकर, प्रांगण का पश्चिम द्वार अवरुद्ध कर लिया। मण्डल-व्यूह के लिच्छवि सुभट मागध सैनिकों के प्रबल प्रहार से कट-कट कर गिरने लगे।

व्यूहकेन्द्र में, दुर्गपाल के सानिध्य में संरूढ़ नर्तकी, शांतभाव से स्थिति का अवलोकन कर रही थी। लिच्छवि सैन्य की दुर्दशा देखकर, नर्तकी ने दुर्गपाल से कहा : "दुर्गपाल ! एक खड्ग तथा खेटक मुझे भी दीजिए।"

दुर्गपाल ने विनीत स्वर में उत्तर दिया : "अभी अनेक लिच्छवि पुरुष जीवित हैं। आपको कष्ट करना न होगा।"

"समय बीता जा रहा है, दुर्गपाल ! शत्रु का विनाश करती-करती ही मैं मरण का वरण करना चाहती हूँ।"

"आपको मरना न होगा।"

"वह देखिए, आपके व्यूह में लिच्छवियों की केवल चार पंक्तियाँ अवशिष्ट हैं।"

"एक भी पंक्ति अवशिष्ट रहे तब तक भी आप त्रसित न हों।"

"मैं त्रसित नहीं हूँ, दुर्गपाल ! मेरी शिराओं में लिच्छवि रक्त ताण्डव कर रहा है। आप मेरा पथ......

इसी समय पश्चिम तथा उत्तर की ओर से आकर एक शत लिच्छवि सैनिकों ने मागध सैन्य पर आक्रमण कर दिया। किन्तु सुन्दरिक नायक के पञ्चाशतक का विनाश करके, दूसरा मागध सैन्य नवागत लिच्छविगण पर आक्रान्त हो गया।

अब दोनों ओर के मागध सुभट, मध्यवर्ती लिच्छवि सैन्य से संग्राम

कर रहे थे। अतएव दुर्गपाल के दुर्बल मण्डलव्यूह को तनिक अवकाश मिल गया।

नर्तकी ने कहा : "लिच्छवि सुभट धन्य हैं, दुर्गपाल !"

दुर्गपाल हँस कर बोले : "धन्य तो तब होंगे जब आपको मागध धर्षण से मुक्त कर लेंगे।"

"आपकी साहस-योजना क्या विफल हो जाएगी ?"

"विफल तो नहीं होनी चाहिए किन्तु......

"विलम्ब क्यों हो रहा है ?"

"अब विलम्ब भी नहीं होना चाहिए।"

"मुझे तो लक्षण अच्छे नहीं......"

नर्तकी का वाक्य पूरा होने के पूर्व ही, दुर्ग के पश्चिमवर्ती द्वाराट्टालक से विमुञ्चित एक जाज्वल्यमान अग्निबाण, धूमकेतु के समान, आकाश की ओर उत्क्रमित हुआ। साथ ही लिच्छवि सुभट सिंहनाद कर उठे : "वृज्जिसंघ की जय ! सिंहध्वज की जय !"

मागध सैनिक, एक क्षण के लिए विमूढ़ होकर, देखते रहे। किन्तु दूसरे क्षण, वे अपने-आपको संकटग्रस्त समझ कर, द्विगुण वेग से युद्ध करने लगे।

दुर्गपाल ने, मुस्करा कर, नर्तकी से पूछा : "लिच्छवि-गण को आदेश दूँ कि आपका जयनाद करें।"

नर्तकी ने क्षुब्ध होकर कहा : "धिक्, दुर्गपाल ! जयनाद आपका होना चाहिए।"

"मैंने तो आपके प्राण संकट में डाल दिए थे।"

"नहीं, दुर्गपाल ! मेरे कारण ही आपके प्राण संकट में पड़ गए। अनेक लिच्छवि हताहत हुए।"

"लिच्छवि के लिए वीरगति से श्रेयस्कर सुकृत नहीं होता।"

"एक नर्तकी के कारण वीरगति का वरण करना कौनसा सुकृत है, दुर्गपाल !"

"यदि आप इससे भी अशुभतर वेश धारण करतीं, तो भी सुकृत होता। आपने लिच्छवि सुभट-समवाय के लिए स्वर्ग का द्वार अपावृत कर दिया।"

"लिच्छवि सुभट धरा पर रहते और मैं ही स्वर्गारोहण कर लेती तो मेरा मानस इतना उत्तप्त न होता।"

"आपको पश्चाताप हो रहा है ? आप में यह हृदयदौर्बल्य, इसके पूर्व मैंने......

स्थलद्वार तथा जलद्वार से दुर्ग में प्रविष्ट लिच्छवि सैन्य प्राङ्गण की ओर प्रधावमान हुआ। दूसरे क्षण, उस महान पराक्रम से विमूढ होकर, मागध सैन्य विच्छिन्न हो गया।

दुर्गपाल ने अपना खड्ग उद्यत करके महद्घोष किया : "राजकुमारी की जय ! लिच्छविदुहिता की जय !!"

वृज्जिसंघ के विजयी सैन्य ने, एक स्वर से, उस उद्घोष को प्रतिध्वनित किया : "राजकुमारी की जय ! लिच्छविदुहिता की जय !!"

: ३ :

प्रभात की प्रथम किरण के उदीयमान होते ही, नर्तकी के वेश में विभूषित राजकुमारी वत्सला ने मागध दुर्ग के पश्चिमवर्ती द्वाराट्टालक पर आरोहण किया। अट्टालक पर उड्डीयमान मगध के मञ्जिष्ठ-वर्ण ध्वज को ध्वस्त करके, वृज्जिसंघ का सिंह-लाञ्छनाङ्कित विजयध्वज उत्तोलित करने के लिए।

दुर्गद्वार के अभ्यन्तर एवं बाहर, दोनों ओर, लिच्छवि-गण की पंक्तिबद्ध चतुरंगिणी परिव्यूढ थी इस शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा में, द्वाराट्टालक की ओर दृष्टि उन्नत किए हुए।

दुर्ग के प्रांगण में अभी तक युद्ध में निहत लिच्छवि तथा मागध सैनिकों के शव शायमान थे। चतुर चिकित्सक, चतुर्दिक चारिका करके, शव-समूह में से ईषत्-जीवित सैनिकों को खोजने की चेष्टा कर रहे थे।

प्रसन्नवदना वत्सला ने, वृज्जिसंघ का विजयध्वज दण्डाग्र पर पिहित कर दिया। लिच्छवि सैन्य के रणवाद्य बज उठे।

इसी क्षण, प्राचीर के पश्चिमोत्तर सन्धिप्रान्त पर उत्थापित प्रतोली में से विमुञ्चित एक बाण द्वाराट्टालक की ओर उड्डीयमान हुआ। ज्या की टंकार तथा शर का उत्पतन-स्वन सुन कर लिच्छवि सैन्य त्राहि-त्राहि कर उठा।

राजकुमारी के पृष्ठप्रान्त पर अवरूढ दुर्गपाल ने, निमेष मात्र में उत्प्लुत हो कर, राजकुमारी का दक्षिण पार्श्व अपने दीर्घाकार कलेवर से प्रच्छन्न कर लिया। दूसरे निमेष में, नृशंस नाराच उनके वाम स्कंध को वेध कर दक्षिण-पूर्व दिशा में चला गया। यदि दुर्गपाल ने प्रत्युत्पन्नमति का प्रदर्शन न किया होता, तो वह अस्त्र वत्सला का मस्तक वेध देता।

राजकुमारी ने व्यथा से व्यग्र होकर आर्तनाद किया। अपने उत्तरीय-पट्ट से दुर्गपाल का स्कन्ध परिवेष्टित करने के लिए उनके पाणि-पल्लव ऊपर की ओर उठे। किन्तु दुर्गपाल ने, राजकुमारी का वारण करते हुए, गर्जना की : "राजकुमारि ! सिंहध्वज का अभिवादन कीजिए।"

वत्सला ने बद्धाञ्जलि होकर अपना मस्तक नत किया। एक ओर खड़े अनिरुद्ध ने भी। समस्त लिच्छवि सैन्य वृज्जिसंघ के विजयध्वज का अभिवादन कर रहा था। रणवाद्य शान्त थे। केवल तूर्य का मङ्गल अव-घोष ही अन्तरिक्ष में व्याप्त था।

पूर्वदिशि के क्षितिजकूल पर मुस्कराता हुआ मरीचिमालि, अपने अनेक मयूखहस्त प्रसारित करके, सिंह-लाञ्छनांकित विजयध्व को आशी-र्वाद दे रहा था।

दुर्गपाल के क्षत-विक्षत स्कन्ध से शोणित की धार बह चली थी। किन्तु उसकी ओर एक बार भी दृष्टिपात किए बिना वे, वत्सला को पुरस्सरित करके, द्वाराट्टालक से अवरोहण करने लगे।

सोपान-श्रेणी के मध्यदेश में जाकर राजकुमारी रुकीं और दुर्गपाल की ओर मुख परावृत्त करके बोली : "आज आपने दो बार मेरे प्राणों की रक्षा की है, दुर्गपाल ! यदि मैं, इस जीवन में, एक बार भी आपके काम आ सकी तो अपने-आपको उऋण मान लूँगी।"

किन्तु दुर्गपाल वत्सला की बात सुन नहीं पाए। उनका सुदृढ़ पादद्वय सहसा प्रकम्पित हो उठा। दृष्टिपथ पर प्रसृत प्रातःकाल का स्वर्णिम संसार, सहसा, प्रगाढ़ तमिस्रा में तिरोहित होने लगा। उनके मुख पर से स्वेदवारि का निर्झर बह चला।

राजकुमारी ने, दुर्गपाल को मूर्च्छायमान देखकर, उच्चस्वर से पुकारा : "दुर्गपाल ! दुर्गपाल !! दुर्गपाल !!!"

किन्तु अनिरुद्ध, छिन्नमूल वृक्ष के समान, वत्सला के आलिंगन में आ गिरे। वत्सला आर्त-क्रन्दन कर उठीं। दुर्गद्वार के दोनों ओर अवस्थित लिच्छवि सैन्य भी, अश्रुविह्वल होकर, विलाप करने लगा। प्रांगण में पदचाररत चिकित्सक चकित होकर द्वाराट्टालक की ओर प्रधावमान हुए।

लिच्छवि दुर्ग के वयोवृद्ध शल्य-चिकित्सक ने, दुर्गप्राचीर पर शायमान अनिरुद्ध की नाड़ी-परीक्षा करके, वत्सला को आश्वासन दिया कि अनिरुद्ध केवल मूर्छित हुए हैं, मृत नहीं। तब वत्सला ने, धैर्य धारण करके, अपने हाथों से दुर्गपाल का कवच खोल डाला। नाराच ने अनिरुद्ध के स्कंध पर क्रूर आघात किया था। उनका स्कंध ही नहीं, ग्रीवातट का स्नायुमण्डल भी क्षत-विक्षत हो गया था। और प्रभूत रक्त-प्रस्राव के कारण कपिश-पंकिल हो गया था, दुर्गपाल की देह पर धृत कार्पास-कञ्चुक।

शल्य-चिकित्सक, अन्वेषण-शलाका लेकर, व्रण में शल्य की खोज करने लगे। दुर्गपाल की निश्चेष्ट देह पर एक दृष्टिपात करके, वत्सला ने प्रश्न किया : "भिषग्राज! दुर्गपाल की देहश्री सहसा इतनी पाण्डुर क्यों होती जा रही है?"

वृद्ध ने, गम्भीर भाव से, वत्सला की ओर देखा। किन्तु उनके मुख से एक शब्द भी नहीं निकला। वे मौन रह कर, अनिरुद्ध के व्रण पर औषध का आलेप करने लगे।

वत्सला व्याकुल हो गई और बोलीं : "आप मूक क्यों हैं, भिषग्राज! आप कुछ कहते क्यों नहीं?"

चिकित्सक ने कहा : "राजकुमारि! नाराच का मुखाग्र विष-विदिग्ध था। दुर्गपाल का व्रण विष-दूषित है।"

राजकुमारी पर जैसे वज्रपात हुआ हो। वे, वृद्ध के दोनों हाथ अपने हाथों में ले कर, करुण क्रन्दन कर उठीं : "दुर्गपाल के प्राणों की रक्षा कीजिये, भिषग्राज! यदि इनको कुछ हो गया तो मैं वैशाली में मुख दिखलाने योग्य नहीं रहूँगी। मैं जाह्नवी की जलधार में मग्न होकर प्राण दे दूँगी।"

वृद्ध ने व्रण पर लिप्त आलेप की आभा को परिवर्तित होते देखा।

और फिर वे प्रसन्नमुख होकर, आशापूर्ण वाणी में बोले : "आप चिंता न करें, राजकुमारि ! दुर्गपाल के प्राण संकट में नहीं हैं। इनके सौभाग्य से नाराच का गरल-गर्भित शल्य इनके शरीर में प्रविष्ट नहीं हो पाया। अन्यथा धनवन्तरि भी इनकी रक्षा नहीं कर पाते। किन्तु अब कोई भय नहीं। विष का प्रभाव विदूरित हो रहा है। ये कुछ काल तक मूर्छायमान रहेंगे। इनको विश्राम की आवश्यकता है।"

वत्सला ने, समीप में संरूढ़ नायक पिलिन्दि से अनुरोध किया : "नायक ! तुरन्त ही, दुर्ग के किसी विविक्त कक्ष में, दुर्गपाल की रोगशय्या प्रस्तुत करो।"

पिलिन्दि ने उत्तर दिया : "राजकुमारि ! आर्य अनिरुद्ध को आप लिच्छवि दुर्ग में ले चलें। इस दुर्ग के आपन्न होने की अनवरत आशंका है।"

वत्सला ने भ्रूकुञ्चित करके कहा : "आशङ्का ! कैसी आशङ्का, नायक ! अब इस दुर्ग में लिच्छवि सैन्य का सन्निवेश है।"

पिलिन्दि बोले : "राजकुमारि ! लिच्छवि-गण ने अभी तक इस दुर्ग के दुर्बल स्थलों की गवेषणा नहीं की। इस दुर्ग की निवेश-विधि से हमारा परिचय, अभी भी, अपूर्ण है। मगधराज किसी भी क्षण, अकस्मात्, पाटलिग्राम में आकर दुर्ग पर प्रत्याक्रमण कर सकते हैं। न जाने किस अज्ञात सुरंगसंचार से हो कर, मागध सैन्य दुर्ग में प्रवेश प्राप्त कर ले। न जाने किस गूढ़भित्ति-गह्वर अथवा भूगर्भगृह में प्रच्छन्न मागध सुभट, सुअवसर की प्रतीक्षा कर रहे हों। दुर्गपाल को इस स्थान पर रखने का परामर्श मैं आपको नहीं दूँगा।"

चिकित्सक ने, पिलिन्दि के कथन का अनुमोदन करते हुए, कहा : "राजकुमारि ! दुर्गपाल को स्यन्दन में शायमान करके अपने दुर्ग में ले चलिए। मैं इनके साथ जाऊँगा। आप इनके विश्राम में किसी विघ्न की आशंका मत करें। इनके मूर्छायमान शरीर में भी प्रचुर शक्ति अवशिष्ट है।"

स्यन्दन पर शायमान अनिरुद्ध के मस्तक को राजकुमारी ने अपने कोमल क्रोड में न्यस्त कर लिया। एक पार्श्व में वृद्ध चिकित्सक उपासीन

थे। तब धनञ्जय नायक, स्यन्दन का सारथ्य ग्रहण करके, मन्द्रगति से अश्व-संचालन करने लगे। पिलिन्दि और मल्लिक को, वत्सला ने मागध दुर्ग की देख-रेख के लिए छोड़ दिया।

राजकुमारी के मानस मे, बारम्बार, एक ही आशंका शब्दायित हो रही थी : "यदि अनिरुद्ध को कुछ हो गया तो !"

मुख खोलकर, उन्होंने "अनिरुद्ध" नहीं कहा। किन्तु अपने अन्तर्मन में, वे अब "दुर्गपाल" शब्द का उच्चारण करने में असमर्थ हो गईं।

दुर्गपाल तो वे थे जिन्होंने मागध दुर्ग का धर्षण किया था, जिन्होंने दो बार अपने प्राणों की अवहेलना करके, वत्सला के प्राणों का परित्राण किया था। ये नहीं, जो मूर्छायमान होकर वत्सला के आलिङ्गन में आ गिरे थे, जो अब असहाय अवस्था में जीवन और मरण के मध्य दोलायमान थे।

नहीं, ये नहीं थे दुर्गपाल। नीरव, निश्चेष्ट, निद्रायमान अनिरुद्ध पाटलिग्राम के प्रचण्ड प्रहरी नहीं थे। ये थे लिच्छवि-बंश के तरुण कुलपुत्र। लिच्छवि ललना के विह्वल मानस में, माता की ममता तथा प्रणयिनी का प्रेम प्रस्फुटित करने वाले वरपुरुष।

और वे स्वयं ? वे अब वैशाली के राजप्रासाद में निवास करने वाली राजकुमारी नहीं थीं। वे थीं लिच्छवि-कुल की करुणामयी कुलांगना। लिच्छवि पुरुष के प्रति, प्रणय एवं वात्सल्य से सम्पन्न हृदय वाली वरनारी।

वत्सला का अन्तर, सहसा, आकुल हो उठा कि अनिरुद्ध के विशाल वक्षस्थल में मुँह छुपा कर अपने उष्ण अश्रुवर्षण से, उनके निस्पन्द मानस में प्रसुप्त प्रणय को प्रस्फूर्त कर दें। अनिरुद्ध के कर्णकूप को, अपने करुण क्रन्दन से आपूर्त करके, उनके नीरव कण्ठ में कुण्ठित प्रणयनिवेदन को क्वणित कर दें। किन्तु पार्श्व में उपासीन चिकित्सक तथा रथाग्र पर आरूढ़ धनञ्जय को देखकर, उन्हें संयम का प्रदर्शन करना पड़ा।

दुर्गपाल को लिच्छवि दुर्ग में छोड़कर, वत्सला पुनरेण मागध दुर्ग में लौट आईं। पिलिन्दि के शब्द उन्हें स्मरण थे : "मगधराज, किसी भी क्षण, अकस्मात् पाटलिग्राम में आकर, दुर्ग पर प्रत्याक्रमण कर सकते हैं।"

राजकुमारी को, पिलिन्दि एवं भल्लिक पर पूर्ण विश्वास था। वे जानती थीं कि उन दोनों में से एक नायक भी, दुर्ग रक्षा का भार सुचारु रूप से वहन करने में समर्थ है। फिर भी उनका मन नहीं माना। दुर्ग-पाल की अनुपस्थिति में पाटलिग्राम के दुर्ग-त्रय की रक्षा का भार, वे स्वयं वहन करने के लिए व्यग्र हो उठीं। जिस मागध दुर्ग को अनिरुद्ध ने अपने प्रागपण से हस्तगत किया था, उसकी सुरक्षा में त्रुटि हुई तो वे अनिरुद्ध के सम्मुख लाज से मर जाएँगी।

राजकुमारी, मागध दुर्ग के प्रान्त-प्रान्त में, पर्यटन करके, प्रत्येक स्थल का सूक्ष्म परीक्षण करने लगीं। प्राचीर-चतुष्टय पर पदचार करके, उन्होंने प्रत्येक अट्टालक, प्रतोली, इन्द्रकोप तथा प्रधावितिका का परिचय प्राप्त किया। दुर्ग के चारों द्वारों पर जाकर, कवाट, परिघ तथा शस्त्र-शाला का अवलोकन किया। परिखा की प्रदक्षिणा करके, उसके आयाम एवं गाम्भीर्य की गवेषणा की। आयुधागार में प्रविष्ट होकर, वहाँ पर संगृहीत स्थित यन्त्र, चल-यन्त्र, हलमुख तथा अन्यान्य शस्त्रास्त्र-समूह का संख्यात्व करवाया। अश्वशाला के अश्व तथा हस्तिशाला के हस्ती गिने। कोष्ठागारों में जाकर, खाद्यान्न तथा भैषज्य के परिमाण एवं शौचाशौच का अनुमान लगाया।

अन्ततः, राजकुमारी को पूर्ण विश्वास हो गया कि दुर्ग में, दुर्गव्यसन उत्पन्न करने वाला, कोई दुर्बल स्थल नहीं है और दुर्गरक्षा के लिए प्रयोजनीय प्रत्येक उपकरण प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत है। तब वे लिच्छवि तथा मागध हताहतों का उचित प्रबन्ध करने मे दत्तचित्त हुई।

वत्सला ने, लिच्छवि सैन्य द्वारा बंदीकृत मागध सैनिकों को मुक्त कर दिया। मागध सुभट, अपने मृत योद्धाओं का दाहसंस्कार करके, अपने आहत योद्धाओं को राजगृह ले जा सकते थे।

वीरगति-प्राप्त लिच्छवि सैनिकों का अग्नि-संस्कार, उन्होंने लिच्छवि-विधानोक्त रीति से करवा दिया। लिच्छवि आहतों की सेवा-शुश्रुषा के लिए चतुर चिकित्सक नियुक्त किए।

तब, राजकुमारी ने लिच्छवि सैन्य की जनक्षति का अनुसन्धान किया। सुन्दरिक नायक ने, अपने अखिल पञ्चाशतक सहित, स्वर्गारोहण

किया था। दुर्गपाल के पञ्चाशतक में से केवल दश सुभट बचे थे। सबके सब क्षत-विक्षत। नायक पिलिन्दि तथा नायक भल्लिक के एक शत योद्धाओं में से साठ ने वीरगति प्राप्त की थी तथा बीस अतिशय आहत हुए थे। वत्सला के साथ कुशीलव-वेष में जाने वाले द्वादश लिच्छवि योद्धाओं ने भी प्राण विसर्जन किए थे। केवल नायक धनञ्जय का पञ्चाशतक पूर्णरूपेण अक्षुण्ण रहा था। सो भी इसलिए कि उनको दिए गए कठोर आदेश के अनुरूप, उन्होंने दुर्गप्राङ्गण में प्रस्तुत युद्ध को देखकर भी, आयुधागार इत्यादि पर अपना नियोग अशून्य रखा था। और, लिच्छवि सैन्य के अप्रतिम महारथी, अनिरुद्ध......

दुर्गपाल का ध्यान, वत्सला से एक क्षण के लिए भी विस्मृत नहीं हुआ था। वे, बारम्बार, मागध दुर्ग में अपना कर्म स्थगित करके, लिच्छवि-दुर्ग की ओर अपना रथ धावमान करती थीं। इस आशा से कि अनिरुद्ध, नेत्र उन्मीलित करके, एक बार उनको निहारेंगे, अधरोष्ठ स्फुरित करके दो अस्फुट शब्द उनसे कहेंगे। किन्तु एक अहोरात्र अतिवाहित हो गया, और दुर्गपाल की मूर्छा भङ्ग नहीं हुई। न उन्होंने नयन उन्मीलित किए, न अधरोष्ठ स्फुरित।

दूसरे अहोरात्र का अर्धभाग भी अतीत हो चला। दुर्गपाल अभी भी अपनी रोगशय्या पर मृतप्राय पड़े थे। तैलप्रदीप द्वारा प्रकाशित कक्ष में, रोगशय्या के पार्श्व पर, विजड़ित-सी बैठी थीं वत्सला। शरीर पर मलिन परिधान। शिर पर अस्नात केशपाश का अस्तव्यस्त जटाजूट। पाण्डुर मुख। विकल मन। आर्द्र नयन। वत्सला ने न एक शब्द उच्चारण किया, न एक बार भी अपना आसन परिवर्तित किया।

पीठिका पर उपासीन वृद्ध चिकित्सक ने कहा : "दुर्गपाल के निमित्त चिन्ता का आप परित्याग कर दें, राजकुमारि! आपका स्नान-भोजन दो दिन से सम्पन्न नहीं हुआ। इस प्रकार तो आप भी रुग्ण हो जाएँगी।"

वत्सला ने विह्वल वाणी में पूछा : "ये बोलते क्यों नहीं, भिषग्राज!"

"बोलेंगे, राजकुमारि! अवश्य बोलेंगे! आज की रात्रि अतीत होने के पूर्व ही बोलेंगे।"

किन्तु वत्सला तो अनिरुद्ध का कण्ठस्वर सुनने के लिए आतुर थीं।

वे चाहती थीं कि अनिरुद्ध उसी क्षण बोल उठें। चिकित्सक के आश्वासन से उनका समाधान नहीं हुआ। वे, पाषाण प्रतिमा के समान, रोगशय्या के तटान्त पर उपासीन रहीं।

सर्वथा स्थितप्रज्ञ रहकर कर्त्तव्यपूर्ति करते जाना ही राजकुमारी की शिक्षा थी। यह शिक्षा उन्होंने अपने पिता से प्राप्त की थी। अपने परिवार में चरितार्थ होते देखा था इस शिक्षा को। लिच्छवि-परम्परा, प्रतिपल, इस शिक्षा का स्मरण करवाती थी। विश्व की समस्त विभीषिका सम्भूत होकर शिर पर छा जाए, किन्तु उसके प्रति अवज्ञा एवं अवगणना का भाव धारण करके, जीवनपथ पर आगे पद रखते जाओ। यह था वत्सला का मज्जागत संस्कार। माँ के स्तन्य के साथ वत्सला ने इस संस्कार का पान किया था। पिता के वात्सल्य में विकीर्ण था यह संस्कार। वैशाली के वातास में भी।

किन्तु, हठात्, उनकी यह शिक्षा भी आज शिथिल होने लगी। यह संस्कार भी स्खलित हो रहा था। प्रतिपल अविचलित रहने वाली वत्सला आज, सहसा, विचलित हो गईं।

सुराप्रमत्त मागध सुभट के अनाचार के कारण अनेक लिच्छवि सुभट परलोक-गामी हुए थे। अनेक लिच्छवि सुभट आहत होकर रोगशय्या पर शायमान थे।

मागध दुर्ग का धर्षण करते हुए हताहत लिच्छवि-गण के लिए वत्सला पश्चाताप नहीं करतीं। उनके शौर्य की सुवर्ण-गाथा सुनकर उनका वक्ष गर्व से विस्फारित हो जाता। किन्तु लिच्छवि सुभट-समवाय उनकी अपनी रक्षा के हेतु संत्रस्त हुआ था। संकेत-बाण के विमुञ्चन से पूर्व। यदि उनकी रक्षा के लिए लालायित न होकर, लिच्छवि सैन्य साहस-योजना के अनुरूप आचरण करता, तो लिच्छवि रक्त का एक विन्दु भी अपव्ययित नहीं होता।

वत्सला, वारम्वार, आर्द्र कण्ठ से कुनमुना उठती थीं: "मेरे क्षुद्र, अकिञ्चन प्राणों का परित्राण करने के लिए कितने लिच्छवि मारे गए! कितने लिच्छवि आहत हो गए! मैंने, स्वयं हठ करके, अपने प्राण संकट-ग्रस्त किए थे। वृज्जिसंघ की परिषद का परामर्श लिए विना। वैशाली

के अष्टकुलिक को सूचित किए बिना। राजप्रासाद में विराजमान राजा के आदेश की अपेक्षा न करके। पिता का आशीर्वाद अपने साथ न लेकर। मैंने ही लिच्छवि-मर्यादा का मान न रखकर, मागध सैन्य का मनोरञ्ज करने के लिए, नर्तकी के निकृष्ट वेश में, एकाकी-शत्रुदुर्ग में प्रवेश किया था। मैं ही मदोन्मत्त मागध मुख्य से त्रस्त होकर, त्राण पाने के लिए, लिच्छवि सैन्य की ओर प्रधावमान हुई थी।

"मैं मागध मुख्य को मारकर स्वयं क्यों न मर गई? उस नराधम की कटि पर आलम्बित असिलता क्या मेरे लिए अप्राप्य थी? मेरे शव के लिए, लिच्छवि सुभट सम्भवत: समय के पूर्व संग्राम में रत नहीं होते।

"और मैं द्वाराट्टालक पर ध्वजोत्तोलन करने क्यों गई थी? प्रतोली में प्रच्छन्न मागध धनुर ने मेरे ही प्राण हरने के लिए उस मारात्मक शर का सन्धान किया था। अनिरुद्ध ने मेरा मस्तक विद्ध होने से बचाने के लिए ही तो लोह आवरण के समान अपना शरीर अग्रसर किया था। मेरे इस मतिविहीन मस्तिष्क को विद्ध होने से बचाने के लिए!

"मैं मृत लिच्छवि-वृन्द के बंधु-बान्धव को क्या उत्तर दूँगी? किस मुख से मैं उनके माता-पिता के सन्मुख संवेदना प्रकट करूँगी? मैं क्या कह कर, उनकी पत्नियों को, पुत्र-पुत्रियों को, धैर्य धारण कराऊँगी? वे सब मेरी ओर देखकर, मन ही मन, कहेंगे कि मैं उनके पुत्र, उनके पति, उनके पिता, उनके भ्राता की प्राणघातिनी हूँ। क्या मैं, ग्लानि के दुर्वह भार से, धरा में नहीं धँस जाऊँगी?

"और वृज्जिसंघ की परिषद को मैं क्या प्रत्युत्तर दूँगी? अष्टकुलिक का अनादर किस प्रकार सहन करूँगी? वृज्जिसंघ के राजा से क्या निवेदन करूँगी? वे सब जब कहेंगे कि मेरी ही बालबुद्धि के कारण लिच्छवि-मर्यादा का मान-मर्दन हुआ, लिच्छवि-कुल पर कलङ्क लगा, अनेक लिच्छवि सुभट हताहत हो गए, लिच्छवि-दुर्ग के अप्रतिहत दुर्गपाल अनिरुद्ध......"

राजकुमारी अपने आंचल में मुख छुपाकर अश्रुमोचन करने लगीं।

रात्रि का मध्यम याम अतीत हो चला। वृद्ध चिकित्सक, श्रान्त होकर, बारम्बार विजृम्भण कर रहे थे। किन्तु राजकुमारी वत्सला दुर्गपाल के मुख पर दृष्टि आविष्ट किए अचल उपासीन रहीं।

तब, सहसा, अनिरुद्ध ने शय्या से उत्थान करने की चेष्टा की। चिकित्सक ने, उनके दोनों स्कन्ध पकड़कर, उन्हें पुनः शायमान कर दिया। प्रसन्न होकर वत्सला की ओर देखते हुए, वृद्ध बोले : "यह देखो, राजकुमारि! दुर्गपाल की देह में संज्ञा का संचार हो रहा है।"

वत्सला ने व्यग्र होकर पूछा : "क्या ये बोलेंगे, भिषग्राज !"

वृद्ध ने उत्तर दिया : "हाँ, बोलेंगे। अभी बोलेगे।"

इसी समय, अनिरुद्ध ने अस्फुटोच्चारण किया : "सुन्दरिक...... राजकुमारी ......की......रक्षा......

वत्सला का सुर्झाया हुआ मुखकमल खिल उठा। अनिरुद्ध का करद्वय अपने करद्वय में ग्रहण करके, वे बोलीं : "राजकुमारी की चिन्ता मत कीजिए दुर्गपाल ! राजकुमारी सुरक्षित है। आपके सैन्य ने मागध दुर्ग पर अधिकार किया है।"

किन्तु, अनिरुद्ध ने जैसे सुनी ही नहीं वत्सला की बात। वे वारम्वार एक ही अस्फुटोच्चारण करते रहे : "सुन्दरिक ! राजकुमारी...की... रक्षा...करो...

वत्सला ने पुनरेण चिन्तित होकर चिकित्सक की ओर देखा। वृद्ध ने मुस्कराते हुए कहा : "राजकुमारि ! अभी ये आपकी बात सुनने में असमर्थ हैं।"

राजकुमारी ने प्रश्न किया : "किन्तु क्यों, भिषग्राज !"

"इनकी चेतना अभी तक बहिर्मुखी नहीं हुई है। ये अभी भी अन्तर्जगत में विचरण कर रहे हैं। अतीत काल में।"

"कुछ उपाय कीजिए, भिषग्राज ! दुर्गपाल मेरी चिन्ता करके संत्रस्त हैं। आप किसी प्रकार इनको समझाइए कि मेरे अकिञ्चन प्राण......

दुर्गपाल ने पुनः अस्फुटोच्चारण किया : "सिंहध्वज......का...... अभिवादन......कीजिए......राजकुमारि......

वत्सला ने उनके कान के पास मुख ले जाकर कहा : "मैं सिंहध्वज का अभिवादन कर चुकी, दुर्गपाल ! सिंहध्वज अब मागध दुर्ग के द्वाराट्टालक पर अबाध उड्डीयमान है।"

किन्तु दुर्गपाल ने कुछ नहीं सुना। वे उसी प्रकार अस्फुटोच्चारण

करते रहे। कभी वे सुन्दरिक को राजकुमारी की रक्षा करने का आदेश देते थे। कभी राजकुमारी से अनुरोध करते थे कि वे सिंहध्वज का अभिवादन करें।

और चिकित्सक के द्वारा किए गए अनेक अनुनय सुन कर भी, वत्सला एक क्षण के लिए वहाँ से विलग नहीं हुई। वे प्रतिपल यही प्रत्याशा करती रहीं कि अब दुर्गपाल, अपने नेत्र उन्मीलित करके, उनकी ओर देखेंगे, अब दुर्गपाल उनको सम्बोधित करके दो शब्द कहेंगे। वे निर्निमेष नयनों से दुर्गपाल का मुख निहार रही थीं। दुर्गपाल की प्रत्येक चेष्टा के प्रति सावधान।

प्रत्यूष की वेला में अनिरुद्ध ने नेत्रोन्मीलन किया। वृद्ध चिकित्सक, रात्रि-जागरण से श्रान्त हो कर, सो गए थे। वत्सला की दृष्टि से दुर्गपाल की दृष्टि एक क्षण के लिए मिली। तन्द्रा के भार से अभिभूत अपने नयन-पुट उन्मीलित करने के प्रयास में, अनिरुद्ध ने अपने मुख पर अवनत वत्सला के मुख को देख कर कहा : "राजकुमारि !"

वत्सला ने गद्गद् होकर कहा : "दुर्गपाल ! मैं ही हूँ। वत्सला।"

"आप......सुरक्षित......हैं......

"मैं सर्वथा सुरक्षित हूँ, दुर्गपाल !"

अनिरुद्ध के मुख से शान्ति की एक दीर्घ निश्वास निर्गत हुई। और दूसरे क्षण वे, नेत्र निमीलित करके, गहन निद्रा में निमज्जित हो गए। उनका ललाटतट, नेत्रोन्मीलन तथा शब्दोच्चारण के प्रयास में प्रादुर्भूत स्वेदकण से सिक्त था। वत्सला ने अपने उत्तरीय के आंचल से, बारम्बार, दुर्गपाल का भाल प्रमार्जित किया।

तब राजकुमारी ने, चिकित्सक को जगा कर, दुर्गपाल का वार्तालाप उनसे निवेदित किया। चिकित्सक ने, दुर्गपाल की नाड़ी तथा श्वासोच्छ्वास का परीक्षण करके, कहा : "राजकुमारि ! दुर्गपाल की मूर्छा भंग हो चुकी। संकट समाप्त हो गया। अब आप इनकी चिन्ता त्याग कर करणीय कर्म करें।"

वत्सला ने मौन रह कर कक्ष से निष्क्रमण किया।

: ४ :

उसी दिन अपराह्न के समय, वृज्जिसंघ के राजा आर्यश्रेष्ठ महाली की नौका, अकस्मात्, लिच्छवि दुर्ग के जलद्वार पर आ लगी।

मागध दुर्ग का पतन होते ही, दुर्गपाल अनिरुद्ध ने द्रुतगामी दूत द्वारा समस्त समाचार आर्यश्रेष्ठ महाली के निकट वैशाली में निवेदित कर दिया था। दूत जिस समय भागीरथी के उत्तरवर्ती तट पर उतर कर अश्वारोहण कर रहा था, उसी समय राजकुमारी और दुर्गपाल, ध्वजोत्तोलन के निमित्त, मागध-दुर्ग के द्वाराट्टालक पर दण्डायमान थे।

तदनन्तर, दो अहोरात्र अतिवाहित हो गए, किन्तु पाटलिग्राम से कोई अन्य समाचार आर्यश्रेष्ठ को उपलब्ध नहीं हुआ। पिता का हृदय अपनी एकमात्र अवशिष्ट संतान के लिए आकुल हो उठा।

वैशाली में अनेक प्रवाद-अपवाद का प्रसार हो रहा था : मागध-दुर्ग पर पराक्रम करते हुए पाटलिग्राम के लिच्छवि दुर्गपाल मारे गए; नर्तकी का वेष धारण करके मागध दुर्ग में प्रवेश करने वाली राजकुमारी वत्सला का शत्रु ने अपहरण कर लिया; मगधराज अजातशत्रु, महती सेना साथ लेकर, लिच्छवि दुर्ग का पर्यवसान करने के लिए पाटलिग्राम की ओर प्रयाण कर रहे हैं। प्रवाद-पुञ्ज के प्रति संदिग्ध रह कर भी, राजा महाली चिन्ताग्रस्त होने लगे। वत्सला अथवा दुर्गपाल अनिरुद्ध द्वारा प्रेषित कोई विश्वस्त समाचार उनको नहीं मिल रहा था।

प्रथम समाचार-प्रेषण के समय अनिरुद्ध ने निवेदन किया था कि राजकुमारी वत्सला पूर्णतया सुरक्षित हैं और मागध दुर्ग पर सिंहध्वज उत्तोलित करके वे शीघ्र ही वैशाली की ओर प्रयाण करेंगी। किन्तु न वत्सला आई, न उनका विश्वस्त समाचार। न अनिरुद्ध ने ही कोई अन्य प्रेषित किया।

वैशाली के लिच्छवि प्रमुख, राजप्रासाद में आकर, चिन्ता प्रगट करने के साथ-साथ, राजकुमारी तथा दुर्गपाल के आचरण की विवेचना भी करने लगे। वत्सला तथा अनिरुद्ध ने, परिषद का परामर्श ग्रहण किए बिना, अष्टकुलिक की आज्ञा लिए बिना, वृज्जिसंघ के विधान की अवहेलना करके, पूज्य प्रवेणी पुस्तक द्वारा अप्रज्ञप्त आचरण किया था।

पाटलिग्राम में, आर्यश्रेष्ठ के आगमन की कोई अग्रिम सूचना नहीं आई थी। नवागत नौका पर वृज्जिसंघ का राजचिह्न देख कर, जलद्वार के प्रहरी प्रथमतः विस्मित हो गए। फिर, नौका से अवरोहण करते हुए राजा को पहिचान कर, प्रहरीगण ने उनका जयघोष किया। वह जयघोष समस्त लिच्छवि दुर्ग में व्याप्त हो गया। दुर्गस्थ लिच्छवि-गण समस्त कर्म त्याग कर, राजा का दर्शन करने के लिए, जलद्वार की ओर प्रधावमान हुए।

वत्सला, अनिरुद्ध के कक्ष में, अनिरुद्ध की रोगशय्या के तटान्त पर, मस्तक न्यस्त करके, तन्द्राभिभूत थीं। जयघोष सुनकर वे भी जाग गईं। प्रहरी ने आकर सूचना दी कि लिच्छवि-कुल-तिलक आर्यश्रेष्ठ राजा महाली दुर्ग में पधारे हैं और राजकुमारी तथा दुर्गपाल से साक्षात् करने के लिए, शीघ्र ही कक्ष की ओर आएँगे।

राजकुमारी, गात्रोत्थान करके, द्वार की ओर जाने लगीं। एक बार उन्होंने निद्रायमान दुर्गपाल की देह पर दृष्टिपात किया। दुर्गपाल भी जयघोष सुनकर जाग चुके थे। वे, वत्सला को व्यग्र देखकर, क्षीण हँसी हँसते हुए बोले:

"राजकुमारि! आर्यश्रेष्ठ अनुसन्धान करने लगें तब इस समस्त काण्ड का दोष मुझ पर आरोपित कर दीजिएगा। आप कह दीजिएगा कि मेरे अनुरोध का अनुसरण करके ही आपने......"

राजकुमारी ने, क्षुब्ध-सी होकर, उत्तर दिया: "दुर्गपाल! आप मुझे मिथ्या-भाषण की प्रेरणा दे रहे हैं।"

"मिथ्या कैसे, राजकुमारि! मैं ही आपका आह्वान करने के लिए वैशाली गया था। आप तो मुझे प्रस्तुत करने के लिए पाटलिग्राम नहीं आई थीं।"

राजकुमारी ने कोई उत्तर नहीं दिया। अनिरुद्ध फिर हँसने लगे। वत्सला ने रुष्ट होकर प्रश्न किया: "आप हँस क्यों रहे हैं, दुर्गपाल!"

अनिरुद्ध ने कहा: "आपको भयभीत देखकर।"

"भय नहीं लगेगा?"

"किस बात का भय, राजकुमारि!"

"पिताजी जो आ रहे हैं।"

"वे राजा भी तो हैं, राजकुमारि ! आपके पिता आपके साथ न्याय न कर पाएँ। किन्तु वृज्जिसंघ के राजा तो अपनी न्यायबुद्धि के लिए समस्त आर्यावर्त में अद्वितीय हैं।"

"न्याय से ही तो भय लग रहा है, दुर्गपाल !"

"न्याय से भय ! वृज्जिसंघ की राजकुमारी को !!"

"मैंने वृज्जिसंघ के विधान का हनन किया है।"

"वह अपराध करने में आप अकेली नहीं हैं। आपका एक सहचर भी है, राजकुमारि !"

"अपराध का सहचर ! हाय रे भाग्य !"

वत्सला मुस्कराने लगीं। अनिरुद्ध ने उनके उपालम्भ का उत्तर नहीं दिया।

राजा ने कक्ष में प्रवेश किया तो वत्सला ने उनका चरण स्पर्श करके, साञ्जलि अभिवादन किया। दुर्गपाल भी अभिवादन के लिए शय्यात्याग करने के लिए तत्पर हुए। किन्तु राजा ने, स्नेहसिक्त वाणी में, उनका उत्थान निषिद्ध कर दिया।

दर्शनीय पुरुष थे आर्यश्रेष्ठ महाली। सिंहोरस्क। बलिष्ठ-तनु। उनकी दीर्घाकार देह पर, तरुण-लिच्छवि-सुलभ तेजोदीप्ति, वार्धक्य के साथ विकट विग्रह कर रही थी। उनका गौरव-गर्वित मुख-मण्डल, श्वेतवर्ण केशश्मश्रु से मंडित था। जिस किसी को भी नतमस्तक होने की प्रेरणा देने वाला मुखमण्डल। उनका ओष्ठ, विक्षत होकर, द्विधा विभक्त था। और उनके अनावृत गात्रों पर विद्यमान थे अनेक युद्धों में उपार्जित, विविध आकार के व्रण-किण। किन्तु शत्रु के समस्त प्रहार उन्होंने अपने शरीर के पुरोभाग पर सहे थे। पृष्ठ-भाग पर एक भी नहीं।

अनिरुद्ध की शय्या के समीप पीठिका पर उपासीन होकर, आर्यश्रेष्ठ ने उनका कुशल-क्षेम पूछा। कक्ष में प्रत्यागत चिकित्सक से आर्यश्रेष्ठ ने अनुरोध किया कि वे, यथाशीघ्र, पाटलिग्राम के प्रचण्ड प्रहरी को पुष्ट करके रोग-शय्या से विमुक्त कर दें। तदनन्तर, आर्यश्रेष्ठ महाली वत्सला को अपने साथ लेकर, कक्ष से बाहर चले गए।

मागध दुर्ग का निरीक्षण करते हुए राजा महाली ने वत्सला से प्रश्न किया : "राजगृह से क्या समाचार मिला है, वत्से !"

वत्सला ने उत्तर दिया : "मगधराज ससैन्य मगध के पश्चिमवर्ती प्रत्यन्त की ओर प्रयाण कर रहे हैं।"

"क्या वत्स मगध पर आक्रान्त है ?"

"नहीं, पिताजी ! भर्ग-गण ने, वत्स के विरुद्ध विद्रोह किया है मगधराज भर्गसंघ की सहायता के लिए जा रहे हैं।"

"किन्तु भर्ग-गण को प्रोत्साहित करने में तो अवन्ति का हाथ है।"

"अवन्ति वत्स से अनुरोध कर रहा है कि भर्ग-गण का दमन न करे।"

"भर्ग-गण के साथ मगध की मित्रता तो शुभ नहीं, वत्से !"

"अशुभ है, पिताजी ! किन्तु भर्ग-गण को सुबुद्धि कौन प्रदान करे ? सुमुमारगिरि के संस्थागार में मगधराज का कृत्यपक्ष सुसंगठित है।"

आर्यश्रेष्ठ मौन हो गए। एक क्षण के उपरान्त, उन्होंने पुनरेण प्रश्न पूछा : "चम्पा में सन्निविष्ट मागधवाहिनी क्या पाटलिग्राम को आक्रान्त कर सकती है, वत्से !"

वत्सला बोलीं : "उसका भय नहीं, पिताजी ! चम्पा में विद्रोह की आशंका है। चम्पा में सन्निविष्ट मागध सेना का प्रथम कर्त्तव्य है उस विद्रोह का दमन। वह सेना अनेक दिन तक इस ओर अभिमुख न हो सकेगी।"

लिच्छवि दुर्ग में लौटकर, आर्यश्रेष्ठ महाली ने राजकुमारी से मागध दुर्ग के धर्षण का वृत्तान्त आद्योपान्त सुना। वत्सला ने विस्तरशः निवेदन किया कि किस प्रकार दुर्गपाल अनिरुद्ध, मगध के महामात्य, वर्षकार ब्राह्मण, द्वारा दुर्गोपलम्भ का उपाय जानकर, वैशाली गए; किस प्रकार उन दोनों ने, परस्पर मन्त्रण करके, साहस-समारम्भ का निश्चय किया; किस प्रकार वे, नर्तकी बनकर, मागध दुर्ग में प्रविष्ट हुईं; किस प्रकार दुर्गपाल ने, मागध मुख्य से उनका परित्राण करने के लिए, असमय में ही, अप्रतिम पराक्रम किया; और किस प्रकार, ध्वजोत्तोलन के समय, मागध धनुर्धर द्वारा विमुञ्चित विष-विदग्ध बाण ने दुर्गपाल की प्रत्युत्पन्न-मति के कारण, उनका मस्तक विद्ध न करके, दुर्गपाल का स्कंध विक्षत कर दिया।

वत्सला ने केवल यह नहीं बतलाया कि दुर्गोपलम्भ के उपरान्त, मगध के विरुद्ध मण्डल-प्रोत्साहन करके, अजातशत्रु को अपदस्थ करने की योजना भी उन दोनों ने निर्णीत की थी।

वृत्तान्त सुनाते समय, वत्सला ने अनेक बार आर्यश्रेष्ठ की मुखाकृति को लक्ष्य किया। मानो वे उस मुखाकृति पर मुखरित होने वाले हावभाव से, आर्यश्रेष्ठ के मानस में उद्भूत प्रतिक्रिया की प्रतीति करना चाहती हों। किन्तु राजा के मुख पर एक रेख भी परिस्फुटित न हुई। वे नितान्त शान्त भाव से सब सुनते रहे। अन्ततः वत्सला ने ही प्रश्न किया : "हमारे कृत्य के विषय में आपका क्या मत है, पिताजी !"

आर्यश्रेष्ठ, गम्भीर वाणी में, बोले : "तुम्हारा कृत्य एक बात है, वत्से ! दुर्गपाल का कृत्य दूसरी बात।"

"किन्तु हमने तो एकमत होकर ही सब कुछ किया है।"

"दुर्गपाल वृज्जिसंघ के पदस्थ राजपुरुष हैं।"

"और मैं, पिताजी !"

"तुम गणराज्य के किसी पद पर नियुक्त नहीं। तुम केवल राजा की कन्या हो। लिच्छवि-गण तुम्हारा मान करके तुमको राजकुमारी कह-कर सम्बोधित करते हैं। किन्तु वह सम्बोधन तुम्हारे किसी अधिकार का द्योतक नहीं।"

वत्सला ने, एक क्षण मौन रह कर, पुनः प्रश्न किया : "दुर्गपाल के कृत्य के विषय में आपका क्या मत है ?"

आर्यश्रेष्ठ ने उत्तर दिया : "मेरे मतामत का कोई मूल्य नहीं, वत्से ! दुर्गपाल का विचार वृज्जिसंघ की परिषद करेगी। परिषद ही इस विषय में प्रमाण है।"

"और मेरा विचार ?"

"मैं स्वयं।"

"तो आप अभी मेरे विषय में अपना विचार व्यक्त कीजिए।"

"मैं तुम्हारे स्थान में होता तो वही करता जो तुमने किया है।"

वत्सला ने, विह्वल होकर, पिता के अंक में मुख छुपा लिया। उनके नयनों में अवरुद्ध अश्रुजल मुक्त होकर बहने लगा। अपत्य-प्रेम से आकुल

राजा महाली भी, स्नेह-स्पर्श द्वारा पुत्री का शिर-संवाहन करते हुए, अश्रु-मोचन करने लगे।

प्रकृतिस्थ होने पर, पिता और पुत्री ने, पुनरेण, अनिरुद्ध के कक्ष में प्रवेश किया। राजा महाली ने दुर्गपाल से कहा : "वत्स ! एक पिता अपनी पुत्री के प्राणरक्षण के लिए आभार-निवेदन करता है।"

दुर्गपाल ने उत्तर दिया : "आप मुझे आशीर्वाद दें, आर्यश्रेष्ठ ! कि मैं वृज्जिसंघ की सेवा में ही प्राण-विसर्जन करूँ।"

अनिरुद्ध को यथाशीघ्र स्वास्थ्य-लाभ का आशीर्वाद दे कर, आर्यश्रेष्ठ महाली वर्षकार ब्राह्मण से साक्षात् करने के लिए चले गए।

तब वत्सला ने, हँसते-हँसते, दुर्गपाल से कहा : "आर्यश्रेष्ठ कह रहे थे कि आपके दुष्कृत्य का विचार परिषद में किया जाएगा।"

अनिरुद्ध ने पूछा : "और आपके दुष्कृत्य का विचार, राजकुमारि !"

"आप मुझे राजकुमारी कह कर सम्बोधित करना त्याग दें तो बतला सकती हूँ।"

"सो कैसे सम्भव है ? आप हैं ही राजकुमारी।"

"मैं वत्सला भी तो हूँ। आप मेरा नाम लेकर मुझे सम्बोधित कर सकते हैं।"

"यह दुस्साहस मेरे लिए अचिन्तनीय है, राजकुमारि !"

"आप यदि यह दुस्साहस करने से विरत रहे तो मैं परिषद के समक्ष उपस्थित होकर आपके विरुद्ध साक्ष्य दूँगी और परिषद से प्रार्थना करूँगी कि आपको कठोर दण्ड दे।"

"अहोभाग्य ! वह दण्ड मेरे लिए अभूतपूर्व वरदान होगा, राज-कुमारि !"

"आप बड़े हठीले हैं, पाटलिग्राम के दुर्गपाल !"

"आपसे हठीला नहीं, वृज्जिसंघ की राजकुमारि !"

वत्सला हँसने लगीं। अनिरुद्ध भी। उन दोनों की हँसी में आनन्द था। परस्पर प्रणय का पुलक भी। किन्तु संयम का परित्याग न पाटलि-ग्राम के दुर्गपाल ने किया, न वृज्जिसंघ की राजकुमारी ने।

: ४ :

लिच्छवि दुर्ग के एक दीपालोकित आगार में मगध के मध्य-वयस्क महामात्य, वर्षकार ब्राह्मण, उपासीन है। प्रतनु लम्बाकार देह। कार्पास-कंचुक एवं अधोवस्त्र से आच्छादित। शुष्क, कर्कश मुखाकृति। केश-श्मश्रु-विहीन। सतर्क, तीक्ष्ण नेत्रद्युति। अन्तर में अवतीर्ण हो जाने वाली। चन्दन-तिलक-चर्चित, चिन्तन-रेखा-ग्रस्त ललाट। भ्रू-द्वयविहीन-सा। पृथुल नासिका। श्वासोच्छ्वास के श्रम से प्रतिपल प्रपीड़ित-सी।

वर्षकार ब्राह्मण, वारम्वार, अपने मुण्डित मस्तक का दक्षिण हस्त के करतल से स्पर्श करते हैं। और, वारम्वार, सिहर उठते है।

परिचारिक ने प्रदीपपादप पर प्रस्तुत प्रदीप-भाजन में कुछ और तैल डालकर वर्ती को वर्धित कर दिया। तदुपरान्त उसने वर्षकार ब्राह्मण से निवेदन किया : "आर्य! वृज्जिसंघ के राजा, आर्यश्रेष्ठ महाली. आपसे साक्षात् करने के लिए इस ओर आ रहे हैं।"

वर्षकार ब्राह्मण, परिचारक-व्यतिरिक्त, किसी भी लिच्छवि से वार्तालाप करने के लिए व्यग्र थे। उन्हें लिच्छवि दुर्ग में शरणापन्न हुए एक मास से अधिक हो चुका था। प्रथम दो-तीन दिवस तक, दुर्गपाल के साथ उनका संलाप होता रहा था। किन्तु, तदनन्तर, परिचारकों के अतिरिक्त किसी ने उनके आगार में प्रवेश नहीं किया था। न वे ही, आगार के द्वार का अतिक्रमण करके, अन्यत्र पदार्पण कर पाए थे।

आगार में उनके लिए सब प्रकार की सुख-सुविधा का समुचित प्रबन्ध था। उनकी सेवा करने के लिए कई परिचारक प्रतिपल प्रस्तुत रहते थे। किन्तु आगार का प्रत्येक प्रान्त, सजग प्रहरीगण द्वारा, प्रतिक्षण प्रत्यवलोकित था। वे, दुर्ग के अन्तरस्थ अथवा बहिरस्थ, किसी व्यक्ति से भी सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकते थे। न ही परिचारक अथवा प्रहरी उनके विविध प्रश्नों का प्रत्युत्तर देते थे।

लिच्छवि दुर्ग में शरणापन्न होते ही, वर्षकार ब्राह्मण ने मागध दुर्ग का उपलम्भोपाय विस्तरशः अनिरुद्ध को समझा दिया था। ब्राह्मण का आशय था कि उनके बतलाए हुए उपाय से मागध दुर्ग का धर्षण करके, दुर्गपाल अनिरुद्ध उन पर विश्वास कर लें। वे, वारम्वार, यह कहते थे कि

मगधराज अजातशत्रु के साथ उनका सत्यशः वैमनस्य हो गया है। अब वे, अकृतज्ञ अजातशत्रु के प्रति कोपाविष्ट होकर, उस राजन्य का उच्छेद करने में लिच्छवि-गण के सहायक बनना चाहते थे। दुर्गोपलम्भ के उपरान्त, वृज्जिसंघ में ब्राह्मण के प्रति विश्वास उत्पन्न करना दुर्गपाल का दायित्व था।

दुर्गपाल ने, वर्षकार ब्राह्मण से उपलब्ध उपांशु उपाय का सम्यक् निरीक्षण करने के पूर्व, एक लिच्छवि नायक को उनके आगार पर नियुक्त कर दिया था। नायक तथा उसके अनुगामी प्रहरीगण को कठोर आदेश था कि आगारस्थ अतिथि, मुहूर्तमात्र के लिए भी, आगार से बाहर पदार्पण न करने पाएँ। और न ही, परिचारकों तथा प्रहरियों के अतिरिक्त, किसी अन्य व्यक्ति से, इङ्गित मात्र द्वारा भी, वार्त्तालाप करने का अवसर अतिथि को मिले। साथ ही, दुर्गपाल ने वर्षकार ब्राह्मण से अनुरोध किया था कि वे अपना वास्तव परिचय किसी को न दें। लिच्छवि दुर्ग में, वृज्जिसंघ के विख्यात वैरी, वर्षकार ब्राह्मण, के प्राण तभी तक सुरक्षित थे जब तक कि वे अज्ञात रहते।

वर्षकार ब्राह्मण को, दुर्गपाल के द्वारा आरोपित यह कठोर नियन्त्रण रुचिकर न हुआ था। किन्तु अब वे सर्वथा परवश थे। अतएव वे, दिवारात्रि, अपने आगार में रहकर ही काल यापन करते रहे थे।

दुर्गपाल ने प्रथमतः सुरुङ्गसंचार का सम्यक् परीक्षण किया। लिच्छवि दुर्ग के गूढाजीवियों को मागध दुर्ग में प्रेषित करके, उसने प्राप्त चारवृत्तान्त के साथ वर्षकार के बतलाए हुए दुर्गविधान की तुलना की। उन्होंने स्वयं छद्मवेष धारण करके मागध दुर्ग की प्रदक्षिणा की। दुर्ग के द्वार, परिखा तथा प्राकार देखने के लिए। मत्स्यजीव बने दुर्गपाल, नौकावहन करते हुए, मागध दुर्ग के जलद्वार तथा मागध नौवाहिनी का विवरण ले आए।

तब, दुर्गपाल दुर्ग-विजय की योजना लेकर राजकुमारी वत्सला के समीप गए। इस प्रकार एक पक्ष से अधिक समय व्यतीत हो गया।

बीच-बीच में, दुर्गपाल वर्षकार ब्राह्मण से मिलकर अनामय पूछ लेते थे। किन्तु संकेतमात्र से भी उन्होंने ब्राह्मण को यह अनुमान करने का अवसर नहीं दिया कि वे मागध दुर्ग का धर्षण करने के लिए प्रयत्नवान

हैं। वर्षकार ने अनेक बार प्रश्न पूछा कि उनको वैशाली में शरणापन्न करने के विषय में वृज्जिसंघ का क्या विचार है। दुर्गपाल ने प्रत्येक बार कह दिया कि उनके आवेदन पर, अब अष्टकुलिक विचार कर रहा है, अब परिषद के आसन्न सन्निपात में आर्यश्रेष्ठ महाली ज्ञप्ति प्रकाशित करने वाले हैं, इत्यादि। किन्तु मागध दुर्ग का धर्षण होने के पूर्व राजकुमारी तथा दुर्गपाल के अतिरिक्त किसी को आभास तक नहीं था कि मगध के भूतपूर्व महामात्य लिच्छवि दुर्ग में शरणापन्न हैं।

जिस तमिस्रा में दुर्गपाल ने दुर्गोपलम्भ के लिए प्रयाण किया, उसके प्रथम याम में उन्होंने एक मुद्रांकित पत्र नायक को देते हुए आदेश दिया कि यदि वे स्वयं आगामी दिवस के मध्याह्न तक लिच्छवि दुर्ग में प्रत्यागत न हों अथवा कोई अन्य आदेश न प्रेषित करें तो अतिथि को उस पत्र सहित आर्यश्रेष्ठ महाली के समीप वैशाली में उपस्थित किया जाय। दुर्गपाल पूर्वाह्न में ही लौट आए। नायक ने, राजकुमारी का आदेश पाकर, वर्षकार ब्राह्मण को पाटलीग्राम में ही रखा। किन्तु दुर्गपाल, मागध दुर्ग के पतनोपरान्त, आर्यश्रेष्ठ महाली को सूचित कर चुके थे कि वर्षकार ब्राह्मण लिच्छवि दुर्ग में शरणापन्न हैं।

आर्यश्रेष्ठ के आगमन का समाचार सुनकर, वर्षकार ब्राह्मण ने मनोरथ किया कि वे दुर्गपाल के दुर्व्यवहार के विरुद्ध आवेदन करेंगे। वर्षकार अनेक बार आर्यश्रेष्ठ महाली से मिल चुके थे। वे जानते थे कि महाली एक अत्यन्त चरित्रवान, सौम्य-स्वभाव, उदारमना तथा शीलप्रतिष्ठ लिच्छवि पुरुष हैं। किन्तु वृज्जिसंघ के राजा के रूप में आर्यश्रेष्ठ महाली से मिलने का यह प्रथम संयोग उपस्थित हुआ था।

वर्षकार जब प्रथमवार युवराज अजातशत्रु के साथ वैशाली गए तब महाली मध्यवयस्क थे। उस समय भी वैशाली की वीथि-वीथि में, उन्होंने महायोद्धा महाली का कीर्तिकलाप सुना था। तदनन्तर, वर्षकार कई अन्य अवसरों पर महाराज बिम्बिसार का सन्देश लेकर वैशाली गए थे। महाली से मिलकर विविध वार्त्तालाप का सौभाग्य भी उन्होंने पाया था। अन्त में महाली का परिचय उन्हें मिला था पाटलिग्रामस्थ लिच्छवि दुर्ग के प्रथम दुर्गपाल के रूप में। वर्ष-प्रतिवर्ष, मगध के अपार सैन्य को पराभूत करने

वाले महाली ने वृज्जिसंघ के सांघान्तिक शत्रु, मगध के महामात्य से, प्रशंसा प्राप्त की थी। वे ही महाली आज एक सर्वथा नवीन रूप में, नवीन रूपधारी वर्षकार ब्राह्मण से भेंट करने आ रहे थे।

महामात्य के मानस में एक आशंका भी उठी। उनका जन्म चातुर्वर्ण्य मगध के सर्वश्रेष्ठ, वर्ण में हुआ था। वे मगध के ब्राह्मणेतर वर्णत्रय द्वारा वन्दनीय थे। स्वयं मगधराज अजातशत्रु, उनके स्वामी होकर भी, उनके प्रति धर्मविहित विनय का पालन करते आये थे। किन्तु व्रात्याचार-परायण वृज्जिसंघ में क्षत्रियवर्ग ही सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। वृज्जि-महाजनपद में ब्राह्मण वर्ण का निवास धर्म के प्रतिकूल था। उस ब्राह्मण-वर्जित देश में, कुछ धर्मभ्रष्ट ब्राह्मणकुल यत्र-तत्र निवास करते थे अवश्य। किन्तु वृज्जिसंघ की वर्णव्यवस्था में वे नगण्य थे। वर्षकार ब्राह्मण चिन्तातुर होने लगे कि क्षत्रिय-वंशाभिमानी आर्यश्रेष्ठ महाली कहीं उनके प्रति अनादर का भाव धारण न कर लें। पूर्व समय में महाली ने सर्वदा उनके प्रति, प्रत्युद्गमन, प्रत्युत्थान तथा सादर अभिवादन का आचार अक्षुण्ण रक्खा था। किन्तु तब उनकी स्थिति अन्य थी, अब अन्य।

किन्तु आर्यश्रेष्ठ महाली ने, आगार में प्रवेश करते ही, ब्राह्मण की व्याकुलता दूर कर दी। वर्षकार की अपेक्षा वयोवृद्ध वृज्जिसंघ के अप्रतिहत-प्रताप राजा ने, नतमस्तक तथा बद्धाञ्जलि होकर, कहा: "आर्य वर्षकार! महाली लिच्छवि-पुत्र वन्दना-निवेदन करता है।"

ब्राह्मण ने, प्रत्युत्थान किए बिना ही, आशीषमुद्रा में अपना दक्षिण हस्त उत्थापित करके, उत्तर दिया: "जयलाभ करो, लिच्छविपुत्र!"

वर्षकार के समीप जाकर आर्यश्रेष्ठ महाली ने पूछा: "आर्य! आपकी आज्ञा हो तो उपासीन हो जाऊँ।"

"आसन ग्रहण करो, राजन्!"

आर्यश्रेष्ठ आसनस्थ होकर बोले: "आर्य! आपकी देह अनामय है? गात्र प्रसन्न हैं?"

वर्षकार ने उत्तर दिया: "देव की अनुकम्पा है, लिच्छविपुत्र!"

"मगधराज अजातशत्रु वैदेहीपुत्र कुशल हैं, आर्य!"

"कुशल हैं, राजन्!"

"मगध की प्रजा तो अनय-व्यसन से विमुक्त है, आर्य !"

"मगध की प्रजा सुखी है, राजन् !"

"लिच्छवि-दुर्ग में आपका आतिथ्य तो यथावत् हुआ है, आर्य !"

वर्षकार मौन रहे। आर्यश्रेष्ठ महाली ने कहा : "आर्य ! आपको किसी प्रकार का कष्ट हुआ हो तो भी आप लिच्छवि-गण पर रुष्ट न हों। ब्राह्मण प्रधान राष्ट्रों के शिष्टाचार से अनभिज्ञ लिच्छवि-गण क्षन्तव्य हैं।"

ब्राह्मण हँसकर बोले : "शरणापन्न व्यक्ति से क्षमायाचना कैसी, लिच्छविपुत्र !"

"शरणापन्न भी आप हमारे अतिथि है, आर्य !"

वर्षकार एक क्षण मौन रहे। फिर उन्होंने पूछा : "अनेक दिन से दुर्गपाल अनिरुद्ध को नहीं देखा, राजन् !"

आर्यश्रेष्ठ महाली ने उत्तर दिया : "आर्य ! अनिरुद्ध आहत हो जाने के कारण रोगशय्यागत है।"

"आहत ?"

"मागध दुर्ग का धर्षण करते समय उनका स्कंध क्षत-विक्षत हो गया, आर्य !"

वर्षकार ने संसभ्रम दृष्टि से आर्यश्रेष्ठ महाली की ओर देखा। मागध-दुर्ग के धर्षण का समाचार उनके लिए सर्वथा नवीन था। इस घटना का किंचितमात्र भी आभास उन्हें नहीं मिला था। राजकुमारी वत्सला ने, दुर्गपाल के आहत हो जाने के कारण, लिच्छवि दुर्ग में विजयोल्लास का निषेध किया था। अपने आगार पर नियुक्त प्रहरीगण तथा परिचारक-वृन्द से कुछ भी समाचार पाना ब्राह्मण के लिए असम्भाव्य था।

आर्यश्रेष्ठ महाली ने कहा : "आर्य ! मुझे ज्ञात हुआ है कि दुर्गोप-पलम्भ का उपांशु उपाय आपने ही लिच्छवि दुर्गपाल को दिया था।"

वर्षकार ने, गम्भीर होकर उत्तर दिया : "हाँ, लिच्छविपुत्र !"

"आर्य ! आपने ऐसा क्यों किया ?"

"अजातशत्रु को शास्ति देने के लिए।"

"कौन से अपराध की शास्ति, आर्य

"वृज्जिसंघ के साथ विग्रह से विरत न होने का अपराध।"

"इस शास्ति के फलस्वरूप क्या मगधराज संग्राम से पराङ्मुख हो जाएँगे, आर्य !"

"पाटलिग्राम का मागध दुर्ग खो कर, अजातशत्रु को कुछ काल के लिए तो शान्त रहना ही पड़ेगा। भविष्य लिच्छवि-गण के हाथ में है। यदि लिच्छवि-गण इस अवसर का लाभ उठा कर राजगृह तक प्रयाण करने के लिए प्रस्तुत हों, तो......

"आर्य ! मगधराज अजातशत्रु आपके स्वामी रह चुके हैं। उनके प्रति आपका यह विकट वैमनन्य सहसा समझ में नहीं आता।"

वर्षकार ने अपने मुण्डित मुख तथा शिर की ओर संकेत करके उत्तर दिया : "राजन् ! अजातशत्रु ने अनार्य के सदृश आचरण किया है। मैंने राजगृह त्याग करने के पूर्व ही शपथ ग्रहण की थी कि उस दुष्ट राजा का उच्छेद करूँगा।"

महाली मौन हो गए। ब्राह्मण ने पूछा : "लिच्छविपुत्र ! दुर्गोपलम्भ के लिए दुर्गपाल को अधिक आयोजन तो नहीं करना पड़ा ?"

आर्यश्रेष्ठ ने उत्तर दिया : "विकट विग्रह के उपरान्त ही दुर्ग का धर्षण हो पाया है, आर्य !"

"एवम् !"

"मागध पक्ष के सप्तशत सैनिक मारे गए। एक शत आहत हो गए।"

"और लिच्छवि ?"

"द्विशत के लगभग हताहत हुए हैं, आर्य !"

"दुर्गपाल से अवश्य कोई भयानक भूल हुई है।"

आर्यश्रेष्ठ महाली निर्णय नहीं कर पाए कि इस प्रसंग में क्या कहें। वत्सला की प्राणरक्षा के लिए ही अनिरुद्ध को असमय में युद्ध करना पड़ा था। यदि उनकी कोई भूल थी तो वत्सला को नर्तकी बना कर मागध दुर्ग में प्रेषित करना। किन्तु वह सब वृत्तान्त वर्षकार ब्राह्मण को सुनाना प्रयोजनीय नहीं था। वर्षकार का मनोभाव जानने के लिए उत्सुक आर्य-श्रेष्ठ ने प्रश्न किया : "आर्य ! मगधराज को विग्रह से विरत करने का क्या कोई अन्य उपाय नहीं था ?"

वर्षकार दुःख प्रगट करते हुए बोले : "लिच्छविपुत्र ! मैं सभी उपायों का आश्रय लेकर देख चुका। वृज्जिसंघ के प्रति न जाने क्यों अजातशत्रु के विद्वेष का शमन नहीं हो पाया। अन्त में उस राजा ने शान्ति का परामर्श देने वाले इस वृद्ध ब्राह्मण की दुर्दशा करके स्वदेश से निर्वासित कर दिया। आप ही निश्चय कीजिए कि मेरा क्या अपराध था।"

वर्षकार पुनः अपने मुण्डित मस्तक का स्पर्श करने लगे। उनके नयनों से अश्रुधार बह रही थी। आर्यश्रेष्ठ महाली ने कहा : "आर्य ! आपने कोपाविष्ट होकर ही इस पथ का अवलम्बन किया है।"

वर्षकार असहिष्णु-से हो कर बोले : "इस प्रसंग में मेरा मनोभाव गौण है, राजन् ! प्रधान तथ्य है मेरा उच्च उद्देश्य। मेरे उद्देश्य की सिद्धि होना चाहिए।"

आर्यश्रेष्ठ महाली मौन हो गए। वे तो आजीवन मनुष्य के मनोभाव को ही उसके चरित् से गुरुतर मानते आए थे। नीति की यह नवीन व्याख्या उनकी समझ में नहीं आई।

तब वर्षकार ने प्रश्न किया : "लिच्छविपुत्र ! मेरे विषय में क्या निर्णय किया है ?"

आर्यश्रेष्ठ महाली बोले : "आर्य ! वृज्जिसंघ के लिच्छवि-गण कभी भी शरणागत को त्राण देने से विरत नहीं होते।"

"क्या लिच्छवि-गण की परिषद ने मुझे शरण देने की प्रतिज्ञा धारण की है ?"

"नहीं, आर्य ! परिषद तो अद्यपर्यन्त अवगत भी नहीं है कि आप लिच्छवि दुर्ग में विद्यमान हैं। स्वयं मुझे भी मागध दुर्ग के पतनोपरान्त ही आपके आगमन का समाचार प्राप्त हुआ है।"

"किन्तु मुझे तो यहाँ आए एक मास से भी अधिक हो गया।"

"सो भी मुझे आज अपराह्न के समय यहाँ आने पर ज्ञात हुआ है, आर्य !"

वर्षकार का भ्रूद्वय कुञ्चित हो गया। वे आवेशपूर्ण वाणी में बोले : "लिच्छवि दुर्गपाल ने अनृत का अवलम्बन लिया था, लिच्छविपुत्र !"

आर्यश्रेष्ठ महाली ने उनको शान्त करने के हेतु कहा : "आर्य !

परिषद दुर्गपाल का विचार करेगी। अब आप मेरे साथ वैशाली-यात्रा के लिए प्रस्तुत हो जाएँ। कल प्रत्यूप के समय हमारी नौका दुर्ग के जल-द्वार से प्रयाण करेगी।"

ब्राह्मण किंचित चिन्तित हो गए। उन्होंने राजा के अनुरोध का उत्तर नहीं दिया। उनको मौन देखकर आर्यश्रेष्ठ महाली ने पूछा : "आर्य ! मैं आपकी सम्मति की अपेक्षा कर रहा हूँ।"

वर्षकार ने कातर होकर कहा : "लिच्छवि-पुत्र ! जब तक वृज्जि-संघ की परिषद मुझे वैशाली मे शरणापन्न करने का निर्णय न करे, तब तक मैं भला किस प्रकार वैशाली जा सकता हूँ।"

"आर्य ! पूज्य प्रवेणी पुस्तक के विधानानुसार वृज्जिसंघ के राजा को यह अधिकार है कि वे शरणार्थी को शरण देने का निर्णय करें। आप परिषद की प्रतिज्ञा के प्रसग मे चिन्तित न हों।"

"मैं आपका आभार मानता हूँ, राजन् ! किन्तु परिषद की प्रतिज्ञा के बिना मैं वैशाली मे पदार्पण नही करूँगा।"

"कारण, आर्य !"

"लिच्छवि-गण की दृष्टि में मैं वृज्जिसघ का शत्रु हूँ। वे मेरे विषय में सम्यक् विवेचना करें। मेरे प्रति वैमनस्य का भाव त्याग कर सर्वथा स्वच्छ हृदय मे यदि लिच्छवि-गण मुझे शरण दें तो मेरा उनके मध्य निवास करना तथा वृज्जिसंघ की सेवा करना उचित है। अन्यथा नही। मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण लिच्छवि-गण में परस्पर मनोमालिन्य हो जाए, अथवा विभेद की सृष्टि हो। लिच्छवि-गण आर्यावर्त में अग्रगण्य हैं। उनका अकल्याण करके मैं अपने कल्याण की वाञ्छा नहीं कर सकता।"

"जैसी आर्य की इच्छा। किन्तु परिषद के सन्निपात मे विलम्ब हो सकता है। तब तक क्या आप पाटलिग्राम में रहना स्वीकार करेंगे।"

"यहाँ मुझे सब प्रकार का सुख है, लिच्छवि-पुत्र ! मैं परिषद के सन्निपात की प्रतीक्षा करूँगा।"

कुछ क्षण के लिए वार्तालाप बन्द रहा। तब आर्यश्रेष्ठ महाली ने कहा : "आर्य ! आप मेरी धृष्टता क्षमा करे, तो एक प्रश्न पूछूँ।"

वर्षकार ने मृदुल वाणी में उत्तर दिया : "प्रश्न पूछो, लिच्छविपुत्र !"

"आर्य ! लिच्छवि-गण अभी तक यह मानते रहे हैं कि आपके द्वारा ही शिक्षित होकर मगधराज अजातशत्रु वृज्जिसंघ के प्रति वैर का आचरण करते आये हैं। क्या यह असत्य है ?"

"राजन् ! गणराज्य की सरल-स्वभाव प्रजा यह नहीं जानती कि वंशानुगत राज्यों में राजा के समस्त कुकृत्य का कलङ्क अमात्य-परिषद को वहन करना पड़ता है और अमात्य-परिषद के समस्त सौकृत्य का श्रेय राजा को मिलता है।"

"आर्य ! क्या अमात्य-परिषद इस अन्याय का प्रतिकार नहीं कर सकती ?"

"कोई प्रतिकार सम्भव नहीं, राजन् ! प्रजा के दौर्मनस्य का विष-पान करते रहकर, अमात्य-गण को अनवरत अमृत आचरण करना पड़ता है। अन्यथा वे अमात्य-पद प्राप्त करने के अधिकारी नहीं होते।"

"धन्य है, आर्य ! आपका धैर्य धन्य हैं। आपकी क्षमाशीलता धन्य है। अद्‌भुत है, आर्य ! आपका अमात्य-पद अद्‌भुत है। आपकी सहनशीलता अद्‌भुत है।"

वर्षकार ब्राह्मण, सर्वथा कूटस्थ रहकर, अपनी प्रशंसा सुनते रहे।

तब आर्यश्रेष्ठ महाली ने, गात्रोत्थान करके, कहा : "आर्य ! अब मुझे आज्ञा दीजिए ! आपके विश्राम का समय उपस्थित है।"

और ब्राह्मण का आशीर्वाद ग्रहण करके आर्यश्रेष्ठ महाली चले गए।

: ६ :

रश्मिरथी भगवान भुवन-भास्कर, द्रुतपद से, उदयाचल पर आरोहण कर रहे हैं। उनकी स्वर्णिम मुखप्रभा, यात्राश्रम से क्लान्त होकर, पाण्डुर होने लगी है। विहगकुल का कलरव, प्रताड़ित-सा, हठात् हतप्रभ हो चला। वातास का कमनीय कलेवर पूर्वाह्ण के आतप से तप्त होने लगा।

वत्सला को अपने कक्ष में प्रवेश करते देखकर, विस्मित हुए अनिरुद्ध बोले : "राजकुमारि ! आप ! आप आर्यश्रेष्ठ के साथ वैशाली नहीं गईं ?"

वत्सला ने, मुस्करा कर, पूछा : "क्यों, दुर्गपाल ! क्या आपका

पाटलिग्राम और कुछ दिन तक मेरा भार वहन नहीं कर सकता ?"

"पाटलिग्राम का परम सौभाग्य है कि आपने अपनी पदरज से उसे पावन किया। किन्तु आपको इस समय वैशाली जाना ही उचित था राजकुमारि !"

"क्यों ?"

"आर्यश्रेष्ठ आपको ले जाने के लिए ही आए थे।"

"मुझे ज्ञात है। किन्तु मैं नहीं गई।"

"यहां अवस्थान करने के लिए आपने कौनसे मिष का आश्रय लिया ?"

"मिष का आश्रय मैं क्यों लेने लगी, दुर्गपाल ! मैंने तो सत्य का ही आश्रय लिया है।"

"सत्य क्या है ?"

"मैंने आर्यश्रेष्ठ से स्पष्ट कह दिया कि आपको रोगशय्या-गत छोड़कर मैं वैशाली चली गई तो आप दुःखित होंगे।"

अनिरुद्ध स्तम्भित रह गए। शय्या पर उपासीन होकर वे बोले : "यह आपने क्या किया, राजकुमारि ! आर्यश्रेष्ठ न जाने क्या सोचेंगे।"

"क्यों ? क्या मैंने असत्य कह दिया ?"

अनिरुद्ध ने उत्तर नहीं दिया। उनका अन्तर कह रहा था कि वत्सला के कथन में तथ्य है। यदि उनको पाटलिग्राम में छोड़कर वत्सला वैशाली चली गई होतीं तो वे दुःखित ही होते।

वत्सला बोलीं : "रही आर्यश्रेष्ठ के सोचने की बात। आर्यश्रेष्ठ अपनी पुत्री से पूर्णतया परिचित हैं। और पाटलिग्राम के दुर्गपाल से भी। वे जानते हैं कि दुर्गपाल उनकी पुत्री का अपहरण करके पलायन नहीं करेंगे। दुर्गपाल अपहरण करना चाहें तो वत्सला......

अपनी बात पूरी न करके वत्सला हँसने लगीं। अनिरुद्ध निर्निमेष दृष्टि से उनको निहार रहे थे। इन्दीवरश्याम शरीर पर शुभ्र परिधान उनके लावण्य को और भी ललित कर रहा था। उनके कपोल-द्वय को किंचित आवृत करता हुआ, सद्यस्नात चूर्ण चिकुर भार, कालिन्द-नन्दिनी की नील जलधार के समान, पृपोदर प्रान्त तक प्रवाहित था। ललाट पर ललक रहा था कुंकुमपङ्क का तिर्यक् तिलक।

वत्सला की वह मनोहारिणी मूर्ति अनिरुद्ध के अन्तस्तल में उतर गई। वहाँ पर विद्यमान वत्सला की कितनी ही अन्य मूर्तियाँ, न जाने कबसे, इस अप्रतिम मूर्ति की प्रतीक्षा कर रही थीं।

क्षणोपरान्त अनिरुद्ध ने कहा : "राजकुमारि ! वैशाली में इस समय आपकी आवश्यकता है। पाटलिग्राम में, व्यर्थ ही, आपका समय नष्ट होगा।"

वत्सला ने उत्तर दिया : "समय का सदुपयोग ही करूँगी, दुर्गपाल !"

"कैसा सदुपयोग ?"

"पाटलिग्राम के दुर्गपाल ने शरसन्धान करना सीखा है। शिष्टाचार नहीं सीखा। आपको शिक्षित करके वैशाली ले जाऊँगी। तब आपके द्वारा किसी का अपमान न होगा।"

"मैंने कभी किसी का अपमान नहीं किया, राजकुमारि !"

"किया है, दुर्गपाल ! किया है। उस दिन, कौमुदी-महोत्सव की विभावरी में, पुलोमजा ने अपना समस्त प्रणय-वैभव आपके पादपद्मों में समर्पित कर दिया। किन्तु आप उसका तिरस्कार करके चले आए। आप यदि शिष्टाचार से अवगत होते तो इस प्रकार पुलोमजा का अपमान नहीं करते।"

"अपमान करना मैं नहीं चाहता था। किन्तु पुलोमजा ने मुझे विवश कर दिया। आप ही कहिए, राजकुमारि ! मैं और क्या करता ?"

वत्सला ने, अपने करतल से, ललाट-तट का स्पर्श करके कहा : "हाय रे, पाटलिग्राम के पुरुष-श्रेष्ठ ! एक अनिन्द्य-सुन्दरी रामा, रमण के लिए आतुर होकर, आपके गलदेश को अपने बाहुलता-द्वय से वलयित करे, और आप... कौशाम्बी का पुरुष होता तो ऐसा पापाचार न करता।"

अनिरुद्ध ने पूछा : "वह क्या करता, राजकुमारि !"

"वह, पुलोमजा को देखकर, सर्वप्रथम उसकी रूपराशि का विस्तरशः वर्णन करता। वह मुग्ध होकर कहता—हे शशि-कलासन्निभ-सीमन्तिनि ! शिखी-बर्हभार-चिकुरे ! अर्धेन्दुललाट-पटले ! पुष्पचाप-चाप-सुभ्रु ! तिल पुष्प-तूण-नासिके ! नव-नीलोत्पल-नयने ! विगत-कल्मष-विधु-बिम्ब-वदने ! बन्धूक-बन्धु-अधरोष्ठ-लेखे ! कुन्देन्दु-धवल-दशने ! गौर-सार-विस्मित-

स्मिते ! उत्फुल्ल-कल्हार-कपोलतले ! हे कम्बु-कन्धरे ! मृणाल-कोमल-बाहुलते ! किसलय-कर-पल्लवे ! निबिड-पीन-पयोधरे ! हे काम-कार्मुक-मुष्टि-मध्यमे ! अम्बुधि-आवर्त-निन्दित-नाभि ! चक्रवाक-युगल-श्रोणि-मण्डले ! हे प्रवाल-पद्मारुण-पदे......

अधीर से होकर, अनिरुद्ध बोले : "यह क्या, राजकुमारि ! क्या आप चापाल चैत्य की आराध्यदेवी का स्तवन-पाठ कर रही है ?"

वत्सला ने अधर कुञ्चित करके कहा : "मध्यमण्डल के नगरों में निवास करने वाले नागर सत्य ही कहते है कि वैशाली के लिच्छवि असंस्कृत हैं अभद्र हैं, रसविहीन हैं।"

"क्यों, राजकुमारी !"

"आप हैं पाटलिग्राम के दुर्गपाल। कोई साधारण लिच्छवि नहीं। किन्तु आपको भी यह ज्ञात नहीं कि देवी के स्तवन-पाठ तथा नारी के नख-शिख-वर्णन में क्या अन्तर है। आपको सुसंस्कृत करने के लिए कौशाम्बी पठाना पड़ेगा।"

"एक पन्थ दो काज। वृज्जिसंघ का दूत तो कौशाम्बी जाएगा ही, राजकुमारि ! मैं ही क्यों वह दौत्यकर्म भी न करूँ।"

"किन्तु आप जैसे जानपद को नागर-प्रमुख, महाराज उदयन, की सेवा में पठा कर कार्य की हानि होगी।"

"तो आप किसको प्रेषित करेंगी ?"

"आर्य रत्नकीर्ति, देशदेशान्तर का पर्यटन करके, वैशाली में प्रत्यागत हुआ चाहते हैं। उन से परामर्श करना होगा।"

"वे कहेंगे कि पुलोमजा को भेज दो।"

"किन्तु पुलोमजा, वत्सराज का वीणावादन सुनकर, सम्भवत: वैशाली लौटना न चाहे।"

"तो आप स्वयं चली जाएँ।"

"सम्भव है मैं भी न लौटना चाहूँ।"

"नहीं, आप अवश्य लौटेंगी।"

"क्यों ?"

"मेरा मन कहता है।"

वत्सला, शय्या के समीप पीठिका पर उपासीन होकर, बोली : "और क्या कहता है, आपका मन ?"

"यही कि आपको नर्तकी बनाकर मैंने अनुचित आचरण किया है।"

"क्यों ?"

"आप अभिनय करना सीख गईं।"

"अभिनय तो मैं बहुत पूर्व ही जानती थी, दुर्गपाल ! अन्यथा नर्तकी कैसे बनती ?"

"मैंने, इसके पूर्व, कभी आपका यह रूप नहीं देखा।"

"आपने मुझको देखा ही कितना है ? पाटलिग्राम के दुर्गपाल ने राज-प्रासाद की राजकुमारी को देखा है। अनिरुद्ध ने वत्सला को कभी नहीं देखा। किन्तु जाने दीजिए वह बात। मेरा यह रूप कैसा है ?"

अनिरुद्ध मौन रहे। मानो वे, कुछ कहना चाह कर भी, कह न पा रहे हों। वत्सला ने उनके हाथ पर अपना हाथ रखकर पूछा : "बोलते क्यों नहीं, दुर्गपाल ! मैं पूछती हूँ कि मेरा यह रूप कैसा है ?"

दुर्गपाल ने उत्तर दिया : "मेरा मन कहता है कि मङ्गलमय नहीं।"

"यह आपकी भूल है, दुर्गपाल ! नारी-मात्र को, अपने जीवन में, एक बार यह रूप धारण करना पड़ता है। सर्वथा मङ्गलमय है यह रूप। मङ्गलमय नहीं रहता तो उस समय जब कि नारी, पुरुष की अर्धाङ्गिनी न बनकर, केवल अभिसारिका रह जाती है; सहचरी न बनकर मनो-रञ्जन करने वाली पुत्तलिका-मात्र रह जाती है; सहधर्मिणी न बनकर केवल सहशायिनी रह जाती है।"

कहते-कहते, राजकुमारी किंचित गम्भीर हो गईं। एक क्षण मौन रह कर, वे बोलीं : "सुना है कि मध्यमण्डल के महाजनपदों में नारी पुरुष की सहधर्मिणी नहीं रही। वहाँ के पुरुष नारी को माँ नहीं मानते, भगिनी नहीं कहते, पुत्री भी नहीं। उनके लिए नारी केवल प्रेयसी रह गई है। वे नारी की यौवन-विकल देह की पूजा करते हैं। उस देह का विशद वर्णन करते-करते उनके काव्य रीते हो गए, किन्तु कण्ठ कुण्ठित नहीं हुए। उस देह को रञ्जित, सज्जित, चुम्बित, आलिङ्गित करने में वे एक जीवन व्यतीत कर देते हैं, किन्तु उनकी तृप्ति नहीं होती। उस

देह के भीतर विद्यमान नारीहृदय से परिचय ही नहीं रह गया उनका।"

अनिरुद्ध ने प्रश्न किया : "नारीहृदय कैसा होता है, राजकुमारि !"

"आप क्या नहीं जानते, दुर्गपाल ! आप तो लिच्छवि पुरुष हैं।"

"फिर भी आपसे उस हृदय की महिमा सुनना चाहता हूँ।"

"सागर के समान है नारी का हृदय। माधुर्य का अपरिमेय पारावार। ममता का अगाध अम्बुधि।

"उत्तुङ्ग हिमगिरि-शिखर-सा है नारी का हृदय। उत्सर्ग के लिए सतत् उद्वेलित। उत्साह से अनवरत उन्नतशीर्ष।

"मुक्त वातास-सा है नारी का हृदय। दौर्मनस्य की सकल दुर्गन्ध को द्रुततर दूर करने वाला। विमल-प्रणय का परिमल वहन करता हुआ।

"अग्नि-ज्वाल-सा है नारी का हृदय। अन्तहीन अन्धकार में आलोक के समान। अन्याय-अविचार के प्रति द्रोह की दावानल।"

"और पुरुष का हृदय, राजकुमारि !"

"पुरुष के हृदय नहीं होता, दुर्गपाल ! होता है मस्तिष्क। गणित कर सकता है पुरुष। किन्तु उसके गणित में कभी भी गरिमा नहीं होती, क्रूरता ही रहती है। आकाश-पाताल का अन्वेषण कर सकता है पुरुष। किन्तु उसके अन्वेषण में कभी भी निष्ठा का निवेश नहीं हो पाता, संशय ही संचित होता रहता है। पुरुष, प्रतिपल, बलप्रयोग के लिए प्रत्युत्पन्नमति रहता है। किन्तु उसके बल में कभी आत्म-विश्वास नहीं मिलता, मिलती है आत्मवञ्चना। पुरुष विरक्त हो जाता है। किन्तु उसके वैराग्य में कभी भी वैभव का आभास नहीं पनपता, पनपता है नदी-तट के शुष्क रजकण का बवण्डर।"

"तब तो पुरुष विधाता की विकृत कृति है, राजकुमारि !"

"विकृत नहीं, दुर्गपाल ! अधूरी कृति है। इसी कारण तो विधाता ने, नारी की रचना करके, उसे पुरुष की अर्धाङ्गिनी बनाया है। नारी का हृदय और पुरुष का मस्तिष्क जब समन्वित होकर समारम्भ करते हैं, तभी मानवजीवन चरितार्थ होता है।"

"और समन्वय न हो सके तो ?"

"नारी पुरुष के समक्ष नाचती है, गाती है, हँसती है; पुरुष को अपनी

देह समर्पित करती है। किन्तु पुरुष की दृष्टि से ओझल रह कर, वह रोती है, बिलखती है, शिर धुनती है। पुरुष नारी के समक्ष नवनीत-सा निखर कर निकलता है, नारी की अनेक अनुनय-विनय करता है, नारी पर सब-कुछ न्योछावर कर डालने का नाटक करता रहता है। किन्तु नारी की दृष्टि से दूर रह कर, पुरुष पण्यविपणि पर उपासीन वणिक् के समान प्रवञ्चना रचता रहता है, नारी को मुग्ध मत्स्यी मानकर जाल फैलाता है, नारी को मधुर मासपिण्ड समझ कर हिंस्र-पशु-सा, अनवरत, उसका आखेट करना चाहता है।"

"जिस समाज में यह समन्वय नहीं हो सका, अथवा होकर पृथक्करण हो गया, उसका क्या भविष्य है, राजकुमारि!"

"वह समाज अन्तःसारहीन है, दुर्गपाल! उसके ऊपर का आवरण भले ही चार दिन तक किसी के चक्षु चौंधिया दे; उसका दुर्दिन दूर नहीं रह गया।"

अनिरुद्ध मौन हो गए। उनकी आँखों के आगे पुलोमजा की वह मूर्ति नाच उठी जिसको उन्होंने, एक मास पूर्व, वैशाली के बाहर उद्यान में देखा था। और वे आपादमस्तक सिहर उठे। उनका मन कहने लगा कि पुलोमजा ने वैशाली का विध्वंस करने के लिए ही जन्म लिया है। अन्यथा वह लिच्छवि बाला, वृज्जिसंघ के विजयपर्व के पूर्व, कौशाम्बी की कुलटा का रूप धारण करके, वैशाली में क्यों आती? हठात् उनको ऐसा प्रतीत हुआ कि वत्सला की अनुपस्थिति में, लिच्छवि-गण की मातृतुल्या वैशाली, सहसा संकटग्रस्त हो गई है। वत्सला को तुरन्त ही वैशाली की ओर प्रयाण करना चाहिए।

तब वे, अतीव व्यग्र होकर, बोले: "राजकुमारि! आप वैशाली लौट जाइए। इसी क्षण।"

वत्सला ने कहा: "जाऊँगी, दुर्गपाल! वैशाली ही जाऊँगी। किन्तु अभी विलम्ब है।"

"विलम्ब क्यों?"

"मागध दुर्ग के विजेता को साथ लेकर जाऊँगी।"

"एकाकी क्यों नहीं?"

"वैशाली में मागध दुर्ग की नर्तकी का अपमान हो सकता है।"

अनिरुद्ध, सहसा, चिन्तातुर हो गए। उन्होंने सोचा कि सम्भवतः आर्यश्रेष्ठ ने राजकुमारी की भर्त्सना की है। और वे जानते थे कि वत्सला अपने मुख से कुछ नहीं कहेंगी। इसलिए उन्होंने पूछा : "क्या आर्यश्रेष्ठ आपके आचरण से रुष्ट हैं, राजकुमारि !"

वत्सला ने, चकित हो कर, कहा : "नहीं तो, दुर्गपाल !"

"तब वैशाली में आपका अपमान कौन करेगा ?"

"अपमान करने वाले वहाँ अनेक हैं।"

"मैं वैशाली में आऊँ तब तक आप किसी से भेंट न करें। राजप्रासाद में आकर कौन आपकी शान्ति भंग कर सकेगा ?"

"किन्तु मैं राजप्रासाद में किस प्रकार रह पाऊँगी, दुर्गपाल ! वैशाली में विजयोत्सव का समारम्भ है। मुझे ही सब प्रबन्ध करना होगा।"

"विजयोत्सव ! तो क्या आर्यश्रेष्ठ हमारे साहस का अनुमोदन करते हैं ?"

"हाँ, आर्यश्रेष्ठ सर्वथा संतुष्ट हैं।"

"वर्षकार ब्राह्मण को वृज्जिसंघ में शरण मिल जाएगी ?"

"अवश्य मिलेगी, दुर्गपाल !"

"और मगध के विरुद्ध मण्डलप्रोत्साहन करने की हमारी भविष्य-योजना का क्या होगा ?"

"सो मैं नहीं जानती। उस प्रसंग में मैंने आर्यश्रेष्ठ से कुछ नहीं कहा। आपको ही उनसे परामर्श करना होगा।"

"उनसे मुझे एक और भी परामर्श करना है, राजकुमारि !"

"कौनसा परामर्श ?"

"आपके विषय में।"

"मेरे विषय में ऐसी कौनसी बात है जिसको लेकर आप मुझसे परामर्श नहीं कर सकते ?"

"आपको कुलदुहिता से कुलवधू में परिणत करना है।"

"वैशाली के लिच्छवि-वंश में कौन है वह कुलपुत्र जिसके द्वारा यह कार्य सम्पन्न हो सके ?"

अनिरुद्ध ने उत्तर नहीं दिया। वत्सला ने कहा : "जिस दिन कोई लिच्छवि राजगृह जीतकर लौटेगा, उस दिन मैं, वैशाली के दक्षिणद्वार पर उत्तिष्ठ होकर, उसके गले में वरमाल पहिनाऊँगी। किन्तु उस दिन तक, सम्भवतः, मैं राजकुमारी न रहूँ।"

अनिरुद्ध बोले : "भय नहीं, राजकुमारि ! राजगृह जीत कर जो लिच्छवि वैशाली में वरमाल पहिनने के लिए लौटेगा, वह राजकुमारी की खोज नहीं करेगा। राजकुमारियाँ तो उस पुरुष को राजगृह में ही अनेक मिल जाएँगी। वह वैशाली की ओर लौटेगा तो किसी अन्य गुणनिधि की गवेषणा में।"

वत्सला ने मुख अवनत कर लिया। अनिरुद्ध, उनके आरक्त कपोलों को निर्निमेष नयनों से देखते रह कर, आत्मविस्मृत हो गए।

तृतीय अंक

कार्तिक मास की महिमामयी पूर्णिमा। मेघमाला से निरुच्छ्वसित नभ के निस्सीम नैल्य में निखरती विभावरी का विपुल वैभव। सृष्टि के समारम्भ से ही स्वर्गङ्गा में संचित शुभ्रानुलेप, मानो कौमुदी बनकर, धरा की वृष्टि-धौत काया को, प्रसाधित करेगा। अनिल में अंकुरित है आसन्न हेमन्त के प्रथम शैत्य-शीकर का अल्प आभास।

चराचर विश्व को विगतयौवन करती हुई भी, स्वयं चिर-यौवन-विभूषिता, समय की अविश्रान्त स्रोतस्विनी, आज अनन्त के साथ अपना अभिसार-गमन स्थगित करके, पथप्रान्त में अवस्थान कर रही है। वर्तमान की अविकल विस्तृति में विलुप्त हो चली हैं अतीत की स्मृतिशृंखला एवं अनागत की आशङ्काएँ।

वृज्जिसंघ की यशस्विनी वैशाली में आज विजयोत्सव का समारोह है। पाटलिग्राम के मागध दुर्ग पर लिच्छवि सैन्य की विजय के उपलक्ष्य में उद्यत उत्सव।

ऐसा ही एक उत्सव, वैशाली में उस बार उत्थापित हुआ था जिस बार लिच्छवि सैन्य ने, आर्यश्रेष्ठ महाली के अधिनायकत्व में भागीरथी पार करके, पाटलिग्राम में प्रथम पराक्रम दिखाया था। उस पराक्रम के परिणाम-स्वरूप पाटलिग्राम के लिच्छवि दुर्ग का निवेश हुआ था।

तदनन्तर, वृज्जिसंघ मगध के साथ एक दीर्घकालव्यापी महासमर में मग्न हो गया था। वैशाली के लिच्छवि-गण को महान उत्सर्ग करना पड़ा था। वर्ष प्रतिवर्ष।

क्या इस नवीन विजयोत्सव का विनिमय भी, वैशाली को, उसी प्रकार देना होगा? यह एक आशङ्का, राजोद्यान की ओर अग्रसर होते हुए लिच्छवि-समवाय को सन्तप्त कर रही थी।

क्या मगधराज अजातशत्रु, अपने दुर्ग की पुनर्प्राप्ति के निमित्त, लिच्छवियि-गण को समरभूमि में ललकारेगा ? अथवा वह राजगृह का राजन्य, पाटलिग्राम में एक नवीन मागध दुर्ग का निवेश करेगा ? अथवा वृज्जि-संघ के साथ अपना विफल वैमनस्य त्याग कर, सन्धि स्वीकार कर लेगा ?

राजोद्यान के पूर्ववर्ती द्वार पर, अभ्यागतों का स्वागत करने के हेतु, राजकुमारी वत्सला तथा दुर्गपाल अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र दण्डायमान हैं। अनिरुद्ध इस लिए कि वे मागध दुर्ग के विजेता हैं। वत्सला, आर्यश्रेष्ठ महाली की ओर से। आर्यश्रेष्ठ स्वयं राजोद्यान के मण्डप में आसनस्थ हो कर लिच्छवि-गण का सम्मोदन कर रहे हैं।

कोई-कोई अभ्यागत, द्वारदेश पर रुककर, अपनी आशङ्का का समाधान माँगता है, तो दुर्गपाल एक ही उत्तर देते हैं : प्राची के प्रति अवन्ति की उदासीनता अब भङ्ग हो चुकी। चेदि ने परास्त होकर अवन्ति का संश्रय स्वीकार किया है। पार्ष्णिग्राह से प्रमुक्त वत्स अब मगध की ओर आक्रान्त है। अपने पश्चिमवर्ती प्रत्यन्त पर आसन्न पराक्रम की अवहेलना करके, अजातशत्रु यदि पाटलिग्राम की ओर अभिमुख हुआ तो उभयभ्रष्ट की नाईं विनाश को प्राप्त होगा।"

राजकुमारी ने दूर से देखा कि देव-प्रमदा-सुलभ परिधान से परिमण्डित पुलोमजा, पुष्यरथ में आरूढ़ होकर, राजोद्यान की ओर आ रही है। पुलोमजा के प्रति अनिरुद्ध की असहिष्णुता से राजकुमारी अभिज्ञ थीं। उनको भय हुआ कि आज उत्सव की वेला में दुर्गपाल पुलोमजा का अपमान न कर बैठें। सो भी राजोद्यान के द्वार-देश पर। दुर्गपाल को सावधान करने के लिए वत्सला ने कहा : "दुर्गपाल ! पुलोमजा के प्रति आपका व्यवहार पूर्णतया शिष्ट होना चाहिए।"

अनिरुद्ध ने उत्तर दिया : "राजकुमारि ! आप ही उस देवाङ्गना का स्वागत करें। मैं एक शब्द भी नहीं बोलूँगा।"

"वह भी तो उसका अपमान होगा, दुर्गपाल ! आपको उसका सम्मोदन करना होगा।"

"मैं उसके साथ वार्तालाप न करूँ तो ही शुभ होगा।"

"क्यों ?"

"उसने यदि व्यङ्ग किया तो मैं......

वत्सला ने भृकुटि-द्वय कुञ्चित करके कहा : "आज यदि आपने संयम खोया तो......

राजकुमारी ने अपनी बात पूरी नहीं की। अनिरुद्ध ने पूछा : "तो क्या होगा, राजकुमारि !"

वत्सला बोलीं : "आप मेरे क्रोध के भाजन बनेंगे।"

"आपको कोपाविष्ट देखने के लिए तो प्राण लालायित हैं, राजकुमारि !"

"उसके अनेक अवसर मिलेंगे आपको।"

"किन्तु आज क्यों नहीं ?"

"आज वैशाली में विजयोत्सव है। आज मुझे हँसना चाहिए। आँसू पीकर भी हँसना चाहिए, दुर्गपाल ! आज आपने मेरी बात नहीं मानी तो मैं जाकर पुष्करिणी में डूब मरूँगी।"

"पुलोमजा के प्रति इतनी ममता, राजकुमारि !"

"आज लिच्छवि मात्र के लिए मेरे मानस में ममता उमड़ रही है। आप क्या जानें ? आप तो मैथिली माँ के पुत्र हैं, दुर्गपाल !"

अनिरुद्ध ने, सहसा, प्रणत होकर प्रत्युत्तर दिया : "मैथिली माँ का पुत्र होकर भी मैं आपको जानता हूँ, जगज्जननि !"

वत्सला से हँसी का संवरण न हो सका। उनका मन कहने लगा कि अनिरुद्ध विजेता ही नहीं, विनोदी भी हैं।

पुलोमजा समीप आई तो उसकी विचित्र वेषभूषा देख कर अनिरुद्ध ने, निम्नस्वर में, वत्सला से पूछा : "देवाङ्गना का परिधान कौन से देश का है, राजकुमारि !"

वत्सला ने मुस्करा कर कहा : "उसी से पूछ लेना, दुर्गपाल !"

"आप असंयम का अभियोग तो न लगाएँगी ?"

"नहीं पूछना, दुर्गपाल ! नहीं पूछना।"

वत्सला दुर्गपाल की ओर से सावधान हो गई। तब तक पुलोमजा का रथ द्वारदेश पर आ पहुँचा। उस का स्वागत करते हुए वत्सला बोलीं : "पुलोमजे ! आर्यश्रेष्ठ की ओर से मैं तुम्हारा स्वागत करती हूँ।"

किन्तु पुलोमजा ने जैसे राजकुमारी को देखा ही न हो। वह दुर्गपाल पर अपनी चपल चितवन. आविष्ट करके बोली : "मागध दुर्ग के वीर विजेता ! पुलोमजा का अभिनन्दन ग्रहण कीजिये।"

अनिरुद्ध को मानो किसी ने आहत कर दिया हो। उनके लिए राजकुमारी की अवगणना असहनीय थी। किन्तु साथ ही राजकुमारी का अनुरोध भी उनको अविस्मृत रहा। पाषाण-प्रतिमा की नाई अचल खड़े रहे दुर्गपाल।

पुलोमजा ने क्षुण्ण हो कर प्रश्न किया : "अनिरुद्ध ! क्या अकिञ्चन का अभिनन्दन भी तुम्हें अस्वीकृत है ?"

अनिरुद्ध ने उत्तर नहीं दिया। तब, वत्सला ने, अनिरुद्ध की ओर अभिमुख पुलोमजा का स्कन्ध स्पर्श करके, कहा : "तुम एकाकी क्यों आई, पुलोमजे !"

पुलोजमा, आहत भुजङ्गी के समान फूत्कार करके, बोली : "अभी तक किसी लिच्छवि दुर्गपाल ने मुझको नर्तकी बनाकर नहीं नचाया। अन्यथा मैं एकाकी न आती, राजकुमारि !"

वत्सला विरक्त हो कर अन्य अभ्यागतों की ओर अग्रसर हुई। दुर्गपाल ने नेत्र निमीलित करके पुलोमजा का अस्तित्व अस्वीकार कर दिया। पुलोमजा राजोद्यान की ओर चली गई।

एकान्त पा कर अनिरुद्ध ने वत्सला से पूछा : "आपके शिष्टाचार ने पुलोमजा को परितृप्त कर दिया, राजकुमारि !

वत्सला, अश्रुविह्वल होकर, बोलीं : "आप नहीं मानेंगे, दुर्गपाल !"

अनिरुद्ध ने भी आर्तवाणी में उत्तर दिया : "मैं मौन रहने का व्रत लेता हूँ, मानिनि ! आप उत्सव की वेला में विकल न हों।"

वत्सला पुनरेण हँसने लगीं। अनिरुद्ध से जीत पाना असम्भव था।

राजोद्यान में से गीत-वाद्य की ध्वनि आने लगी। अभ्यागत और नहीं आ रहे थे। द्वारदेश को त्याग कर, उद्यान की ओर जाती हुई वत्सला ने अनिरुद्ध से कहा : "मैं सारे समय तो आपके साथ रहूँगी नहीं, दुर्गपाल ! और मुझको अनुपस्थित पाते ही पुलोमजा आपको पकड़ लेगी। तब देखूंगी कि आप किस ओर पलायन करते हैं।"

अनिरुद्ध बोले : "मैं इसी समय आर्यश्रेष्ठ के समीप जा कर जमता हूँ। उत्सव समाप्त होते ही सीधा पाटलिग्राम की ओर प्रधावमान हो जाऊँगा। आपकी वैशाली में इस जानपद का परित्राण नहीं हो सकता, राजकुमारि !"

राजोद्यान में, अभ्यागत लिच्छवि-गण के लिए वैशाली-सुलभ आमोद-प्रमोद का आयोजन था। मञ्चपीठ तथा शिलासनों पर चित्र-विचित्र आस्तरण बिछाए गए थे। उदक-परिचारकों ने, स्थान-स्थान पर, पादपीठ, पादकठुलिका तथा पादोदक प्रस्तुत किए थे। सूद तथा आरालिक विविध प्रकार के भक्ष्य एवं भोज्य लेकर आए थे। शौण्डिक-गण ने सजाए थे एकाधिक पानागार जिनमें आसव, प्रसन्ना, मधु, मदक तथा मैरेय उपलब्ध थे। मालाकार, सौगन्धिक तथा ताम्बूलिक सब प्रकार के माल्य, गन्ध, अनुलेप एवं मुखवास लेकर आए थे। नट, नर्तकी, गायक, वादक तथा वाग्जीवी प्रतीक्षा कर रहे थे कि लिच्छवि-गण का मनोरञ्जन करें।

अभ्यागत-गण, अपनी-अपनी, अभिरुचि के अनुसार, गोष्ठी-विहार, आपानक अथवा नृत्य-गीत का आनन्द उपभोग करने लगे। कोई-कोई लिच्छवि-समवाय क्रीड़ा-कौतूहल में दत्तचित्त हो गया—आकर्ष-क्रीड़ा, पट्टिका, मुष्टिद्यूत, क्षुल्लक, सुनिमिलितिका, आरब्धिका, लवणवीथिका। किसी-किसी लिच्छवि-समवाय ने काव्य तथा कला-विनोद का आश्रय लिया। अन्य लिच्छवि-वृन्द, नृत्य-निपुणा नर्तकी का पर्यवसन करके, आनन्दविभोर हो गए। कुछ अन्य लिच्छवि-गण ने गायक-वादक-वृन्द से अनुरोध किया कि वे, विजयोत्सव के अनुकूल, अपना नवीन कृति-कलाप प्रस्तुत करें।

अनवरत कठोर जीवन अतिवाहित करने वाले थे लिच्छवि अभ्यागत। स्वस्थ-काय, शुद्ध-प्राण। उनमें सहज, सरल उपभोग की क्षमता थी। नित्य-नूतन उत्सव-समाज सजाने वाले नागर-वृन्द की असीम अतृप्ति से अनवगत थे वे। अतएव, राजोद्यान का प्रत्येक पार्श्व, अतिशीघ्र, आनन्द से विभोर होने लगा।

इन सबके मनोविनोद से मुग्ध, किन्तु इनकी अविस्मृति से अस्पृष्ट, शुभ्र परिधान से परिमण्डित एवं पुष्पाभरण से अलंकृत, राजकुमारी

वत्सला, विद्युत्मयूख-सी, इतस्ततः विचरण कर रहीं थीं। यह देखती हुई कि अभ्यागतों के आमोद-प्रमोद में कहीं कोई त्रुटि तो नहीं रह गई है।

अभ्यागत तरुण-समवाय में से किसी-किसी ने वत्सला को आपान के लिए आमन्त्रित किया। कोई-कोई उनको अपनी क्रीड़ा-सहचरी बनाने का हठ करने लगे। किसी-किसी ने पूछ लिया कि वे, अपने विवाह के उपलक्ष्य में, एक ऐसा ही उत्सव कब उपस्थित करेंगी। किसी-किसी ने उपालम्भ किया कि मागध दुर्ग का शत्रु-सैन्य राजकुमारी का नर्तन देख सकता है, किन्तु वैशाली का निरीह लिच्छवि-वंश नहीं।

लिच्छवि तरुणियों ने राजकुमारी के प्रति प्रेम, ईर्ष्या, सौहार्द आदि अनेक उद्गार प्रकट किए। किसी ने राजकुमारी के साहस की प्रशंसा की। किसी ने दुर्गपाल के साथ उनकी घनिष्ठता पर व्यङ्ग किया। किसी ने उनके कपोल पर कज्जलचिह्न अङ्कित कर दिया कि किसी की क्रूरदृष्टि से उनका सौन्दर्य-सरसिज कुम्हला न जाए।

सब ओर एक ही स्नेह-सिक्त स्मित का निर्झर प्रवाहित करती निकल गई वत्सला। आज, वैशाली के लिच्छवि मात्र के प्रति, अपरिमेय अनुराग के अतिरिक्त, अन्य भावना ही नहीं थी उनके हृदय में।

हठात् राजकुमारी ने देखा कि राजोद्यान के एक अपेक्षाकृत विविक्त प्रान्त में, वृज्जिसंघ के संधि-विग्रह-महामात्य, आर्य रत्नकीर्ति, कतिपय लिच्छवि तरुणों के साथ उपासीन हैं। रत्नकीर्ति की पुत्री, पुलोमजा, का स्मरण करके, राजकुमारी, एक क्षण के लिए, असमंजस में पड़ गई। किन्तु, तुरन्त ही, उनको अपना कर्त्तव्य स्मरण हो गया। एक बार अपने शेखरापीड़ का स्पर्श करके, गलमाल को संभाल, उत्तरीय के आंचल को एक हाथ की सुकुमार अङ्गुलियों पर लपेटती-उतारती हुईं, वे आर्य रत्न-कीर्ति के समीप जा पहुँचीं।

वत्सला को पहिचान कर, स्फटिक के शिलासन पर उपासीन आर्य रत्नकीर्ति ने रहा : "अहे ! वत्सले !"

वत्सला ने, उनका बद्धाञ्जलि अभिवादन करते हुए पूछा : "यह कैसा परिहास है, आर्य !"

"परिहास ?"

"आपने तस्कर के समान राजोद्यान में प्रवेश किया। और इस निर्जन प्रान्त में आकर उपासीन हो गए। आज के दिन यह परिहास नहीं तो और क्या है, आर्य !"

आर्य रत्नकीर्ति ने अपने चारों ओर उपासीन तरुण-समवाय की ओर संकेत करके उत्तर दिया : "यह निर्जन प्रान्त कैसे है, वत्सले ! मेरे चारों ओर तो अनेक लिच्छवि तरुण विद्यमान हैं।"

वत्सला ने तरुण-समवाय को निहारा। वे, उनमें से एक को भी लिच्छवि कहकर पुकारने के लिए प्रस्तुत नहीं थीं। विदेश में शिक्षा ग्रहण करके प्रत्यागत तरुण थे वे सब। वैशाली से घोर विद्वेष करने वाले। लिच्छवि-परम्परा के परम शत्रु। वृज्जिसंघ की निन्दा में दिवारात्रि रत रहने वाले। कदाचित् इसीलिए राजकुमारी उनको देखकर भी नहीं देख पाई थीं।

वत्सला ने कहा : "किन्तु, आर्य ! उत्सव-रत लिच्छवि-गण से विरक्त होकर, आप इतनी दूर क्यों उपासीन हैं ?"

आर्य रत्नकीर्ति ने पुनः तरुण-समवाय की ओर संकेत किया और वे बोले : "ये भी तो लिच्छवि हैं, वत्सले !"

"क्या आप इनसे मेरा कलह करवाना चाहते हैं, आर्य ! मैं जानती हूँ कि ये लिच्छवि हैं। मेरा आशय था कि...

"तुम्हारा आशय मैं जानता हूँ, वत्सले ! तुम आसन ग्रहण करो। तब वार्तालाप होगा।"

वत्सला ने, ऊर्ण के पट्टलिक पर उपासीन होकर, प्रत्येक तरुण का अभिवादन किया। आर्य रत्नकीर्ति, एक चषक में माधवी ढाल कर राजकुमारी की ओर बढ़ाते हुए, बोले : "चषक मेरा उच्छिष्ट है, वत्सले ! तुमको आपत्ति तो नहीं होगी ?"

वत्सला ने चषक लेकर उत्तर दिया : "आप कहते क्या हैं, आर्य ! वृज्जिसंघ के लिच्छवि-गण में, परस्पर उच्छिष्ट का विचार आपने कब और कहाँ देखा ? क्या आप, विदेश में रहकर, लिच्छवि आचार भूल गए ?"

"सम्भव है। विदेश-भ्रमण विफल तो नहीं होता। किन्तु जाने दो

वह बात। तुम कैसी हो, वत्सले !"

"जैसी आप छोड़ कर गए थे। न विशेष अच्छी, न विशेष बुरी।"

"मिथ्या कह रही हो।"

"नहीं तो।"

आर्य रत्नकीर्ति ने तरुण-समवाय को सम्बोधित करके पूछा : "तुम लोग बतलाओ। दो वर्ष पूर्व, जब मैं विदेश-यात्रा के लिए वैशाली से विदा हुआ, तब वत्सला किशोरी थी। अब क्या यह किशोरी रह गई है ?"

एक तरुण ने उत्तर दिया : "राजकुमारी इस समय उद्दाम यौवन की दोला में उद्दोलित हैं।"

व्रीडाभिभूत वत्सला ने मुख अवनत कर लिया। आर्य रत्नकीर्ति कहने लगे : "दुहिता मात्र का यह निसर्गधर्म है। आज देखो तो अबोध बालिका है, और कल तारुण्यभार से विह्वल रमणी।"

फिर वे, एक अंगुलि से वत्सला की चिबुक का स्पर्श करके, बोले : "मैंने वैशाली लौट कर उचित नहीं किया, वत्सले ! अब तुम्हारे लिए योग्य वर खोजने का दुर्वह भार वहन करना पड़ेगा।"

एक तरुण ने कह दिया : "आर्य ! आप वह चिन्ता न करें। राजकुमारी ने आपके आने के पूर्व ही गान्धर्व-विवाह कर लिया है।"

आर्य रत्नकीर्ति ने वत्सला से पूछा : "वह भाग्यशाली पुरुष कौन है, वत्सले !"

उत्तर उसी तरुण ने दिया : "पाटलिग्राम का दुर्गपाल, अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र।"

आर्य रत्नकीर्ति ने कहा : "अरे ! वह बटुक ! वही जो निरीह मागध सैन्य का संहार करके अपने-आपको पुरुष-श्रेष्ठ मानने लगा है ?"

फिर उन्होंने राजकुमारी को सम्बोधित किया : "क्यों, वत्सले ! क्या यह सत्य है ? क्या वस्तुतः तुमने उस बटुक का वरण किया है ?"

वत्सला ने कहा : "आर्य ! मेरे विषय में क्या सत्य है, यह जानने का आपको बहुत समय मिलेगा। किन्तु, यह अवश्य सत्य है कि आप लोग माधवी अत्यधिक पान कर गए हैं।"

आर्य रत्नकीर्ति हँसने लगे। फिर वे बोले : "माधवी ! हम माधवी

क्यों पीने लगे ? वह तो स्त्रियों का पेय है। अथवा वैशाली के कूपमण्डूक उसका सेवन करते है। यहाँ तो सब-के-सब शुद्ध आसव का आस्वादन करने वाले है।"

वत्सला ने, अपूर्व धैर्य धारण करके, प्रसग-परिवर्तन करने की चेष्टा करते हुए कहा : "आर्य ! आपका भ्रमण-वृत्तान्त सुनूँगी। आप किस-किस देश मे गए थे इस वार ?"

"वह सब सुनने के लिए आतुर इन तरुणों को साथ ले कर ही तो मैंने इस विविक्त देश का आश्रय लिया है। किन्तु, वत्सले ! क्या पुलोमजा से तुम्हारा सम्भाषण नही हुआ ? उसे तो सब विदित है।"

"मैंने कई वार उसको राजप्रासाद मे आमन्त्रित किया। किन्तु वह आई ही नही, आर्य !"

"तुम उससे मिलने हमारे प्रमदवन मे जा सकती थी।"

"सोच तो रही थी कि किसी दिन उसके पास जाऊँगी। किन्तु......

"अवकाश नही मिला। मागध दुर्ग मे नर्तनरत वृज्जिसघ की राजकुमारी को अवकाश मिलता भी कैसे ?"

व्यङ्ग को अनसुना करके, वत्सला ने प्रश्न किया : "आर्य ! प्रतीची मे आप कहाँ तक गए थे ?"

"पारसीक साम्राज्य के उस पार, यवनभूमि तक।"

"कैसा है यवनदेश ?"

"वहाँ एक देश नही है, वत्सले ! वहाँ अनेक गणराज्य है। हमारे वृज्जिसघ जैसे। वैसे ही कूपमण्डूक तथा उतने ही उत्पात-प्रिय।"

आर्य रत्नकीर्ति ने वृज्जिसघ के प्रति कदर्य कटाक्ष किया था। किन्तु वत्सला, अभी भी, विवाद करने के लिए प्रस्तुत नही थी। उन्होंने हँस कर पूछा : "यवन गणराज्य कैसा उत्पात करते है, आर्य !"

आर्य रत्नकीर्ति ने कहा : "वे पारसीक साम्राज्य के पश्चिमवर्ती प्रत्यन्त पर यवन दुर्गश्रेणी का निवेश करने के लिए कटिबद्ध है।"

"तो इसमे उत्पात की क्या बात है, आर्य ! वे अवश्य ही पारसीक साम्राज्य द्वारा सत्रस्त होगे।"

"सत्रस्त होने का कोई कारण हो तब तो। पारसीक सम्राट अनेक

वर्ष से, अपने पूर्ववर्ती प्रत्यन्त पर अवस्थित आर्यावर्त की ओर अभिमुख हैं। अब यवन दस्युदल को दण्डित करने के लिए उन्होंने अपनी दृष्टि प्रतीची की ओर परावृत्त की है। प्रत्यावर्तन करते समय मैंने देखा था कि पारसीकपुरी में एक अभूतपूर्व अभियान का आयोजन हो रहा है। पारसीक सैन्य यवन दस्युदल को धरासात कर देगा।"

वत्सला की समझ में नहीं आया कि आर्य रत्नकीर्ति यवनभूमि के गणराज्यों से इतने रुष्ट क्यों हैं, और पारसीक असुरसाम्राज्य के प्रति इतने आकृष्ट किस लिए। किन्तु वह प्रश्न न पूछ कर, वत्सला बोलीं : "यवन गणराज्य कैसे ही क्यों न हो, आर्य ! वृज्जिसंघ के तो अभिन्न मित्र हैं।"

आर्य रत्नकीर्ति, विस्मित-से होकर, बोले : "वृज्जिसंघ के मित्र ! क्या वैशाली में उनका भी दूत आ गया ?"

"दूत तो नहीं आया, आर्य ! किन्तु उन्होंने, पारसीक असुरसाम्राज्य को आक्रान्त करके, उत्तरापथ की ओर अभिमुख अवन्ति को मुक्त कर दिया। इसी कारण आज वृज्जिसंघ और मगध के मध्य शान्ति है।"

रत्नकीर्ति का स्वर सहसा असहिष्णु हो गया : "तो तुम, मध्यमण्डल तथा प्राची में, अवन्ति के हस्तक्षेप का स्वागत करती हो ?"

वत्सला ने भी दृढ़ होकर कहा : "मैं ही क्या, समस्त वृज्जिसंघ स्वागत करता है। वह हस्तक्षेप न हुआ होता तो राजगृह का राजन्य इस समय पाटलिग्राम में होता। अपने पश्चिमवर्ती प्रत्यन्त पर व्यस्त न होता। मैं तो विधाता से यही प्रार्थना करती हूँ कि यवन गणराज्य, अनेक वर्ष तक, पारसीक असुरसाम्राज्य को संत्रस्त रक्खें और अजातशत्रु, अनेक वर्ष तक, पाटलिग्राम की ओर प्रयाण न कर पाए।"

और भी असहिष्णु होकर आर्य रत्नकीर्ति ने पूछा : "मध्यमण्डल में इस अप्रयोजनीय रक्तपात से वृज्जिसंघ के किस उद्देश्य की सिद्धि होगी ?"

वत्सला ने उत्तर दिया : "वृज्जिसंघ को अवकाश मिल जाएगा, आर्य ! लिच्छवि माताओं के आँसू सूख जाएँगे। वैशाली का शृङ्गाटक पुनरेण लिच्छवि तरुण-समवाय से संकुल हो उठेगा और......

वत्सला की बात पूरी होने के पूर्व ही आर्य रत्नकीर्ति ने चीत्कार

किया : "और तुम चण्डी का रूप धारण करके, एक अन्य युद्ध में, उन तरुणों के रक्त से अपना खप्पर आपूरित कर सकोगी।"

वत्सला के शिर पर जैसे वज्रपात हुआ हो। कितना गर्हित आक्षेप था ! सो भी किसी साधारण व्यक्ति की ओर से नहीं। वृज्जिसंघ के संधि-विग्रह-महामात्य ने किया था वह आक्षेप ! क्या वे वृज्जिसंघ के हिताहित से अनभिज्ञ थे ? अथवा वे सहसा, उन्माद-ग्रस्त हो गए थे ? राजनीति के विषय में आर्य रत्नकीर्ति से यह प्रथम वार्त्तालाप किया था वत्सला ने। उनको, सहसा, विश्वास नहीं हुआ कि वे, वैशाली में अपनी विदेश-नीति-विचक्षणता के लिए विख्यात, आर्य रत्नकीर्ति से सम्भाषण कर रही हैं।

वत्सला का अपमान भी हुआ था। वे आहत कुरङ्गी के समान नेत्र विस्फारित करके आर्य रत्नकीर्ति की ओर देखने लगीं। वहाँ बैठे रहने के लिए, उनमें और इच्छा अवशिष्ट नहीं रह गई थी। किन्तु उठकर चले जाने योग्य मान-मर्यादा भी नहीं बची थी। वे किंकर्त्तव्य-विमूढ़-सी उपासीन रहीं।

उनको एक अतीत घटना का स्मरण हुआ। उस दिन, अंतःदुर्ग के द्वारदेश पर, पुलोमजा ने भी लिच्छवि-समवाय के समक्ष उन पर ऐसा ही लाञ्छन लगाया था। तो क्या पुलोमजा अपने पिता से प्राप्त विष का वमन कर रही थी ?

वत्सला को आतंकित-सी देख कर आर्य रत्नकीर्ति का उत्साह द्विगुण हो गया। वे, अपने चारों ओर उपासीन तरुण-समवाय की ओर देखकर, कहने लगे : "कुछ लोगों को न जाने कहाँ से यह कुबुद्धि प्राप्त हुई है। जब देखो तब युद्ध। वृज्जिसंघ का जीवन विषाक्त कर दिया। लिच्छविगण मानो विपिन-प्रान्त में अनायास ही पोषित होने वाले वन्य वृक्ष हों। जब इच्छा हो तब उनका उच्छेद कर डालो। युद्ध, युद्ध, युद्ध......जब देखो तभी युद्ध। जब सुनो तभी युद्ध। युद्ध के अतिरिक्त जैसे जीवन में कुछ करणीय ही न रह गया हो।"

कई तरुण एक साथ बोल उठे : "आर्य ! मागध दुर्ग के निरर्थक धर्षण में, नर्तकी बनी हुई राजकुमारी की रक्षा के लिए, पाटलिग्राम के दुर्गपाल ने कई सौ लिच्छवि सुभट कटवा दिए।"

आर्य रत्नकीर्ति ने उत्तेजित होकर कहा : "और उस रक्तपान पर प्रसन्न होकर वैशाली विजयोत्सव मना रही है !"

वत्सला, समस्त साहस बटोर कर, बोली "वृज्जिसघ की विजय हुई इसीलिए वैशाली मे उत्सव का समारोह है।"

आर्य रत्नकीर्ति ने उपहास के स्वर मे कहा "युद्ध करके कभी किसी की विजय नही हुई, वत्सले ! वृज्जिसघ को, युद्ध का परित्याग करके, उत्सव मनाना चाहिए।"

"आर्य ! युद्ध क्या हम मोल लेते है ?"

"नही, युद्ध तुम पर लादा जाता है !"

"हाँ, आर्य ! युद्ध सदा ही हम पर लादा गया है। और आप भली भाँति जानते है कि लादने वाला कौन है।"

"तुम्हारा इङ्गित मगधराज अजातशत्रु की ओर है ना ? किन्तु अजातशत्रु मेरा गुरुभाई है। हमने, एक साथ तक्षशिला मे रहकर, एक ही आचार्य से विद्या ग्रहण की है। अजातशत्रु के विषय मे मिथ्याप्रवाद मैं नही सुन सकता।"

"किन्तु मैं किसी प्रवाद की पुनरावृत्ति नही कर रही, आर्य ! आज नौ वर्ष से आपका गुरुभाई, वर्ष प्रतिवर्ष, वृज्जिसघ पर अभियान करता रहा है। अभी कुछ दिन पूर्व, राजगृह मे एक नवीन अभियान का आयोजन था।"

"उन दिनो मै स्वय राजगृह मे विद्यमान था।"

"तब तो आपने सब कुछ अपनी आँखो से देखा होगा, आर्य !"

"मैने कुछ भी नही देखा। त्रियामा के मध्यम याम की भाँति शान्त था राजगृह। स्थविर-सघ की सगीति से समुत्थित धर्मसूक्तोच्चार के अतिरिक्त कोई अन्य ध्वनि ही वहाँ मैने नही सुनी।"

वत्सला की समझ मे नही आया कि वे क्या कहे। उनको विश्वस्त रूप से विदित था कि कुछ दिन पूर्व, राजगृह की वीथि-वीथि मे वैशाली-विजय की चर्चा थी। मगधराज की चतुरङ्गिणी भी यथापूर्व प्रस्तुत हो रही थी। न जाने आर्य रत्नकीर्ति वह समस्त समारम्भ क्यो नही देख पाए ?

आर्य रत्नकीर्ति ने कहा : "मैं स्वय अजातशत्रु से मिल कर आया

हूँ। वे वारम्वार कह रहे थे कि वृज्जिसघ के साथ अखण्ड शान्ति की स्थापना करना ही उनका एकमात्र उद्देश्य है।"

वत्सला ने कुपित होकर व्यङ्ग किया : "हाँ, सो तो है ही। मै भी जानती हूँ वह उद्देश्य। वैशाली के दुर्ग पर मगध का विजयध्वज उत्तोलित होते ही मगध तथा वृज्जिसघ के मध्य अखण्ड शान्ति की स्थापना हो जाएगी। केवल वृज्जिसघ का अस्तित्व न रहेगा। किन्तु वह तो, आपके लिए, एक गौण बात है।"

आर्य रत्नकीर्ति किंचित् हतप्रभ-से हो गए। वे स्वर को सयत करके बोले : "यह तो तुम क्रोध की बात कह रही हो, वत्सले!"

वत्सला की आँखो मे आँसू आने लगे थे। वे कहने लगी : "क्रोध नही आएगा, आर्य! आप इतनी देर से कह क्या रहे है?"

आर्य रत्नकीर्ति और भी विनम्र हो गए। उन्होंने अत्यन्त सरल भाव से पूछा : "मैं यह जानना चाहता हूँ कि वृज्जिसघ एव मगध के मध्य विग्रह का कारण क्या है?"

वत्सला ने कहा : "क्या यह भी मुझे आपको समझाना होगा? वृज्जिसघ के सन्धि-विग्रह महामात्य आप है। कई वर्ष से आपके देखते-देखते तो सब कुछ हुआ है। विग्रह का कारण आपको विदित होना, चाहिए, आर्य!"

एक तरुण ने कहा : "आर्य! मगध की तो केवल इतनी-सी याचना है कि वृज्जिसंघ अपने पाटलिग्राम के दुर्ग का परित्याग कर दे।"

आर्य रत्नकीर्ति बोले : "याचना अनुचित तो नहीं कही जा सकती। पाटलिग्राम मगध की धरती है। मगध की धरती पर दुर्गनिवेश करने का वृज्जिसंघ को कोई अधिकार नही।"

वत्सला, आहत व्याघ्री के समान, उत्पतित होकर खडी हो गईं। उनके स्कन्धदेश से उनका बहुमूल्य ऊर्णाविरचित उत्तरीय स्खलित हो गया। कौशेय के स्तनपट्ट से परिच्छन्न उनका पयोधर-द्वय, उनके वक्ष मे विस्फुटित प्रचण्ड प्रकोप से प्रकम्पित हो उठा। कपोलद्वय पर कसमसाती कोपवह्नि से, पुण्डरीक के सितवर्ण कर्णपूर कुङ्कुमित हो चले। वत्सला के नयनद्वय से अग्निज्वाल झर रही थी।

आर्य रत्नकीर्ति ने, एक बार, वत्सला की ओर देखा। फिर वे अपने तरुण-समवाय से कहने लगे : "वैशाली में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं रहा जो भावाविष्ट हुए बिना इस समस्या का समाधान सोच सके।"

वत्सला ने व्यङ्ग किया : "आप हैं तो, आर्य ! वृज्जिसंघ के संधि-विग्रह-महामात्य !"

"मैं नाम मात्र का महामात्य हूँ। मेरे पास क्षमता होती तो यह प्राणि-हिंसा मैं होने ही कब देता।"

"तो क्षमता प्राप्त कीजिए। आपको, संस्थागार में खड़े होकर, एक बार अपने ये परम पावन विचार लिच्छवि परिषद के समक्ष व्यक्त करने भर की आवश्यकता है। वैशाली विह्वल होकर आपके महावचन का अनुमोदन करेगी।"

"वह दिन भी कभी आएगा, वत्सले !"

"वह दिन तब आएगा जब लिच्छवि-गण की शिराओं में लिच्छवि रक्त न रह जाएगा।"

रत्नकीर्ति ने, वत्सला का हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींचते हुए, अत्यन्त शान्त स्वर में कहा : "वत्सले ! मैं विजयोत्सव के पुण्य पर्व पर तुमसे विवाद नहीं करना चाहता। मैं तो केवल औचित्यानौचित्य के विषय में अपने विचार प्रकट कर रहा था।"

वत्सला ने पुनः उपासीन होकर पूछा : "आपके अपने विचार, अथवा राजगृह के राजन्य के विचार ?"

"अजातशत्रु के विचार ही मान लो। किन्तु क्या तुमने कभी उन विचारों को समझने की चेष्टा की है ?"

"नहीं, आर्य ! मेरी चेष्टा तो यही रही है कि लिच्छवि खड्ग के प्रहार से वे विचार परिवर्तित हो जाएँ। किन्तु आपने समझे हैं वे विचार। आप, कृपया, मुझे भी समझा दीजिए।"

"सीधी-सी बात है, वत्सले ! मगध चतुर्दिक शत्रु-समवाय से पर्य-वसित है। ऐसी अवस्था में मगध यदि......

"मगध के शत्रु-समवाय में किस-किस का समावेश है, आर्य !"

"पश्चिम प्रत्यन्त पर वत्स। उत्तर-पश्चिम में कोसल और मल्ल,

और......

"उत्तर में वृज्जिसंघ। कह दीजिए, वह भी कह दीजिए। आप रुक क्यों गए, आर्य!"

"वृज्जिसंघ को अजातशत्रु मगध का शत्रुराष्ट्र नहीं मानता।"

"तभी तो वह वर्ष-प्रतिवर्ष वृज्जिसंघ के विरुद्ध अभियान करता है! इससे बढ़कर मित्रता का मूर्त रूप भला और क्या होगा?"

"व्यङ्ग न करो, वत्सले! अजातशत्रु का उद्देश्य केवल इतना ही है कि वृज्जिसंघ कोसल के कुचक्र से निकल जाए।"

"कुचक्र कैसा, आर्य! दो राष्ट्रों की परस्पर मैत्री क्या केवल कुचक्र ही होती है?"

"मैत्री तो किसी के विरुद्ध ही होती है ना, वत्सले!"

"अनिवार्यत: नहीं। किन्तु कोसल और वृज्जिसंघ की मैत्री अवश्य मगध के विरुद्ध है।"

"यही तो मैं कह रहा हूँ। ऐसी अवस्था में मगध यदि आतङ्कित होकर आत्मत्राण का आयोजन करे तो मगध को दोष नहीं दिया जा सकता। मगध का आतङ्कित होना स्वाभाविक सत्य है। यदि मगध के स्थान में वृज्जिसंघ होता तो वृज्जिसंघ भी वही करता जो मगध को करना पड़ रहा है।"

वत्सला मौन रहकर आर्य रत्नकीर्ति की ओर देखने लगीं। आर्य पद्म-कीर्ति के एकमात्र सुपुत्र वयोवृद्ध हो चले थे। उनके केश-श्मश्रु श्वेत हुआ चाहते थे। उनका दावा था कि उन्होंने, बारम्बार, विदेश-यात्रा करके अपनी आँखों से सब-कुछ देखा है। दण्डनीति के अनेक आचार्य तथा अनेक राष्ट्रों के राजा और सन्धि-विग्रह-महामात्य उनके परिचित थे।

किन्तु, फिर भी, न जाने क्यों, आर्य रत्नकीर्ति नवजात शिशु के समान अबोध ही रह गए। अबोध शिशु शैक्ष्य होता है। आर्य रत्नकीर्ति शिक्षक होने का दम्भ करने लगे थे।

आर्य रत्नकीर्ति के प्रति किंचित् करुणार्द्र होकर राजकुमारी ने कहा: "मैंने सुना है कि आप इतिहासवेत्ता हैं। मैं आज आपसे एक प्रश्न पूछती हूँ। आप सम्यक्‌रूपेण विचार करके उत्तर दें, आर्य! क्या वृज्जिसंघ ने

कभी भी अजातशत्रु के मगध पर आक्रमण किया है ?"

रत्नकीर्ति मानो आहत हो गए। वे वत्सला की मूर्खता पर दुःख प्रकट करते हुए बोले : "बात का प्रसंग परिवर्तित मत करो, वत्सले ! आक्रमण किसने किया और किस पर हुआ, यह गवेषणा करना सर्वथा अप्रयोजनीय है। इस समय वस्तुस्थिति यह है कि वृज्जिसंघ तथा कोसल की परस्पर मैत्री के कारण मगध आतङ्कित है।"

"यह क्या वस्तुस्थिति नहीं है कि मगध के अनवरत आक्रमण से आतङ्कित होकर ही वृज्जिसंघ ने कोसल से मैत्री की है ?"

"वे सब अतीत की बातें है, वत्सले ! उनका स्मरण करके, वर्तमान में अपने दृष्टिकोण को दूषित नहीं करना चाहिए।"

"आपकी शिक्षा मे सार है, आर्य ! अजातशत्रु आपका अभिन्न मित्र है। उसको आप समझा दीजिए कि, बीती बाते बिसार कर, वर्तमान में वृज्जिसंघ के विरुद्ध अपना सैन्य-संगठन बन्द कर दे। मै आपको विश्वास दिलाती हूँ कि वृज्जिसंघ, प्रतिपल, शान्ति-स्थापना के लिए सर्वथा प्रस्तुत है।"

"अब तो मगधराज को मनाने का एक ही मार्ग है—वृज्जिसंघ के पाटलिग्रामस्थ सैन्य का सम्पूर्ण अपसरण।"

वत्सला का मन घोर ग्लानि से तिक्त हो गया। वे, इस विवाद को आगे बढ़ाकर, अपने त्रास में वृद्धि करना नहीं चाहती थीं। अतएव वे मौन हो गई और वहाँ से उठकर चले जाने के लिए, मन-ही-मन, कोई उपक्रम खोजने लगीं।

आर्य रत्नकीर्ति ने कहा : "वत्सले ! तुमने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया ?"

वत्सला बोलीं : "आप यदि सस्थागार में उपस्थान करके यह बात कहते तो कोई लिच्छवि वृद्ध आपको उचित उत्तर दे देता।"

"वह उत्तर क्या होता ?"

"यही कि आप स्वदेश-द्रोही हैं, लिच्छवि-कुल-कलङ्क है, वैशाली के लिए विडम्बना हैं, और..."

वत्सला ने, सहसा, अपनी वाणी पर संयम किया। किन्तु रत्नकीर्ति

ने पूछ लिया : "और क्या, वत्सले ?"

वत्सला के मुख से वाग्बाण निर्गत हो गया। वे, असहिष्णु होकर कह बैठीं : "और कापुरुष हैं।"

राजकुमारी ने, जाने के लिए उद्यत होकर, गात्रोत्थान किया। वहाँ वे एक पल-भर भी रुकना न चाहती थीं। किन्तु आर्य रत्नकीर्ति ने उनका आँचल पकड़ कर, गम्भीर स्वर में कहा : "तुम न जाओ, राजकुमारि ! तुम यहीं बैठो। इन लिच्छवि तरुणों के साथ बैठकर उत्सव मनाओ। मैं ही चला जाता हूँ। मुझे ज्ञात नहीं था कि वैशाली के राजोद्यान में, अब, आर्यश्रेष्ठ द्वारा आमन्त्रित अभ्यागतों का ऐसा आदर-सत्कार होता है। अन्यथा मैं भूलकर भी राजोद्यान की पूण्यभूमि को अपवित्र नहीं करता।"

आर्य रत्नकीर्ति उत्थान करने लगे। किन्तु तरुण समवाय ने, उनको रोक कर, एक स्वर से कहा : "आप यहीं ठहरें, आर्य ! हम अभी जाकर आर्यश्रेष्ठ से राजकुमारी के अभद्र आचरण का निराकरण मांगेंगे।"

तरुण खड़े हो गए। आर्य रत्नकीर्ति वत्सला का आँचल थामे उपासीन रहे।

राजकुमारी जैसे आकाश से गिरी हों। आर्य रत्नकीर्ति की तर्क-प्रणाली से अतिमात्र उत्तेजित होकर, वे वस्तुस्थिति को पूर्णरूपेण भूल चुकी थीं। उनको यह स्मरण ही न रहा था कि वे राजोद्यान में आमन्त्रित अभ्यागत के प्रति अनर्गल अपशब्द का व्यवहार कर रही हैं। उनको यह भी स्मरण नहीं रहा था कि विपक्ष की ओर से विवाद करने वाले पुरुष वृज्जिसंघ के संधि-विग्रह-महामात्य हैं। किसी ने, वृज्जिसंघ की निर्दोषता पर आक्षेप करते हुए, वृज्जिसंघ के जन्मजात शत्रु राजगृह के राजन्य का पक्ष लिया था। और वत्सला के मुख से, अनायास ही, उस कुतर्की की भर्त्सना में कठोर शब्द निकल गए थे।

वस्तुस्थिति का स्मरण होते ही, राजकुमारी के पश्चात्ताप की सीमा न रही। घोर लज्जा से अभिभूत वत्सला के नयनों से अश्रु की जलधार बह चली। वे, आर्य रत्नकीर्ति के चरण पकड़कर, आर्तनाद करने लगीं : "आर्य ! मैंने घोर अपराध किया है। आपके प्रति, आर्यश्रेष्ठ के प्रति, वृज्जि-संघ के प्रति। लिच्छवि-मर्यादा के प्रति भी। मैं जानती हूँ कि इस अपराध

की मार्जना सम्भव नहीं। आप मेरी जितनी भी भर्त्सना करें, अपर्याप्त होगी। मैं अपने अनाचार का अनुताप अपने हृदय में लेकर जा रही हूँ। आपसे हो सके तो आप इस अबोध बालिका को क्षमा कर देना।"

आर्य रत्नकीर्ति ने, वत्सला को उठाकर, उनकी चिबुक का स्पर्श करते हुए कहा : "यह सब क्या कह रही हो, वत्सले ? तुम लिच्छवि-दुहिता हो। तुम्हारी शिराओं में लिच्छवि रक्त प्रवाहित है। तुम इस प्रकार उत्तेजित न होगी तो और कौन होगा, वत्सले !"

वत्सला, अपना मुख परावृत्त करके, बोलीं : "आर्य ! अब मैं आर्य-श्रेष्ठ के सम्मुख क्या मुख लेकर जाऊँगी ? वे मेरे अभद्र आचरण का कथानक सुनेंगे तो उनके सन्ताप की सीमा न रह जाएगी। उन्होंने अपना सारा जीवन दुःख झेलकर व्यतीत किया है। अब उनके अन्तिम दिनों में मेरा असयम...

"पागल न बनो, वत्सले ! यहाँ पर उपस्थित लिच्छवि-वृन्द में कोई भी इतना क्षुद्र नहीं है कि तुम्हारे विरुद्ध अभियोग लेकर आर्यश्रेष्ठ के समीप जाए। ये सब तो हमारी आपस की बातें थीं। तुम समझ लो कि हमारा यह वाग्युद्ध ही विजयोत्सव के उपलक्ष में हमारा मनोविनोद था।"

वत्सला ने, पुनरेण, आर्य रत्नकीर्ति के चरण स्पर्श किए। तब वे, एक क्षण भी रुके बिना, वहाँ से भाग निकलीं।

विजयोत्सव में अभ्यागत लिच्छवि-गण, नाटक देखने के लिए, राजो-द्यान के प्रेक्षागृह की ओर गमन कर रहे थे। उस ओर न जाकर, वत्सला ने राजप्रासाद में प्रवेश किया। और अपने कक्ष के कपाट अवरुद्ध करके, शय्यासन पर अधोमुख शायमान हो, वे अश्रुमोचन करने लगीं।

: २ :

नवागत हेमन्त की प्रभातवेला। प्रभाकर का पाण्डुर प्रकाश, वैशाली को अपने आलिङ्गन में आबद्ध करके, प्रमत्त-सा प्रसुप्त है। करकासार-से सुशोभित है महानगर के सुधा-स्नात सौध-शृङ्ग।

वैशाली के पूर्ववर्ती द्वार के निकट, प्रथम प्राचीर के अभ्यन्तर अव-स्थित चापाल चैत्य में आराधक-वृन्द का यातायात है। चैत्य की पुण्य-सलिला पुष्करिणी में निमज्जन। धूप, दीप, गन्ध, माल्य आदि नीराजना

द्वारा देवता की अर्चना। गर्भगृह के देहली-द्वार पर सश्रद्ध मस्तक-न्यास। मौन रहकर, मन-ही-मन, अपने आराध्य से वर-याचना। और अन्त में, मन्त्रोच्चार करते हुए, चैत्य की चतुर्दिक प्रदक्षिणा। प्रत्येक पूजार्थी शान्त-चित्त और गद्‌गद् हृदय लेकर स्वगृह की ओर प्रत्यागमन करता है।

चैत्य के पुरस्तात्, प्रशस्त प्राङ्गण में, सभामण्डप है। यहाँ, पुण्यपर्व के अवसर पर, मङ्गल गीत-वाद्य द्वारा देवता का स्तवन-गान होता है। धुरंधर धर्माचार्य नगर में आते हैं तो उनका धर्मोपदेश भी। अन्यदिन, पूजा के लिए समागत नागरिक, पूजा समाप्त करके, मण्डप में उपासीन हो, विविध वार्त्तालाप करते हैं।

आज मण्डप में एक लिच्छवि-समवाय समुपस्थित है। दस-बारह पुरुष। कतिपय पुरुष वृद्ध हैं, कतिपय वयस्थ, और शेष सब तरुण। किन्तु चर्चा में अंशग्रहण कर रहे हैं केवल चार व्यक्ति। अन्य सब श्रोता हैं।

एक तरुण ने कहा : "सुना है कि महास्थविर आयुष्मान कोलिगोधापुत्र अजातशत्रु का शान्तिसन्देश लेकर वैशाली आ रहे हैं। मगधराज से यही आशा थी।"

एक वृद्ध मुस्कराने लगे। फिर वे बोले : "अरे वत्स! यह प्रवाद है, प्रवाद। मैं विश्वास करने के लिए प्रस्तुत नहीं।"

एक वयस्थ ने वृद्ध से प्रश्न किया : "किन्तु, आर्य! यह प्रवाद तो समस्त वैशाली में विस्तार पा चुका है। आपको विश्वास क्यों नहीं होता?"

वृद्ध ने उत्तर दिया : "जब तक प्रमाण द्वारा प्रवाद की पुष्टि न हो, तब तक मैं कैसे विश्वास कर लूँ? तुम्हारे पास कोई प्रमाण हो तो प्रस्तुत करो, सौम्य!"

तरुण ने कहा : "आर्य! मैं नहीं जानता कि आपको किस प्रकार का प्रमाण पाकर सन्तोष होगा। किन्तु इस विषय में यह विचारणीय है कि महास्थविर राजगृह से चारिका करते हुए आ रहे हैं।"

एक दूसरा तरुण हँसने लगा। फिर उसने कहा : "यह कोई प्रमाण नहीं, सौम्य! राजगृह से तो नित्यप्रति कोई-न-कोई श्रमण वैशाली में आते रहते हैं।"

वयस्थ बोला : "इसमें हँसने की क्या बात है ? क्या तुम्हें यह ज्ञात नहीं कि महास्थविर कोलिगोधापुत्र उन पञ्चशत प्रमुख महास्थविरों में से एक है जिन्होंने राजगृह के वैभारपर्वत पर वर्षावास करके तथागत के धर्म एवं विनय का संगायन किया है ?"

दूसरे तरुण ने उत्तर दिया, "महास्थविर की ख्याति से मैं अनभिज्ञ नहीं हूँ, आर्य ! वे अनुपम धर्मधर है । किन्तु यह मैं किस प्रकार मान लूँ कि वे मगधराज का दौत्यकर्म भी करेंगे ?"

प्रथम तरुण ने कहा : "इस प्रसंग में दौत्यकर्म का प्रश्न ही नहीं उठता । मगधराज ने धर्मसंघ की संगीति का आतिथ्य-भार वहन किया था । महास्थविर से उनका वार्तालाप अवश्य हुआ होगा । उसी अवसर पर मगधराज ने कुछ संकेत किया हो तो असम्भव नहीं ।"

वृद्ध बोले : "सम्भव है मगधराज ने संकेत किया हो । किन्तु जब तक किसी विश्वस्त सूत्र से कुछ ज्ञात न हो तब तक, मेरे मत में, इस प्रकार के प्रवाद उत्थापित करना दिवास्वप्न देखने के समान है ।"

वयस्थ ने कहा : "आर्यश्रेष्ठ महाली से अधिक विश्वस्त सूत्र क्या होगा, आर्य !"

वृद्ध ने उत्तर दिया : "जहाँ तक मुझे विदित है, आर्यश्रेष्ठ ने तो इस विषय में अभी तक एक शब्द भी नहीं कहा ।"

वयस्थ बोला : "वाणी से वे सदा ही बहुत अल्पभाषी रहे हैं । किन्तु उनका कार्य-कलाप उनके अन्तर्मन को अभिव्यक्त करता रहता है ।"

द्वितीय तरुण ने वयस्थ से पूछा : "आर्य ! आप तनिक हमको यह तो समझाइए कि आर्यश्रेष्ठ के कौन से कार्य ने उनके किस विचार को व्यक्त किया है ?"

वयस्थ ने उत्तर दिया : "विजयोत्सव के उपरान्त यह बात वैशाली में सर्वविदित थी कि आर्यश्रेष्ठ ने वर्षकार ब्राह्मण को, वृज्जिसंघ में शरणापन्न करने का दृढ़ निश्चय किया है । हम तो प्रतिदिन प्रतीक्षा कर रहे थे कि आर्यश्रेष्ठ के इस निश्चय की घोषणा, किसी समय भी, डिण्डिम-घोष द्वारा वैशाली की वीथि-वीथि में सुनाई देने वाली है । किन्तु आर्य-श्रेष्ठ ने, अकस्मात्, घोषणा कर दी कि वर्षकार का निर्णय वे स्वयं न

करके, परिषद को समर्पित करते हैं। क्या तुम इतना भी नहीं समझ सकते कि आर्यश्रेष्ठ की इस सर्वथा अभूतपूर्व घोषणा में कोई गूढ़ रहस्य विद्यमान है ?"

वृद्ध बोले : "सौम्य ! हमें तो इस साधारण-सी घटना में कोई रहस्य दृष्टिगोचर नहीं होता।"

प्रथम तरुण ने प्रश्न किया : "क्या आप यह जानते हैं कि, पूज्य प्रवेणी-पुस्तक के विधानानुसार, वृज्जिसंघ के राजा किसी भी शरणागत को अभयदान दे सकते हैं ?"

वृद्ध ने उत्तर दिया : "मैं भलीभाँति जानता हूँ वह विधान।"

वयस्थ ने कहा : "तो अब की बार ही आर्यश्रेष्ठ ने क्यों उस अधिकार का स्वेच्छानुकूल उपभोग नहीं किया ? इसके पूर्व वे, न जाने कितने शरणागतों के विषय में, स्वेच्छानुकूल निर्णय कर चुके हैं। उन्होंने, इसके पूर्व, कभी भी ऐसे प्रसंग पर परिषद का परामर्श नहीं माँगा।"

द्वितीय तरुण ने उत्तर दिया : "यह तो बहुत सीधी-सी बात है, आर्य ! वर्षकार तो कोई साधारण शरणागत नहीं। न उन्होंने साधारण मार्ग से शरण की याचना की है। उनको लेकर वृज्जिसंघ में विविध मतामत विद्यमान हैं। ऐसी अवस्था में, उनका निर्णय यदि परिषद ही करे तो सर्वथा समुचित होगा। आर्यश्रेष्ठ ने इसी कारण अपने विधानोक्त अधिकार का उपभोग नहीं किया।"

प्रथम तरुण ने पूछा : "किन्तु वर्षकार के आगमन के उपरान्त परिषद के कई सन्निपात हो चुके। एक भी सन्निपात में उनके विषय में ज्ञप्ति प्रकाशित नहीं हुई। न किसी ने प्रतिज्ञा प्रस्तुत की। सुनते हैं कि महास्थविर के आगमनोपरान्त ही परिषद इस विषय में परामर्श करेगी।"

वयस्थ ने तरुण का अनुमोदन करते हुए कहा : "यह भी एक गूढ़ रहस्य है जो उसी ओर संकेत करता है।"

वृद्ध ने पूछा : "किस ओर संकेत करता है, सौम्य !"

वयस्थ ने कहा : "महास्थविर अवश्य ही कोई सन्देश लेकर आ रहे हैं। वह सन्देश सुने बिना परिषद वर्षकार के प्रसंग पर परामर्श करना नहीं चाहती। वर्षकार ने मगधराज के साथ द्रोह किया है। वैशाली में

उनको शरण देने का अर्थ होगा कि वृज्जिसंघ अजातशत्रु के साथ सन्धि करना नहीं चाहता। अतएव परिषद को, इस विषय में, विवेक से काम लेना होगा।"

द्वितीय तरुण बोला : "आप क्या यह विश्वास करते हैं कि, मगध-राज के साथ सन्धि करने के उद्देश्य से, वृज्जिसंघ शरणागत को शरण देने से विमुख हो जाएगा? यह तो उसी दिन संभव होगा जिस दिन वृज्जिसंघ अपनी आर्य-परम्परा का परित्याग कर देगा, लिच्छवि-गण अपनी मर्यादा से भ्रष्ट हो जाएँगे। वह दिन तो अभी तक नहीं आया, आर्य!"

वयस्थ निरुत्तर होकर प्रथम तरुण की ओर देखने लगा। वृद्ध ने कहा : "परिषद ने अभी तक, वर्षकार के प्रसंग पर, इसीलिए परामर्श नहीं किया कि परिषद, महास्थविर का धर्मोपदेश सुनकर, वर्षकार के कृत्य में विद्यमान धर्माधर्म की विवेचना करना चाहती है। वर्षकार को वृज्जिसंघ में शरण देने के विषय में कोई धर्मसंकट नहीं। किन्तु वे केवल शरण पाने के लिए ही वैशाली में नहीं आए। उनको वृज्जिसंघ में कोई उचित पद पाने की भी आशा है। किन्तु वर्षकार का स्वामीद्रोह यदि परिषद के मत में धर्मानुकूल नहीं तो वृज्जिसंघ उनको किसी पद पर आरूढ़ न कर सकेगा।"

प्रथम तरुण ने प्रसंग-परिवर्तन करके कहा : "मैं नहीं जानता कि मगधराज ने, महास्थविर के माध्यम से, कोई शान्ति-सन्देश प्रेषित किया है अथवा नहीं। वह गौण प्रसंग है। मुख्य प्रसंग तो यह है कि मगधराज शान्ति की अभीप्सा करते हैं अथवा नहीं। यदि वे शान्ति के अन्वेषी हैं तो उनका शान्ति-सन्देश भी किसी दिन आएगा ही आएगा।"

द्वितीय तरुण ने वयस्थ से पूछा : "आपका इस विषय में क्या मत है?"

वयस्थ ने उत्तर दिया : "मुझे तो कोई संशय नहीं कि मगधराज शान्ति चाहते हैं।"

वृद्ध ने प्रश्न किया : "प्रमाण?"

वयस्थ कहने लगे : "प्रमाण प्रचुरतर हैं, आर्य! मगध के साथ

हमारा संग्राम नौ वर्ष से चल रहा है। प्रत्येक वर्ष, कार्तिक की पूर्णिमा आते ही, वैशाली मे यह समाचार आ जाया करता कि मगध की चतुरङ्गिणी राजगृह से पाटलिग्राम की ओर प्रयाण कर रही है। इस बार मार्गशीर्ष का प्रथम पक्ष व्यतीत हो चला। किन्तु अभी तक वृज्जिसंघ के विरुद्ध मगध के अभियान का कोई समाचार वैशाली में नहीं प्राप्त हुआ। मगधराज की ओर से कोई संकेत नहीं कि वे वृज्जिसंघ से विग्रह करना चाहते है।"

द्वितीय तरुण हँसने लगा। फिर वह बोला: "राजगृह में चतुरङ्गिणी तो अब की बार भी ठीक समय पर ही सजी थी। किन्तु, अकस्मात्, मगधराज को अपने पश्चिमवर्ती प्रत्यन्त की ओर जाना पड गया। अन्यथा वह चतुरङ्गिणी अभी तक कभी की पाटलिग्राम में पहुँच चुकी होती।"

वयस्थ ने कहा: "मैं नहीं मानता। यदि मगध का पश्चिमवर्ती प्रत्यन्त आक्रान्त हुआ होता तो इस तर्क मे कुछ सार हो सकता था कि मगधराज विवश होकर ही पाटलिग्राम की ओर प्रयाण नहीं कर पाए। किन्तु मगधराज तो अपने मित्र भर्गगण की सहायता करने के लिए पश्चिम की ओर गये है। वे वृज्जिसंघ से विग्रह करना चाहते तो पाटलिग्राम आने के लिए वे सर्वथा स्वतन्त्र थे।"

वृद्ध बोले: "यह तुम्हारी भूल है, सौम्य! मगधराज वस्तुतः भर्गगण की सहायता करने के लिए विवश है। आज यदि वत्स भर्ग जनपद पर विजय पा लेता है तो कल वह मगध पर आक्रमण करेगा। भर्गगण की सहायता करके मगधराज अपना ही परित्राण कर रहा है।"

प्रथम तरुण ने वयस्थ के समर्थन में कहा: "आर्य! आपको यह तो स्वीकार करना ही होगा कि मगधराज वृज्जिसंघ की ओर संयम का आचरण कर रहे हैं। मगधराज में इतना सामर्थ्य अवश्य है कि वे एक अन्य सेना सजाकर पाटलिग्राम की ओर प्रेषित कर दें। अब की बार तो पाटलिग्राम की ओर उनका अभियान और भी अनिवार्य था। लिच्छविगण ने छल से मागध दुर्ग का धर्षण किया है। मगध के गर्वान्वित महाराज को यह सहन नहीं होना चाहिए। किन्तु जान पड़ता है कि मगधराज वृज्जिसंघ के साथ शान्ति-स्थापना के लिए लालायित हैं। इसीलिए

वे संयम का आचरण कर रहे हैं।"

वयस्थ अपने युक्तितर्क पर मुग्ध होकर बोले : "गतवार, वृज्जिसंघ के साथ युद्ध करते-करते, उनको कोसल से विग्रह-रत होना पड़ा था। तब भी उनकी पाटलिग्रामस्थ सेना अपने स्थान पर अचल रही थी। राजगृह से एक अन्य सेना वाराणसी की ओर गई थी। अब की वार भी, मगधराज यदि इच्छा करते तो एक सेना पाटलिग्राम की ओर प्रेषित कर सकते थे। अन्ततः, भर्गगण की सहायता के लिए, मगधराज को विपुल बल की आवश्यकता तो नहीं ही थी।"

द्वितीय तरुण ने एक वार वृद्ध की ओर देखा। फिर वह कहने लगा : "संयम और शान्ति की अभीप्सा तो एक बात नहीं है, आर्य ! मगधराज ने संयम से काम लिया है, इसलिए वृज्जिसंघ को चाहिए कि वह और भी सावधान हो जाए। आततायी द्वारा आचरित संयम उसके असंयम की अपेक्षा अधिक घातक होता है।"

वयस्थ ने उत्तर दिया : "मेरे मत में तो अजातशत्रु आततायी नहीं हैं। वे वृज्जिसंघ से विग्रह करते रहे हैं, और सम्भव है कि भविष्य में भी अनेक वर्ष तक करते रहें। किन्तु इसी कारण उनको आततायी कह देना अन्याय है। धर्मसंघ का आतिथ्य-सत्कार आततायी द्वारा सम्पन्न नहीं हो सकता।"

वृद्ध बोले : "तुम धर्मसंघ की बात कहते हो, सौम्य ! तुमको क्या स्मरण नहीं कि भगवान के जीवनकाल में ही अजातशत्रु ने धर्मसंघ का बद्धाञ्जलि उपासक बनने का आडम्बर रचा था। अपनी अमात्य-परिषद के साथ जीवक कौमारभृत्य के आम्रवन में जाकर उसने, शील, प्रज्ञा एवं समाधि के विषय में भगवान का पावन प्रवचन सुना था। किन्तु उसके परिणामस्वरूप क्या उसका कलुषित हृदय शुद्ध हुआ ? वृज्जिसंघ पर अनय-व्यसन आपातित करने का अपना दुष्ट मनोरथ क्या उसने त्याग दिया ? निरपराध लिच्छवि-गण के निरर्थक रक्तपात से क्या वह विरत हो गया ?"

द्वितीय तरुण ने, वृद्ध के समर्थन में, कहा : "तदनन्तर भगवान वैशाली में आए थे। मैंने स्वयं एक संघस्थविर से अजातशत्रु के विषय

में प्रश्न पूछा था कि भगवान की शरण में आकर भी मगधराज अपनी हिंस्रवृत्ति से विरत क्यों नहीं हुआ ?"

वयस्थ ने व्यग्र होकर पूछा : "स्थविर का क्या उत्तर था, सौम्य ?"

द्वितीय तरुण ने उत्तर दिया : "स्थविर के कथनानुसार, जब अजातशत्रु आम्रवन से चला गया तब भगवान ने भिक्षुसंघ को सम्बोधित करके कहा था : 'भिक्षुगण ! इस राजा के संस्कार शुभ नहीं हैं। यह राजा मन्दभाग्य है, भिक्षुगण ! यदि इस राजा ने अपने धर्मप्राण पिता की हत्या न की होती तो इसको, इसी आसन पर बैठे-बैठे, विमल धर्मचक्षु प्राप्त हो जाता।' भगवान के इस निर्णय के उपरान्त, अजातशत्रु के विषय में कुछ भी कहने के लिए नहीं रह जाता।"

वयस्थ का मुख, सहसा, करुणा से द्रवित हो गया। जैसे मन-ही-मन वह अजातशत्रु के मन्द भाग्य पर महान दुःख अनुभव कर रहा हो। तब वह बोला : "मगधराज अवश्य ही मन्दभाग्य हैं। अन्यथा, तथागत, अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध, विद्या-आचरण-युक्त सुगत, लोकविद्, पुरुषों का दमन करने वाले अनुत्तर दम्यसारथि, देव एवं मनुष्यों के शास्ता की शरण में जाकर वे अवश्य पाप से मुक्त हो जाते। अवश्य ही मगधराज के संस्कार शुभ नहीं।"

अपने सहकारी को विपक्ष की ओर आकृष्ट होते देखकर, प्रथम तरुण किंचित क्षुब्ध हो गया। वह अपने स्वर को प्रखर करके कहने लगा : "भगवान ने एक समय जो कुछ मगधराज के विषय में कहा वह उस समय सत्य था। किन्तु आज वह सत्य नहीं। भगवान के विनय-धर्म का प्रताप ही कुछ ऐसा अप्रतिहत है कि उसकी शरण में आने वाले घोर पापिष्ठ का भी परित्राण हो जाता है। क्या अंगुलिमाल के पाप नहीं धुले ?"

वृद्ध बोले : "भगवान के विनय-धर्म का प्रताप अमोघ है। इसमें किसी को संशय नहीं करना चाहिए। किन्तु भगवान ने कर्मबन्धन का विधान भी तो माना है। किसी-किसी का कर्मबन्धन इतना क्रूर होता है कि एक जन्म में उसका क्षय नहीं हो पाता। राजगृह का पितृघातक, नरसंहार-लोलुप राजन्य भी ऐसा ही बद्धजीव है।"

प्रथम तरुण और भी क्षुब्ध हो उठा। वह बोला : "आर्य ! आप भगवान के विनय-धर्म की व्याख्या न करें। इस विषय में केवल भगवान का वचन ही प्रमाण है।"

वृद्ध ने उत्तर दिया : "अजातशत्रु के विषय में भगवान का जो वचन उपलब्ध है उसका तुम प्रत्याख्यान करते हो। तदुपरान्त तो उनके वचन की व्याख्या का ही आश्रय लेना होगा।"

प्रथम तरुण ने कहा : "अच्छा, व्याख्या ही सही, आर्य ! आप ही बतलाइए कि भगवान ने, पश्चात्ताप द्वारा, पापी के हृदय-परिवर्तन की निश्चिति मानी है अथवा नहीं ?"

वृद्ध बोले : "मानी है, सौम्य ! किन्तु......

प्रथम तरुण बीच में ही बोल उठा : "अब 'किन्तु' के लिए क्या स्थान रह जाता है ? सिद्धान्त, सिद्धान्त है।"

द्वितीय तरुण ने कहा : "सिद्धान्त ही सही, सौम्य ! वास्तविक प्रश्न तो यह है कि क्या अजातशत्रु के हृदय में पश्चात्ताप जागा है ?"

प्रथम तरुण ने असहिष्णु होकर उत्तर दिया : "यह भी कोई प्रश्न है भला ? यदि मगधराज के मानस में पश्चात्ताप न हुआ होता तो वे धर्मसंघ की सेवा क्यों करते ? वत्सराज उदयन ने तो धर्मसंघ की सेवा नहीं की। अवन्तिपति महासेन प्रद्योत भी चण्ड के चण्ड ही रह गए।"

वयस्थ ने, गम्भीर होकर, कहा : "हाँ, यह बात भी सर्वथा विचारणीय है। अजातशत्रु ने एक समय धर्मसंघ से दारुण द्रोह किया था। संघभेदक देवदत्त से मिलकर भगवान की हत्या का कुचक्र रचा। भगवान के ऊपर नडगिरि गजराज छोड़ा। भगवान से विद्वेष करके निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र, पूर्ण काश्यप, मक्खलि गोशाल, अजित केशकम्बली, प्रक्रुध कात्यायन, संजय वेलयष्टिपुत्र आदि अनेक अन्य-तैर्थिकों का पोषण किया। ये सब कौकृत्य करने के उपरान्त यदि वे धर्मसंघ की शरण में आए हैं तो हृदय में प्रवाहित पश्चात्ताप से प्रेरित होकर ही। अन्य कोई कारण ही नहीं हो सकता।"

द्वितीय तरुण बोला : "यह भी तो सम्भव है कि धर्मसंघ का प्रताप देखकर, धर्मसंघ के विमलयश से लाभान्वित होने के लिए ही, अजातशत्रु धर्मसंघ की शरण में आने का मिथ्याचार कर रहा हो।"

वयस्थ ने पूछा : "धर्मसंघ की शरण में आकर, धर्मलाभ के अतिरिक्त, अन्य किस लाभ की आशा की जा सकती है ?"

द्वितीय तरुण ने उत्तर दिया : "धर्मसंघ के निर्व्याज अनुयाइयों के साथ प्रवञ्चना की जा सकती है।"

प्रथम तरुण को, सहसा, क्रोध आ गया। वह द्वितीय तरुण की भर्त्सना करता हुआ बोला : "दुर्भावना का यह अक्षय विष अपने अन्तर में संचित करके, तुम भगवान के धर्मवचन के साथ प्रवञ्चना कर रहे हो। धर्मसंघ के एक अन्य उपासक के प्रति इतने सशंक व्यक्ति को धर्मवचन का आश्रय नहीं लेना चाहिए। तुम या तो धर्मवचन को समझते ही नहीं अथवा, जान-बूझकर, अर्थ का अनर्थ कर रहे हो।"

वयस्थ ने भी द्वितीय तरुण से कहा : "यह सत्य है, सौम्य ! धर्मवचन में विश्वास करने वाले को किसी के प्रति विद्वेष नहीं करना चाहिए।"

वृद्ध हँसने लगे। फिर वे, द्वितीय तरुण के स्कन्ध का सस्नेह स्पर्श करके, बोले : "सौम्य ! धर्मवचन में विश्वास करने वाले को अपने दोनों नेत्र निमीलित करके ही लोकयात्रा करनी चाहिए। एक भी नेत्र खुलते ही संसार में भरा अन्याय-अविचार उसको अस्थिर कर सकता है। धर्मवचन के अनुसार, धर्मप्राण व्यक्ति के लिए, नेत्रोन्मीलन से बढ़कर महापातक नहीं। यदि कोई दुराचारी उससे दुराग्रह करे कि नेत्रोन्मीलन करके एक बार वस्तुसत्य को भी हृदयङ्गम कर लो, तो धर्मप्राण मनुष्य का कर्त्तव्य है कि क्रुद्ध हो जाए। धर्मवचन के पालन का, धर्मवचन का यथार्थ अर्थ जानने का, एकमात्र पुण्य-परिणाम है क्रोध। धर्मप्राण व्यक्ति नेत्रोन्मीलन करे तो क्रोध से आरक्त करके। अन्यथा उसकी धर्मसाधना ही व्यर्थ हो गई।"

प्रथम तरुण ने और भी क्रुद्ध होकर कहा : "आर्य ! आप मेरा उपहास कर रहे हैं। आप सम्भवतः यह नहीं जानते कि मैं कौन हूँ।"

वृद्ध ने कहा : "अपना परिचय दे दो, सौम्य ! मैं तुरन्त जान जाऊँगा कि तुम कौन हो।"

प्रथम तरुण ने गर्व से वक्ष विस्फारित करके उत्तर दिया : "मैं इसी वर्ष विदेश-यात्रा से प्रत्यागत हुआ हूँ। मेरी समस्त शिक्षा-दीक्षा तक्षशिला

में हुई है। मैंने आर्यावर्त के अनेक राष्ट्र एवं महानगर देखे हैं।"

वृद्ध ने कहा : "तब तो मैं तुम से क्षमा माँगता हूँ, सौम्य! मैं तो समझता था कि तुम लिच्छवि हो। इसीलिए मैं तुम से दो बात करने के लिए तत्पर हो गया। यदि मुझको ज्ञात होता कि तुम लिच्छवि नहीं हो तो मैं ऐसी भूल न करता।"

प्रथम तरुण, अपने स्वर को उच्च करके, बोला : "यह आप क्या कह रहे हैं, आर्य! मैं, उभय पक्ष से सुजात, लिच्छवि कुलपुत्र हूँ।"

वृद्ध ने, गम्भीर होकर, कहा : "होगे किसी दिन। जिस दिन लिच्छवि माता ने तुम्हारा गर्भ वहन किया था। किन्तु तदनन्तर तो अनेक समय अतीत हो चुका, सौम्य! तदनन्तर तुम तक्षशिला में तक्षित हो चुके हो। तुम्हारा आननेन्दु अवश्य लिच्छवि-वंश की आकृति लिए है। किन्तु तुम्हारा मानस, तुम्हारी बुद्धि—ये दोनों तो अब लिच्छवि नहीं रहे।"

प्रथम तरुण अपने पक्ष में कुछ और कहना चाहता था। किन्तु वृद्ध उठकर खड़े हो गए। साथ ही वह सभा भी भंग हो गई।

किन्तु वैसी सभा अब वैशाली की वीथि-वीथि में हो रही थी। वैशाली के आवास-आवास में उत्थापित था वह विवाद।

विवाद का सूत्रपात इस प्रवाद से हुआ था कि महास्थविर आयुष्मान कोलिगोधापुत्र, मगधराज अजातशत्रु का शान्ति-सन्देश लेकर, राजगृह से वैशाली की ओर चारिका कर रहे हैं। किन्तु जैसे-जैसे विवाद का विस्तार होता गया, वैसे-वैसे उसका रूप भी परिवर्तित होता गया। अन्ततः विवाद इस विषय पर होने लगा कि एक समय जो मनुष्य पापी रहा है वह, धर्मसंघ की शरण में आकर, धर्मबुद्धि बन सकता है अथवा नहीं।

महास्थविर ने वैशाली में पदार्पण किया तब तक वैशाली में दो दल बन चुके थे। एक दल का मत था कि धर्मसंघ की शरण लेने वाले पापी का भी हृदय-परिवर्तन सम्भव ही नहीं, सर्वथा अवश्यम्भावी है। दूसरे पक्ष का मत था कि धर्मसंघ के धर्मोपदेश को हृदयङ्गम किए बिना ही, धर्मसंघ के यश से लाभ उठाने की मनोवृत्ति से जो मिथ्याचारी धर्मसंघ की शरण में आता है, उसका हृदय-परिवर्तन असम्भव है। ऐसे धर्मध्वजी उपासकों की ओर से धर्मसंघ को सावधान रहना चाहिए। अन्यथा धर्म-

संघ स्वयं दूषित हो जायेगा ।

प्रथम पक्ष का अवलम्बन लेने वाले लिच्छवि अधिकतर वे थे जिनकी शिक्षा-दीक्षा, वैशाली के बाहर, तक्षशिला, शाकल, काम्पिल्य, कौशाम्बी अथवा उज्जयिनी में हुई थी। दूसरे पक्ष का अवलम्बन लेने वाले लिच्छवि-गण में से, अधिकांश ने, कभी विदेश-यात्रा नहीं की थी ।

प्रथम पक्ष ने द्वितीय पक्ष को कूपमण्डूक कह कर उसका तिरस्कार किया। द्वितीय पक्ष ने प्रत्युत्तर में कह दिया कि प्रथम पक्ष का अवलम्बन करने वाले लिच्छवि-वंश के वंशज ही नहीं हैं ।

दोनों पक्ष धर्मसंघ की दुहाई दे रहे थे । और दोनों ही, आयुष्मान कोलिगोधापुत्र के वैशाली-आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

: ३ :

मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष । प्रतिपदा की तमस्विनी अवनितल पर अवतरण कर रही है । विधु के स्वागत में हर्ष-विह्वल वियतिवधू के कज्जल-कृष्ण अश्रुपात-सी । तारिका-कुसुम-दल से सजाया गया है वियतिवधू का केश पाश । और उसका सीमन्त स्वर्गङ्गा के शेखरापीड़ से सुशोभित है ।

वैशाली के उत्तरवर्ती महावन में, विटपवरूथ एवं लतावितान, अन्तरिक्ष में अवरूढ़ प्रेतप्रतिमाओं से प्रश्लथ हैं । भय से ठिठुर कर ठहर गया है निसर्ग-चंचल वातास । विहग-कुल अपने नीडदुर्ग में छुपा बैठा है । अलिराजि कुमुद-दल की कारा में । चतुर्दिक निस्सीम निस्तब्धता का निर्द्वन्द्व साम्राज्य है ।

वैशाली के उपासकवृन्द धर्मसंघाराम कूटागार-शाला, की ओर गमनोन्मुख हैं । दल-पर-दल । क्षत्रिय, गृहपति, कर्मकार । स्त्री तथा पुरुष । तरुण, वयस्थ, वृद्ध । मन्द्र-पदचाप । मौनमुख । श्रद्धा-सम्पन्न मानस कर ।

भिक्षु संघसंकुल हैं संघाराम के आगार एवं अलिन्द । वर्षावास की प्रवरणा के उपरान्त, वृज्जि महाजनपद के प्रान्त-प्रान्त से धर्मसंघ के श्रमण, वैशाली में आए हैं । तरुण-भिक्षु । संघस्थविर । नव-प्रव्रजित । चिर-उपसम्पन्न । सूत्रधर । विनयधार । धर्मकथिक । धर्मसंघ की प्रथम संगीति में अंशग्रहण करके प्रत्यागत, महास्थविर आयुष्मान भद्रिय कोलिगोधापुत्र

का दर्शन करने के लिए। उनके विमल वचन सुनने के उद्देश्य से।

आज, संघाराम की उपस्थानशाला में, महास्थविर कोलिगोधापुत्र धर्मोपदेश देंगे। महास्थविर, मगध महाजनपद की ओर से चारिका करते हुए, आज ही वैशाली में पधारे हैं। वे धर्मसंघ के सुविख्यात धर्मधर हैं।

महास्थविर, अनेक वर्ष पूर्व, धर्मसंघ में प्रव्रजित हुए थे। भगवान के परमप्रिय उपस्थायक, आयुष्मान आनन्द, के साथ। प्रव्रजित होने के पूर्व वे शाक्यसंघ के मूर्धाभिषिक्त राजा थे। भगवान ने, श्रावस्ती के जेतवन में विहार करते समय, अपने श्रीमुख से भिक्षुसंघ को प्रज्ञापित किया था कि उनके अनुरक्तिश, उच्चकुलीन भिक्षुश्रावकों में आयुष्मान भद्रिय अग्रगण्य हैं।

धर्मोपदेश का काल जानकर, महास्थविर ने उपस्थान-शाला में प्रवेश किया। वे शाला के मध्यवर्ती स्तम्भ का आश्रय लेकर, पूर्वाभिमुख उच्च आसन पर उपासीन हो गए। भिक्षुसंघ ने भी उनके पृष्ठदेश पर आसन ग्रहण किए। तब एक ओर खड़े उपासक एवं उपासिकाएँ, भिक्षुसंघ सहित महास्थविर की वन्दना करके, अपने-अपने आसन पर बैठने लगे। उपस्थानशाला तैलप्रदीप-माला के प्रकाश से आलोकित थी।

महास्थविर ने, एक बार, अपनी मैत्रीपूर्ण दृष्टि से उपासक-वृन्द की ओर देखा। फिर वे मृदुल, गम्भीर वाणी में बोले : "वैशाली के महाभाग नागरिक-वृन्द ! आपको इस अकिञ्चन से तथागत के किस अमृत-वचन का अनुश्रावण अपेक्षित है ?"

प्रत्युत्तर के लिए उत्तिष्ठ पुलोमजा ने, बद्धाञ्जलि होकर, विनीत स्वर में निवेदन किया : "भन्ते ! वैशाली के लिच्छवि-वृन्द अपने नगर में आपका स्वागत करते हैं। विशेष रूप से इसलिए कि आप, मगधराज अजातशत्रु वैदेहीपुत्र द्वारा वृज्जिसंघ के प्रति प्रेषित, शान्ति-सन्देश लेकर आए हैं। लिच्छवि-गण......

महास्थविर ने, अपना दक्षिण हस्त उत्थापित करके, पुलोमजा को रोक दिया। उनके शान्त, स्निग्ध मुखमण्डल पर स्मित की एक क्षीण रेखा उभर आई। वे कहने लगे : "मत ऐसा कहो, लिच्छवि-कुमारि ! मैं भगवान के विनयधर्म का विनीत अनुयायी मात्र हूँ। आगार से अना-

गारिक होकर, भगवान द्वारा विहित ब्रह्मचर्य का चरण करता हूँ। किसी राजा अथवा राष्ट्र के संधि-विग्रह-चक्र से मेरा कोई सम्पर्क नहीं। भगवान द्वारा ऋषिपत्तन मृगदाव में प्रवर्तित धर्मचक्र ही मेरे लिए एकमात्र प्रमाण है। मैं भला किस प्रकार मगधराज अजातशत्रु वैदेहीपुत्र का सन्देशवाहक हो सकता हूँ ?"

किन्तु पुलोमजा ने, महास्थविर का कथन समझे बिना ही, प्रश्न किया : "भन्ते ! विगत वर्षावास में, मगधराज ने राजगृह में समवेत स्थविर-संघ का आतिथ्य-सत्कार किया था। आपका, अवश्य ही, उनसे वार्त्तालाप हुआ होगा।"

महास्थविर ने उत्तर दिया: "लिच्छवि-कुमारि ! भगवान का मङ्गल यश आर्यावर्त में ऐसा प्रसारित है कि उनका भिक्षुसंघ जहाँ भी वर्षावास करे, वहीं पर, भिक्षुसंघ को आवास, पिण्डपात तथा चीवर उपलब्ध हो जाते हैं।"

"मगधराज ने आपसे क्या कहा है, भन्ते !"

"मगधराज से मेरा साक्षात् नहीं हुआ, लिच्छवि-कुमारि ! वह अपने प्रासाद में रहा और मैं वैभारपर्वत की शतपर्णी गिरिगुहा में।"

समीप ही उपासीन आर्य रत्नकीर्ति ने, पुलोमजा का हाथ खींच कर, उसे बैठा दिया। आर्य रत्नकीर्ति के मुख पर घोर निराशा का विषाद अङ्कित था।

एक ओर उपासीन राजकुमारी वत्सला, मुख पर आँचल रख कर, उमड़ती हुई हँसी का संवरण कर रही थीं। विवाद-ग्रस्त उपासकवृन्द एक-दूसरे की ओर देख रहे थे। उपस्थान शाला में, वादी एवं प्रतिवादी, दोनों ही दल विद्यमान थे।

किसी अन्य उपासक को कुछ कहते न पा कर, राजकुमारी वत्सला ने उत्थान किया। पुलोमजा की पराजय देख कर उनका मन प्रसन्न हो उठा था। किन्तु, अपने मुख पर गाम्भीर्य धारण करके, राजकुमारी ने शान्त, संयत स्वर में प्रश्न पूछा : "भन्ते ! वैशाली की वीथि-वीथि में, कई दिन से, एक विवाद उत्थापित है। एक पक्ष का आग्रह है कि धर्म-संघ की शरण लेने वाला मनुष्य यदि एक समय आततायी भी रहा हो,

तो भी उसके मानस में धर्म-बुद्धि का उदय अवश्यम्भावी है। प्रतिवादी पक्ष का मत है कि कुटिल हृदय से धर्मसंघ की शरण लेने वाले धर्म-ध्वजी मनुष्य में धर्मबुद्धि जन्म नहीं ले सकती। भन्ते ! अब इस प्रसंग में आप ही प्रमाण हैं।"

महास्थविर ने उत्तर दिया : "राजकुमारि ! धर्म-सम्बन्धी विवाद उपस्थित होने पर, धर्मसंघ प्रमाण है। धर्मसंघ का स्थविर नहीं।"

राजकुमारी, एक क्षण के लिए, असमंजस में पड़ गई।

तब पुलोमजा ने, उत्थान करके, कहा : "भन्ते ! राजकुमारी ने आपके समक्ष यह निवेदन नहीं किया कि विवाद मगधराज अजातशत्रु वैदेहीपुत्र के विषय में उत्थापित हुआ है। मगधराज एक समय धर्मसंघ से विद्वेष करते थे। तदनन्तर वे, भगवान की शरण में जाकर, धर्मसंघ के उपासक बने। क्या धर्मसंघ के उपासक मगधराज अजातशत्रु अब धर्मप्राण नहीं हैं, भन्ते ! आप इस प्रश्न का उत्तर अवश्य दें। वृज्जि-संघ के लिए, अधुना, यह प्रश्न जीवन-मरण का प्रश्न है।"

महास्थविर बोले : "लिच्छविकुमारि ! मगधराज अजातशत्रु का बाह्याचरण धर्मसंघ के प्रति सर्वथा सम्यक् है।"

वत्सला ने पूछा : "और उनका अन्तःकरण, भन्ते !"

महास्थविर, एक क्षण मौन रहकर, कहने लगे : "मनुष्यमात्र के अन्तः-करण को जान लेने का अनुपम सामर्थ्य केवल शास्ता में था, राजकुमारि ! धर्मसंघ का भिक्षु, किसी के अन्तःकरण के विषय में न जानता है, न कहता है।"

वत्सला बोलीं : "भन्ते ! शास्ता ने तो कहा था कि मगधराज मन्द-भाग्य है, मगधराज के संस्कार शुभ नहीं।"

महास्थविर ने कहा : "राजकुमारि ! मगधराज जब, प्रथम वार, शास्ता के समीप उपस्थित हुआ तब मैं भी शास्ता के पृष्ठदेश पर उपा-सीन था। शील, प्रज्ञा तथा समाधि के विषय में शास्ता के शिक्षापद सुन कर, जब मगधराज जाने लगा तब शास्ता ने उससे कहा था : 'महाराज ! अपनी मूर्खता, मूढ़ता एवं पाप से प्रेरित होकर जो तुमने अपने धर्मप्राण धर्मराज पिता की हत्या की, सो तुमने महान अपराध एवं पापकिया। किन्तु, महाराज ! तुम अपने पाप को स्वीकार करके, भविष्य में संयम-

पूर्वक रहने की प्रतिज्ञा करते हो, इसलिए मैं तुमको क्षमा करता हूँ। यदि कोई अपने पाप को समझकर, स्वीकार करके, भविष्य में उस पाप को न करने और धर्माचरण करने की प्रतिज्ञा करता है, तो आर्यधर्म में, यह उसकी वृद्धि ही मानी जाती है।' राजकुमारि! भगवान ने जिस मनुष्य को क्षमा कर दिया, वह मनुष्य संसार के प्राणीमात्र द्वारा क्षम्य है।"

अजातशत्रु के विषय में भगवान का यह क्षमादान, वैशाली के किसी लिच्छवि को विदित नहीं था।

पुलोमजा ने, विजयगर्व से वक्ष विस्फारित करके राजकुमारी की ओर इङ्गित करते हुए, महास्थविर से प्रार्थना की: "भन्ते! आप वृज्जि-संघ की राजकुमारी वत्सला को शिक्षित करें, अनुशासित करें कि मगध-राज अजातशत्रु वैदेहीपुत्र के प्रति ये अपना दुर्धर्ष दौर्मनस्य त्याग दें। राजकुमारी द्वारा पोषित एवं वर्धित वैर की वह्निज्वाल से वृज्जि महा-जनपद की प्रजा प्रताडित है, संतापित है, संत्रस्त है, सशंङ्क है, भयभीत है। राजकुमारी अनवरत यत्नशील हैं कि वैर की यह ज्वाल जलती रहे, शान्त न होने पाए। भन्ते! आप इन्हें सुबुद्धि प्रदान करें! भन्ते आप सर्वथा समर्थ है।"

महास्थविर ने अपना मुख अवनत कर लिया। वत्सला के प्रति परि-क्षिप्त पुलोमजा के वाग्बाण ने मानो उनका अपना हृदय वेध दिया हो।

वत्सला ने, आत्मत्राण के लिए अथवा आत्ममार्जना करते हुए, एक शब्द भी नहीं कहा। वे मौन रहकर, विषण्ण-मुख, अपने आसन पर उपा-सीन हो गईं। उपस्थानशाला का वातावरण, न जाने कैसी एक कदर्यता से कण्टकित हो उठा।

किन्तु पुलोमजा ने, एक क्षण उत्तर की प्रतीक्षा करके, अपनी प्रार्थना की पुनरावृत्ति कर डाली। वह महास्थविर को सम्बोधित करके बोली: "भन्ते! आप राजकुमारी को अवश्य शिक्षित करें, अनुशासित करें!"

अन्ततः, महास्थविर ने, अवनत-मुख रहकर ही, गम्भीर वाणी में कहा: "लिच्छविकुमारि! वृज्जिसंघ की राजकुमारी स्वयं अभिज्ञ है। वह शुद्ध हृदय से धर्मसंघ की शरण में आई है। राजकुमारी से किसी को भय नहीं। लिच्छवि-कुमारि! लिच्छवि-गण स्वयं अभिज्ञ हैं। लिच्छवि-

गण पर सदैव भगवान की अपूर्व अनुकम्पा रही थी। लिच्छवि-गण को मैं क्या शिक्षित करूँगा, मैं क्या अनुशासित करूँगा ?"

पुलोमजा ने राजकुमारी की ओर अभिमुख होकर कहा : "राजकुमारि ! क्या आपने सुना कि महास्थविर क्या कह रहे हैं ?"

राजकुमारी ने उत्तर नहीं दिया। वे, अवनत-मुख, अपने आसन पर उपासीन रहीं।

पुलोमजा ने, विजयोन्मत्त दृष्टि से एक वार उपस्थान-शाला में उपस्थित उपासक-वृन्द की ओर देखकर, अपना आसन ग्रहण किया। उसको विश्वास था कि महास्थविर ने उसके कथन का अनुमोदन किया है।

तब, महास्थविर ने मुख उन्नत करके कहा : "वैरत्याग के विषय में, भगवान ने कौशाम्बी के घोषिताराम में, भिक्षुसंघ को सम्बोधित करके, दीर्घायु जातक कहा था। आज मैं, वैशाली के महाभाग नागरिकों को, वह जातक सुनाऊँगा।"

उपासक-वृन्द एवं भिक्षु-संघ सावधान हो गए। और महास्थविर, विनीत स्वर में, दीर्घायु जातक-कथा का अनुश्रावण करने लगे।

कथा सुनाकर, महास्थविर ने गाथा कही :

"अक्रोशीत् मां अवधीत् मां अजैषीत मां अहार्षीत मे।
ये च तत् उपनह्यन्ति वैरं तेषां न शाम्यति ॥
"अक्रोशीत् मां अवधीत मां अजैषीत मां अहार्षीत मे।
ये " तत् नोपनह्यन्ति वैरं तेषूपशाम्यति ॥
"न हि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन।
अवैरेण च शाम्यन्ति एष धर्मः सनातनः ॥
"परे च न विजानन्ति वयमत्र यास्यामः।
ये च तत्र विजानन्ति ततः शाम्यन्ति मेधगाः ॥

"वैशाली के महाभाग नागरिक-वृन्द ! परस्पर अस्थिचूर्ण करने वालों का भी सौहार्द हो जाता है। परस्पर गो, अश्व एवं धन का अपहरण करने वालों का भी। परस्पर राष्ट्र का विनाश करने वालों का भी।"

उपासक-वृन्द ने, महास्थविर के धर्मोपदेश का अनुमोदन तथा अभिनन्दन करके, कूटागारशाला से निष्क्रमण किया। उनमें से एक पक्ष का

मन था कि महास्थविर ने, अजातशत्रु के विषय में, किसी निश्चित मत को अभिव्यक्त नहीं किया। किन्तु दूसरे पक्ष को विश्वास हो गया कि महास्थविर ने मगधराज की मार्जना की है। इस पक्ष की प्रमुख थी पुलोमजा। परदिवस से वह, वैशाली की वीथि-वीथि में, प्रचार करने लगी कि महास्थविर ने वत्सला को शिक्षित एवं अनुशासित किया है।

: ४ :

मार्गशीर्ष पूर्णिमा का अपराह्ण। वैशाली के विराट संस्थागार में, वृज्जिसंघ की परिषद का सन्निपात आसन्न है। परिषद का आसनग्रहापक, संस्थागार में आगत वयोवृद्ध लिच्छवि कुलमुख्यों को, यथायोग्य आसनों पर आसीन करने में व्यस्त हैं। उपासीन कुलमुख्य परस्पर वार्त्तालाप कर रहे हैं।

तब, वृज्जिसंघ के अष्टकुलिक से पुरस्सरित, वृज्जिसंघ के राजा, आर्यश्रेष्ठ महाली, ने संस्थागार में प्रवेश किया। कुलमुख्य, सहसा, मौन हो गए। आर्यश्रेष्ठ ने, कुलमुख्यों के प्रति अभिवादन निवेदित करके, संस्थागार की पश्चिमवर्ती भित्ति पर आश्रित अपना सुवर्णविरचित, रत्न-जटित राज्यासन ग्रहण किया।

भित्ति के मध्यप्रान्त में उत्थापित वेदी पर, वृज्जिसंघ का विधान-ग्रन्थ, पूज्य प्रवेणी-पुस्तक, संस्थापित है। वेदी के दक्षिण पार्श्व में राज्यासन तथा वाम पार्श्व में अष्टकुलिक के आसन। आर्य रत्नकीर्ति आदि अष्टकुलिक के महामात्यों ने भी अपने-अपने आसन पर उपवेश किया।

गणपूरक ने, सप्तसहस्राधिक लिच्छवि-कुलों के सप्तशताधिक प्रतिनिधियों की गणना करके, आर्यश्रेष्ठ से निवेदन किया: "आर्यश्रेष्ठ! परिषद का सन्निपात सर्वथा सम्पूर्ण है।"

आर्यश्रेष्ठ महाली ने, एक बार, परिषद की ओर दृष्टिपात किया। तदनन्तर अष्टकुलिक की ओर। वे लिच्छवि-वृद्धों का आमन्त्रण कर रहे थे कि जिसकी इच्छा हो वह, आसन से उत्थान करके, परिषद के समक्ष कर्मवाचन करे।

तब आर्य रत्नकीर्ति ने, अपने आसन से उत्थान करके, परिषद को सम्बोधित किया: "आर्यश्रेष्ठ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। मगध-

राज अजातशत्रु द्वारा अकारण अपमानित, स्वदेश से आजीवन निर्वासित तथा इस समय पाटलिग्राम के लिच्छवि दुर्ग के वर्तमान, मगध के भूतपूर्व महामात्य, वर्षकार ब्राह्मण, वृज्जिसंघ में शरण की याचना कर रहे हैं। यदि परिषद उचित समझे तो परिषद, वर्षकार ब्राह्मण को वैशाली में बुला कर, वृज्जिसंघ में शरणापन्न करे। यह ज्ञप्ति है।"

संस्थागार में उपस्थित अनेक लिच्छवि-वृद्धों ने विस्मित होकर आर्य रत्नकीर्ति की ओर देखा। विदेश-यात्रा से प्रत्यागत आर्य रत्नकीर्ति ने, अनेक लिच्छवि-कुलमुख्यों से वार्त्तालाप करते समय, अत्यन्त आवेश के साथ, स्पष्ट शब्दों में, बारम्बार यह कहा था कि स्वदेश-द्रोही वर्षकार ब्राह्मण को वृज्जिसंघ में शरण देना, किसी भी अवस्था में, वाञ्छनीय नहीं। किन्तु आज, अकस्मात्, वे ही आर्य रत्नकीर्ति एक सर्वथा विपरीत आशय की ज्ञप्ति प्रज्ञापित कर रहे थे। वृद्धों को आश्चर्य तो होता ही।

आर्य रत्नकीर्ति ने कहा था : "आज आर्यावर्त के प्रत्येक प्रान्त में अवन्ति का अधर्मचक्र प्रवर्तित है। अवन्ति की आकांक्षा है कि आर्यावर्त का प्रत्येक स्वाधीन राष्ट्र, अवन्ति का क्रीतदास बन जाए। मध्यमण्डल तथा उत्तरापथ में अवन्ति को, अपने कुचक्र के फलस्वरूप, पर्याप्त सफलता मिल चुकी है। अब अवन्ति प्राची की ओर अभिमुख है।

"किन्तु अवन्ति के कर्णधार यह जानते हैं कि मगध तथा वृज्जिसंघ, क्षमता रहते, कभी भी अवन्ति के प्रति आत्मसमर्पण नहीं करेंगे। अतएव अवन्ति की कामना है कि मगध तथा वृज्जिसंघ, परस्पर युद्ध-रत होकर, एक दूसरे को जर्जर कर डालें। उस कामना की सिद्धि के लिए, अवन्ति अनेक कुचक्रों की रचना कर रहा है।

"प्राची के प्राचीन तथा परमशक्तिशाली राष्ट्रों का कर्त्तव्य है कि वे, परस्पर विद्वेष को विदूरित करके, समवेत संगठन द्वारा अवन्ति के अधर्म-चक्र का प्रतिरोध करें। अतएव, वृज्जिसंघ के लिए यह वाञ्छनीय नहीं कि, स्वदेश-द्रोही वर्षकार ब्राह्मण को शरण देकर, मगध के साथ विद्वेष की वृद्धि करे।"

लिच्छवि-वृद्ध, मन ही मन, सोचने लगे : "क्या आर्य रत्नकीर्ति ने, अवन्ति के विषय में, अपना मत परिवर्तित कर लिया है?"

परिषद ने, मौन रह कर, आर्य रत्नकीर्ति द्वारा प्रज्ञापित ज्ञप्ति को स्वीकार किया।

तब आर्य रत्नकीर्ति, तद्विषयक प्रतिज्ञा प्रज्ञापित करने के लिए प्रस्तुत हुए। वे बोले : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। परिषद मगधराज अजातशत्रु द्वारा......

आर्य सुनक्खत ने अपने आसन से उत्थान करके कहा : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। परिषद में समाहूत लिच्छवि-कुलमुख्य-वृन्द वर्षकार ब्राह्मण से किंचित्मात्र भी परिचित नहीं। यदि परिषद उचित समझे तो परिषद, पाटलिग्राम के दुर्गपाल अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र को संस्थागार में आहूत करके, दुर्गपाल से वर्षकार ब्राह्मण के आगमन का इतिवृत्त सुने।"

परिषद ने मौन रह कर स्वीकार किया। तब, आर्य सुनक्खत, स्वयं ही संस्थागार के बाहर जाकर, दुर्गपाल अनिरुद्ध को अपने साथ ले आए। अनिरुद्ध, परिषद के समक्ष आहूत होने की आशा से, संस्थागार के द्वारदेश पर ही विद्यमान थे।

दुर्गपाल को, परिषद के सन्निपात के समय, संस्थागार में पदार्पण करने का अधिकार नहीं था। किन्तु परिषद. आवश्यकतानुसार, वृज्जिसंघ के किसी भी पौर, नैगम अथवा जानपद को संस्थागार में आहूत करके, प्रश्न पूछ सकती थी।

दुर्गपाल ने सर्वप्रथम, वेदिका के सन्मुख उत्कटिक उपासीन होकर, पूज्य प्रवेणी-पुस्तक की वन्दना की। तदुपरान्त वे आर्यश्रेष्ठ महाली, अष्ट-कुलिक तथा परिषद में समुपस्थित लिच्छवि-कुलमुख्यों का अभिवादन करके, एक ओर खड़े हो गए।

एक ओर खड़े अनिरुद्ध से, आर्यश्रेष्ठ महाली ने अनुरोध किया : "सौम्य दुर्गपाल ! मगध के भूतपूर्व महामात्य आर्य वर्षकार ब्राह्मण के विषय में तुमको जो कुछ भी विदित हो, वह समस्त तुम परिषद के समक्ष निवेदित करो।"

तब दुर्गपाल ने परिषद को सम्बोधित किया : "आर्यवृन्द ! आज से प्रायः ढाई मास पूर्व, एक दिन प्रदोष के समय, पाटलिग्राम के एक गृह-

पति ने लिच्छवि दुर्ग में आ कर मुझसे कहा कि आर्य वर्षकार मुझसे साक्षात् करना चाहते हैं। उसके पूर्व ही मैं सुन चुका था कि मगधराज अजातशत्रु ने, प्रकुपित होकर, अपने महामात्य वर्षकार ब्राह्मण को आजीवन मगध महाजनपद से निर्वासित किया है। मैंने यह भी सुना था कि वृज्जि-संघ का पक्ष लेने के कारण ही आर्य वर्षकार मगधराज के कोपभाजन बने हैं। अतएव, मैंने तुरन्त ही आर्य वर्षकार को, गुप्तरूप से, लिच्छवि दुर्ग में प्रविष्ट कर लिया।

"महामात्य ने मुझसे कहा : 'दुर्गपाल ! जिस समय वृज्जिसंघ तथा मगध के मध्य यह अकारण रक्तपात आरम्भ हुआ, उसी समय मेरा यह मत था कि मगध के राजवंश के लिए यह मार्ग मङ्गलमय नहीं है। किन्तु अजातशत्रु के दुर्निवार्य हठ को देखकर मैं मौन रहा। वर्ष-पर-वर्ष बीतते गए। अनवरत युद्ध के कारण मगध के धन-जन की अपार क्षति होती रही। और अन्त में मैं धैर्य धारण न कर पाया। मैंने एक दिन अमात्य-परिषद में उपासीन अजातशत्रु से कह दिया कि वे, शान्तिमय जीवनयापन के आकांक्षी वृज्जिसंघ पर, अकारण अभियान न करें। उस समय मगधराज मौन रहे। किन्तु कुछ समय उपरान्त अजातशत्रु ने, सहसा, मुझ पर आरोप लगाया कि मैं, वृज्जिसंघ के साथ मिल कर, मगध के विनाश का कुचक्र रच रहा हूँ। प्रमाण में, मगधराज ने अमात्य-परिषद के समक्ष एक पत्र प्रस्तुत किया जो, मगधराज के कथनानुसार, मैंने आर्यश्रेष्ठ महाली को प्रेषित किया था और जिसको मगधराज के गूढ़चरों ने मार्ग में ही पकड़ लिया था। मैंने वह पत्र देखा। उस पर मेरी शासकीय मुद्रा अङ्कित थी। मैंने आग्रहपूर्वक कहा कि मैंने वह पत्र नहीं लिखा। किन्तु अमात्य-परिषद ने मेरे कथन पर विश्वास नहीं किया। अमात्य-परिषद ने, एकमत होकर, मगधराज को परामर्श दिया कि मैं राजद्रोही हूँ और मुझको यथोचित दण्ड दिया जाए। उच्चकुलीन ब्राह्मण होने के कारण, मेरा बन्धन, ताड़न, छेदन-भेदन अथवा वध अविधेय था। अतएव मगधराज ने, मेरे केश-श्मश्रु मुण्डित करवा कर, डिण्डिम-घोष द्वारा मेरे अपराध की घोषणा समस्त राजगृह में करते हुए, मुझको मगध महाजनपद से जीवन-भर के लिए निर्वासित कर दिया। मैं पुत्रदार

से रहित था। किन्तु मेरी समग्र, चल एवं अचल, सम्पत्ति का मगधराज ने अपहरण कर लिया। अब मैं......

ब्राह्मण के अकारण अपमान का वृत्तान्त सुन कर परिषद के अनेक लिच्छवि वृद्ध सिहर उठे। वे अजातशत्रु को धिक्कारने लगे। संस्थागार में एक कोलाहल व्याप्त हो गया।

आर्यश्रेष्ठ महाली ने, राज्यासन से उत्थान करके, परिषद से शान्त रहने की प्रार्थना की। परिषद के शान्त हो जाने पर अनिरुद्ध कहने लगे :

"आर्यवृन्द ! महामात्य वर्षकार ने मुझसे कहा : 'अब मैं नितान्त निराश्रय हूँ। सर्वथा सम्बलहीन। मेरा एकमात्र वित्त है मेरी विद्या। यदि वृज्जिसंघ मेरी सेवा ग्रहण करना चाहे तो वृज्जिसंघ मुझको अभय-दान दे, मुझको वैशाली में शरणदान दे।'

"मैंने आर्य वर्षकार से पूछा : 'आर्य ! मैंने ऐसा सुना है कि, राज-गृह से निष्क्रमण करने के पूर्व, आपने प्रतिज्ञा की थी कि आप अजातशत्रु का विनाश करेंगे। आपने कहा था कि आप मगध के प्रत्यन्त प्रान्तों में निविष्ट दुर्गमाला के गम्भीर एवं दुर्बल स्थलों से अवगत हैं। क्या आप सत्यशः अजातशत्रु को अपदस्थ करने की आकांक्षा करते हैं ?'

"आर्य वर्षकार ने उत्तर दिया : 'सौम्य ! मैंने अजातशत्रु को भय-भीत करने के लिए ही ऐसा कहा था। मैंने आजीवन, शुद्ध हृदय से, यथाशक्ति, मगध के राजवंश की सेवा की है। मेरे द्वारा उस राजवंश का अमङ्गल नहीं हो सकता। मेरी एकमात्र आकांक्षा है कि अजातशत्रु, अपने मातुलकुल के साथ, विग्रह से विरत हो जाएँ। किन्तु अजातशत्रु को अपने अपार बल का गर्व है। ऐसी अवस्था में उनको भयभीत करके ही विग्रह से विरत किया जा सकता है। यदि वृज्जिसंघ मुझको शरण दे दे, तो अजातशत्रु भयभीत हो जाएँगे। तब वे तुरन्त ही वृज्जिसंघ के साथ सन्धि कर लेंगे।'

"मैंने आर्य वर्षकार......

परिषद में पुनः कोलाहल हुआ : 'ब्राह्मण अजातशत्रु का हिताकांक्षी है। ब्राह्मण मायावी है। मायावी को हम गंगा पार न करने देंगे......'

आर्यश्रेष्ठ महाली ने, पुनः राज्यासन से उत्थान करके, परिषद को

शान्त किया। तब दुर्गपाल ने कहा :

"आर्यवृन्द ! मैंने आर्य वर्षकार से प्रश्न किया : 'आर्य ! आपके विरुद्ध वैशाली में सदैव एक वज्र आक्रोश रहा है। लिच्छवि-गण आप को ही अजातशत्रु का दुष्टपरामर्शदाता मानते रहे हैं। तब भला वे किस प्रकार आप पर विश्वास करेंगे ?'

"आर्य वर्षकार ने उत्तर दिया : 'दुर्गपाल ! मगध की अमात्य-परिषद में, जब-जब, वृज्जिसंघ के विरुद्ध युद्ध की योजना बनती थी तब-तब मैं मौन रहता था। मुझे आशा थी कि कालान्तर में, किसी दिन, अजातशत्रु सुबुद्धि की शरण लेंगे। किन्तु अजातशत्रु मेरे मन का भाव समझ गए। उन्होंने समस्त आर्यावर्त में इस प्रवाद का प्रसार कर दिया कि मेरे द्वारा प्रदत्त मन्त्रणा से प्रेरित होकर ही वे वृज्जिसंघ पर विजय पाना चाहते हैं। मैं इस प्रवाद का प्रतिकार करने के लिए असमर्थ था। लिच्छवि-गण ने भी इस प्रवाद पर विश्वास कर लिया।'

'मैंने आर्य वर्षकार से कहा : आर्य ! अब आपके द्वारा इस अपवाद का खण्डन हुए बिना लिच्छवि-गण आप पर विश्वास नहीं करेंगे।'

"आर्य वर्षकार ने कहा : 'दुर्गपाल ! मैं भी जानता हूँ कि प्रवाद का खण्डन होना चाहिए। अतएव मैं वृज्जिसंघ का विश्वास प्राप्त करने के लिए, पाटलिग्राम के मागध दुर्ग का उपांशु उपलम्भोपाय तुमको बतलाता हूँ। तुम उस दुर्ग पर अधिकार कर लो। तब लिच्छवि-गण मुझ पर विश्वास कर लेंगे। अजातशत्रु भी भयभीत हो जाएँगे। दोनों राष्ट्रों के मध्य शान्ति की स्थापना हो जाने पर, वृज्जिसंघ मगध के दुर्ग को लौटा सकता है।"

"तदनन्तर, आर्य वर्षकार ने मुझको पाटलिग्राम के मागध दुर्ग का उपांशु उपलम्भोपाय बतला दिया। पाटलिग्राम के लिच्छविसैन्य ने किस प्रकार मागध दुर्ग का धर्षण किया वह आपको ज्ञात है। आर्य वर्षकार के विषय में, इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानता।"

संस्थागार में कोलाहल व्याप्त हो गया। अनेक लिच्छवि वृद्ध कह रहे थे : "ब्राह्मण स्वदेशद्रोही है। स्वदेशद्रोही को अभयदान देकर वृज्जिसंघ अधर्म का ही अर्जन करेगा......

परिषद के शान्त होते ही दुर्गपाल ने आर्यश्रेष्ठ से बाहर चले जाने की अनुमति मागी। किन्तु आर्यश्रेष्ठ कुछ कहे, उसके पूर्व ही आर्य सुनक्खत ने अपने आसन से उत्थान करके परिषद को सम्बोधित किया : "आर्य-श्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। यदि परिषद उचित समझे तो मैं पाटलिग्राम के दुर्गपाल अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र से कतिपय प्रश्न पूछूं।"

परिषद ने मौन रह कर स्वीकार किया। तब आर्य सुनक्खत ने अनिरुद्ध को सम्बोधित किया : "सौम्य दुर्गपाल ! तुमने कहा कि लिच्छवि सैन्य ने मागध दुर्ग का धर्षण किया है। तुमको ज्ञात है कि लिच्छवि सैन्य परिषद की आज्ञा प्राप्त किये बिना कोई करणीय कर्म भी नही कर सकता। छलबल द्वारा परराष्ट्र के दुर्ग का धर्षण करना तो दूर की बात है। मुझे विश्वास है कि मागध दुर्ग के धर्षण का प्रसग यदि वृज्जि-सघ की परिषद में उपस्थित होता तो परिषद कभी भी ऐसे अकरणीय कर्म की आज्ञा नही देती। तब लिच्छविसैन्य ने किस की आज्ञा से मागध दुर्ग का धर्षण किया ?"

दुर्गपाल ने उत्तर दिया : "आर्य ! मागध दुर्ग को धर्षित करने का निश्चय मैने किया था। इस आशा और विश्वास के साथ कि परिषद मेरे निश्चय का अनुमोदन करेगी।"

आर्य सुनक्खत बोले : "सौम्य दुर्गपाल ! आज्ञा एवं अनुमोदन तो एक बात नही। यदि वृज्जिसंघ के अन्यान्य राजपुरुष भी, परिषद के अनु-मोदन की आशा से, करणीय-अकरणीय का निश्चय स्वयं करके, कर्म करने लगें तो वृज्जिसंघ का विनाश हो जाएगा।"

"आर्य ! मैंने वृज्जिसघ की हितकामना से ही ऐसा किया है। किसी अहंकार के कारण नहीं।"

"सौम्य दुर्गपाल ! तुम्हारा मनोभाव इस प्रसंग मे आनुषङ्गिक नही माना जा सकता। वृज्जिसंघ का एक विधान है। तुमने उस विधान का उल्लंघन किया है। अतएव तुम दण्ड के पात्र हो।"

परिषद में कोलाहल हुआ : "आर्य सुनक्खत पाटलिग्राम के वीर विजेता की भर्त्सना न करे !"

अनिरुद्ध ने कहा : "आर्य ! इस विषय में परिषद ही प्रमाण है। परिषद मेरे लिए जिस दण्ड का निर्णय करेगी, उस दण्ड को मैं सहर्ष शिरोधार्य करूँगा।"

एक अन्य लिच्छवि वृद्ध ने अपने आसन से उत्थान करके कहा : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझ को श्रवण करे। परिषद का निर्णय सुने बिना ही आर्य सुनक्खत, दुर्गपाल के कृत्य को दण्डनीय बतला कर, परिषद का अपमान कर रहे हैं।"

परिषद में कोलाहल हुआ : "आर्य सुनक्खत परिषद का अपमान न करें ! आर्य सुनक्खत अपना आसन ग्रहण करें !!"

किन्तु आर्य सुनक्खत पूर्ववत दण्डायमान रहे। आर्यश्रेष्ठ महाली ने उत्तिष्ठ होकर आवेदन किया : "आर्य-वृन्द ! आप शान्त रह कर आर्य सुनक्खत का वक्तव्य श्रवण करें।"

परिषद मौन हो गई। तब आर्य सुनक्खत ने दुर्गपाल से कहा : "सौम्य दुर्गपाल ! मैं यह मानता हूँ कि उपांशु उपाय से दुर्गोपलम्भ के प्रसंग में परिषद का परामर्श अशक्य होता। किन्तु तुम अष्टकुलिक का परामर्श ग्रहण कर सकते थे। अथवा तुम आर्यश्रेष्ठ से आज्ञा प्राप्त कर लेते।"

दुर्गपाल ने कोई उत्तर नहीं दिया। आर्य सुनक्खत ने पूछा : "सौम्य दुर्गपाल ! अष्टकुलिक से परामर्श के प्रसंग में, क्या तुमको मन्त्रभेद का भय था ?"

दुर्गपाल फिर मौन रहे। आर्य सुनक्खत ने फिर पूछा : "सौम्य दुर्गपाल ! आर्यश्रेष्ठ से आज्ञा प्राप्त करने के प्रसंग में, क्या तुमको आशंका थी कि आर्यश्रेष्ठ, अष्टकुलिक से मन्त्रणा किए विना, वैसी आज्ञा तुमको नहीं देंगे ?"

दुर्गपाल के मुख से शब्द नहीं निकला। तब, एक बार आर्यश्रेष्ठ की ओर दृष्टिपात करके, आर्य सुनक्खत ने प्रश्न किया : "सौम्य दुर्गपाल ! वृज्जिसंघ की कुलपुत्री, राजकुमारी वत्सला, किसके परामर्श से अथवा किसकी आज्ञा से, नर्तकी का निन्दनीय वेष धारण करके, मागध दुर्ग के सुराप्रमत्त सैनिकों का मनोरञ्जन करने गई ?"

दुर्गपाल ने, क्षीण वाणी में, उत्तर दिया : "आर्य ! राजकुमारी ने स्वेच्छा से ही मागध दुर्ग में जाने का निश्चय किया था।"

"सौम्य दुर्गपाल ! राजकुमारी वत्सला को राजप्रासाद में बैठे-बैठे किस प्रकार यह ज्ञात हुआ कि मागध दुर्ग में एक नर्तकी की आवश्यकता है ?"

"आर्य ! मागध दुर्ग के उपांशु उपलम्भ का उपाय मैंने ही, राजप्रासाद में आकर, राजकुमारी को बतलाया था।"

"सौम्य दुर्गपाल ! जिस विषय में तुमने अष्टकुलिक के परामर्श को प्रयोजनीय नहीं समझा, आर्यश्रेष्ठ से आज्ञा प्राप्त करने की अपेक्षा नहीं की, उस विषय में तुमने राजकुमारी को ही क्यों समर्थ माना ?"

"आर्य ! मेरा आशय यह नहीं था कि मेरे द्वारा अष्टकुलिक अथवा आर्यश्रेष्ठ की अवगणना हो। किन्तु..."

दुर्गपाल, अपना वाक्य पूरा किए बिना ही, मौन हो गए। उनकी समझ में ही नहीं आया कि वे क्या कहें।

आर्य सुनक्खत ने दुर्गपाल से प्रश्न किया : "सौम्य दुर्गपाल ! क्या तुम यह मानते हो कि, वृज्जिसंघ की अग्रगण्य कुलपुत्री को कुपथ की ओर ले जाकर, तुमने कुकृत्य किया है ?"

उत्तर दिया आर्यश्रेष्ठ महाली ने। वे उत्तिष्ठ होकर बोले : "आर्यवृन्द ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। मैं राजकुमारी वत्सला के कृत्य का अनुमोदन करता हूँ।"

आर्य सुनक्खत ने भी परिषद को सम्बोधित किया : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। राजकुमारी वत्सला के कृत्य का अनुमोदन अथवा अभिनन्दन परिषद स्वयं करे।"

आर्यश्रेष्ठ ने कहा : "आर्यवृन्द ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे लिच्छवि परिवार का प्रमुख अपनी सन्तान के विषय में सर्वथा समर्थ है। राजकुमारी वत्सला तो वृज्जिसंघ के किसी पद पर आरूढ़ नहीं। अतएव परिषद राजकुमारी के विषय में प्रमाण नहीं हो सकती।"

आर्य सुनक्खत ने आर्यश्रेष्ठ को सम्बोधित किया : "आर्यश्रेष्ठ ! वृज्जिसंघ की कुलपुत्री का, कुशीलव-वेश धारण करके, शत्रुदुर्ग में जाना

लिच्छवि-परम्परा में अभूतपूर्व है ।"

आर्यश्रेष्ठ ने उत्तर दिया : "आर्य सुनक्खत ! उपांशु उपाय द्वारा दुर्गोपलम्भ भी तो लिच्छवि-परम्परा में अभूतपूर्व है ।"

"आर्यश्रेष्ठ ! क्या आप इस प्रकार के दुर्गोपलम्भ को प्रज्ञप्त मानते हैं ?"

"आर्य ! इस विषय में परिषद ही प्रमाण है ।"

परिषद में पुनरेण कोलाहल हुआ । अनेक लिच्छवि-वृद्ध कहने लगे : "परिषद का सन्निपात वितण्डावाद-श्रवण के लिए नहीं हुआ । परिषद को करणीय कर्म पर विचार करना चाहिए ।"

आर्य सुनक्खत ने अपना आसन ग्रहण किया । तब आर्यश्रेष्ठ ने, उत्थान करके, परिषद को सम्बोधित किया : "आर्यवृन्द ! यदि परिषद को स्वीकार हो तो दुर्गपाल अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र संस्थागार से निष्क्रमण करे ।"

आर्य सुनक्खत के समीप उपासीन एक लिच्छवि-वृद्ध ने, उत्थान करके, परिषद को सम्बोधित किया : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे । आज के करणीय कर्म से दुर्गपाल अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र का प्रगाढ़ परिचय है । यदि परिषद उचित समझे तो परिषद, दुर्गपाल अनिरुद्ध को, संस्थागार में उपस्थित रह कर, उपासीन होने की आज्ञा दे ।"

परिषद ने मौन रहकर स्वीकार किया । दुर्गपाल, अष्टकुलिक के वाम पार्श्व में पड़ी एक पीठिका पर उपासीन हो गए ।

एक क्षण तक संस्थागार में निस्तब्धता छा गई । तब, आर्यश्रेष्ठ महाली का संकेत पाकर, आर्य रत्नकीर्ति ने अपने आसन से उत्थान किया । वे कहने लगे : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे । परिषद, मगधराज अजातशत्रु द्वारा अकारण अपमानित, स्वदेश से आजीवन निर्वासित तथा इस समय पाटलिग्राम के लिच्छवि दुर्ग में वर्तमान, मगध के भूतपूर्व महामात्य, वर्षकार ब्राह्मण, को वैशाली में बुलाकर, वृज्जिसंघ में शरणापन्न करती है । जिस आर्य को स्वीकार है कि वर्षकार ब्राह्मण वृज्जिसंघ में शरणापन्न हों वे मौन रहें । जिसको स्वीकार न हो, वे बोलें ।"

आर्य सुनक्खत ने, उत्थान करके, कहा : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद

मुझको श्रवण करे। यदि परिषद उचित समझे तो परिषद इस कर्म को ज्ञप्ति-द्वितीय कर्म स्वीकार करे।"

आर्य रत्नकीर्ति ने कहा : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। परिषद के समक्ष प्रस्तुत कर्म अत्यन्त गुरुतर है। यदि परिषद उचित समझे तो परिषद इस कर्म को ज्ञप्ति-चतुर्थ कर्म स्वीकार करे।"

परिषद ने मौन रहकर आर्य रत्नकीर्ति का आवेदन स्वीकार किया। तब एक लिच्छवि-वृद्ध ने उत्थान करके, कहा : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। यदि परिषद उचित समझे तो परिषद आर्य रत्नकीर्ति से अनुरोध करे कि वे, युक्तितर्क द्वारा, प्रस्तुत प्रतिज्ञा का स्पष्टीकरण करें।"

परिषद ने, मौन रह कर, स्वीकार किया। तब आर्य रत्नकीर्ति कहने लगे : "आर्यवृन्द ! शरणागत को शरण देना वृज्जिसंघ की आर्य-परम्परा है। वृज्जिसंघ को, यथासाध्य, उस परम्परा का पालन करना चाहिए। मैं जानता हूँ कि परिषद में उपस्थित एक पक्ष के मतानुसार, आर्य वर्षकार ब्राह्मण स्वदेशद्रोही हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि उस मत में कुछ सार है। दूसरी ओर, यह भी एक मत है कि दुर्गपाल अनिरुद्ध ने, वृज्जिसंघ की परम्परा के विपरीत उपायों का अवलम्बन लेकर, छल से मागध दुर्ग का धर्षण किया है। इस मत में भी कुछ सार है। मैं यह नहीं कहता कि दुर्गपाल ने कोई अनुचित कृत्य किया है। किन्तु दुर्गपाल द्वारा प्रयुक्त उपकरणों के औचित्य पर मुझे सन्देह है......

एक वृद्ध ने उत्तिष्ठ होकर पूछा : "आर्य रत्नकीर्ति ! आपके पूर्व ही, आर्यश्रेष्ठ महाली दुर्गपाल के समस्त कार्यकलाप की मार्जना कर चुके हैं। क्या आप आर्यश्रेष्ठ का आचरण अनुचित मानते हैं ?"

आर्य रत्नकीर्ति ने, वृद्ध से कुछ न कहकर, परिषद को सम्बोधित किया : "आर्यवृन्द ! परिषद में, इसके पूर्व ही, बहुत वितण्डावाद हो चुका है। मैं इस वितण्डावाद में अंशग्रहण करने के लिए किंचितमात्र भी उत्सुक नहीं। यदि परिषद मेरा मत श्रवण करना चाहे तो मैं प्रस्तुत हूँ। अन्यथा......

वाक्य पूरा किए बिना ही, आर्य रत्नकीर्ति उपासीन होने का उप-

क्रम करने लगे। परिषद ने एक स्वर से उद्‌घोष किया : "आर्य रत्नकीर्ति अपना मत अभिव्यक्त करें।"

प्रश्नकर्त्ता वृद्ध उपासीन हो गए। आर्य रत्नकीर्ति कहने लगे : "आर्य-वृन्द ! मैं कह रहा था कि अभी तक जो हो चुका है उसके विषय में अनेक मतामत हो सकते हैं। किन्तु एक ऐसा प्रसंग है जिसके विषय मत-वैभिन्न वाञ्छनीय नहीं। वह कौन सा प्रसंग है ?......"

प्रश्न करते समय आर्य रत्नकीर्ति का स्वर, अनायास ही, प्रखर हो उठा। एक क्षण मौन रह कर उन्होंने परिषद पर दृष्टिपात किया। जैसे वे परिषद से किसी उत्तर की अपेक्षा कर रहे हों। किन्तु दूसरे क्षण, वे स्वयं ही अपने प्रश्न का उत्तर देने लगे : "आर्यवृन्द ! वह प्रसंग है वृज्जि-संघ के ऐक्य का। आज लिच्छवि-गण को ऐक्य की साधना करनी चाहिए। ऐक्य ही आज का प्रमुख प्रसंग है। अन्य सब प्रसंग गौण हैं। मेरे इस कथन का यह आशय नहीं है कि वृज्जिसंघ में ऐक्य का अभाव है। वृज्जि-संघ के ऐक्य की कीर्ति समस्त आर्यावर्त में व्याप्त है। किन्तु, साथ ही, मैं लिच्छवि-गण को यह स्मरण करा देना चाहता हूँ कि आज वृज्जिसंघ का ऐक्य संकट में है। आज आर्यावर्त के आंगन में कतिपय ऐसे कुचक्रों का जन्म हो रहा है जो वृज्जिसंघ के ऐक्य पर प्रखर प्रहार करने के लिए प्रस्तुत हैं। वृज्जिसंघ को उन कुचक्रों से अपना परित्राण करना होगा।

"आज, आर्यावर्त में सर्वत्र, ही हिंसा और विद्वेष की वह्निज्वाल जल रही है। उस विद्वेष के आवर्त में गिर कर शाक्यसंघ का विनाश हो गया। आर्यावर्त, द्रुतगति से, एक अभूतपूर्व विस्फोट की ओर अग्रसर हो रहा है। उस अवश्यम्भावी विस्फोट की तुलना में पाटलिग्राम का यह भीषण रक्तपात भी एक क्षुद्र कलह से अधिक कुछ नहीं।

"आर्यावर्त की वह विकराल विभीषिका मैं अपनी आँखों से देखकर आया हूँ। मेरी दृष्टि उत्तरापथ पर आबद्ध है जहाँ एक महायुद्ध की विभीषिका ताण्डव के लिए तत्पर हो रही है। मेरी दृष्टि मगध के पश्चिमवर्ती प्रत्यन्त पर निविष्ट है जहाँ अनेक वर्ष से स्थापित शान्ति किसी भी क्षण भंग हुआ चाहती है।

"तो मैं कह रहा था कि वृज्जिसंघ को ऐक्य की साधना करनी चाहिए। ऐक्य किसलिए ? किसी के विरुद्ध विग्रहरत होने के लिए नहीं। किसी प्रतिवेशी राष्ट्र पर आक्रमण करने के लिए नहीं। अद्यपर्यन्त, वृज्जिसंघ इस प्रकार की हीन वृत्ति से विरत रहा है। अतएव हमारी ऐक्य-साधना का एक ही उद्देश्य हो सकता है। वह उद्देश्य है महासमर की मृगमरीचिका में भ्रान्त आर्यावर्त का पथ-प्रदर्शन करना। आज वृज्जिसंघ के अतिरिक्त आर्यावर्त का कोई अन्य राष्ट्र, आर्यावर्त को धर्म एवं अहिंसा के मार्ग पर आरूढ़ करने में असमर्थ रहेगा।

"आर्यवृन्द ! वृज्जिसंघ, इस प्रसंग पर, दण्डनीति के रूढ़िगत उपायों का आश्रय लेकर विचार नहीं कर सकता। यह प्रसंग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस प्रसंग के ऊपर आर्यावर्त का भविष्य निर्भर करता है। वृज्जिसंघ का अपना भविष्य भी। अतएव हमें, इस प्रसंग पर, एक अभूतपूर्व ढंग से विचार करना होगा। हमें एक अभूतपूर्व पथ का आलम्बन लेना पड़ेगा ? वह अभूतपूर्व ढंग क्या है ? कौनसा है वह अभूतपूर्व पथ ?......"

आर्य रत्नकीर्ति ने, एक गर्जना-सी करते हुए, यह प्रश्न पूछा। और फिर एक क्षण मौन रहकर, वे विजयगर्वित दृष्टि से परिषद को निहारने लगे। मानो ताल ठोंककर उद्घोष कर रहे हों कि किसी में साहस अथवा सूझबूझ हो तो उनके प्रश्न का उत्तर दे।

परिषद के अधिकांश वृद्ध तन्द्रिल-से हो चुके थे। आर्य रत्नकीर्ति की गर्जना सुन कर वे जैसे जाग उठे। किन्तु गर्जना का आशय किसी की समझ में नहीं आया। और न ही आर्य रत्नकीर्ति के प्रश्न का उत्तर किसी ने दिया।

आर्य रत्नकीर्ति अपने स्वर को और भी प्रखर करके कहने लगे : "आर्यवृन्द ! वह अभूतपूर्व पथ हमको महाश्रमण गौतम के धर्मोपदेश की ओर ले जाता है। वह अभूतपूर्व ढंग हमें तापस-शिरोमणि निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र ने सिखाया है। अहिंसा और मैत्री। राष्ट्र-राष्ट्र की परस्पर प्रीति। विजिगीषु-वृत्ति का परिपूर्ण परित्याग। अखण्ड शान्ति की स्थापना। मनुष्य-मात्र का हृदय-परिवर्तन। आर्यावर्त की अक्षय धनराशि द्वारा जनजीवन में, रस एवं संस्कार का संचय।"

अकस्मात् अपना वक्तव्य समाप्त करके आर्य रत्नकीर्ति उपासीन हो गए। परिषद का वृद्ध-समवाय अब सावधान होकर बैठा था। उनको आशा थी कि आर्य रत्नकीर्ति अपने अभूतपूर्व प्रश्न का कोई अभूतपूर्व उत्तर भी देंगे।

किन्तु आर्य रत्नकीर्ति ने परिषद को निराश कर दिया। लिच्छवि-वृद्ध एक दूसरे की ओर प्रश्नसूचक दृष्टिपात करने लगे। मानो वे एक दूसरे से पूछ रहे हों: "आपकी कुछ समझ में आया कि परिषद में प्रस्तुत प्रतिज्ञा से आर्य रत्नकीर्ति के वक्तव्य का क्या सम्बन्ध है?" परिषद में, धीरे-धीरे, एक कोलाहल व्याप्त होने लगा।

अन्ततः एक वृद्ध ने उत्थान करके कहा: "आर्यश्रेष्ठ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। परिषद को स्वीकार हो तो मैं आर्य रत्नकीर्ति से एक प्रश्न पूछूँ।"

परिषद ने मौन रह कर स्वीकार किया। तब लिच्छवि-वृद्ध ने आर्य रत्नकीर्ति को सम्बोधित किया: "आर्य! आप इस परिषद को वृज्जि-संघ की परिषद मानते हैं अथवा शाक्यसंघ की उपस्थान-सभा? आप लिच्छवि-गण को लिच्छवि समझते हैं अथवा शाक्यसंघ के भिक्षुश्रावक?"

आर्य रत्नकीर्ति का मुख क्रोध से आरक्त हो गया। वैशाली का एक क्षुद्र कूपमण्डूक उन जैसे बृहद्-दृष्टि तथा विशाल-हृदय व्यक्ति पर व्यङ्ग कर रहा था! और वह कूपमण्डूक वृज्जिसंघ की परिषद का सदस्य था!! उस परिषद का सदस्य जिसने अभी-अभी उनके सार-गर्भित शिक्षापद सुनकर पुण्यार्जन किया था!!!

आर्य रत्नकीर्ति ने वृद्ध के प्रश्न का उत्तर देना अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझा। वे, उपासीन रहकर ही, आर्यश्रेष्ठ महाली की ओर देखने लगे।

आर्यश्रेष्ठ महाली ने आर्य रत्नकीर्ति से कहा: "आर्य! आप प्रतिज्ञा का द्वितीय अनुश्रावण कीजिए।"

किन्तु इसके पूर्व कि आर्य रत्नकीर्ति उत्थान करते, एक अन्य वृद्ध ने, उत्तिष्ठ होकर, कहा: "आर्यश्रेष्ठ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। प्रस्तुत प्रतिज्ञा का प्रसंग अत्यन्त गहन है। यदि परिषद को स्वीकार

हो तो परिषद, इस प्रतिज्ञा के प्रत्येक पक्ष पर सम्यक् परामर्श करने के लिए, एक उद्वाहिका नियुक्त करे।"

आर्य सुनक्खत ने उत्तिष्ठ होकर आवेदन किया : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। उद्वाहिका नियुक्त करने के पूर्व यह निर्णय होना चाहिए कि प्रतिज्ञा का प्रसंग वृज्जिसंघ के विधानानुसार, प्रज्ञप्त है अथवा अप्रज्ञप्त। यदि परिषद को स्वीकार हो तो परिषद आर्यश्रेष्ठ से अनुरोध करे कि वे, पूज्य प्रवेणी-पुस्तक का अवलोकन करके, प्रज्ञप्त-अप्रज्ञप्त के विषय में परिषद को सम्यक् सूचना दें।"

परिषद ने मौन रहकर स्वीकार किया। तब आर्यश्रेष्ठ महाली, राज्यासन से उत्थान करके, वेदिका के समीप गए। उन्होंने, कौशेय का आवरण-पट्ट अपसारित करके, कुछ क्षण तक प्रवेणी-पुस्तक का अवलोकन किया। फिर वे परिषद की ओर अभिमुख होकर बोले : "आर्यवृन्द ! पूज्य प्रवेणी-पुस्तक के सप्तम पर्व के तृतीय परिच्छेद की विंशत्यधिक-चतुःशत गाथा के अनुसार वृज्जिसंघ, आततायी तथा स्वदेश-द्रोही के अतिरिक्त, अन्य सब मनुष्यों को अभयदान दे सकता है।"

संस्थागार में सन्नाटा छा गया। परिषद के वृद्ध एक दूसरे का मुख देखने लगे। उनमें से अनेक की यह धारणा थी कि वर्षकार ब्राह्मण स्वदेशद्रोही है। अतएव उनका अन्तर यह साक्ष्य देने लगा कि प्रतिज्ञा का प्रसंग अप्रज्ञप्त है।

आर्य सुनक्खत ने, उत्थान करके, कहा : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। परिषद का कोई वृद्ध आर्य वर्षकार को आततायी नहीं मानता। किन्तु अनेक वृद्धों का यह विचार है कि आर्य वर्षकार ने स्वदेशद्रोह किया है। यदि परिषद को स्वीकार हो तो परिषद पाटलिग्राम के दुर्गपाल अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र को आज्ञा दे कि वह इस विषय में अपना मन्तव्य व्यक्त करे। आर्य वर्षकार के साथ दुर्गपाल ही सर्वाधिक परिचित हैं।"

परिषद ने मौन रहकर स्वीकार किया। तब आर्यश्रेष्ठ महाली का संकेत पाकर, दुर्गपाल अनिरुद्ध कहने लगे : "आर्यवृन्द ! मेरा यह निश्चित मत है कि आर्य वर्षकार स्वदेशद्रोही नहीं हैं। वे अधर्म-द्रोही हैं। राजा

यदि अधर्मी हो तो अमात्य-गण का कर्त्तव्य है कि वे राजा को धर्मसम्मत परामर्श दें, प्रजा का कर्त्तव्य है कि अधर्मी राजा के विरुद्ध विद्रोह करे। आर्य वर्षकार ने वही किया है जो मगध के महामात्य के लिए करणीय था, जो मगध की प्रजा का कर्त्तव्य था। अतएव आर्य वर्षकार ने अधर्म के विरुद्ध विद्रोह किया है, धर्म के विरुद्ध नहीं। मगध के राजवंश के प्रति, उनके मन में, किसी प्रकार का विद्वेष विद्यमान नहीं है। वे केवल इतना ही चाहते हैं कि मगध के राजसिंहासन पर विराजमान राजा अधर्म का आचरण न करें। मैं उनके आचरण को सर्वथा स्तुत्य मानता हूँ। मुझे उनके आचरण में कोई दोष दृष्टिगत नहीं होता। यदि वृज्जिसंघ भी मगधराज अजातशत्रु को अधर्मरत मानता है तो आर्य वर्षकार ने, वृज्जिसंघ के मत में, मगधराज के विरुद्ध विद्रोह करके, धर्म को ही धारण किया है, स्वदेश की सेवा की है। आर्य वर्षकार को स्वदेश-द्रोही उसी अवस्था मे कहा जा सकता है जब कि वृज्जिसंघ मगधराज अजातशत्रु को धर्मरत मानने के लिए प्रस्तुत हो।"

परिषद ने, मौन रहकर, दुर्गपाल के कथन का अनुमोदन किया। तब आर्य रत्नकीर्ति ने, उत्थान करके, द्वितीय अनुश्रावण किया : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। द्वितीय वार भी, परिषद मगधराज अजातशत्रु द्वारा अकारण अपमानित, स्वदेश से आजीवन निर्वासित तथा इस समय पाटलिग्राम के लिच्छवि दुर्ग में वर्तमान, मगध के भूतपूर्व महामात्य, आर्य वर्षकार ब्राह्मण, को वैशाली में बुलाकर, वृज्जिसंघ में शरणापन्न करती है। जिस आर्य को यह स्वीकार हो कि वर्षकार ब्राह्मण वृज्जिसंघ में शरणापन्न हों वे मौन रहें। जिसको स्वीकार नहीं हो, वे बोलें।"

परिषद ने मौन रहकर, द्वितीय अनुश्रावण का अनुमोदन किया। तृतीय अनुश्रावण का भी।

तब आर्य रत्नकीर्ति ने धारणा प्रस्तुत की : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। परिषद वर्षकार ब्राह्मण को वृज्जिसंघ में शरण प्रदान करती है। परिषद को स्वीकार है इसलिए परिषद मौन है। ऐसी मैं धारणा करता हूँ।"

परिषद का सन्निपात विसर्जित होने लगा। आर्य रत्नकीर्ति, तत्क्षण अपने आसन से उत्थान करके, संस्थागार से निष्क्रमण कर गए। उन्होंने एक क्षण के लिए भी संस्थागार में रहकर, किसी वृद्ध से वार्त्तालाप नहीं किया।

चतुर्थ अंक

आर्य पद्मकीर्ति का प्रमदोद्यान। क्रीड़ाप्रासाद के दक्षिणवर्ती अलिन्द पर उपासीन, आर्य रत्नकीर्ति तथा पुलोमजा, अस्ताचल की ओर अग्रसर होते हुए आदित्य की अन्तिम उष्णिमा का उपभोग कर रहे हैं। परस्पर वार्त्तालाप किए विना। पुलोमजा, दृष्टि अवनत करके, पीठिका पर प्रतिष्ठित दुहितृका की रूपसज्जा का परीक्षण कर रही है। आर्य रत्नकीर्ति खिन्नमन से, अन्तरिक्ष की ओर अपलक नयनों से निहारते हुए, अपने अन्तर में उद्वेलित विक्षोभ पर विजय पाने के लिए सचेष्ट हैं।

आर्य रत्नकीर्ति जब वैशाली में प्रत्यागत हुए तो उनको प्रत्याशा थी कि उनका पैतृक प्रासाद सर्वथा प्रस्तुत मिलेगा। इसीलिए उन्होंने, अपने आगमन से दो मास पूर्व, पुलोमजा को प्रेषित किया था। पुलोमजा ने प्रासाद का परिष्कार करवाया भी था। किन्तु वह परिष्कार आर्य रत्नकीर्ति को रुचा नहीं। उनकी अभिरुचि पुलोमजा की अपेक्षा सूक्ष्मतर थी। अतएव, प्रासादपाल को अभिनव परिष्कार का आदेश देकर, वे अन्यमनस्क-से, कियत् कालयापन के लिए, अपने प्रमदोद्यान में ही प्रवास करने लगे।

आर्य रत्नकीर्ति का मानस एक अन्य कारण से भी म्लान था। उनकी इच्छा नहीं थी कि वे, परिषद के समक्ष, वर्षकार को शरणदान की प्रतिज्ञा प्रज्ञापित करें। उनके अन्तर में वर्षकार के प्रति घोर विक्षोभ था। किन्तु अष्टकुलिक की सभा में, जब आर्य महाली ने उनसे अनुरोध किया कि वृज्जिसंध के संधिविग्रह-महामात्य होने के कारण वे ही प्रतिज्ञा को प्रज्ञापित करें, तो वे प्रतिरोध नहीं कर पाए। यद्यपि, प्रतिज्ञा का स्पष्टीकरण करते समय, उन्होंने अपने वास्तव मत का प्रकाशन कर दिया था, किन्तु तो भी, एक मिथ्याचार की अनुभूति से उनका मानस विषाक्त हो गया।

उस मिथ्याचार की मार्जना का मार्ग उनको नहीं मिल रहा था ।

पिता और पुत्री को मौन बैठे कई काष्ठा अतीत हो गईं । तब, पुलोमजा ने प्रश्न किया : "पिताजी ! पाटलिग्राम की ओर आप कब प्रयाण करेंगे ?"

आर्य रत्नकीर्ति ने, जैसे नींद से जाग कर, उत्तर दिया : "पुलोमे अब पाटलिग्राम नहीं जाएँगे । फिर कभी देखा जायगा ।"

"अभी क्यों नहीं, पिताजी !"

"इसलिए कि वह बटुक अनिरुद्ध वहाँ निवास करता है । उसको देखते ही मेरा मानस क्रोध से जल उठता है ।"

"न जाने आप अनिरुद्ध के प्रति क्यों कुपित हैं । मेरी समझ में नहीं आता, पिता जी !"

"एक दिन तुम्हारी समझ में भी आ जायगी मेरी बात । अभी तो तुम भी, अन्य लिच्छवि-गण की भाँति, उस बटुक को महारथी मानती हो ना । तुम्हारा भ्रम दूर हो जाय, तब कहना ।"

"अनिरुद्ध को महारथी मानना भ्रम किस प्रकार हो गया, पिताजी !"

"पाटलिग्राम के दुर्ग का आश्रय लेकर निरीह मागधों को मारने वाला मेरे मत में महारथी नहीं हो सकता ।"

"किन्तु, पिताजी ! आक्रमण तो सदैव मगध की ओर से ही होता रहा है । अनिरुद्ध ने अपने दुर्ग की रक्षा के लिए ही......

"आक्रमण कौन करता है और कौन उस आक्रमण को अवरुद्ध करता है—ये सब बातें सर्वथा अनानुषङ्गिक हैं । मैं तो वीरता की बात कह रहा था । दुर्ग का आश्रय लेकर शत्रु से युद्ध करना कहाँ की वीरता है ?"

पुलोमजा, सहसा, कुछ असहिष्णु-सी हो गई । वह धृष्ट स्वर में बोली : "तो आप स्वयं रणप्राङ्गण में जाकर मागध सैन्य को परास्त कीजिए, पिता जी ! तब आप अतिरथी कहलाएँगे । अनिरुद्ध महारथी ही रह जाएगा ।"

आर्य रत्नकीर्ति को भी क्रोध आ गया । वे कर्कश वाणी में, पुलोमजा की भर्त्सना करते हुए, बोले : "मैं रणप्राङ्गण में रक्तपात करने जाऊँ ! तू प्रलाप कर रही है, पुलोमजा ! मैं ऐसा जघन्य कृत्य क्यों करूँगा ?

मुझे क्या कोई अन्य काम नहीं है ?"

पिता की क्रूर मुद्रा देख कर, पुलोमजा, एक क्षण के लिए, कुण्ठित हो गई। किन्तु दूसरे क्षण वह समस्त साहस संचित करके कहने लगी : "पिताजी ! आप यदि यह कहें कि अनिरुद्ध को वार्त्ता, दण्डनीति, आन्वीक्षिकी अथवा धर्मशास्त्र का ज्ञान नहीं है, तो मैं आप से पूर्णरूपेण सहमत हूँ। अनिरुद्ध का जीवन सैन्य-शिविर में ही व्यतीत हुआ है। इसके अतिरिक्त......"

पुलोमजा ने अपनी बात पूरी नहीं की। आर्य रत्नकीर्ति ने उसकी ओर देखकर पूछा : "इसके अतिरिक्त क्या ? तू कह, क्या कहना चाहता है। तू मौन क्यों हो गई, पुलोमे !"

पुलोमजा ने कहा : "अनिरुद्ध को वत्सला ने पथ-विभ्रष्ट कर दिया है।"

"वत्सला कौन ?"

"महाली की दारिका। आजकल, वृज्जिसंघ के राजसिंहासन पर वही तो विराजमान है।"

"और महाली ?"

"वह तो वयोवृद्ध है। उसकी ज्ञानेन्द्रियों के साथ उसकी बुद्धि भी सर्वथा निष्क्रिय हो चुकी है। वह अब अपनी दारिका के इङ्गित पर नाचता है।"

आर्य रत्नकीर्ति अकस्मात् चिंतित-से हो गए। उनके स्मृतिपट पर, उनको लिच्छविकुल-कलंक तथा कापुरुष कहने वाली वत्सला की वज्रमूर्ति उभर आई। तब वे बोले : "मैं तो यही समझता था कि महाली की दारिका केवल वाचाल है। किन्तु सोचने पर जान पड़ता है कि तेरी बात में सार है, पुलोमे ! अवश्य उसी की प्रेरणा से पाटलिग्राम के उस पशु ने वह पातक किया है......

पुलोमजा ने क्षुण्ण होकर पूछा : "आप अनिरुद्ध को पशु क्यों कहते हैं, पिताजी !"

"वह पशु ही तो है। नरपशु !"

"यह आपका अन्याय है। आप एक बार अनिरुद्ध से मिलकर तो

देखिए। आपकी आज्ञा हो तो मैं उसको यहीं आमन्त्रित कर लूँ। आज ही। कल मध्याह्न तक वह आ जायगा।"

आर्य रत्नकीर्ति ने पुलोमजा की अभ्यर्थना का उत्तर न देकर, अपनी दृष्टि उसके मुख पर निविष्ट कर दी। क्षणोपरान्त उन्होंने पूछा : "उस बटुक से मिलकर क्या लाभ होगा ?"

पुलोमजा ने उत्साह के साथ उत्तर दिया : "अनिरुद्ध के प्रति आपका दौर्मनस्य दूर हो जायगा।"

"अथवा तुझको उसे अपने आलिंगन में आबद्ध करने का एक अन्य अवसर मिल जायगा ?"

पुलोमजा ने, हतप्रभ होकर, मुख अवनत कर लिया। आर्य रत्नकीर्ति ने, पुलोमजा की चिबुक का अंगुलिस्पर्श करके, पुत्री का मुख पुनरेण उन्नत किया। पुलोमजा के नयनों में अपने नयन निविष्ट करके, वे बोले : "पुलोमे ! एक बात बतलाओ !"

पुलोमजा ने, भयभीत मृगी के समान नेत्र निमीलित करके, कहा : "क्या ?"

"अब भी तुम उस बटुक से प्रेम करती हो ?"

पुलोमजा ने उत्तर नहीं दिया। किन्तु उसके कपोलों पर उमड़ती लालिमा को आर्य रत्नकीर्ति ने, मुखचूर्ण के अरुणाभ आवरण में से भी, स्पष्ट देख लिया। और उनका हृदय व्यथा से विदीर्ण हो गया।

अनिरुद्ध के प्रेमपाश से पुलोमजा को मुक्त करने के लिए ही तो वे, उसको लेकर, विदेशयात्रा के लिए गए थे। जिस दिन से उन्होंने सुना था कि कौमुदी-महोत्सव में पुलोमजा ने, अनिरुद्ध का वरण करने का निश्चय किया है, उसी दिन से उनका यह प्रयास था कि उनकी एकमात्र सन्तान उस असंस्कृत अर्धलिच्छवि को भूल जाय। वैशाली में, पुलोमजा के योग्य अनेक अन्य लिच्छवि तरुण विद्यमान थे। वे तरुण जिन्होंने तक्षशिला में शिक्षाग्रहण की थी। वे तरुण जो शाकल, काम्पिल्य, उज्जयिनी तथा कौशाम्बी में, एक काल तक निवास करके, सुष्ठु सुसंस्कृत थे। वे तरुण जो, लिच्छवि-गण की अन्ध परम्परा का प्रत्याख्यान करके रक्तपात की अपेक्षा, रस-संचय को श्रेयस्कर समझते थे। पुलोमजा, उनमें

से, यथारुचि, किसी का भी वरण कर सकती थी। अभद्र एवं ग्राम्य जीवन-यापन करने वाला वह जानपद, पुलोमजा का पाणिपीड़न करने योग्य नहीं था।

प्रवास में रह कर, पुलोमजा की प्रफुल्लता को देखते हुए उनको विश्वास हो गया था कि वह अनिरुद्ध को भूल गई है। पारसीकपुरी के प्रमुख कुलपुत्रों की प्रणयपात्री बनी थी पुलोमजा। उसने एक बार भी अनिरुद्ध का नाम लेकर अपने आह्लाद को अवसन्न नहीं किया था। किन्तु वैशाली के विषाक्त वातावरण में प्रत्यागत होते ही......

आर्य रत्नकीर्ति का मानस एक विराट विरक्ति से विजड़ित हो गया। वैशाली में उनके लौटने के दिन से ही उस विरक्ति का बीजारोपण हो रहा था। वैशाली के प्रति विरक्ति। लिच्छवि-गण के प्रति विरक्ति। वृज्जिसंघ के संधि-विग्रह चक्र के प्रति विरक्ति। आज पुलोमजा का पतन देखकर, उस विरक्ति के सागर में ज्वार आ गया।

अनेक वर्ष पूर्व, जब आर्य रत्नकीर्ति तक्षशिला में शिक्षोपार्जन करके वैशाली में लौटे, तब उनके अन्तर में एक अभीप्सा का अनवरत आवेग था। लिच्छवि-गण को सुसंस्कृत करने की अभीप्सा। वैशाली के जन-जीवन में रस-संचय की अभीप्सा। वृज्जिसंघ को रक्तपात से सर्वथा विरत करने की अभीप्सा। उसी अभीप्सा की प्रेरणा पाकर वे, वारम्वार, विदेश-भ्रमण के लिए गए थे। उन्होंने, आर्यावर्त तथा आर्यावर्त के परे अनेक महानगरों में निवास करके, अपनी उत्कृष्ट अभिरुचि को परिपक्व एवं परिमार्जित किया था। किन्तु वैशाली के लिच्छवि-गण ने, एक बार भी, उनकी अपार गुणसम्पदा का अभिनन्दन नहीं किया था। लिच्छवि-गण उनकी अवगणना ही करते रहे थे।

आर्य रत्नकीर्ति को अष्टकुलिक के अन्तर्गत करके, वृज्जिसंघ का संधिविग्रह-महामात्य बनाने का प्रस्ताव जब आर्यश्रेष्ठ महाली ने परिषद के समक्ष प्रस्तुत किया था, तब अनेक लिच्छवि-वृद्ध उनके आचार-विचार की विवेचना करने पर तुल गए थे। आर्यश्रेष्ठ महाली के आग्रह के कारण आर्य रत्नकीर्ति महामात्य-पद पर प्रतिष्ठित तो हो गए, किन्तु वे नाम मात्र के ही महामात्य रहे। लिच्छवि-गण ने उनका आदर किसी

दिन भी नहीं किया। आर्यश्रेष्ठ महाली ने उनका पक्ष लिया तो केवल इसीलिए कि वे आर्य पद्मकीर्ति के एकमात्र पुत्र थे। उनकी अपनी विद्या, बुद्धि, संस्कार एवं सुरुचि का किसी ने समादर नहीं किया।

वैशाली में विख्यात थे आर्य रत्नकीर्ति। वे जब जब, नगर के शृङ्गाटक पर भाषण करते थे, तब तब, वैशाली-वासियों का अपार जन-समवाय उनका अभिनन्दन करता था। किन्तु वृज्जिसंघ की परिषद में, वे कभी भी अपनी मनोनीत प्रतिज्ञा को प्रज्ञापित नहीं कर पाए। उन्होंने सर्वदा आर्यश्रेष्ठ महाली तथा अष्टकुलिक द्वारा निर्णीत प्रतिज्ञा ही परिषद में प्रस्तुत की।

और इस बार फिर, उनके वैशाली में पदार्पण करते ही, आर्यश्रेष्ठ महाली ने उनके मस्तक पर वही पुराना मिथ्याचार मढ़ दिया!

आर्य रत्नकीर्ति का अन्तर आक्रोश करने लगा कि वैशाली के लिच्छवि-गण किसी प्रकार भी उन जैसी विभूति का मूल्यांकन करने योग्य नहीं; अपात्र को आदर्श की ओर ले जाने का आग्रह कोई अबोध बालक ही कर सकता है; और अब उनको वह आग्रह त्याग देना चाहिए।

उनके सन्मुख आर्यावर्त का प्रशस्त प्रांगण प्रसारित था। आर्यावर्त के अनेक शिष्ट एवं सुसंस्कृत महाजनपद तथा महानगर। कुरु, पञ्चाल, वत्स, काशी,-कोसल, चेदि, मत्स्य, शौरसेन, अवन्ति, मद्र, केकय, गान्धार। काम्पिल्य, कौशाम्बी, वाराणसी, श्रावस्ती, माहिष्मती, उज्जयिनी, शाकल, तक्षशिला। आर्यावर्त के उस पार, पारसीक साम्राज्य भी उनकी अप्रतिम प्रतिभा से परिचित था। किन्तु वैशाली नहीं। वृज्जिसंघ नहीं। उनके ज्ञातिबान्धव लिच्छवि-गण नहीं। तब वे, वैशाली में वास करके, अपने बहुमूल्य जीवन को क्यों व्यर्थ करें?

और, एक क्षण में, आर्य रत्नकीर्ति की विरक्ति एक निश्चय में परिणत हो गई। वैशाली-त्याग का निश्चय। सर्वदा के लिए वैशाली-त्याग। वे अब, एक दिन भी वैशाली में रहकर, पुलोमजा को अधःपतन का अवसर देना नहीं चाहते थे। पुलोमजा के परित्राण के लिए ही उन्होंने उसकी अशिक्षित लिच्छवि माँ का परित्याग किया था। अपनी विवाहिता अर्धाङ्गिनी को, रुला-रुला कर, मारने का लांछन अपने सिर

पर लिया था। अब वे, वैशाली के मिथ्या मोह में पड़ कर, पुलोमजा को नष्ट होते नहीं देख सकते। वे, पुलोमजा को साथ लेकर, पुनरेण, आर्यावर्त के दिग्दिगन्त में भ्रमण करेंगे। किसी-न-किसी दिन, कहीं-न-कहीं, उनको ऐसा संस्कार-सम्पन्न तरुण मिल जाएगा जो पुलोमजा के योग्य हो और जो उनके भी मन को भाए।

आर्य रत्नकीर्ति ने अधीर हो कर, पुलोमजा से कहा : "पुलोमे ! वैशाली से प्रयाण करने का समारम्भ कर। कल प्रातःकाल ही प्रयाण करेंगे।"

पुलोमजा ने पुलकित होकर पूछा : "पाटलिग्राम जाएँगे ना, पिताजी !"

आर्य रत्नकीर्ति के नेत्रों से अग्निज्वाल निर्गत हुई। वे चीत्कार कर उठे : "प्रलाप मत कर। पाटलिग्राम का नाम भी लिया तो हतभागी के प्राण ले लूँगा।"

पुलोमजा भय से काँप उठी। उसने अतीव विनीत वाणी में पूछा : "कहाँ जाना है, पिताजी !"

"रसातल में ! वैशाली से तो रसातल भी शुभ है, सुखकर है। मैं अब वैशाली में नहीं रह सकता। और इस जीवन में, कभी भी लौट कर मैं इस अभागे नगर की दुर्गप्राचीर नहीं देखूँगा।"

क्रीड़ाप्रासाद के प्रांगण में से किसी ने कहा : "वैशाली में आपके विद्यमान रहते, वैशाली को अभागी कहना आपका अन्याय है, आर्य रत्नकीर्ति !"

पुलोमजा ने मुख ऊपर उठा कर प्रांगण की ओर दृष्टिपात किया। वहाँ, एक अपरिचित पुरुष के साथ, आर्य सुनक्खत दण्डायमान थे।

तब आर्य रत्नकीर्ति का ध्यान उस ओर आकर्षित करते हुए, पुलोमजा ने कहा : "पिताजी ! देखिये तो प्रांगण में कौन प्रस्तुत हैं।"

आर्य रत्नकीर्ति ने भी नवागन्तुकों को निहारा। आर्य सुनक्खत के साथ संरूढ़ आर्य वर्षकार ब्राह्मण को पहिचानने में उन्हें विलम्ब नहीं हुआ। अनेक वर्ष पूर्व राजगृह में एक बार आर्य वर्षकार से उनका साक्षात् हुआ था। तब आर्य रत्नकीर्ति मगध के महामात्य पर मुग्ध हो गए थे।

किन्तु आज आर्य वर्षकार को देखते ही उनका मुख म्लान हो गया।

आर्य रत्नकीर्ति एक स्वदेशद्रोही का स्वागत करने के लिए किसी प्रकार भी प्रस्तुत नहीं थे। उनके मानस में आर्य सुनक्खत के प्रति महान् अमर्ष का आविर्भाव होने लगा। आर्य सुनक्खत क्यों, उनकी अनुमति के बिना, उनको सूचना तक न देकर, एक स्वदेशद्रोही को उनके क्रीड़ाप्रासाद में ले आए? आर्य रत्नकीर्ति से साधारण शिष्टाचार भी न बन पड़ा। अभ्यागतों के अभिवादन में प्रत्युत्थान किए विना और आर्य वर्षकार की अवहेलना करके उन्होंने विरक्त स्वर में आर्य सुनक्खत को सम्बोधित किया : "तुम इस समय कैसे आए, सुनक्खत !"

आर्य सुनक्खत ने, आर्य वर्षकार के साथ अलिन्द पर आरोहण करते हुए, उत्तर दिया : "आर्य रत्नकीर्ति ! आर्य वर्षकार जिस दिन से वैशाली में आए हैं, उस दिन से आपका दर्शन करना चाहते हैं। आज मैं इनको अपने साथ ले आया।"

आर्य रत्नकीर्ति ने, आश्चर्य प्रगट करते हुए, पूछा : "मेरे दर्शन क्यों ? किसलिए ?"

"आपने ही इन्हें वृज्जिसंघ में शरणदान दिया है। क्या ये आपके प्रति कृतज्ञता-निवेदन भी न करें ?"

"मैंने शरण दी है ! कौन कहता है !! यह मिथ्यावाद है !!! इनको शरण देने का निर्णय तो वृज्जिसंघ की परिषद ने किया है।"

"आर्य ! परिषद के समक्ष वह प्रतिज्ञा तो आपने ही प्रकाशित की थी। और प्रतिज्ञा की विशद विवेचना भी आपने ही की थी।"

आर्य रत्नकीर्ति ने कोई उत्तर नहीं दिया। जैसे मुख पर आए शब्द को मुखरित करने में, वे असमर्थता का बोध कर रहे हों।

किन्तु आर्य, वर्षकार उनके उत्तर की अपेक्षा न करके, बोले : "आर्य रत्नकीर्ति ! मैं केवल कृतज्ञता-निवेदन के निमित्त ही आपके निकट नहीं आया। मेरे आगमन का एक अन्य उद्देश्य भी है।"

आर्य रत्नकीर्ति ने, विरक्त वाणी में, पूछा : "कहिए क्या उद्देश्य है ?"

आर्य वर्षकार ने उत्तर दिया : "आर्य ! आपने प्रतिज्ञा की विवेचना

करते समय एक अत्यन्त सुप्रशस्त एवं सारगर्भित सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। उसी सिद्धान्त के विषय में अपनी कुछ शंकाओं का समाधान पाने आया हूँ।"

आर्य रत्नकीर्ति, तत्क्षण उठकर खड़े हो गए। और फिर वे, पुलोमजा की ओर मुख परावृत्त करके, बोले : "पुलोमे ! आर्य वर्षकार को आसन नहीं दिया ! कैसी अशिष्ट है !!"

पूलोमजा ने, तुरन्त उठकर, एक मंचपीठ की ओर अपना बाहुलता-द्वय प्रसारित करते हुए, कहा : "आसन ग्रहण कीजिए, आर्य वर्षकार !"

आर्य वर्षकार उपासीन हो गए। आर्य सुनक्खत भी। तब आर्य रत्नकीर्ति तथा पुलोमजा ने भी अपने आसन ग्रहण किए।

आर्य सुनक्खत ने आर्य रत्नकीर्ति को सम्बोधित किया : "वैशाली के विषय में आप क्या कह रहे थे, आर्य !"

आर्य रत्नकीर्ति ने, आर्त स्वर में, उत्तर दिया : "विशेष कुछ नहीं, सुनक्खत ! मैं सदा के लिए वैशाली से विदा लेना चाहता हूँ।"

आर्य सुनक्खत ने, अवसन्न होकर कहा : "आप वैशाली का त्याग कर देंगे, आर्य !! तब वैशाली का क्या होगा ? आर्य पद्मकीर्ति के उपरान्त आप ही तो वैशाली की एकमात्र विभूति हैं।"

"वैशाली में अब मेरे लिए स्थान नहीं है, सुनक्खत !"

"आप जैसे मनीषी के लिए वैशाली में स्थान नहीं तो क्या मेरे जैसे मूढ़ के लिए है......

"लिच्छवि-गण को रक्तपात के अतिरिक्त, अपनी अन्धपरम्परा के अनुसरण के अतिरिक्त, अन्य किसी प्रसंग में रुचि ही नहीं। मैं भला यहाँ रहकर......

"आपको लिच्छवि-गण में अन्य रुचि उत्पन्न करनी होगी, आर्य ! आप वैशाली से चले गए तो और कौन है जो लिच्छवि-गण का इस अन्ध-कूप से उद्धार कर सके ?"

"किन्तु उपाय क्या है, सुनक्खत ! किसी भी लिच्छवि-वृद्ध से बात करो, वही मगध के साथ मरण-मारण का मन्त्रोच्चार करता है। जैसे शस्त्रास्त्र-धारण तथा रक्त-प्लावन के अतिरिक्त, मानव के लिए कुछ

करणीय ही न रह गया हो। धनुष, बाण, खड्ग, खेटक—ये क्या किसी सभ्य समाज की चर्चा के विषय हैं ? आप तक्षशिला में जाइए। शाकल, काम्पिल्य अथवा कौशाम्बी में जाकर देखिए। वहाँ पर आर्यवृन्द काव्य एवं कला की चर्चा करते हैं। वे गोष्ठी के उपरान्त गोष्ठी करते रहते हैं। उत्सव, समाज, आपानक। नृत्य, वाद्य और गीत का रसास्वादन। और वैशाली के लिच्छवि-गण ?"

"मैं समझ गया, आर्य ! मैं सब समझ गया। मैंने भी तो कई वार, आपके साथ विदेश जाकर, अपनी आँखों से देखा है कि रस एवं संस्कार की महिमा क्या होती है। वैशाली के गणिकालय में जब तक आम्रपाली विद्यमान थी, तब तक लिच्छवि-गण भी उस ओर उन्नति कर रहे थे। किन्तु आम्रपाली ने, शाक्यश्रमण के प्रपञ्च में पड़कर, गणिकालय शून्य कर दिया। और......

"महाश्रमण की शिक्षा का वह पक्ष मुझे भी क्षुब्ध करता है, सुनक्खत ! मध्यमण्डल के जिस भी महानगर में मैं इस बार गया, वहीं पर मैंने यह सुना कि काव्य एवं कला के कोविद, कुलपुत्र एवं कुलपुत्रियाँ, काषायवस्त्र धारण करके अपने सरस जीवन को नीरस बना रहे हैं। किन्तु मेरी दृष्टि में वह गौण पक्ष है। महाश्रमण का महामन्त्र है सार्वभौम शान्ति की स्थापना, अहिंसा का दिव्य आलोक, मानव-मात्र के प्रति प्रीति......

अपनी बात को पूरा करने के पूर्व ही, आर्य रत्नकीर्त्ति, नेत्र निमीलित करके, समाधिस्थ-से होगए।

तब वर्षकार ब्राह्मण ने कहा : "आर्य रत्नकीर्ति ! मैं भी, आपके समान, भगवान का विनम्र उपासक हूँ। किन्तु मेरी मन्द बुद्धि ने, किसी दिन भी, यह ग्रहण नहीं किया था कि तथागत के शिक्षापदों का आश्रय लेकर एक समीचीन राजनीति की स्थापना की जा सकती है। आपने, गुरुत्वपूर्ण गवेषणा करके, भगवान के महावचन की विलक्षण व्याख्या की है। मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि भगवान के कौन-कौन से शिक्षापदों की सहायता से आपने यह अभूतपूर्व आविष्कार किया।"

आर्य रत्नकीर्ति ने कभी भी यह नहीं सोचा था कि उन्होंने एक

नवीन राजनीति का प्रतिपादन किया है। किन्तु मगध के भूतपूर्व महामात्य, राजनीति के प्रवीण पण्डित, वर्षकार ब्राह्मण उनको आचार्य-पद पर आरूढ़ कर रहे थे। वर्षकार तो वैशाली की वीथि-वीथि में, कीटपतङ्ग का-सा जीवन व्यतीत करने वाले पृथग्जन नहीं थे। वे मेधावी पुरुष थे। महान आत्मा। जब उनको प्रतीति हो रही थी कि आर्य रत्नकीर्ति ने एक नवीन सिद्धान्त का साक्षात्कार किया है, तो अवश्य कोई बात होगी। विनय के साथ-साथ प्रकाण्ड पाण्डित्य की मुद्रा धारण करके, आर्य रत्नकीर्ति ने कहा :

"भगवान के शिक्षापदों से जितना प्रगाढ़ परिचय आपका है, उतना मेरा नहीं है, आर्य वर्षकार ! मैं तो भगवान का साधारणतम, क्षुद्रातिक्षुद्र उपासक हूँ। मैंने कभी भगवान के पृथक-पृथक शिक्षापदों का मनन नहीं किया। मैंने तो केवल एक ही तत्त्व हृदयङ्गम किया है। भगवान दण्डचक्र का शमन करके धर्मचक्र-प्रवर्तन के पक्षपाती थे। भगवान के प्रत्येक उपासक को दण्डचक्र का दमन करना चाहिए। क्या मैंने भूल की है, आर्य वर्षकार !"

वर्षकार ब्राह्मण का मुख, रत्नकीर्ति के लिए, श्रद्धा से सजीव हो उठा। वे रत्नकीर्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए बोले : "आर्य सुनक्खत ने आप को मनीषी कहकर मृषावाद नहीं किया। मनीषी का एक ही लक्षण होता है। वे कभी गौण की गवेषणा में अपना समय नहीं गँवाते। वे सदा प्रमुख प्रसंग का ही प्रचार करते हैं। आप ने भगवान के शिक्षापदों पर सम्यक् विचार करके उन का सार ग्रहण किया है। आप धन्य हैं, आर्य ! आप अद्भुत हैं। अभूतपूर्व है आपका आविष्कार। मुझ जैसे मूढ तो......

रत्नकीर्ति ने प्रतिवाद किया : "आप मूढ नहीं हैं, आर्य वर्षकार !"

"आप जैसे मनीषी की तुलना में तो मैं मूढ ही हूँ, आर्य रत्नकीर्ति !"

रत्नकीर्ति ने, व्रीडाभिभूत हो कर, मुख अवनत कर लिया। किन्तु वर्षकार पर अपनी व्याख्या का प्रभाव देख कर, मन-ही-मन, वे अतीव प्रसन्न हो उठे। उनको आशा हुई कि वर्षकार ब्राह्मण, लिच्छवि-गण के निकट, उस व्याख्या का गुणगान करेंगे। तब लिच्छविगण को विदित

होगा कि उनका वास्तविक हितचिन्तक कौन है। कुचक्र रचने वाला कुण्ठित-बुद्धि, अनिरुद्ध अथवा गहन चिन्तन के कारण चिन्मय-मानस रत्नकीर्ति।

सुनक्खत ने वर्षकार ब्राह्मण को सम्बोधित किया : "आर्य वर्षकार ! आप यह नहीं जानते कि मैं, कई वर्ष तक, काषायवस्त्र धारण करके, धर्मसघ का श्रमण रह चुका हूँ। इस जीवन को मायाजाल मानकर मैं गृहस्थाश्रम में लौट आया। मैं आज भी उस निश्चय पर पश्चाताप-परायण नहीं। मै तो यही समझा था कि शाक्यश्रमण का उपदेश मानव के लिए मृत्यु के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं। किन्तु आज, अकस्मात्, आर्य रत्नकीर्ति ने मेरे नेत्र उन्मीलित कर दिए। जैसे अन्धकार-पूर्ण आवास में कोई प्रदीप प्रज्वलित कर दे।"

तब रत्नकीर्ति ने, वक्ष विस्फारित करके, सिंहनाद किया : "महाश्रमण की शिक्षा के दो पक्ष है। एक ओर है उनका धर्मचक्र-प्रवर्तन और दूसरी ओर उनकी पलायन-वृत्ति। एक सत्य है, दूसरी मिथ्या। मैंने सत्य का मिथ्या से पृथक्करण किया है। मै धर्मचक्र-प्रवर्त्तन को प्रोत्साहित तथा पलायन-वृत्ति को पराजित करना चाहता हूँ।"

सुनक्खत ने रत्नकीर्ति से कहा : "मेरी धृष्टता क्षमा करें, आर्य ! आप इस समय पलायन-वृत्ति का वरण करने लिए ही हठ कर रहे है।"

रत्नकीर्ति, सहसा, रुष्ट हो गए। वे सुनक्खत की भर्त्सना करते हुए बोले : "तुम्हारा यह अपवाद असह्य है, सुनक्खत ! मैं और पलायन-वृत्ति ! तुमने इतने दिन तक, मेरे सहवास में रह कर भी, मेरा प्रकृत परिचय प्राप्त नहीं किया !"

"आर्य ! आप ही तो कह रहे थे कि आप वैशाली का परित्याग करना चाहते है। यह पलायन-वृत्ति नहीं तो और क्या है, आर्य ! यदि आपने वैशाली का परित्याग कर दिया तो, लिच्छवि-गण की हितसाधना के लिए, सत्य एवं मिथ्या का पृथक्करण कौन करेगा ? लिच्छवि-गण या तो मरण-मारण में रत रहते हैं, या काषायवस्त्र लपेट लेते है। धर्मचक्र-प्रवर्तन का प्रकृत अर्थ क्या है, यह वे किसी दिन नही समझ पाए। लिच्छवि-गण को ऐसी असहाय अवस्था में छोड़कर चले जाना क्या पला-

यन-वृत्ति नहीं है, आर्य !"

रत्नकीर्ति मुस्कराने लगे। सुनक्खत उनके अनन्य अनुयायी थे। अपने अनन्य अनुयायी का अनुरोध वे अस्वीकार नहीं कर सकते थे। किन्तु वैशाली की कुत्सा का स्मरण होते ही वे पुनरेण कातर हो गए। और वे बोले : "सुनक्खत ! मैं वैशाली में रहकर क्या करूँगा ?"

सुनक्खत ने पूछा : "वैशाली के बाहर जाकर आप क्या करेंगे, आर्य !"

"वैशाली के बाहर मेरा सन्देश श्रवण करने वाले अनेक हैं।"

वर्षकार ब्राह्मण ने कहा : "किन्तु, आर्य ! आप यह न भूलिए कि प्राची के परे, आज सर्वत्र ही, अवन्ति का कुचक्र अबाध होकर चल रहा है।"

रत्नकीर्ति ने दुःखित होकर उत्तर दिया : "वह तो मैं अपनी आँखों से देखकर आया हूँ, आर्य वर्षकार !"

"अवन्ति में भगवान के उपासक विरल हैं। अवन्ति का राजवंश भगवान का उपहास ही करता रहा है।"

"मुझे ज्ञात है।"

"इस अवस्था में भी क्या आपको अनुकूल वातावरण पाने की आशा है ?"

"बाधाएँ तो बहुत हैं। किन्तु......"

अपनी बात को पूरी किए बिना ही रत्नकीर्ति चिन्ता-निमग्न हो गए। वे किंकर्त्तव्य-विमूढ़ थे। एक ओर वैशाली के कुलक्षण लिच्छवि-गण। दूसरी ओर अवन्ति का कुचक्र। उनकी समझ में नहीं आया कि वे क्या करें, किस ओर जाएँ।

सुनक्खत ने उनका मार्ग-प्रदर्शन किया। वे अत्यन्त आर्जव के साथ बोले : "आर्य ! वैशाली के लिच्छवि कितने ही कुपात्र क्यों न हों, अन्ततः आपके आत्मीय हैं। आपकी और उनकी शिराओं में एक ही पितामह का रक्त प्रवाहित है। आपके और उनके एक ही संस्कार हैं। अन्तर इतना है कि आप जागृत हैं, और वे सुप्त। ऐसी अवस्था में आपका कर्त्तव्य स्पष्ट है आर्य !"

रत्नकीर्ति ने पूछा : "मेरा क्या कर्त्तव्य है, सुनक्खत !"

"आपको वैशाली में सिंहनाद करना होगा। सोये हुए लिच्छवि-गण को जगाना होगा।"

"उसका तो कोई उपाय मेरे पास नहीं।"

"उपाय मैं जानता हूँ, आर्य!"

"उपाय का उद्घाटन करो।"

"वैशाली में आम्रपाली का युग प्रत्यागत होना चाहिए। वीणा का क्वणन। नूपुर का रणन। कोकिलकण्ठा की काकली। किङ्किणीमाल का कूजितस्वन। लिच्छवि-गण का कठोर हृदय नवनीत-सा कोमल हो जाएगा। तब वे आपका अमृत आदेश अङ्गीकार करने के लिए तुरन्त तत्पर हो जाएँगे।"

"किन्तु आम्रपाली कहाँ है?"

पुलोमजा, पिता का प्रश्न सुनकर, पुलकित हो उठी। उसने कहा: "पिताजी! आम्रपाली मेरे पास है।"

रत्नकीर्ति ने विस्मित होकर पूछा: "तेरे पास, पुलोमे! कौन है वह?"

"एक उच्चकुल की कुलपुत्री। रूप में साक्षात् रम्भा। शिल्पगुण में अद्वितीय। आप उसे देखेंगे तो आम्रपाली को भूल जाएँगे।"

"वह इस समय कहाँ है?"

"कौशाम्बी के गणिकालय में शिक्षा ग्रहण कर रही है।"

रत्नकीर्ति निराश हो गए। वे कहने लगे: "कब वह शिक्षित होकर आई और कब वह आम्रपाली बनी!"

"आप निराश न हों, पिताजी! शिल्पशिक्षा की दृष्टि से वह सर्वाङ्ग-सम्पूर्ण है। केवल गणिकालय का शिष्टाचार सीखने के लिए ही कौशाम्बी गई है।"

सुनक्खत ने कहा: "मैं कौशाम्बी जाकर उसे ले आऊँगा, आर्य!"

रत्नकीर्ति ने, एक क्षण मौन रहकर, उत्तर दिया: "मैं तुम्हारे प्रस्ताव का परीक्षण करूँगा, सुनक्खत! तुमने सुन्दर प्रस्ताव किया है।"

"आर्य! मैं वृज्जिसंघ का हितचिन्तन करते-करते ही वृद्ध हुआ हूँ। और आपने वृज्जिसंघ के कल्याण के लिए देश-देश की धूल छानी है।

आप अब वैशाली को विधवा न कीजिए, आर्य !"

रत्नकीर्ति पुनरेण चिन्ता-निमग्न हो गए। सुनक्खत ने कहा : "आप वृज्जिसंघ का राजपद पाने योग्य हैं, आर्य !"

रत्नकीर्ति बोले : "राजपद का लोभ मुझे नहीं है, सुनक्खत !"

"लोभ की बात तो मैं भी नहीं कहता, आर्य ! मैं तो केवल आपकी क्षमता की ओर संकेत कर रहा हूँ।"

क्षमता ! रत्नकीर्ति को अपनी क्षमता पर दृढ़ विश्वास था। वे इस लिए वैशाली का परित्याग नहीं कर रहे थे कि उनमें वैशाली-विजय की क्षमता नहीं थी। वे तो वैशाली के जानपदों में रहकर अपना अमूल्य जीवन नष्ट करना नहीं चाहते थे।

अब, सहसा, उनका अन्तर लिच्छवि-गण के लिए आकुल हो उठा। लिच्छवि-गण का उद्धार करने के लिए यदि उनको अपना जीवन भी विसर्जन करना पड़ता तो वे प्रस्तुत थे। उन्होंने लिच्छवि-वंश में जन्म लिया था। वृज्जिभूमि का अन्नजल ग्रहण किया था उन्होंने। वैशाली की मृत्तिका से विनिर्मित थी उनकी देह। वे वृज्जिसंघ के संधिविग्रह-महामात्य थे। आर्य पद्मकीर्ति के एकमात्र सुपुत्र। इन अनेक ऋणों से उऋण होना उनके लिए अनिवार्य था। कर्त्तव्यपालन में इतस्ततः करना उनके लिए उचित नहीं था।

रत्नकीर्ति ने, एक निश्चय पर पहुँच कर, पुलोमजा से कह दिया : "पुलोमे ! यात्रा का समारम्भ संरुद्ध कर दे। मैं वैशाली का त्याग नहीं करूँगा।"

पुलोमजा, हर्ष से पुलकायमान होकर, पिता के कण्ठ ले लिपट गई। सुनक्खत तथा वर्षकार ब्राह्मण, एक स्वर से, आर्य रत्नकीर्ति की परोपकार-परायणता का गुणगान करने लगे।

: २ :

वैशाली का वास्तुहृदय। उत्तर दिशा को दक्षिण दिशा से, तथा पूर्व को पश्चिम से परिचित कराने वाले राजपथ-द्वय का शृङ्गाटक जनसंकुल है। अपने अपने उद्दिष्ट स्थान की ओर द्रुतपद जाने वाले भी, आज अनायास ही, इस स्थल पर रुक जाते हैं। आदित्यनारायण के आतप-स्पर्श का

आस्वादन करने के लिए। शिशिर के अंतराष्टक का अल्पप्राण आतप, मध्याह्न के समय भी, चतुष्पथ के परे पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं हो रहा। मानो, राजपथ-द्वय के पार्श्व-प्रान्तों पर प्रस्थापित प्रासादमाला के उत्तुङ्ग हर्म्यशिखर, अपने हिमविजडित गात्रपुञ्ज को गतायु होने से बचाने के लिए, दिवाकर की दीप्ति का अधिकांश अपने अङ्क में अवरुद्ध करके खड़े हों।

वास्तुहृदय में चतुर्दिक चमत्कृत है वैशाली के श्रेष्ठतम स्थापत्य का सार। आग्नेयकोण में, आर्य पद्मकीर्ति का प्रख्यात प्रासाद। नैऋत्य-कोण में कीर्तिमयी कौतुकशाला। वायव्य-कोण में वृज्जिसंघ का सुप्रसिद्ध संस्थागार। ईशान-कोण में आम्रपाली का अभ्रभेदी गणिकालय। शृङ्गाटक पर संरूढ़ वैशाली-वासी, वास्तुशिल्प के इस विलक्षण वैभव की चिर-पुरातन तथा नित्यनूतन गुणगाथा गा रहे हैं।

अकस्मात्, जनसमवाय की दृष्टि दक्षिण दिशा की ओर आकृष्ट हो गई। उस ओर से आते हुए शुभ्रवर्ण सैन्धव-चतुष्टय से पुरस्सरित पुष्य-रथ का किङ्किण-स्वन, द्रुत से मन्द्र लय की ओर अवरोह कर रहा था। मन्दवाही वातास में भी, पृष्ठ की ओर प्रधावित रथपताकाएँ, शिथिल-सी होकर सिमटने लगी थीं।

जनसमवाय को सावधान करते हुए सारथि ने, रथ को आर्य पद्म-कीर्ति के प्रासाद तक पहुँचाकर, रश्मिपरिग्रह के प्रक्षीण प्रकर्ष द्वारा सैन्धव संरुद्ध कर लिए।

आर्य सुनक्खत, एक वाह्लीक पर आरूढ होकर, रथ का अनुसरण कर रहे थे। रथ के रुकते ही, उन्होंने भी अपने अश्व से अवरोहण किया। प्रासाद-द्वार पर प्रस्तुत प्रहरी ने, अग्रसर होकर, वाह्लीक की वल्गा सँभाल ली। तब, प्रहरी अथवा जनसमवाय की ओर एक वार भी दृष्टिपात किए विना, सुनक्खत रथ के पार्श्व में जा खड़े हुए और रथाङ्ग पर उपासीन रमणी-रत्न को सम्बोधित करके बोले : "अनङ्ग-रेखे ! अवरोहण करो।"

रमणी, कोकिल-कण्ठ से, कूक उठी :

"जैसी आर्य की आज्ञा।"

जनसमवाय, नेत्र विस्फारित करके, मन्त्रमुग्ध-सा नवागन्तुका को निहार रहा था। किन्तु नवागन्तुका ने, एक आँख उठाकर भी, जनसमवाय की ओर नहीं देखा। उसकी दृष्टि, प्रासाद के चित्र-विचित्र तोरण-द्वार पर निबद्ध थी। सुनक्खत, एक ओर खड़े, रथ से अवरोहण के लिए उद्यत रमणी के आलक्तक-रञ्जित चरण-द्वय को अपनी निर्निमेष नेत्र-द्युति से चर्चित कर रहे थे।

शृङ्गाटक का कोना-कोना, नूपुर के रणन तथा रशना के शिञ्जन से शब्दायमान हो उठा। प्रमदा ने पृथ्वी पर पदन्यास किया था। जैसे अलकापुरी की अप्सरा अवनितल पर अवतरित हुई हो। वैशालिकों ने, नारीदेह का वैसा सुवर्ण-वर्ण तथा वेषभूषा का वैसा विलक्षण विन्यास, अनेक काल से अपने नगर में नहीं देखा था। जनसमवाय, एक क्षण में, समझ गया कि नवागता नारी वैशाली की नागरिका नहीं है।

प्रहरी द्वारा प्रदर्शित-मार्ग तथा प्रमदा-पुरस्सरित सुनक्खत ने प्रासाद-द्वार में प्रवेश किया। प्रासाद के अपावृत कपाट पुनरेण अनपावृत हो हो गए। शृङ्गाटक पर से प्रसारित अनेक दृष्टिपात, सहसा, प्रासाद की प्राकार से परास्त होकर, प्रत्यावर्तित होने लगे।

द्वारदेश का अतिक्रमण करके, सुनक्खत ने, सामने की ओर, अङ्गुलि उठाते हुए कहा :

"अनङ्गरेखे! अवलोकन करो! निर्निमेष नयनों से अवलोकन करो! आर्यावर्त में अप्रतिम है यह प्रासाद।"

अनङ्गरेखा ने प्राङ्गण के पार खड़े प्रासाद की ओर देखा। एक अत्यन्त साधारण आवास को किसी ने, भ्रांतिवश, प्रासाद कहकर पुकारा था। कौशाम्बी के कोने-कोने में थे वैसे आवास। अनङ्गरेखा के लिए, अपने अधरोष्ठ पर स्फुरित व्यङ्गस्मिति का संवरण करना कठिन हो गया।

किन्तु, सुनक्खत सर्वथा समाधिस्थ-से होकर कह रहे थे : "इस सप्त-भूमि प्रासाद के निर्माण-निमित्त, श्रावस्ती तथा शाकल के सुविख्यात स्थपति वैशाली में वेतनभोगी बनकर आए थे। कौशाम्बी तथा काम्पिल्य के कुशल कारुक-वृन्द भी। अनेक वर्ष के अनवरत परिश्रम तथा अपरिमेय

धनराशि के अविकल व्यय से विनिर्मित हुआ था यह भव्य प्रासाद। इसकी गुणगाथा, दावाग्नि के समान, समस्त आर्यावर्त में व्याप्त हो गई थी। वृज्जि महाजनपद के नैगम तथा जानपद, दल-पर-दल, मास-प्रतिमास, इसका दर्शनलाभ करने आए थे।"

अनङ्गरेखा ने प्रश्न किया : "आर्य ! इस प्रासाद के महाभाग निर्माता का नाम क्या है ?"

"आर्य पद्मकीर्ति ! वृज्जिसंघ के इतिहास में अद्वितीय पुरुष-सिंह, आर्य पद्मकीर्ति !'

"वे कौन हैं, आर्य !"

"हैं नहीं, अनङ्गरेखे ! वे थे।"

"कौन थे ?"

"वृज्जिसंघ के भूतपूर्व समाहर्ता-महामात्य।"

अनङ्गरेखा को साथ लेकर, सुनक्खत ने प्राङ्गण में पदार्पण किया। प्राङ्गण के एक प्रान्त में, वृक्ष, विटप, गुल्म एवं लता-वितान से अलंकृत, उद्यान था। दूसरे प्रान्त में स्फटिक-शिला-समुच्चय से सुबद्ध, नीलाभ जलराशि से आकण्ठ आपूर्ण, पुष्करिणी।

सुनक्खत कहने लगे : "अनङ्गरेखे ! मैंने समस्त आर्यावर्त का पर्यटन किया है। मैंने सम्राटों के पुष्पवाट देखे हैं। सामन्तों तथा श्रेष्ठियों के उद्यान भी। किन्तु ऐसी पुष्करिणी अन्यत्र नहीं देखी। इस पुष्करिणी का निर्माण करने के लिए, पारसीक देश के आपूर्त-आचार्य वैशाली में पधारे थे।"

अनङ्गरेखा ने परिहास करने के लिए पूछा : "आर्य ! क्या आर्य पद्मकीर्ति कुबेर के अवतार थे ?"

सुनक्खत ने उत्तर दिया : "अवतार की बात मैं नहीं जानता। मानता भी नहीं मैं अवतारवाद। किन्तु आर्य पद्मकीर्ति को मैंने अपनी आँखों से देखा था। उनका जन्म एक साधारण लिच्छवि परिवार में ही हुआ था। किन्तु वे, किशोरावस्था में ही, शिक्षाग्रहण के उद्देश्य से गान्धार-नगरी, तक्षशिला, में चले गए। वहाँ उन्होंने वार्त्ता एवं दण्डनीति के विश्वविख्यात आचार्य, आर्य विरूपाक्ष, का शिष्यत्व स्वीकार किया।

और जब वे वैशाली में प्रत्यागत हुए तब उनकी अप्रतिम प्रतिभा से वृज्जिसंघ का दिग्दिगन्त आलोकित हो उठा।"

अनङ्गरेखा के अधरोष्ठ स्मित से स्फीत हो गए। फिर एक चमत्कृत चितवन से सुनक्खत की ओर देखती हुई वह बोली : "आर्य पद्मकीर्ति, अवश्य ही, मन्त्रविद्या के ज्ञाता होंगे। इसीलिए उन्होंने मयदानव का मानमर्दन कर दिया।"

सुनक्खत ने, जुगुप्सा प्रगट करते हुए, कहा : "नहीं, अनङ्गरेखे ! नहीं। आर्य पद्मकीर्ति तो मन्त्रविद्या का उपहास करने वालों में अग्रगण्य थे। किन्तु उनकी समुदय-स्थापना तथा आय-व्यय-गणना मन्त्रविद्या से भी महिमामयी थी। उनके प्रयत्न से वृज्जिसंघ के आय-शरीर में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। वैशाली के कोष्ठागार तथा कुप्यनिलय, दुर्ग, राष्ट्र, वन, व्रज, खनि एवं वणिक्पथ के आदेय से आकण्ठ आपूरित हो गए।"

"धृष्ठता क्षमा करें, आर्य ! क्या, आर्य पद्मकीर्ति के प्रादुर्भाव से पूर्व, वैशाली के लिच्छवि-गण सर्वथा मूढ़ थे ?"

"महामूढ़ थे, अनंगरेखे ! एक ही दृष्टान्त से मेरे कथन की पुष्टि हो जाएगी। वृज्जि महाजनपद के कृषीवल, चिरकाल से, अपने क्षेत्रों में क्षुमा का प्रभूत प्रवापन करते आए हैं। किन्तु आर्य पद्मकीर्ति के पूर्व, किसी लिच्छवि ने यह नहीं सोचा कि तैलच्यवन तथा तृणसम्भार के अतिरिक्त क्षुमा का कोई अन्य उपयोग भी सम्भव है। श्रावस्ती तथा साकेत के सार्थवाह, प्रतिवर्ष वैशाली में आकर, कोसलीय तन्तुवाय-वृन्द द्वारा विनिर्मित क्षौम-वस्त्र का विपुल व्यवसाय करते थे। वृज्जि महाजनपद की सुवर्ण-सम्पदा विदेश की ओर बही जा रही थी। आर्य पद्मकीर्ति के प्रयास से ही, सर्वप्रथम, वृज्जिभूमि का क्षुमातृण क्षौमवस्त्र में परिणत होने लगा। क्षौमवस्त्र का आयात तो रुक ही गया। वैशाली के सार्थवाह, आर्यावर्त के अवान्तर नगरों में क्षौमवस्त्र के स्तूप सजाने लगे। सुवर्ण-प्रवाह विपरीत दिशा में बह चला।"

"तब तो, आर्य ! वैशाली के लिच्छवि गण आर्य पद्मकीर्ति की पूजा करते होंगे।"

"लिच्छवि-गण से तुम परिचित नहीं हो, अनङ्गरेखे ! रणप्राङ्गण

में आत्महत्या करने वाले अतिरथी के अतिरिक्त लिच्छवि-गण किसी की पूजा करना नहीं जानते। आर्य पद्मकीर्ति को वृज्जिसंघ का समाहर्ता-महामात्य नियुक्त करने की प्रतिज्ञा जब परिषद में प्रज्ञापित की गई, तो अनेक लिच्छवि-वृद्धों ने, उसका विरोध किया था।"

"ऐसा क्यों, आर्य!"

"आर्य पद्मकीर्ति विदेश-भ्रमण के रसिक थे। आर्यावर्त में कोई ऐसा राजप्रासाद, सामन्त-सदन अथवा श्रेष्ठीवेश्म नहीं है जिसका आतिथ्य उन्होंने उपभोग नहीं किया। फलस्वरूप, उनके आचार-विचार में अनेक परिवर्तन हो गए थे। पुरातन परम्परा के अन्ध अनुयायी लिच्छवि-गण के लिए यह असहनीय बात थी। लिच्छवि-गण सशंक हो उठे। वैशाली में अपवाद उठने लगा कि आर्य पद्मकीर्ति का खान-पान, वेष-भूषा, आचार-विचार सब म्लेच्छानुरूप हैं।"

अपनी चिबुक को, तर्जनी से ताड़ित करती हुई, अनङ्गरेखा ने कहा : "अद्भुत है, आर्य! आश्चर्य है, आर्य! क्या वैशाली के लिच्छवि, अपने से अतिरिक्त, आर्यावर्त के समस्त राष्ट्रों को म्लेच्छ मानते हैं?"

सुनक्खत ने उत्तर दिया : "नहीं, अनङ्गरेखे! ऐसा नहीं है। आर्यावर्त के पौरजानपद को तो लिच्छवि-गण आर्य ही मानते हैं। किन्तु आर्य पद्मकीर्ति, तक्षशिला में शिक्षोपार्जन समाप्त करके, कई वर्ष तक पारसीक साम्राज्य में रहे थे। यवनभूमि में भी। उनको उन अनार्य देशों के आचार-विचार में अनेक बातें श्रेयस्कर लगीं। अपूर्व साहस-शील थे आर्य पद्मकीर्ति। वैशाली में प्रत्यागत होकर वे लिच्छवि-गण के अनेक विधि-निषेध की अवहेलना करने लगे। इसीलिए लिच्छवि-गण उन पर विक्षुब्ध हो गए। किन्तु लिच्छवि-मानस के किसी कक्ष में, उनके लिए, श्रद्धा का उद्रेक भी हुआ। उनका परामर्श ग्रहण करके, वैशाली के अनेक कुलपुत्र, विद्योपार्जन के निमित्त, तक्षशिला, शाकल, मथुरा तथा काम्पिल्य तक जाने लगे।"

"तब तो, आर्य! वैशाली में प्रतिभा का प्राचुर्य हो गया होगा?"

"वैशाली मन्दभाग्य है, अनङ्गरेखे! विदेश से लौट कर किसी अन्य लिच्छवि ने, आर्य पद्मकीर्ति के समान, यशलाभ नहीं किया। किन्तु

आचार-विचार की दृष्टि से, अनेक लिच्छवि अब वृज्जि महाजनपद के कूपमण्डूक नहीं रहे। युगयुग से, आर्यावर्त के एक अचंल में, एकाकी पड़ी वृज्जिभूमि, आज पश्चिम तथा दक्षिण की ओर से प्रवाहित विचार-वैभव से वञ्चित नहीं है।"

प्राङ्गण को पार करके, सुनक्खत और अनङ्गरेखा प्रासाद के द्वार पर जा पहुँचे। वृद्ध दौवारिक ने दोनों का अभिवादन किया। तब सुनक्खत ने दौवारिक से पूछा: "भणे! आर्य रत्नकीर्ति इस समय कहा हैं?"

दौवारिक ने उत्तर दिया: "देखना होगा, आर्य!"

"और कुमारी पुलोमजा?"

"अन्तःपुर की परिचारिका से पूछना होगा, आर्य!"

"तो जाओ। कुमारी पुलोमजा को सूचना दो कि आर्य सुनक्खत, कौशाम्बी से लौट आए हैं और उनसे साक्षात् करना चाहते हैं!"

दौवारिक ने एक बार अनङ्गरेखा को आपादमस्तक निहारा। जैसे वह जानना चाहता हो कि सुनक्खत के साथ आने वाली अङ्गना के विषय में पुलोमजा से क्या कहे। वृद्ध को विलम्ब करते देख कर सुनक्खत विक्षुब्ध हो गए और बोले: "दौवारिक! शीघ्र जाओ! तुम देखते नहीं कि हम दूर देश से आए हैं।"

दौवारिक ने हतप्रभ हो कर कहा: "जैसी आज्ञा, आर्य! इसी क्षण जाता हूँ। आप कुछ क्षण तक, अवग्रहणी की अवस्थानशाला में उपासीन हो कर, भर्तृदारिका के आदेश की अपेक्षा कीजिए।"

अनङ्गरेखा ने, विस्मित हो कर, पूछ लिया: "भर्तृदारिका!! क्या कुमारी पुलोमजा किसी राजवंश की दुहिता हैं?"

"नहीं, अनङ्गरेखे! नहीं। कुमारी पुलोमजा आर्य पद्मकीर्ति की पौत्री तथा आर्य रत्नकीर्ति की सुपुत्री हैं। लिच्छवि-वंश की कुलदुहिता। किन्तु प्रासाद के परिचारक-परिचारिकाएँ उनको भर्तृदारिका कह कर ही सम्बोधित करते हैं। आर्य रत्नकीर्ति का आदेश है कि उनके लिए यही सम्बोधन उपयुक्त है।"

दौवारिक ने, सशंक दृष्टि से अनङ्गरेखा की ओर देख कर, कहा "हमारे प्रभु की तुलना में आर्यावर्त के समस्त राजा तुच्छ हैं।"

अनङ्गरेखा हँसने लगी। किन्तु सुनक्खत ने क्रुद्ध हो कर दौवारिक की भर्त्सना की : "दौवारिक ! तुम बहुत वाचाल हो। और दीर्घसूत्री भी। मैं कुमारी पुलोमजा से कहूँगा......

दौवारिक ने भयभीत होकर कहा : "आप मुझ अकिञ्चन पर कोप मत कीजिए, आर्य ! भर्तृदारिका मेरे प्राण ले लेंगी। मैं इसी क्षण जाता हूँ।"

वृद्ध चला गया। सुनक्खत और अनङ्गरेखा ने अवस्थानशाला में प्रवेश किया। शाला का अवनितल, आविक-चर्म से आस्तीर्ण था। अभ्यागतों के उपासीन होने के लिए बहुविध मञ्च, पीठिका तथा आसन्दिकाएँ पड़ी थीं। अनङ्गरेखा की दृष्टि शाला की एक भित्ति पर, आविष्ट हो गई। वहाँ, धर्मचक्र-प्रवर्तन की मुद्रा में महाश्रमण गौतम का चित्र आलिखित था। तब अनङ्गरेखा ने सुनक्खत को सम्बोधित किया : "आर्य पद्मकीर्ति क्या भगवान के उपासक थे ?"

सुनक्खत ने, एक आसन्दिका पर आसीन होकर, उत्तर दिया : "वह एक अत्यन्त रोचक उपाख्यान है, अनङ्गरेखे ! शाक्यश्रमण जब, प्रथम बार, वैशाली में आए तो अन्य लोगों के मुख से उनके शिक्षापद सुनकर, आर्य पद्मकीर्ति ने जुगुप्सा से अधर कुञ्चित कर लिये। वे बोले : 'सर्वथा विक्षिप्त व्यक्ति के अतिरिक्त ऐसा प्रलाप भला कौन कर सकता है ? जीवन में पद-पद पर उपलब्ध उद्दाम यौवन, ऐहिक ऐश्वर्य तथा अनन्त उपभोग का ऐसा हास्यास्पद तिरस्कार ! मैं नहीं चाहता कि वैशाली के लिच्छवि, एक पलायनप्रिय, निष्क्रियावादी, पिंडपातिक, पांसुकूलिक पुरुषाधम द्वारा प्रवञ्चित हों। भिक्षावृति करके उदरपूर्ति करने वालों के दल-के-दल देख चुका हूँ मैं।' किन्तु एक दिन वे, अपने एक अभिन्न मित्र के आग्रह से, शाक्यश्रमण का धर्मोपदेश श्रवण करने चले गए। लौटकर आए तो वे स्वयं शाक्यश्रमण द्वारा प्रवञ्चित हो चुके थे।"

अनङ्गरेखा, सुनक्खत की ओर देखकर, हँसने लगी। बोली कुछ नहीं। उसकी हंसी से उत्कण्ठित सुनक्खत ने पूछा : "तुम इस प्रकार हँसने क्यों लगीं, अनङ्गरेखे !"

अनङ्गरेखा ने उत्तर दिया : "भगवान के प्रति आपकी उत्कट अवज्ञा

देखकर। प्रवञ्चना के अतिरिक्त क्या आपने उनमें अन्य कुछ नहीं देखा ?"

"तो क्या तुम भी......"

"हाँ, मैं धर्मसंघ की उपासिका हूँ।"

"तब तो मुझसे भूल हो गई, अनङ्गरेखे! मुझे उचित था कि, तुम्हारी उपस्थिति में, मैं शाक्यश्रमण के प्रति श्रद्धा से बोलता।"

"किन्तु आपके हृदय में जब भगवान के प्रति श्रद्धा नहीं है तो मौखिक शिष्टाचार की क्या आवश्यकता है, आर्य!"

"शिष्टाचार की आवश्यकता है, अनङ्गरेखे! मैं शाक्यश्रमण से कभी भयभीत नहीं हुआ। किन्तु धर्मसंघ के उपासक-उपासिकाओं से मुझे बहुत भय लगता है। यदि पुनोमजा के सम्मुख मैं, एक बार भी, उस श्रमण को भगवान कहकर न पुकारूँ तो वह मेरे प्राण ले ले।"

"आप क्यों उन भगवान को सम्यक्-सम्बुद्ध नहीं मानते ?"

"उसको सम्यक्-सम्बुद्ध मानकर ही तो मैंने काषायवस्त्र से अपना यह कमनीय कलेवर कलुषित किया था।"

अनङ्गरेखा अवाक् रह गई। फिर वह, विस्मयभरी वाणी में, बोली: "आप धर्मसंघ में प्रव्रजित हुए थे!! आप, आर्य!!!"

सुनक्खत ने शान्त स्वर में उत्तर दिया: "हाँ, मैं। मैं तीन वर्ष तक, पिण्डपात पाने के लिए, घर-घर घूमा। तीन वर्ष तक मैंने अपनी इस कोमल काया को घोर कष्ट दिया। तीन वर्ष तक मैंने रमणी के साथ एकान्तवास नहीं किया।"

"धर्मसंघ में प्रव्रजित होकर क्या कोई गृहस्थ-आश्रम में प्रत्यागत होता है, आर्य!"

"लोकभयभीरु व्यक्ति के लिए प्रत्यागमन सुगम नहीं। मैं, एक क्षण में, काषायवस्त्र उतार कर चला आया।"

"किन्तु हुआ क्या था, आर्य! आप धर्मसंघ से निराश क्यों हो गए ?"

"मैंने सुना था कि शाक्यश्रमण के पास अनेक ऋद्धि-सिद्धि हैं। मैंने तीन वर्ष तक उसका अनुगमन किया। अनेक बार, उसके चरणों में, अपना यह महामहिम मस्तक न्यस्त करके, मैंने आर्तवाणी में अभ्यर्थना

की कि मुझको सुवर्ण की सृष्टि करना सिखला दो। किन्तु वह भिक्षुक मुझसे सदा यही कहता रहा कि ब्रह्मचर्य का चरण करो, शील की साधना करो, प्रज्ञा को प्रजागृत करो। मैं निराश होकर चला आया।"

"आपने उनके आदेश का पालन क्यों नहीं किया, आर्य!"

"उस समय मैं तरुण था, अनङ्गरेखे! दर्शनाभिराम तरुण। वैशाली की जिस वीथि में मैं गमनागमन करता था, उसी के वातायनाओं पर उदासीन वामाओं के अपाङ्गदर्शन मेरा वक्ष विक्षत कर देते थे। किन्तु मेरे पास सम्बल नहीं था कि किसी चन्द्रवदनी, मृगनयनी की चरणसेवा प्राप्त करके, अपना जीवन सुख से व्यतीत करता। वह सम्बल पाने के लिए ही मैं उस श्रमण के समीप गया था।"

"आर्य! अब तो आप तरुण नहीं रहे। अब आप क्यों नहीं धर्म-संघ की शरण में जाते।"

"मेरे केश अवश्य श्वेत हो गए, अनङ्गरेखे, किन्तु मेरा हृदय अब भी उद्दाम यौवन-वासना से उद्वेलित है। उस वासना का शमन हुए बिना.........

दौवारिक ने आकर निवेदन किया: "आर्य! भर्तृदारिका शयन कर रही हैं!"

अनङ्गरेखा ने, चकित होकर, पूछा: "शयन कर रही हैं!! मध्याह्न के समय!!!"

दौवारिक ने, क्षुण्ण होकर, अनङ्गरेखा की ओर देखा। फिर वह सुनक्खत से बोला: "आर्य! शिशिरकाल में भर्तृदारिका की दिनचर्या विलम्ब से प्रारम्भ होती है।"

सुनक्खत ने पूछा: "और आर्य रत्नकीर्ति कहाँ हैं?"

दौवारिक ने उत्तर दिया: "वे अभी अभी, शय्यात्याग करके, आतप का आनन्द लेने के लिए, हर्म्यतल पर गए हैं।"

"आर्य रत्नकीर्ति के निकट जाकर निवेदन करो कि आर्य सुनक्खत उनके दर्शन करना चाहते हैं।"

"जैसी आज्ञा, आर्य!"

दौवारिक चला गया। अनङ्गरेखा ने मानो अपने-आपसे बात करते

हुए कहा : "जिस प्रासाद के परिचारक ऐसे परम तेजस्वी हों, उस प्रासाद के प्रभु की कौन कहे !"

सुनक्खत बोले : "पुलोमजा को तो तुम जानती हो, अनङ्गरेखे ! और आर्य रत्नकीर्ति......

"दो दिन का परिचय है, आर्य ! सो भी एक शरणागता तथा शरणदायिनी का परिचय ।"

"मैं कह रहा था कि दौवारिक के आचरण से आर्य रत्नकीर्ति के विषय में कोई अनुमान करना असंगत होगा । दौवारिक पुराना परिचारक है । उसने आर्य पद्मकीर्ति का युग देखा है ।"

"तो क्या आर्य पद्मकीर्ति......

"स्वभाव के अत्यन्त क्रोधी थे । बात-बात में चपेटाघात कर बैठते थे । आर्य रत्नकीर्ति तथा पुलोमजा ने भी वैसा ही स्वभाव दायाद में पाया है । किन्तु वे निम्नकोटि के लोगों पर ही कोप करते हैं । तुमको सशंक होने की आवश्यकता नहीं, अनङ्गरेखे !"

अनङ्गरेखा ने कोई उत्तर नहीं दिया । उसका अन्तर सत्यशः सशङ्क हो उठा था । कुछ क्षण तक, वे दोनों मौन बैठे रहे । तब दौवारिक ने लौटकर निवेदन किया : "आर्य रत्नकीर्ति आपको हर्म्यतल पर बुला रहे हैं, आर्य !"

सुनक्खत ने आसन से उत्थान किया । किन्तु अनङ्गरेखा यथावत् उपासीन रही । तब सुनक्खत ने कहा : "आओ, अनंगरेखे ! आओ हर्म्यतल पर आर्य रत्नकीर्ति के पास चलें ।"

अनङ्गरेखा ने उपासीन रह कर ही पूछा : "क्या मुझे भी आपके साथ जाना होगा, आर्य !"

"नहीं तो मैं गलित-पलित वृद्ध वहाँ जाकर क्या करूँगा ? तुम्हें लेकर ही तो आर्य रत्नकीर्ति के पास आया हूँ । मेरा तो इस समय कोई प्रयोजन नहीं था ।"

अनङ्गरेखा ने मौन रहकर सुनक्खत का अनुसरण किया ।

दौवारिक द्वारा दर्शित मार्ग से कई कक्षागार और परिवेण पार करके वे दोनों प्रासाद के अन्तःपुर में जा पहुँचे । फिर उन्होंने सोपान-

श्रेणी का उत्क्रमण करके, हर्म्यतल पर आरोहण किया। वहाँ, सूर्यातप में विस्तीर्ण एक तल्प पर, उपधान का आश्रय ले कर, आर्य रत्नकीर्ति अर्धशायमान थे। सुनक्खत को देख कर वे उपासीन हो गए।

अनङ्गरेखा ने रत्नकीर्ति का अभिवादन किया। नवागता नारी को, एक बार नख से शिख तक देख कर, रत्नकीर्ति ने सुनक्खत को सम्बोधित किया : "इस समय तुम किस काम से आ गए, सुनक्खत !"

सुनक्खत ने उत्तर दिया : "कौशाम्बी से आ रहा हूँ, आर्य ! पुलोमजा ने मुझको वहाँ प्रेषित किया था। इसको लाने के लिए।"

"यह कौन है ?"

"कौशाम्बी की नर्तकी।"

"मैं समझ गया। पुलोमजा ने मुझे इसके आसन्न आगमन का समाचार दिया था।"

रत्नकीर्ति ने दौवारिक को आदेश दिया कि लौटते समय वह पुलोमजा को हर्म्यतल पर उपस्थित होने के लिए कहता जाए। दौवारिक चला गया। सुनक्खत और अनङ्गरेखा, रत्नकीर्ति के अनुरोध से, एक ओर उपासीन हो गए।

तब अनङ्गरेखा ने अपना समस्त साहस संचित करके रत्नकीर्ति से पूछा : "आर्य ! आपका शरीर क्या कुछ क्लान्त है ?"

रत्नकीर्ति ने कातर वाणी में उत्तर दिया : "वैशाली में रहकर शरीर क्लान्त हो ही जाता है। मन भी। यहाँ के लिच्छवि-गण न जाने क्यों कर स्वस्थ और सुप्रसन्न रहते हैं। जिसको देखो वही प्रत्यूष के पूर्व शय्यात्याग करके महावन की ओर जाता दिखाई देता है। शिशिर-काल में भी ये हतभागे पुष्करिणी के हिमशीतल जल में स्नान करते हैं। इनको न संवाहक की सहायता अपेक्षित है, न स्नापक की सुश्रूषा। प्रसाधक का तो इनके हीन जीवनयापन में कोई स्थान ही नहीं। ये तो केवल मल्लयुद्ध और शस्त्रसम्पात सीखे हैं। सूर्योदय के समय, खड्ग एवं खेटक की खटाखट के अतिरिक्त अन्य शब्द ही नहीं सुन पड़ता। चतुर्दिक, दिन-प्रति-दिन, मास-प्रति-मास, वर्ष-प्रति-वर्ष।"

अनङ्गरेखा के मुख से निकल गया : "आर्य ! आप भी तो लिच्छवि

हैं ?"

रत्नकीर्ति ने, खिन्न हो कर, कहा : "हाँ, जन्म तो मेरा भी इस जानपदकुल में ही हुआ था। किन्तु किशोरावस्था से लेकर अद्यपर्यन्त मेरा अधिकांश समय आर्यावर्त के महानगरों में व्यतीत हुआ है। वहाँ के महाभाग नागरिक, यामिनी के अन्तिम याम तक, उत्सव, समाज, आपान, और अभिसार में रत रहे बिना, शयनकक्ष की ओर एक पद भी अग्रसर करना अस्वीकार करते हैं। मध्याह्न के पूर्व शय्यात्याग करना उनके लिए ग्राम्यजीवन का लक्षण है। वे, संवाहक द्वारा अङ्गमर्दन करवाए बिना, तल्प से उत्थान नहीं करते। भिषग्राज द्वारा प्रदत्त बहुमूल्य भैषज्य का सेवन करके ही वे पुरीषोत्सर्ग के लिए जाते हैं। स्नान के लिए जाते हैं तो अनेक प्रकार के उपलेप, स्नानचूर्ण तथा फेनक के साथ। ऋतु के अनुकूल सुगन्धित जल के धारायन्त्रों से उनके गात्रपुंज धौत होते हैं। स्नानागार में यदि सुप्रवीण स्नापक और चतुर चेटिकाएँ उपस्थित न रहें तो उनका स्नान नहीं हो पाता। स्नानोपरान्त, प्रवीण प्रसाधक उनके शरीरों को विविध गन्धानुलेप तथा वस्त्रालंकार से सुसज्जित करते हैं, उनका केशविन्यास करते हैं। वह है मानवोचित जीवन। यहाँ के पशुव्रज की कौन कहे !"

रत्नकीर्ति के मुख से एक दीर्घ निश्वास निकल गया। अनङ्गरेखा के अन्तर में, उनकी दयनीय दशा देख कर, हास्य का विस्फोट हो रहा था। किन्तु अपने मुख पर सौहार्द एवं संवेदना धारण करती हुई वह बोली : "आप वैभव-सम्पन्न एवं समर्थ हैं, आर्य ! महानगरों के समस्त साधन आपको वैशाली में भी प्राप्त हो सकते हैं।"

रत्नकीर्ति ने, कृपण होकर, कहा : "वैभव से क्या होता है ? इस नगर के नाम के जनपद में कुछ उपलब्ध हो तभी तो वैभव चरितार्थ हो। अनेक बार खोज करने पर एक संवाहक मिला। उसने, प्रथम बार मेरा अंग स्पर्श करते ही मुझे आपादमस्तक पीड़ा से परिप्लावित कर दिया। स्नापक तथा प्रसाधक क्या जन्तु होता है, यह वैशाली में किसी ने, आज तक, सुना ही नहीं। परिचारकों ने, यहाँ की पण्यवीथियों की परिक्रमा करके, स्नान एवं प्रसाधन के जो द्रव्य प्रस्तुत किए उनको प्रासाद

के बाहर परिक्षिप्त करवाना पड़ा।"

"आप किसी को, कौशाम्बी अथवा वाराणसी में प्रेषित करके, योग्य परिचारक तथा उपयुक्त द्रव्य मँगवा सकते हैं।"

"यही सोच रहा हूँ। तुम कौशाम्बी के कुछ प्रसिद्ध पण्यविक्रेताओं के नाम मुझे बतलाना। वेश्या-वेश्मों के नाम भी, जहाँ से प्रवीण प्रसाधक इत्यादि वेतन पाकर वैशाली में आ जाएँ। अन्यथा मुझे वैशाली का परित्याग करना पड़ेगा।"

अट्टालिका से निष्क्रमण करती हुई पुलोमजा ने प्रतिवाद किया : "फिर वही आलाप, पिताजी! वैशाली का उद्धार किए बिना आप वैशाली-त्याग का विचार भी नहीं कर सकते।"

सुनक्खत ने कहा : "और एक बार इस पिशाचपुरी का परिष्कार हो गया, तो आपके लिए इस स्थान का परित्याग करना प्रयोजनीय नहीं रह जाएगा।"

पुलोमजा ने सुनक्खत को सम्बोधित किया : "आर्य! आप कौशाम्बी में आ गए? शाक्यदुहिता कहाँ है?"

उत्तर में अनङ्गरेखा उठ कर खड़ी हो गई और विनीत वाणी में बोली : "भर्तृदारिके! शाक्यदुहिता आपकी सेवा के लिए उपस्थित है।"

पुलोमजा ने विस्मयपूर्ण दृष्टि से अनङ्गरेखा को देखा। उसके स्मृति-पट पर, एक क्षण के लिए, अन्तर्दुर्ग के द्वारदेश पर अर्धनग्नावस्था में अवरुद्ध शाक्यदुहिता का चित्र उभर आया। उसको विश्वास करना कठिन हो गया कि उसके सम्मुख खड़ी यह अभिराम अप्सरा ही उस दिन की प्राणहीन पुत्तलिका है।

पुलोमजा ने, अनंगरेखा का स्कन्ध पकड़ कर, उसकी देह को परावृत्त कर दिया। जैसे वह प्रदर्शिनी में विक्रयार्थ आए हुए पशु का परीक्षण कर रही हो। तब वह, सन्तोष कर निश्वास छोड़ती हुई, बोली : "नख से शिख तक सर्वांग-सम्पूर्ण है, आर्य! इसकी वेषभूषा में भी अभिरुचि अङ्कित है। किन्तु शिल्प की योग्यता?"

सुनक्खत ने कहा : "उसकी परीक्षा भी कर लेना, पुलोमजे! यह नर्तन, गायन, नाट्य तथा अभिनय में पूर्णरूपेण प्रवीण है। कौशाम्बी

की सर्वश्रेष्ठ गणिका के शिष्यत्व में रह कर इसने कुलवधू-सुलभ संकोच की बाधा को भी त्याग दिया है। अब तुम, तुरन्त, इसकी सहायता से वैशाली-विजय का समारम्भ करो।"

पुलोमजा ने, एक वार पुनः, निर्निमेष दृष्टि से अनंगरेखा को निहारा। मानो वह आश्वस्त होना चाहती हो कि सुनक्खत ने सत्य कहा है। अब की वार, अनङ्गरेखा ने भी अपलक नयनों से पुलोमजा की ओर देखा। मानो विश्वास करना चाहती हो कि अतिशयन से शिथिलित-शरीरा, अस्त-व्यस्त-वस्त्राभृता, मुक्तकुन्तला यह युवती वही लिच्छविदुहिता है जिसने, एक दिन, वृज्जिसंघ की राजकुमारी से, शाक्यकुल के संहार को लेकर, विवाद किया था; जिसने एक अज्ञातकुलशीला भिखारिन को भगिनी कह कर सम्बोधित किया था; जिसने स्नेह के आवेश में अपना महार्घ एवं सर्वगन्ध-सुवासित दुकूल, एक अर्धनग्न नारी की देह पर डाल दिया था; जिसने......

अनङ्गरेखा से एक भी शब्द कहे बिना, पुलोमजा हर्म्यतल से चली गई। अनङ्गरेखा, जैसे बलिदान के लिए क्रीत अजा हो, जिसको यज्ञ-मण्डप तक लाने के लिए पुलोमजा को प्रभूत परिश्रम करना पड़ा था।

पंचम अंक

शिशिर-ऋतु अतिवाहित हो गई। वृज्जि महाजनपद की महामहिम मही पर, वसन्त का विमल वैभव चतुर्दिक चमत्कृत है। वैशाली की वीथि-वीथि में वृत्तान्त विस्तृत है कि आर्य पद्मकीर्ति की परमार्थ-परायण पौत्री कुमारी पुलोमजा, अपने प्रमदोद्यान में एक अभिनव नाट्यशाला का निर्माण करवा रही है। अनवरत युद्ध करते रहने के कारण क्लान्त, तथा सभ्य-समाज-सुलभ शिल्प से सर्वथा अनभिज्ञ लिच्छवि-गण के शिक्षणार्थ, शीघ्र ही, एक अपूर्व प्रकरण प्रस्तुत किया जाएगा। पुलोमजा के अनुरोध से, आर्य सुनक्षत्र ने स्वयमेव कौशाम्बी जाकर, वहाँ से एक निखिल-नैपुण्य-निष्णात नर्तकी को, कुशल कुशीलव-समवाय सहित, वैशाली में निमन्त्रित किया है।

राजप्रासाद में, राजकुमारी वत्सला ने यह वृत्तान्त सुना तो उनके विस्मय की सीमा न रही। पुलोमजा के साथ उनका अनेक-वर्ष-व्यापी परिचय था। किन्तु पुलोमजा ने, किसी दिन भी, उनके सन्मुख शिल्प-काव्य अथवा संगीत में अपनी अभिरुचि प्रगट नहीं की थी। पुलोमजा को अपनी देह के लालन, परिमार्जन तथा मण्डन से किसी दिन अवकाश मिला होता तो वह किसी अन्य विषय की ओर आकृष्ट होती।

वत्सला स्वयं संगीत की रसज्ञ थी। आलेख्य आदि कतिपय कला-विनोद में भी उनकी अभिरुचि थी। पुलोमजा जितनी बार राजप्रासाद में आई थी, अथवा किसी अन्य गोष्ठी में वत्सला से मिली थी, तब-तब वत्सला ने उसके साथ विविध शिल्प-कला के विषय में संलाप करने की स्पृहा की थी। किन्तु पुलोमजा ने, प्रत्येक बार, उनको निराश कर दिया था। पुलोमजा का एक ही शिल्प से परिचय था। प्रसाधन तथा वेश-विन्यास से। पुलोमजा एक ही काव्य की मर्मज्ञ थी। लिच्छवि युवक-युवति-

समाज के सम्बन्ध में नित्यप्रति प्रसारित, क्षुद्राति-क्षुद्र प्रवाद-पुञ्ज की। अन्य किसी विषय पर वार्त्तालाप होते ही, पुलोमजा शीर्ष-वेदना से व्यथित हो जाया करती।

किन्तु चैत्रमास की पूर्णमासी के पूर्वाह्ण में, पुलोमजा ने राजप्रासाद में आकर वत्सला को निमन्त्रण दिया कि वे, प्रदोषोपरान्त, आर्य पद्म-कीर्ति के प्रमदोद्यान में आकर, प्रेक्षागृह का पर्यवेक्षण तथा तदनन्तर प्रकरण का रसास्वादन करें। पुलोमजा ने यह भी कहा कि राजकुमारी वैशाली के रसमर्मज्ञ-समाज में सर्वश्रेष्ठ हैं। पुलोमजा के मुख से, जीवन में प्रथम वार, अपनी प्रशंसा सुनकर, राजकुमारी को, सहसा, अपनी श्रोत्र-वृत्ति पर विश्वास नहीं हुआ।

राजकुमारी ने, नियत समय पर, प्रमदोद्यान में पहुँचकर, अपने रथ से अवरोहण किया तो पुलोमजा ने, प्रेक्षागृह से प्रत्युद्गमन करके, उनका स्वागत किया। फिर वह राजकुमारी को अपने साथ लेकर नवनिर्मित नाट्यशाला में प्रविष्ट हुई। राजकुमारी को अपनी कुशल कृति का पूर्व परिचय देने के लिए।

नाट्यशाला वस्तुतः वैशाली के लिए सर्वथा नवीन थी। प्रेक्षागृह, रङ्गपीठ तथा नेपथ्यागार में शास्त्रानुसार विभाजित, वर्गाकार अथवा त्रिकोणाकार नाट्यशाला नहीं थी वह। वत्सला ने, अपनी दृष्टि प्रसारित करके, पर्यवलोकन किया तो उनको ऐसा प्रतीत हुआ मानो पुलोमजा ने एक दशदल पुण्डरीक को प्रेक्षागृह में परिणत कर दिया है।

पुण्डरीक का प्रसव-प्रान्त ही रङ्गशीर्ष था। प्रत्येक दल था सोपान-श्रेणी-क्रम-निबद्ध, पृथक प्रेक्षागार। मण्डलाकार भित्तिसंचार के आश्रय से उपाविष्ट होकर, प्रत्येक प्रेक्षक, समान सुविधा के साथ, रङ्गशीर्ष पर प्रस्तुत दृश्य को देख सकता था। नेपथ्यागार का निवेश, नाट्यशाला के बहिर्भाग हुआ था।

रङ्गपीठ के परितः, उत्तम नाट्यकुतप के अनुरूप, गायक-वादक-वृन्द विराजमान थे। चार मूल-गायक। आठ समगायक। चार वेणुवादक। चार मृदङ्गवादक। और एक एक वैपञ्चिक-वीणावादक, पणववादक तथा दर्दुरवादक। कुतपविन्यास देखकर वत्सला को विश्वास हो गया कि

किसी विलक्षण अभिनय का आयोजन है ।

नाट्यशाला को प्रद्योतित करने की प्रणाली देखकर वत्सला विस्मय से विमुग्ध हो गई । प्रत्येक दो सोपान-श्रेणियों के मध्यावकाश में, एकाधिक गवाक्ष बनाकर, उनमें अनेक दण्डप्रदीप इस प्रकार प्रस्थापित किए गए थे कि दीपमाला द्वारा प्रादुर्भूत ऊष्मा एवं धूम्रसमूह नाट्यशाला से निर्गत हो रहे थे तथा प्रकाश भीतर प्रवेश पा रहा था ।

राजकुमारी का नाट्यशाला-निरीक्षण समाप्त हुआ तब तक प्रेक्षागृह लिच्छवि-वृन्द से संकुल हो गए । राजकुमारी के निमित्त नियुक्त आसन की ओर उनका पथप्रदर्शन करती हुई पुलोमजा ने प्रश्न किया : "नाट्यशाला का निवेश नितान्त नवीन है ना, राजकुमारि !"

वत्सला ने उत्तर दिया : "नितान्त नवीन ही नहीं, सर्वथा सुन्दर भी है, पुलोमजे ! अद्भुत आविष्कार किया है तुमने ! सर्वाङ्गसम्पूर्ण !"

"पारसीकपुरी में, जिस दिन प्रथमवार, मैंने पारसीक-सम्राट की नाट्यशाला देखी थी, उसी दिन मैंने निश्चय किया था कि वैसी ही नाट्यशाला का निर्माण वैशाली में करूँगी ।"

"यह क्या पारसीक नाट्यशाला की प्रतिकृति है ?"

"प्रतिकृति तो प्रस्तुत नहीं हो सकी । अनेक त्रुटियाँ रह गई हैं । वैशाली में पारसीक-पुरी के उपकरण भी तो उपलब्ध नहीं हैं, राजकुमारि !"

वत्सला वैशाली की विगर्हा सुनने के लिए प्रस्तुत नहीं थीं । अनार्य पारसीकपुरी की तुलना में तो कभी भी नहीं । अतएव, उन्होंने, प्रसंग-परिवर्तन करने के लिए, पुलोमजा से प्रश्न किया : "देखती हूँ कि दर्शक-वृन्द में प्रायः सब-के-सब तरुण एवं तरुणियाँ हैं । क्या वैशाली के प्रौढ़ तथा वृद्ध लिच्छवि-गण तुम्हारे निकट गुणज्ञ नहीं रहे, पुलोमजे !"

"नाट्यशाला स्वल्प-तनु है, राजकुमारि ! अतएव अभिनय की अनेक आवृत्तियाँ करने का आयोजन है । एक मास में वैशाली के समस्त लिच्छवि नर-नारी, नाट्यशाला में आकर, अभिनय का रसास्वादन कर लेंगे । वृद्ध लिच्छवि-वृन्द को भी आमन्त्रित करूँगी । किन्तु अभी विलम्ब है ।"

"प्रथम आवृत्ति में ही गुरुजन द्वारा गुणग्रहण करवाना अधिक उपा-

देय होता।"

"यह बात मैं नहीं मानूँगी। वृद्ध-जन की अभिरुचि जराजीर्ण होती है। उस पर निर्भर नहीं किया जा सकता, राजकुमारि! तरुण-समाज को ही, सर्वप्रथम, अपनी गुणज्ञता का परिचय देने का अवसर मिलना चाहिए।"

पुलोमजा ने पुनः एक विवाद प्रस्तुत कर दिया। वत्सला ने पुनरेण प्रसंग-परिवर्तन किया। वे बोलीं: "अभिनय आरम्भ होने में कितना विलम्ब है?"

पुलोमजा ने उत्तर दिया: "आपकी आज्ञा मात्र का विलम्ब है। आप आसन ग्रहण कीजिए। मैं नेपथ्यागार में जाती हूँ।"

वत्सला अपने आसन पर उपासीन हो गई। पुलोमजा ने, रङ्गशीर्ष के मार्ग से, नेपथ्यागार में प्रवेश किया। कतिपय क्षण के उपरान्त, वाद्य-वृन्द की प्रथम ध्वनि ने दर्शकगण से प्रार्थना की कि वे, मौन का अवलम्बन लेकर, सावधान हो जाएँ।

तब, एक के अनन्तर एक, अनेक प्रकार के तत, वितत, घन एवं सुषिर वाद्य मुखरित होने लगे। मन्द्रस्थान। मध्यलय। वाद्यस्वरसमूह के समरस होते ही, नाट्यशाला नान्दी के मङ्गलनाद से प्रतिध्वनित हो उठी।

किन्तु नान्दी का आराध्य, वैशाली के लिच्छवि-गण द्वारा आराधित देवता न होकर, कौशाम्बी के राजकुल का कुलदेवता था। वत्सला ने, विस्मित होकर, प्रेक्षागृहों में परितः उपासीन प्रेक्षिवृन्द की ओर देखा। किन्तु वे, सब के सब, नेत्र निमीलित करके, नान्दी-श्रवण में तल्लीन थे। एक बार, आवेश के कारण, उनकी इच्छा हुई कि तत्क्षण आसन से उत्थान करके, नाट्यशाला से निष्क्रमण कर जाएँ। किन्तु शिष्टाचार द्वारा आरोपित संयम ने उनको अपने स्थान पर अचल कर दिया।

नान्दी के अनन्तर, सूत्रधार तथा नटी ने रङ्गशीर्ष पर पदार्पण किया। उन दोनों की वेषभूषा भी आर्यावर्त में अन्यत्र अदृश्यमान तथा पूर्णरूपेण विदेशीय थी।

नटी ने सूत्रधार को सम्बोधित किया: "आर्यपुत्र! आज किस

कथावस्तु का अवलम्बन लेकर आप आर्यवृन्द का मनोरञ्जन करेंगे ?"

सूत्रधार ने उत्तर दिया : "प्रिये ! वैशाली के विशाल-हृदय लिच्छवि-वृन्द, अपनी नित्याभिनव अभिरुचि के लिए, अखिल आर्यावर्त में विख्यात हैं। परम्परा के अनुगत नाटक, प्रकरण, अङ्क एवं व्यायोग, ये न जाने, कितनी बार देख चुके हैं। पिष्ट वस्तु का अनुपेषण कर के मैं इनको विरक्त नहीं करूँगा।"

"साधु, आर्यपुत्र ! साधु ! आप आज, अवश्य ही, किसी अपूर्व कथावस्तु का अवलम्बन लीजिए।"

"मेरी कथावस्तु नितान्त नवीन है, प्रिये ? मैंने, परम्परा का अनुसरण करके, इतिहास अथवा पुराण से इस कथावस्तु का संग्रह नहीं किया। देवी-देवताओं के प्रभाव से पराभूत नायक-नायिका की नाट्योक्तियाँ, सहस्रवार संगृहीत होकर, नितराम निस्वाद बन चुकी हैं। परम्परागत प्रथा के अनुरूप भाव तथा रस की सृष्टि करके मैं आर्यवृन्द का समय नष्ट नहीं करूँगा। मैं......

प्रेक्षिवृन्द ने, अधीर होकर, एक स्वर से अभ्यर्थना की : "सूत्रधार ! कथावस्तु प्रज्ञापित करो।"

सूत्रधार ने बद्धाञ्जलि होकर कहा : 'जैसी आज्ञा, आर्यवृन्द !" कथावस्तु का अवलम्ब है आसन्नभूत की एक अविस्मृत आर्तगाथा। मैंने कोसलराज विदूरथ द्वारा दुश्चरित शाक्यसंहार का आश्रय लेकर, शृङ्गार, रौद्र एवं करुण, मात्र तीन रसों की सृष्टि की है। अन्य किसी रस का प्रयोग इस प्रकरण में नहीं होगा।"

वक्तव्य समाप्त करके, सूत्रधार ने नटी को सम्बोधित किया : "प्रिये ! तुम नेपथ्यशाला में जाकर नाट्य के समस्त समारम्भ का निरीक्षण करो।"

नटी नेपथ्याभिमुख गमनोद्यत हुई। किन्तु उसका वारण करती हुई वत्सला ने, सहसा, अपने आसन से उत्थान करके, सूत्रधार से प्रश्न पूछा : "सूत्रधार ! तुम इस कथावस्तु को प्रकरण क्यों कहते हो ?"

सूत्रधार ने शान्त स्वर में उत्तर दिया : "यह प्रकरण ही तो है, राजकुमारि !"

"नहीं। प्रकरण का अवलम्ब कपोल-कल्पित होता है। आसन्नभूत

की हृदयविदारक दुःखपरिणाम-गाथा नहीं।"

"राजकुमारि! आपके मत में यह प्रकरण नहीं तो और क्या है?"

"ऐसा अभिनय वैशाली में नहीं होगा। इसके द्वारा आर्यवृन्द का मनोरञ्जन करने के लिए तुम श्रावस्ती अथवा साकेत की ओर जाओ।"

प्रेक्षकगण पर जैसे वज्रपात हुआ हो। सब-के-सब, स्तब्ध होकर, वत्सला की ओर देखने लगे। राजकुमारी का श्यामल मुख, असहिष्णुता के आवेश से, आरक्त था। और उनका दक्षिण हस्त उन्नमित था निषेध-मुद्रा में।

सूत्रधार और नटी ने, ससंभ्रम दृष्टि से, एक बार एक दूसरे की ओर देखा और। फिर, वे दोनों, प्रेक्षक-समवाय की ओर देखने लगे। मानो उनको, राजकुमारी के निषेध की अवगणना करने वाले, किसी आदेश की अपेक्षा हो।

इसी समय, पुलोमजा ने, नेपथ्यागार से निर्गत होकर, रंगशीर्ष पर पदार्पण किया। उसको देखते ही वत्सला ने पूछा: "पुलोमजे! आज के नाटक का रचयिता कौन है?"

पुलोमजा ने उत्तर दिया: "नाटक की नायिका, नर्तकी अनंगरेखा।"

"उसने एतादृश उत्तेजनात्मक कथावस्तु का अवलम्ब क्यों लिया?"

"सम्भवतः इसलिए कि वह स्वयं एक शाक्यदुहिता है।"

"शाक्यदुहिता! मैंने तो सुना है कि वह कौशाम्बी की निवासिनी है।"

"आपने भी मिथ्या नहीं सुना। उसकी शिल्प-शिक्षा कौशाम्बी में ही सम्पन्न हुई है।"

"नर्तकी को रङ्गशीर्ष पर बुलाओ, पुलोमजे! मैं उसी से कुछ प्रश्न पूछूँगी।"

"उससे भला क्या लाभ होगा, राजकुमारि!"

"लाभ की बात जाने दो। मैं देखना चाहती हूँ कि इस प्रकार की धृष्टता करने वाली वह कौन है, कैसी है।"

"आप उसको देख चुकी हैं। उसके स्वच्छन्द स्वभाव का परिचय भी आपको प्राप्त है।"

"मृषावाद है। मैंने कभी किसी अनङ्गरेखा को नहीं देखा।"

"क्या आप अन्तर्दुर्ग के द्वारदेश पर मरूड शाक्यदुहिता का आर्तनाद भूल गईं? वह घटना तो अभी उस दिन घटी थी, राजकुमारि! स्मरण कीजिए!"

"वह सब स्मरण करना इस समय प्रयोजनीय नहीं है, पुलोमजे! नर्तकी से कह दो कि अन्य कथावस्तु का अवलम्बन लेकर अभिनय करे।"

"आप परिहास कर रही हैं। राजकुमारि! अभिनय का आयोजन क्या इतना सुकर है कि आपके कहते ही समारम्भ हो जाए। नवीन अभिनय के लिए नवीन अभ्यास अपेक्षित है। नर्तकी अकस्मात् नवीन अभिनय के अनुरूप समारम्भ कहाँ से लाएगी। वह रंगशीर्ष पर प्रथम-बार पदार्पण कर रही है।"

"तो जिस दिन दूसरा अभिनय असम्भव न हो उस दिन लिच्छवि गण को पुनः आमन्त्रित कर लेना।"

पुलोमजा के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में अग्निदाह-सा होने लगा। अपने ऊपर पूर्ण संयम करके, अपने स्वभाव को कुण्ठित करके ही वह, अभी तक, वत्सला के साथ शिष्टाचार निभा रही थी। राजकुमारी का हठ देखकर उसका संयम भङ्ग हो गया। वह आवेश में आकर, बोली: "राजकुमारि! आप अनधिकार चेष्टा कर रही हैं।"

वत्सला ने पुलोमजा के अभियोग का उत्तर नहीं दिया। वे, उस ओर से दृष्टि परावृत्त करके, अपने पृष्ठ प्रान्त मे उपासीन प्रेक्षिवृन्द को देखने लगीं।

तब एक लिच्छवि तरुणी ने, उत्तिष्ठ होकर, राजकुमारी से प्रश्न पूछा: "राजकुमारि! आपको इस अभिनय के प्रति क्या आपत्ति है?"

वत्सला ने उत्तर दिया: "यह अभिनय नही, कल्याणि! षड्यन्त्र है।"

पुलोमजा ने, वत्सला की बात सुनकर, प्रेक्षिवृन्द को सम्बोधित किया: "आर्यवृन्द! राजप्रासाद में रह कर षड्यन्त्र करते-करते, राजकुमारी को सर्वत्र ही षड्यन्त्र देखने का अभ्यास हो गया है। किन्तु उन्हें यह स्मरण नहीं रहा कि, इस समय, वे राजप्रासाद में नहीं, आर्य

पद्मकीर्ति के प्रमदोद्यान में हैं। आर्य पद्मकीर्ति अथवा उनके सुपुत्र आर्य रत्नकीर्ति ने कभी, किसी के विरुद्ध, किसी प्रकार का, षड्यन्त्र नहीं रचा। मैं आर्य पद्मकीर्ति की पुण्यवती पौत्री हूँ। आर्य रत्नकीर्ति की पुत्री। मुझपर षड्यन्त्र का आरोप लगा कर, राजकुमारी मेरे प्रति घोर अन्याय कर रही हैं। अनाचार भी।"

सूत्रधार, अभी तक मौन रहकर, यह अप्रत्याशित दृश्य देख रहा था। षड्यन्त्र का नाम सुन कर वह, आपादमस्तक, काँप उठा। उसने, बद्धाञ्जलि हो कर, विनीति तथा किंचित आर्तस्वर में, राजकुमारी को सम्बोधित किया : "धृष्ठता क्षम्य हो, राजकुमारि ! मुझे ज्ञात नहीं था कि नाटक के नाम मात्र से ही नाट्यशाला में विभेद का विस्फोट हो जाएगा। मैं क्षुद्र तथा अत्यन्त अकिञ्चन कुशीलव हूँ, राजकुमारि ! आपके समान रसज्ञों का मनोरंजन करके उदरपोषरण करता हूँ। अपना, अपनी भार्या का, अपने अपत्य का। मैंने किसी षड्यन्त्र में अंगग्रहरण नहीं किया......

पुलोमजा ने सूत्रधार की भर्त्सना की : "सूत्रधार ! तुम इसी क्षरण नेपथ्यागार में चले जाओ। तुमको इस विवाद के कारण विमूढ़ होने की कोई आवश्यकता नहीं।"

नटी-पुरस्सरित सूत्रधार ने तत्क्षरण, रङ्गशीर्ष से, नेपथ्यागार की ओर प्रस्थान किया। तब पुलोमजा, वत्सला की ओर अभिमुख होकर बोली : "राजकुमारि ! आपको इस अभिनय के विरुद्ध आपत्ति क्या है ?"

वत्सला ने, शान्त स्वर में, कहा : "इस अभिनय के कारण, वैशाली में कोसल के विरुद्ध आवेश की सृष्टि होगी। कोसल वृज्जिसंघ का मित्र-राष्ट्र है।"

"मित्रराष्ट्र !! शाक्यवंश का संहारकर्त्ता राष्ट्र वृज्जिसंघ का मित्र-राष्ट्र !!!"

"शाक्यवंश का संहारकर्त्ता विदूरथ था। वह ससैन्य अपने पाप के भार से अचिरवती की धार में डूब मरा। एक पापी राजा के पाप से समस्त कोसल को प्रलिप्त मत करो।"

पुलोमजा ने राजकुमारी द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण को स्वीकार नहीं किया। वह प्रेक्षिवृन्द की ओर दृष्टि प्रसारित कर के बोली : "वैशाली के लिच्छवि-वृन्द ! राजकुमारी द्वारा सहसा उत्थापित इस उत्पात के विषय में मैं आपका निर्णय सुनना चाहती हूँ।"

लिच्छवि-गण एक दूसरे की ओर देखने लगे। वत्सला भी, अग्रसर हो कर, रंगशीर्ष पर जा खड़ी हुई। उनकी प्रखर, उत्पक्ष्मल दृष्टि नाट्यशाला का परिभ्रमण कर रही थी। अधिकांश लिच्छविगण ने अपने मुख अवनत कर लिए। राजकुमारी का प्रत्याख्यान करने का साहस उनमें से किसी में नहीं था।

पुलोमजा, हठात्, एक असहायता की अनुभूति से अभिभूत हो गई। उसके अन्तर में आक्रोश उठ रहा था कि वत्सला यदि इस बार उसका पराभव करने में समर्थ हुई तो वह, अपने प्रमदोद्यान की पुष्करिणी में डूब कर, आत्मघात कर लेगी। उसने, अश्रुविह्वल वाणी में, पुनरेण अभ्यर्थना की : "वैशाली के लिच्छवि-गण ! मैं आपका निर्णय सुनना चाहती हूँ।"

इसी समय, नेपथ्यागार से निर्गत होते हुए सूत्रधार ने राजकुमारी को सम्बोधित किया : "राजकुमारि ! देवी अनङ्गरेखा की आपसे एक प्रार्थना है।"

वत्सला ने कहा : "निवेदन करो, सूत्रधार !"

"यदि आप आज्ञापित करें तो देवी अनङ्गरेखा इस अभिनय का प्रथम अङ्क मात्र प्रस्तुत करेंगी। उस अङ्क में केवल एक लास्य-नृत्य है। ऋतुराज के नवागमन की वेला में, प्रणयोन्माद से प्रफुल्लित प्रमदा का, प्रियतम के प्रति प्रणय-निवेदन। कथावस्तु से सम्बन्धित किसी संलाप का समावेश उस लास्य में नहीं किया जाएगा।"

"इस विषय में लिच्छवि-समवाय ही प्रमाण है, सूत्रधार ! यदि लिच्छवि-गण को स्वीकार हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

लिच्छवि-समवाय ने एक-स्वर से अनुरोध किया : "हम लास्य-नृत्य देखेंगे।"

पुलोमजा, मौन रह कर, नेपथ्यगृह में चली गई और लौटकर नाट्य-

शाला में नहीं आई। वत्सला ने अपना आसन ग्रहण किया। वाद्यवृन्द की साधना पुनरेण प्रेक्षिवृन्द को सावधान करने लगी।

: २ :

वाद्यवृन्द की संघट्टना का समारम्भ हो रहा था। वीणा क्वणित थी। मुरज मुखरित। वंशीरव और पणवध्वनि भी, शनैः-शनैः, उनके स्वर-ग्राम से समागम करने लगे।

तब वाद्यस्वर ने कण्ठस्वर से परिघट्टना का प्रयत्न किया। कण्ठगीत की चतुष्पदी पर चतुष्पदी को चमत्कृत करने के लिए। लयताल का गतिप्रचार चेतोवधानग हुआ। मध्यलय, तारस्थान। मध्यताल का ध्वनि-प्रहार। मध्यम स्वरग्राम की मार्गी मूर्च्छना। पञ्चम का ग्रह। मध्यम का न्यास।

स्वर-साम्य सिद्ध होते ही, किसी कोकिल-कण्ठा का विलम्बित काकु स्वरित वर्णों के दीप्त अलंकार सहित कूक उठा। गीत का छन्द अनुष्टुप था। गायिका, गीत के माध्यम से, प्रेक्षिवृन्द के मानस पर समय एवं स्थान का सजीव चित्र अङ्कित करने लगी।

मधुमास, अपने मदोन्मत्त यौवन का भार वहन करने में असमर्थ रहकर, अलसाया-सा, पथ-प्रान्त में उपासीन हो गया है। शाक्य जनपद की केन्द्रस्थली, कपिलवस्तु, के चारों ओर। मलयानिल द्वारा प्रवाहित मकरन्द-मधुर किञ्जल्क को पीकर, परभृतिका प्रमत्त हो उठी है। शिशिर के हिमशीकर से शिथिलीकृत वापी तथा तड़ाग, तन्द्रा का त्याग करके, वीचिविलास में अपने अंग-प्रत्यंग स्फूर्त कर रहे हैं। उनके वारि-वक्ष पर कल्लोल करते हुए कलहंस कह रहे हैं कि प्रणय-विहार की पावन-वेला आ गई। सघन सहकार-कुञ्ज-माला से विमुञ्चित नवमुकुल, मारुत को सौरभसिक्त तथा वसुन्धरा को शुभ्रवसना बना कर भी, अपने अपार वैभव को व्ययित नहीं कर पा रहा। यव, गोधूम तथा सर्षप से सस्यशामला शाक्यभूमि, सर्वथा शंका-विहीन है।

कपिलवस्तु के पश्चिमवर्ती प्रान्त में, महानाम शाक्य का उपवन उत्फुल्लित है। किशोर किसलय, कुसुम-कोरक तथा पुष्पभार से अवनत पादपवृन्द, विटपराजि तथा लता-वल्लरी, वसुधा का स्पर्श करने के लिए,

स्पर्धाशील हैं। फलप्रसव के लिए प्रस्तुत हैं मातुलुङ्ग, आम्रातक, बिल्व, लोध्र, रसाल, ब्रह्मदारु और दाड़िम। प्रभञ्जन से पराभूत कुरुण्टक, रक्ताशोक, मुक्तलतिका, शिरीष, चम्पक, कर्णिकार एवं शेफालिका, अपने-अपने पराग का परित्याग करने के लिए, परवश हैं। प्रमदोद्यान की पुण्यसलिला पुष्करिणी ने अपनी नीलोर्मिमय कुञ्चित केशराशि को शतसहस्र पद्मावलि से अलंकृत किया है। त्रियामा के अन्तिम याम तक कुमुदालिंगन में कालयापन करने वाला अलिकुल, आलस्य त्याग कर, प्रणय-गीत गाने लगा है।

गीत रुक गया। किसी की कुशल अंगुलियों ने, विपञ्ची वीणा को क्वणित करके, मधुप-गुञ्जार को स्वर में साकार किया। और फिर वंशीरव में कोकिल कूक उठी। बारम्बार। प्रेक्षिवृन्द को विह्वल करती हुई।

लिच्छवि-समवाय ने, एकमुख से, अभिनन्दन किया : "साधु! साधु! सुन्दर!! अति सुन्दर!!!" अस्फुट और निम्न स्वर में। मानो उन्हें आशङ्का हो कि कोलाहल सुनकर ऋतुराज रुष्ट हो जाएँगे।

वत्सला ने, दृष्टि प्रसारित करके, चतुर्दिक उपासीन लिच्छवि तरुण-समाज का अवलोकन किया। सबके सब मन्त्रमुग्ध-से झूम रहे थे। नेत्र निमीलित करके। मानो उनके अन्तर में आप्लावित रस-निर्झरी, नेत्रोन्मीलन करते ही, पार्थिव जगत के जराजीर्ण सत्य का स्पर्श करके शुष्क हो जाएगी।

एकमात्र वत्सला ही, सजग एवं सावधान होकर, उपासीन थीं। मानो उनके अन्तर में, आक्रान्त हो जाने की आशङ्का अंकुरित हो।

वह मुहूर्त भी व्यतीत हो गया। वाद्यस्वर, मन्द्रस्थान से अतिमन्द्र पर अवरोह करके, अन्तरिक्ष में विलीन हो गए। सूक्ष्म सौन्दर्य के सरससागर में स्नात लिच्छवि-वृन्द ने नेत्र उन्मीलित किए। और, तुरन्त ही, उनके नेत्रच्छद निस्पन्द रह गए।

राशि-राशि रूप की साकार प्रतिमा के ललाम लावण्य से परिप्लावित वह नाट्यशाला, सहसा, नन्दनकानन के रूपवैभव को विनिन्दित करने लगी थी। नेपथ्यागार, से निर्गत होती हुई एक अनवद्य अप्सरा, अलस-गति

से, रङ्गशीर्ष पर अग्रसर हो रही थी। उसके सशंक-से पादपद्म, एक पल के लिए भी, मंचपृष्ठ का स्पर्श करना नहीं चाहते थे। मानों कौशेय के मसृण आस्तरण से क्षत-विक्षत हो जाएँगे उसके रक्ताभ पादाग्र और पाणिप्रान्त।

अप्सरा के कांचनवर्ण कमनीय कलेवर पर केवल एक ही वस्त्र था। कृश कटितट पर कर्षित, नीवीबन्ध के अवलम्ब से आलम्बित, नील-कौशेय की नवनीत-मृदुल शाटिका। वह वस्त्र, तन्वाङ्गी के चक्रवाकयुगल-सन्निभ श्रोणिमण्डल को प्रच्छन्न करके भी, उसका उभार उत्कीर्ण कर रहा था। वामा के वक्षस्थल पर विलुण्ठित था, उसके उत्तमाङ्ग से उतर कर कपोल-द्वय पर प्रवाहित सा, घननील चूर्ण चिकुर-भार। अलकनैल्य की निविडता को नष्ट करने पर कटिबद्ध था अप्सरा का अनिन्द्य आननेन्दु, कम्बुकमनीय कण्ठ, कलश-कल्प कुचयुगल और प्रक्षीण पृषोदर आन्त। लावण्यमयी की मृणालमृदुल बाहुलताएँ, लास्यमुद्रा में मुखरित होकर, अन्तरिक्ष में अङ्गहार विकीर्ण कर रही थीं।

वाद्यवृन्द पुनरेण वादित हुए। गायिका ने गुणज्ञ-गण को सूचित किया कि महानाम शाक्य की पुत्रवधू और शाक्यभूमि की जनपद-कल्याणी, देवी जयन्ती, वसन्तोत्सव के पावन पर्व में, अपने प्रियतम, मणिभद्र, के साथ अभिसार करने के पूर्व, अपनी यौवनपरिपूर्ण देहलता को प्रसाधित करने जा रही है। सुप्रवीण स्नापिका ने, सुगन्धित स्नान-चूर्ण की सहायता से, सुन्दरी की शरीरयष्टि को परिशुद्ध किया है। कालागुरु-धूम के सौरभसार से सिक्त है सुन्दरी का शिरसिज-समूह। अब वह, स्नानागार से निष्क्रमण करके, प्रमद्वन-प्रासाद के क्रीड़ाकक्ष में प्रवेश कर रही है। प्रवीण प्रसाधिकाएँ कृशाङ्गी के कलेवर को विभूषित एवं अलंकृत करेंगी।

गीत रुक गया। वाद्यस्वर ने मध्य-स्थान से मन्द्रस्थान पर अवरोह किया। मृदंग मूक हो गया।

प्रेक्षिवृन्द ने देखा कि पाँच प्रसाधिकाएँ, विभूषा के विविध व्यंजन लिए, नेपथ्यागार से निर्गत हो रही हैं। एक के हाथों में चन्दनदारु की पीताभ पीठिका है। दूसरी के दक्षिण स्कन्ध पर स्थापित है स्वर्ण-विरचित,

रत्नखचित शृंगार-मंजूषा । तीसरी विविध वर्ण के वस्त्र-परिधान वहन कर रही है । चौथी पुष्पमाल्य से परिपूर्ण वृन्तपिधान लेकर चल रही है । कङ्कनहस्ता पाँचवीं कमलनयनी का केशविन्यास करेगी ।

गन्धमाल्य के सौरभ से नाट्यशाला शालीन हो उठी । लिच्छवि तरुण-गण निनिमेष-नयन उपासीन थे । विस्मय था उन नेत्रों की निहार-निहार में । उल्लास, विलास, माधुर्य । और विपुल वासना भी ।

अभिसारिका प्रसाधिका द्वारा प्रस्तुत पीठिका पर उपासीन हो गई । प्रियतम से मिलन की स्पृहा में उसके गात्रपुंज प्रतिपल पुलकित होने लगे । यौवन-चकित चितवन का चांचल्य उसकी बाल-सुलभ व्रीड़ा को विद्रूरित कर रहा था ।

प्रसाधिकाओं की परिचर्या प्रारम्भ हुई । दर्शक-गण के देखते-देखते, अभिसारिका का अस्तव्यस्त अलकजाल कवरीपाश में परिणत हो गया । नवकुरवक के शेखरापीड़ से सुशोभित कवरीपाश । बालरवि-से ललाटतट के मध्य में, अनङ्गचाप-सी चपल भ्रूचाप पर सन्धान किए हुए शर के समान, शोभायमान हुआ कुंकुमपङ्क का तिर्यक् तिलक । व्रीडा एवं विकलता के विमिश्रण से विमुग्ध नेत्रयुगल के कटाक्ष, कृष्णाञ्जन धारण करके, कुटिलतर हो गए । स्नानश्रम से पाण्डुर गण्डद्वय, लोध्ररेणु से लिप्त होकर, द्विगुण लावण्य से ललकने लगा । अभिसारिका के अधरोष्ठ, अधरराग के अवलेप से, अर्धोत्फुल्ल रक्तोत्पल के समान रसाल हो चले । किसलय के समान कोमल कर्णयुगल में दोलायमान हुए पीतवर्ण कर्णिकार के कुसुम-कुण्डल ।

दर्शकगण की दृष्टि, मुग्धा के मुखारविन्द से अवतरण करके, उसके नग्नदेहभार पर नर्तन करने लगी । वहाँ, उसके गलदेश को आलिङ्गन में आबद्ध करने वाला पाटल का पुष्पहार, उसके पत्रलेखा-चित्रित पीन पयोधर-द्वय को एकीभूत होने से निषिद्ध करने के प्रयास में मध्यवाही होकर, नाभिप्रदेश की ओर प्रसृत हो रहा था । बाहुयुगल से विलम्बित थे शतपत्र-स्तवक के कुसुम-केयूर । प्रकोष्ठ-प्रान्त पुष्पवलय से वेष्टित थे । कटिप्रदेश की प्रदक्षिणा कर रही थी मृणाल-तन्तु की मेखला, जिसमें ग्रथित अस्फुट अरविन्द के शुभ्रद्युति स्तवक, किङ्किणमाल का भ्रम उपजा

रहे थे। अन्ततः प्रसाधिका ने, अभिसारिका के पादपद्मों की अनवद्य अरुणिमा को आलक्तक-रस से आच्छादित करने के प्रयास में पराजित होकर, उसकी पादाङ्गुलियों पर नवल नलिनीदल के नूपुर विहित कर दिए।

लावण्यमयी ने, एक बार, कांस्यपटल के आदर्श में अपनी दर्शनाभिराम मधुरमूर्ति का अवलोकन किया। दूसरे क्षण, उसने अपनी चरणग्रन्थियों पर पहिनने के लिए, किङ्किणमाल को अपने पाणिपल्लवों से उत्थापित कर लिया।

वाद्यस्वर, चेतोवधानग से, पदग में परिवर्तित होने लगा। आश्रावण का आयास करती हुई वाद्यध्वनि मन्द्रस्थान से मध्यस्थान की ओर आरोह कर चली।

चंचल चितवन तथा भावभरे भ्रूविलास से, एक क्षण, प्रेक्षिगण के प्राण पुलकायमान करके, अभिसारिका ने अपने आसन से उत्थान किया। मानो दृप्त दीपशिखा, धरातल से द्युलोक की ओर ललक उठी हो।

प्रसाधिकाएँ, पार्श्व की ओर अपसरण करती हुई, नेपथ्यागार में निगूढ़ हो गईं। मृदङ्ग के अतिरिक्त अन्य समस्त वाद्यवृन्द ने, सहसा, मौन का अवलम्बन लिया। द्विगुण ताल तथा द्रुत लय में मुखरित था मृदंग।

दूसरे क्षण, प्रणयिनी के प्रथम पादविक्षेप से, नाट्यशाला नानर्दमान हो उठी। ललित लास्य की सृष्टि करने लगे अनंगरेखा के अनवद्य आरोही एवं अवरोही अंगहार। शिर, ग्रीवा, वक्ष, बाहुद्वय तथा कटितट के विविध विक्षेप विस्तारित हुए। हृदय के भावोद्वेलन को अभिव्यक्त करने लगे, चिबुक, अधरोष्ठ, कपोल, नासिका, नेत्र एवं भ्रूयुगल के अनेकानेक भंग। स्तांगुलियों में अगणित भावमुद्राएँ प्रस्फुटित हुईं।

चंचल, प्रवाह, खण्ड तथा भ्रमर गति के प्रचार से, रंगशीर्ष का प्रत्येक प्रान्त पुलकित हो उठा। गमन, आगमन, क्रीड़ा एवं चक्र के क्रियाकलाप ने प्रेक्षिगण को चकित कर दिया। अर्धचक्र, अर्धविपरीतचक्र, विपरीत चक्र में, विविध विधि से आवर्तमान थी अनंगरेखा। उसके भूमिचारी तथा आकाशचारी पादविक्षेप से, नाट्यशाला का स्तब्ध वातास भी, मानो

विधुम्बित हो रहा हो ।

चलित-गति के चमत्कार प्रदर्शित करके, नताङ्गी का नृत्य पुनरेण स्थितगति की ओर प्रत्यावर्तित हुआ । तत, सुषिर और घन वाद्य पुनरेण ध्वनित होने लगे । गीत की काकली, एक बार फिर, नाट्यशाला को नन्दित करने लगी ।

किन्तु, इस बार, गायिका नेपथ्यागार में निगूढ़ नहीं थी । वह राग रंगशीर्ष से ही उठ रहा था । विरहविह्वल कान्ता के अपने कलकण्ठ का कूजन । प्रणयिनी अपने प्रियतम को पुकार रही थी । अनुष्टुप में विरचित छन्द पर उत्तरमन्द्रा की मूर्च्छना । विरहवेदना और मिलन-माधुर्य का मिश्रण ।

लिच्छवि तरुण-समाज, मूर्च्छायमान सा, एक अभूतपूर्व द्वन्द्व से विदिग्ध हो गया । नेत्र निमीलित करके, कामिनी के कलरव से अपने कर्णकूप आपूर्ण करें, अथवा निर्निमेष नयनों से ललना का लोल लावण्य निहारें । एक आनन्द के अनर्गल आस्वादन में दूसरे आनन्द का स्खलन सन्निहित था । वे नेत्रोन्मीलन करते थे तो उनकी अतृप्त श्रोत्रवृत्ति व्यथित होती थी । पर श्रोत्रवृत्ति की परितृप्ति के निमित्त, उनके नयनों ने निमीलित रहना अस्वीकार कर दिया । उनका आकुल अन्तर, बारम्बार, एक ऐसी ज्ञानेन्द्रिय की गवेषणा करने लगा जिसमें, श्रवण एवं दर्शन, दोनों का सामर्थ्य एक साथ हो ।

द्वन्द्व के भारवहन से वञ्चित रहीं तो एक अकेली राजकुमारी वत्सला । उन्होंने, अपने विभोर होते हुए मानस को, महान संयम की सहायता से संकुचित कर लिया । वे पाषाण-प्रतिमा के समान, विजड़ित-सी उपासीन थीं । लिच्छवि तरुण-समवाय की वह लिप्सामयी मूर्ति देखकर, उनका अन्तर एक अचिन्तनीय आशङ्का से आतङ्कित हो उठा था ।

: ३ :

परदिवस के मध्याह्न में, भोजन के लिए उपासीन आर्यश्रेष्ठ महाली ने परिवेषण-रत वत्सला से हँस कर प्रश्न किया : "वत्से ! गतरात्रि में पुलोमजा द्वारा प्रस्तुत प्रकरण कैसा था ?"

वत्सला ने, परिमित-सा उत्तर दिया : "बीभत्स !"

"एकमात्र बीभत्स-रस का अवलम्ब लेकर तो अभिनय की सृष्टि ही सम्भव नहीं।"

"नाटक नहीं हुआ, पिताजी ! केवल नृत्य ही हुआ। नर्तकी ने अपनी ओर से तो, आदिरसान्वित आख्यान ही अभिनीत किया था। किन्तु मुझको, न जाने क्यों, केवल बीभत्स रस की ही अनुभूति हुई।"

"कलह से कलुषित मानस के लिए, शृंगार-रस भी बीभत्स रस बन जाता है।"

"कलह ! कलह कैसा, पिताजी ! किसके साथ किस का कलह ?"

"आज प्रातःकाल ही पुलोमजा तुम्हारे विरुद्ध अभियोग लेकर आई थी, वत्से, ! वह कह रही थी कि तुमने, हठ करके, नाटक को निषिद्ध कर दिया और उसे, अपनी मानरक्षा के हेतु, विवश होकर नृत्य ही प्रस्तुत करना पड़ा।"

"नाटक का निषेध मैंने अवश्य किया था, पिताजी ! किन्तु कलह तो नहीं हुआ। नर्तकी ने, स्वेच्छा से ही मेरा अनुरोध मानकर, नृत्य द्वारा प्रेक्षिवृन्द का मनोरञ्जन करना स्वीकार किया था।"

"तुमने नाटक का निषेध क्यों किया ?"

"क्या पुलोमजा ने आपको प्रज्ञापित किया है कि नाटक की कथा-वस्तु क्या थी ?"

"कथावस्तु न उसने निवेदित की, न मैंने पूछी। कथावस्तु कुछ भी क्यों न रही हो, निषेध करने का अधिकार तो तुम्हें, किसी अवस्था में भी, प्राप्त नहीं था।"

आर्यश्रेष्ठ के स्वर में असहिष्णुता का आभास था। उनकी मुखभंगिमा सहसा गम्भीर हो गई।

वत्सला ने, पिता द्वारा प्रदत्त भर्त्सना सुनकर, आत्ममार्जना करने का प्रयास नहीं किया। वे अप्रतिभ-सी होकर, अवनत-मुख उपासीन रहीं।

आर्यश्रेष्ठ ने, करुणाभरी कोर से, पुत्री की ओर देखा। अपनी एक-मात्र अवशिष्ट सन्तान के प्रति प्रतिहिंसा का भाव प्रदर्शित करके उनका अन्तर पश्चात्ताप से आकुल हो गया। तब वे, अपनी वाणी को वात्सल्य से

विदिग्ध करके, बोले : 'वत्से ! मैंने अभी तक केवल पुलोमजा का पक्ष ही लिया है। यदि तुमको, अपने पक्ष में, कुछ प्रतिवाद करना हो तो कहो।"

वत्सला ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे, उसी प्रकार, भूमि-निविष्ट-दृष्टि उदासीन रहीं।

आर्यश्रेष्ठ महानाम समझ गए कि पुत्री के नयन अश्रुजल से आर्द्र है। दूसरे क्षण, उनके मुख का कौर उनके कण्ठ को कण्टकित करने लगा। वत्सला का मुख अपने हाथ से उन्नमित करके, वे बोले : "ये कैसे अश्रु है, वत्से ! अनुताप के, अथवा अभिमान के ?"

वत्सला के कपोल अश्रुजल से आप्लावित होने लगे। साथ ही, आर्य-श्रेष्ठ ने अपना हाथ भोजनपात्र पर से अपसारित कर लिया।

पिता को भूखा रहते देख कर, वत्सला सत्रसित हो उठीं। वे, आंचल से अपना मुख पोंछ कर, बोलीं : "पिताजी, नाटक को निषिद्ध करके मुझे पश्चात्ताप नहीं हो रहा, किन्तु आप यदि भोजन समाप्त किए बिना चले गए तो मेरे परिताप की सीमा नहीं रह जाएगी।"

आर्यश्रेष्ठ ने, गाढ़वाणी में, पूछा : "तो तुम कुछ कहती क्यों नहीं ?"

वत्सला ने उत्तर दिया : "पिताजी ! उस नाटक की कथावस्तु को मैं वृज्जिसंघ के विरुद्ध कुचक्र मानती हूँ। आप यदि अपनी आँखों से उसका अभिनय देखकर, अनुज्ञा दे तो मैं मौन रहूँगी। किन्तु मेरा मत-परिवर्तन सम्भव नहीं।"

"आज रात्रि के समय वह अभिनय देखने का आमन्त्रण मुझे पुलो-मजा दे गई है।"

"सम्यक् है। मुझे अन्य कुछ नहीं कहना। आप ही अब, इस विषय में, प्रमाण है।"

"तुमको मेरे साथ जाना होगा।"

"यदि यह आपकी आज्ञा है तो मैं अवश्य इसका पालन करूँगी।"

तदनन्तर, आर्यश्रेष्ठ ने, प्रसन्नमन होकर, भोजन किया। फिर वे, नाट्यशाला में जाने के लिए प्रस्तुत रहने का आदेश वत्सला को देकर, अपने विश्रामागार में चले गए।

रात्रि के समय, अनंगरेखा का अभिनय आरम्भ हुआ तो राजकुमारी भी, आर्यश्रेष्ठ महाली के पार्श्व में उपासीन थीं। राजकुमारी ने, एक-बार, प्रेक्षिवृन्द का पर्यवलोकन किया। प्रायः सभी प्रेक्षक वयोवृद्ध लिच्छवि थे। यह कल्पना करते ही कि वे गुरुजन के समक्ष अनंगरेखा की अशिष्ट अभिसार-सज्जा देखेंगी, राजकुमारी का अन्तर गहन ग्लानि से आपूरित हो चला। किन्तु पलायन का पथ भी अवरुद्ध था। आर्यश्रेष्ठ का आदेश था कि वत्सला, उनके समीप उपासीन रहकर, समस्त अभिनय का आद्योपान्त अवलोकन करे। वत्सला को भी, पुलोमजा के अभियोग की अतिशयोक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करना था। अतएव वे, मन को मार कर, अविचलित आसीन रहीं।

उनके मर्यादा-बोध की रक्षा की स्वयं अनंगरेखा ने। आज नर्तकी ने, नेपथ्य-निवेश के पूर्व ही, रंगशीर्ष पर अपनी नग्न देह का निर्लज्ज निदर्शन नहीं किया। वह नेपथ्यागार से निर्गत हुई तब वस्त्रालंकार से विधिपूर्वक विभूषित थी। अभिनय का आरम्भ भी उस दृश्य से हुआ जिस पर, गतरात्रि में, उसकी समागना हुई थी।

आज के अभिनय में आदिरस का समावेश नितान्त न्यून था। प्राधान्य था रौद्र एवं करुण रस का।

अभिनय के प्रथम अङ्क में, गीत की चतुष्पदी पर लास्य करती हुई, शाक्यवधू जयन्ती ने अपने प्रियतम को पुकारा। किन्तु प्रियतम के आने में विलम्ब हुआ। उसके आने से पूर्व ही, कोसलेश विदूरथ ने, क्रीड़ाकक्ष में प्रवेश करके, जयन्ती से प्रणय की याचना की। जयन्ती ने उस जार के प्रति कोप प्रगट किया। और कोशल का क्रुद्ध अधीश्वर, यह प्रण कर के चला गया कि छल से अथवा बल से, जिस प्रकार भी हो, वह शाक्यदेश की जनपद-कल्याणी को श्रावस्ती के निशान्त में निविष्ट करके रहेगा।

द्वितीय अङ्क में, कपिलवस्तु के सुविख्यात संस्थागार में समाहूत शाक्यसंघ की परिषद ने विदूरथ का यह संदेश श्रवण किया कि शाक्यगण, जयन्ती को कपिलवस्तु जैसे क्षुद्र ग्राम से निकाल कर, कोसल के महिषी-पद पर प्रतिष्ठित करें। शाक्य-वृद्धों ने, एक स्वर से, प्रत्युत्तर दिया कि वे, शाक्य राजा की तुच्छ दासी के गर्भ से उत्पन्न, क्षत्रियबन्धु

को अपने राष्ट्र की एक दासीपुत्री अर्पित करना भी अपना अपमान मानते हैं।

तृतीय अङ्क में, जयन्ती ने अपने पति, मणिभद्र, से अभ्यर्थना की कि वह एक अवश्यम्भावी रक्तपात का पातक अपने शिर लेना नहीं चाहती। जयन्ती ने, विष खाकर, अपने प्राण विसर्जित करने के लिए आर्यपुत्र की आज्ञा माँगी। उसने अपने पति से प्रस्ताव किया कि उसके शव को श्रावस्ती के राजप्रासाद में प्रेषित कर दिया जाए, जिससे विदूरथ का दुष्ट हृदय, पश्चात्ताप-परायण होकर, युद्ध से विरत हो जाए। मणिभद्र ने अपनी प्रियतमा को प्रज्ञापित किया कि जयन्ती ने विष खाया तो वह स्वयं भी, विष खाकर, प्राण-विसर्जन करेगा। न शाक्यगण उन दोनों के शव श्रावस्ती की ओर प्रेषित करेंगे, न रक्तपात की विभीषिका का निवारण ही होगा।

चतुर्थ अङ्क में, कोसल के दुर्दान्त दस्यु-दल द्वारा कपिलवस्तु का विध्वंस तथा शाक्यकुल का विनाश हुआ। दीर्घ कारायण का आदेश पाकर, कोसल के सैनिकों ने शाक्यवंश की वयोवृद्ध माताओं तथा अबोध शिशुगण का नृशंस नरमेध किया। शाक्यकुल की कुलांगनाओं को अपने साथ लेकर, दीर्घ कारायण ने श्रावस्ती की ओर प्रयाण किया।

पञ्चम एवं अन्तिम अङ्क में, धूलिधूसरित-देहा तथा विगतवसना जयन्ती, वैशाली के अन्तर्दुर्ग के द्वारदेश पर दण्डायमान होकर, आर्तनाद कर रही थी।

वत्सला के स्मृतिपट पर वह दृश्य आलिखित था। उस दिन उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी कि, एक दिन, वह श्रान्त-क्लान्त शाक्यदुहिता, करुण-रस का निर्झर बहा कर, लिच्छवि-वृद्धों के हृदय विदीर्ण कर देगी। किन्तु आज उन्होंने साक्षात् देखा कि नाट्यशाला में उपस्थित अनेक लिच्छवि-वृद्ध अपने नयनों से अविकल अश्रुमोचन कर रहे हैं।

अभिनय समाप्त हुआ। अनंगरेखा ने, आर्यश्रेष्ठ के समीप आकर, बद्धाञ्जलि हो, उनका अभिवादन किया। आर्यश्रेष्ठ ने नर्तकी को आशीर्वाद दिया।

तब, आर्यश्रेष्ठ के दूसरे पार्श्व पर उपासीन पुलोमजा ने उनसे प्रश्न

पूछा : "आर्यश्रेष्ठ ! अभिनय के विषय में आपका अभिमत अभिप्रेत है।"

आर्यश्रेष्ठ ने वत्सला को सम्बोधित किया : "वत्से ! तुम्हारा क्या अभिमत है ?"

वत्सला बोलीं : "पिताजी, मैं अपना मत इसके पूर्व ही प्रगट कर चुकी हूँ। उस मत में परिवर्तन की कोई आवश्यकता मैं नहीं देखती।"

"तुम्हारा वह मत तो केवल कथावस्तु के विषय में व्यक्त हुआ था। अभिनय का आद्योपान्त आस्वादन करके भी क्या तुम्हारा दृढ़ हठ अक्षुण्ण रहेगा ?"

"हठ कैसा, पिताजी ! हठ करना तो मैंने नहीं सीखा।"

"इतनी सर्वांगसुन्दर कृति को कुचक्र कह कर निरस्कृत कर देना हठ नहीं तो क्या है, वत्से !"

"मेरी दृष्टि नाटक पर निविष्ट नहीं, लिच्छवि-गण के हृदय पर निविष्ट है।"

"लिच्छवि-गण अपने हृदय पर अधिकार रखते हैं, वत्से ! उनके हृदयदौर्बल्य की दुश्चिन्ता से तुम अपने-आपको अकारण अवसन्न मत करो।"

"मेरा अन्तर आक्रोश कर रहा है कि इस नाटक में वृज्जिसंघ का अकल्याण निहित है।"

आर्यश्रेष्ठ ने राजकुमारी के अवनत शिर का, अपने करतल से, स्नेहस्पर्श किया। फिर वे, अपने आसन से उत्थान करते हुए, पुलोमजा से बोले : "पुत्रिके ! लिच्छवि-गण जब तक यह अभिनय देखने की अभिलाषा व्यक्त करते रहें, तब तक तुम अवश्य उनका मनोरञ्जन करती रहना।"

पुलोमजा ने, एक विजयोन्मत्त दृष्टि से राजकुमारी की भर्त्सना करने का प्रयास किया। किन्तु राजकुमारी का ध्यान अन्यत्र था। उन्होंने पुलोमजा का वक्ष-विस्फारण लक्ष्य नहीं किया।

: ४ :

अनंगरेखा का अभिनय एक मास तक चलता रहा। वैशाली के अधिकांश अभिजात लिच्छवि-गण ने नवागत नर्तकी का नृत्यनैपुण्य

निहारा। स्त्री पुरुष, तरुण, वृद्ध सबने पुलोमजा की प्रशंसा की।

लिच्छवि मानस में, शनै-शनै, देवी आम्रपाली की स्मृति जागृत होने लगी। आर्यावर्त की अग्रगण्य गणिका थी देवी आम्रपाली। वृज्जि-संघ की विभूति। वैशाली का वैभव। गणिकालय के निकट से गमनागमन करते हुए अनेक लिच्छवि अपने हृदय में एक अव्यक्त व्यथा का अनुभव करने लगे।

वह गणिकालय, एक दिन, वैशाली के लिच्छवि-गण के लिए नन्दन-कानन को भी विनिन्दित किया करता। हरीतिमा के कारण हृदयहारी हुआ करता गणिकालय के प्रमदोद्यान का प्रान्त-प्रान्त। विटप-वृक्ष एवं लता-वितान से विकीर्ण प्रमदोद्यान की पुष्करिणी मे पञ्च प्रकार के पद्म प्रफुल्लित हुआ करते। क्रीडाशैलों पर, किशोरियो की करतलध्वनि के साथ, नर्तन किया करते मत्त मयूर। समुद्रगृहो में, गणिकालय का रमणी-समवाय लिच्छवि तरुणों के साथ नित्यनवीन प्रणयनाट्य रचा करता। धारायन्त्रों तथा सुरभित सुरा के पात्रों से समुत्थित सुगन्धोच्छ्वास नवप्रसून की पराग-गन्ध को पराभूत कर देता था। प्रासाद के प्रत्येक पार्श्व में, गवाक्ष-गवाक्ष, वातायन-वातायन से निर्गत हुआ करता नूपुर, काञ्ची, वलय तथा केयूर का किंकिणि-स्वप्न। रात-रात भर अनवरत रहने वाले उत्सव के उपलक्ष्य में गीत, वाद्य तथा नृत्य की स्वरनिर्झरी निरन्तर झरा करती।

आज वह सब नहीं था। आज वह सब एक बीती बात थी। अतीत की अवास्तव स्मृतिमात्र। आज, वैशाली के वास्तुहृदय में उन्नतशीर्ष होकर भी, देवी आम्रपाली का गणिकालय सर्वथा शून्य और शीर्ण था।

उपवन की धरा धूलिधूसरित हो गई थी। लता-वितान विलुप्त। विटप-वृन्द विकृतकाय। पादपमाला अस्थि-पञ्जर-शेष। पुष्करिणी का पयस्तल शैवाल से श्यामल था। क्रीडाशैल पर क्रन्दन कर रहे थे काक एवं कपोत। समुद्रगृह शुष्क हो चुके थे। धारायन्त्र ध्वस्त। मदिरा के महार्घ पात्र पुनरेण मृत्तिका में परिणत। निबिड नीहार से कृष्णकाय प्रासाद के हर्म्यतल से, कृष्णपक्ष की निशीथिनी में, उलूक का निर्मम निनाद उठने लगा था।

लिच्छवि-लिच्छवि के मन में एक ही प्रश्न प्रत्युत्थापित हुआ। क्या देवी आम्रपाली के गणिकालय को पुनरेण गन्धर्व-गृह में परिणत नहीं किया जा सकता ?

प्रश्न का प्रत्युत्तर दिया पुलोमजा ने : "अवश्य किया जा सकता है, सौम्य ! वैशाली में देवी आम्रपाली का पुनरागमन सर्वथा सम्भव है, आर्य ! वृज्जिसंघ अब मगध के साथ युद्धरत नहीं रहा। पाटलिग्राम के लिच्छवि दुर्ग में अब लिच्छवि सुभट-समवाय का बलिदान वाञ्छनीय नहीं। अब, प्राची के प्रांगण में, सर्वत्र ही शान्ति का साम्राज्य है। और उस शान्ति में कान्ति बनकर अवतरित हुई है, आर्यावर्त की अद्वितीय अभिसारिका, अनंगरेखा।

"लिच्छवि-गण के लिए यह अनार्य अनाचार होगा कि वे अनंगरेखा के आह्वान को अस्वीकार करें। लिच्छवि-गण का प्रथम कर्त्तव्य है कि वे गणिकालय के अनपावृत कपाट, तुरन्त ही, अपावृत करें। युद्धकाल में सर्वथा क्षम्य संयम की शृङ्खला अब छिन्न-विच्छिन्न होनी चाहिए।

"मानव इसलिए इस धरा पर देह धारण नहीं करता कि वह, वारवारण की कारा में कुण्ठित होकर, अकाल-मृत्यु का वरण करे। धरा पर सर्वत्र विपुल वैभव है। उपभोग के अनन्त उपकरण। सुरा एवं अभिसार। गीत, वाद्य तथा नृत्य। शिल्प तथा कलाविनोद। मानव-जन्म को सार्थक करने के लिए यौवन-सुलभ सुख का उपभोग सर्वथा विहित है। और भगवान की दी हुई भोगभूमि को समरभूमि में परिणत करना अक्षम्य अपराध।"

वैशाली की वीथि-वीथि में एक उन्माद ने जन्म लिया। आवास-आवास में एक विवाद का विस्फोट होने लगा।

विदेश में शिक्षित-दीक्षित लिच्छवि तरुण तथा वृद्ध प्रस्ताव करने लगे कि अनंगरेखा को वैशाली के गणिकापद पर प्रतिष्ठित किया जाए। इस स्वधर्म-स्खलित लिच्छवि-वृन्द का समर्थन किया एक अन्य लिच्छवि-वृन्द ने, जो स्वदेश में जीवन-यापन करके भी, परम्परागत लिच्छवि-मर्यादा के प्रति, सहसा, संशयग्रस्त हो उठा था। अनंगरेखा के अभिनय ने लिच्छवि कूपमण्डूकों को भी परम्परा की कारा से प्रमुक्त कर दिया।

लिच्छवि वृद्ध-समाज के एक वर्ग ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। उनका मूल-मत यह था कि विदेश की नर्तकी वैशाली की गणिका नहीं बन सकती। पूज्य प्रवेणी-पुस्तक के विधानानुसार, वैशाली के गणिका-पद पर वही लिच्छवि-कुमारी प्रतिष्ठित हो सकती थी जिसके रूप पर मोहित होकर, एकाधिक लिच्छवि तरुण मरण-मारण के लिए तत्पर हो जाएँ। अलिच्छवि अंगना का गणिकालय-प्रवेश, वृज्जिसंघ की परम्परा में, सर्वथा निषिद्ध था।

अनंगरेखा के समर्थक लिच्छवि समवाय ने वृज्जिसंघ की इस पुरातन परम्परा को बर्बर-प्रथा के नाम से प्रख्यात किया। वे तर्क करने लगे कि किसी लिच्छवि ललना को, केवल उसके ललाम-लावण्य के कारण, ऐसा घोर दण्ड देना अन्याय है। अविचार और अनाचार भी। एक पुरातन परम्परा का अन्ध-अनुसरण करना, इस पक्ष के अभिमत में, अक्षम्य अपराध था। वैशाली के प्रति अपराध। लिच्छवि-वंश के प्रति अपराध। वृज्जिसंघ के प्रति भी। युगधर्म की अवहेलना करके, जराजीर्ण विधि-निषेध का यन्त्रवत् अनुष्ठान मानवबुद्धि का अपमान था। मानवबुद्धि, नित्यप्रति, नूतन की खोज करती है। पुरातन का परित्याग भी।

अनंगरेखा का विपक्षी-वर्ग कहने लगा कि वैशाली में गणिका की आवश्यकता नहीं है। समर्थक-वर्ग ने प्रत्युत्तर दिया कि गणिका के बिना वैशाली शिल्प-कला तथा सभ्यता-संस्कृति से विहीन रह जाएगी; लिच्छवि गण, समस्त आर्यावर्त में, व्रात्य ही कहलाते रहेंगे; वृज्जि महाजनपद, शिष्टजन के लिए सदा, वर्जित रहेगा।

विवाद के कारण व्युत्थापित आवेश ने, समय पाकर, राजप्रासाद में भी प्रवेश किया। वत्सला की एक विधवा भ्रातृजाया ने अनंगरेखा का पक्ष लिया।

अन्ततः विवाद ने पाटलिग्राम के लिच्छवि दुर्ग को भी आक्रान्त किया। अनेक लिच्छवि सुभट अनंगरेखा का समर्थन करने लगे।

दुर्गपाल अनिरुद्ध ने राजकुमारी वत्सला का स्मरण किया। वत्सला ने दुर्गपाल का। वे दोनों, अभी तक, मगध-विजय के स्वप्न देखने में मग्न थे।

आर्यश्रेष्ठ महाली ने, अकस्मात्, अत्यन्त रुग्ण होकर रोगशय्या का आश्रय लिया। विवाद की सूचना आर्यश्रेष्ठ को देकर, वत्सला उन्हें व्यथित करना नहीं चाहती थी।

अतएव, एक दिन, वत्सला के विश्वस्त दूत ने पाटलिग्राम जाकर, दुर्गपाल को संदेश दिया कि राजकुमारी उनके साथ किसी गम्भीर विषय पर परामर्श करना चाहती है। दुर्गपाल तुरन्त समझ गए कि राजकुमारी ने किस कारण उनको वैशाली में आमन्त्रित किया है।

: ५ :

दुर्गपाल ने वैशाली की प्रथम प्राचीर को पार किया तब उत्तर आषाढ़ का दिवस अवसान की ओर अग्रसर हो रहा था। उनकी इच्छा थी कि वे, किसी की दृष्टि अपनी ओर आकृष्ट किए बिना, अज्ञात रह कर, राजप्रासाद में पहुँच जाएँ। अतएव, उन्होंने अपना उष्णीष उतार कर, उत्तरीय से अपने उत्तमांग तथा मुखमण्डल का अधिकांश आवृत कर लिया। आज वे वैशाली में सर्वत्र-परिचित अपने काम्बोज पर आरूढ़ नहीं थे। आज एक साधारण सैन्धव ही उनका वहन कर रहा था।

किन्तु दुर्गपाल का मनोरथ सफल नहीं हुआ। शृंगाटक पर पहुँच कर उन्होंने देखा कि आर्य पद्मकीर्ति के प्रासाद-द्वार पर लिच्छवि-गण की एक सभा समाहूत है। सभा को सम्बोधित कर रही थी तोरण-द्वार के अट्टालक पर आरूढ़ पुलोमजा। नर्तकी अनंगरेखा को अपने पार्श्व में अवरूद्ध करके।

अनिरुद्ध, अपने छद्मवेश में ही, जन-समवाय के छोर पर रुक गए। सैन्धव से अवरोहण करके। पुलोमजा की वक्तृता पर विमुग्ध लिच्छवि-वृन्द में से किसी ने भी अनिरुद्ध को लक्ष्य नहीं किया।

पुलोमजा कह रही थी :

"वृज्जि महाजन पद की सीमाएँ मानव-संसार की सीमाएँ नहीं हैं। वृजिसंघ के विधान द्वारा प्रज्ञप्त-अप्रज्ञप्त आर्यमात्र के लिए प्रज्ञप्त-अप्रज्ञप्त नहीं हो सकता। लिच्छवि-वंश की परम्परा ही क्षत्रियवंश मात्र की प्रमाण-परम्परा नहीं। वैशाली का प्रताप ही प्रताप की पूर्ण पराकाष्ठा नहीं मानी जा सकती।

"वृज्जि महाजनपद के परे भी मानवजगत में अनेक महाजनपद हैं। वृज्जिसंघ के अतिरिक्त भी आर्यावर्त में अनेक राष्ट्र हैं। लिच्छवि-वंश के समकक्ष अनेक क्षत्रियवंश भी। वैशाली जैसी महानगरी, आर्यावर्त में, और भी अनेक है।

"तो फिर, हमारी दृष्टि, वृज्जि महाजनपद के क्षितिजकूल पर ही क्यों कुण्ठित हो जाए? एकमात्र वृज्जिसंघ में विहित आचार ही क्यों हमारे आचार की कषपट्टिका बने? एकमात्र लिच्छवि-परम्परा ही क्यों काल के अन्त तक हमारा पथ-प्रदर्शन करती रहे? हम क्यों बने रहें वैशाली के कूपमण्डूक?

"मैंने अपनी इन दो आँखों से आर्यावर्त का ओर-छोर देखा है। और देखा है, आर्यावर्त के परे, पारसीक देश। मैंने यवन-भूमि की भी यात्रा की है। मैं ही क्यों, आप में से अनेक लिच्छवि विदेश-भ्रमण कर चुके हैं। आप में से अनेकों ने, विदेश के विख्यात विद्यापीठों में, वत्सर उपरान्त वत्सर कालयापन करके, शिक्षोपार्जन किया है। आप ही साक्षी हैं कि मैं सत्य कह रही हूँ अथवा असत्य।"

पुलोमजा की वाग्धारा एक क्षण के लिए रुक गई। अनिरुद्ध को विश्वास नहीं हो रहा था कि ऐसी प्राञ्जल भाषा में युक्तितर्क का प्रवाह बहाने वाली वह पुलोमजा ही है। पुलोमजा से वह भली-भाँति परिचित थे। वे भली-भाँति जानते थे कि पुलोमजा, अपनी बुद्धि एवं वाक्-शक्ति के बल पर, चार पल से अधिक ऐसी भाषा का प्रयोग नहीं कर सकती। किसी भी प्रसंग पर युक्तितर्क प्रस्तुत करना तो पुलोमजा के लिए सर्वथा असम्भव था। दुर्गपाल, चिन्तित होकर, सोचने लगे कि पुलोमजा किसके पढ़ाए हुए पाठ की पुनरावृत्ति कर रही है।

पुलोमजा, पुनरेण, कहने लगी: "सुख एवं समृद्धि, सभ्यता एवं संस्कृति सौन्दर्य की उपासना, मानवोचित जीवन का उपभोग, धर्म का आचरण, ज्ञान की गवेषणा—क्या किसी दृष्टि से भी, कोई लिच्छवि आज अपनी जन्मभूमि वैशाली को आर्यावर्त में अग्रगण्य कह सकता है? यदि हमारी वैशाली, हमारा वृज्जिसंघ, हमारा लिच्छवि-वंश, हमारा वृज्जि महाजनपद, आज किसी दृष्टि से अग्रगण्य है तो किस दृष्टि से? मरण-मारण

की दृष्टि से। अनवरत रक्तपात में रत रहने की दृष्टि से। मानव और मानव के मध्य सतत विद्यमान सहज-सुलभ सौहार्द को, परस्पर कलह से कलुषित करने की दृष्टि से।

"हम नहीं जानते कि सुख से समृद्ध और शान्त जीवन कैसा होता है। हमें ज्ञात नहीं कि धन-धान्य से भरपूर राष्ट्र, किस प्रकार अपने जन-जीवन में रस एवं संस्कार का सतत संचय करते है। हमारी सभ्यता ग्राम्य है। संस्कृति के नाते हम पृथग्जन कहे जाते हैं। सौन्दर्य की उपासना तो दूर, सौन्दर्य के स्फुट संकेत को भी हम नहीं समझ सकते। मानवोचित जीवनचर्या हमने नहीं सीखी। धर्म का आचरण तथा ज्ञान की गवेषणा तो हम से कोसों दूर है। उस सबके लिए हमारे पास अवकाश ही कहाँ है ?

"तथागत ने वृज्जिसंघ में ही जन्म लिया था। किन्तु वे सम्यक् सम्बुद्ध हुए तब तक उनके पुण्यवान कुल, शाक्यगण, को वृज्जिसंघ से विलग हो जाने पर विवश होना पड़ा। मल्लगण को भी हम वृज्जिसंघ में नहीं रख सके। वैशाली से विरक्त होकर, कपिलवस्तु तथा कुशीनगर ने, भी मुख परावृत्त कर लिया।

"ऋषिपत्तन मृगदाव में धर्मचक्र-प्रवर्तन करने के उपरान्त, भगवान ने पैंतालीस वर्षावास किए। किन्तु वैशाली में उनके कितने वर्षावास हुए ? भगवान के महापरिनिर्वाण के अनन्तर, धर्मसंघ ने धर्म एवं विनय का संगायन किया। किन्तु धर्मसंघ की संगीति कहाँ सम्पन्न हुई ? भगवान के धर्मसंघ की सेवा का एक अपूर्व अवसर आया था। जिस समय कोसल का मदान्ध महीपति, भगवान के ज्ञातिबान्धवों का विध्वंस करने के लिए कटिबद्ध हुआ। किन्तु उस अवसर पर हमने धर्मसंघ की क्या सेवा की ?

"आपको स्मरण है कि महापरिनिर्वाण के कतिपय दिवस पूर्व तक, तथागत वैशाली में विद्यमान थे। फिर उन्होंने वैशाली में ही महापरिनिर्वाण को प्राप्त होना क्यों नहीं स्वीकार किया ? क्यों वे अपने जरा-जीर्ण तथा व्याधिशीर्ण शरीर का भार वहन करते हुए, यात्रा के अनेक कष्ट झेल कर, कुशीनगर की ओर गए ?

"आपको यह भी स्मरण है कि भगवान ने जिस समय, अन्तिम वार, वैशाली में पदार्पण किया, उस समय उन्होंने, वृज्जिसंघ के आर्यश्रेष्ठ महार्नी का नहीं, किसी महाभाग लिच्छवि का भी नहीं, गणिका आम्र-पाली का निमन्त्रण स्वीकार किया था। भगवान भगवान थे। उनका स्वभाव नहीं था कि मुख खोलकर किसी की भर्त्सना करते। किन्तु उनके आचरण ने उनके मानस का भाव व्यक्त कर दिया। वृज्जिसंघ के राजा की तुलना में गणिका का आतिथ्य ग्रहण करके वे सिंहनाद कर गए कि गणिका, किसी प्रकार भी. गर्हित नहीं। सर्वथा स्तुत्य ही है।

'आज वैशाली के कुछ कूपमण्डूक गणिका की विगर्हा करके नहीं अघाते। गणिका की उपलब्धि को उच्छृंखलता का नाम देकर, उसकी गुण-सम्पदा का उपहास करते हैं। किन्तु गणिका की विगर्हा भगवान की विगर्हा है; गणिका का उपहास......

अनिरुद्ध का आत्मसंयम, सहसा, अक्षुण्ण न रह सका। उनके मुख से, उच्चस्वर में, अनायास ही निकल गया : "यदि तुम गणिका-पद को इतना गौरवान्वित मानती हो तो तुम स्वयं उस पद पर शोभायमान क्यों नहीं हो जाती ? गणिकालय में गए विना भी तुम गणिका ही हो। तुमको अधिक......

पुलोमजा के श्रोतागण क्रोध से जल उठे। आर्य पद्मकीर्ति की पौत्री को किसी ने गणिका कहा था ! वह भी वैशाली के शृंगाटक पर !! आर्य पद्मकीर्ति के प्रासाद के समक्ष संरुद्ध होकर !!! अचिन्तनीय दुःसा-हस था यह। अक्षम्य अपराध। कोप के कारण आरक्त अनेक नयन, एक साथ अनिरुद्ध पर आविष्ट हो गए। अनेक कर, कटि में कर्षित कृपाण की करमुष्टि पर जा टिके। और अनेक कण्ठों ने एक साथ कोला-हल किया : "कौन है तू !!!"

दुर्गपाल ने, हँस कर, उत्तर दिया : "आपका ज्ञातिबन्धु। वैशाली का एक लिच्छवि।"

पुलोमजा ने उत्तेजित होकर कहा : "लिच्छवि ! मृषावाद है। वैशाली का लिच्छवि आर्य पद्मकीर्ति की पौत्री के प्रति इस प्रकार का अभद्र आचरण नहीं कर सकता।"

अनिरुद्ध ने आक्रोश किया : "मेरे जैसी पुंश्चली के प्रति जो भद्र व्यवहार करे उसको मैं लिच्छवि नहीं मानता।"

जनसमवाय चीत्कार करने लगा : "मारो ! मारो !!"

अनिरुद्ध ने, अपना उत्तरीय उतार कर, उष्णीष धारण किया। तब वे, शान्त स्वर में, बोले : "हाँ, मारो ! मुझको अवश्य मारो ! मैं भी अब जीवित रहने के लिए लालायित नहीं हूँ। जिस वैशाली में सन्निपात-भेरी का अवघोष ही परम-पुनीत स्वर था उसमें अब नर्तकी के नुपुर-स्वन की आराधना की जाएगी। जो लिच्छवि-गण शत्रु के शीश काट-काट कर रणचण्डिका का खप्पर आपूर्ण करते थे, वे अब सुरापूर्ण चषक हाथ में लेकर अपने वक्ष विस्फारित करेंगे। जिस वृज्जिसंघ के वज्र-आघात से आर्यावर्त का दिग्दिगन्त भयभीत रहा करता, वह अब गणिका की चरणसेवा में गौरव-बोध करेगा। ऐसी वैशाली में जीवन धारण करना, मेरे निकट नरकयातना से भी अधिक क्लेशकारी है। ऐसे लिच्छवि-गण के स्पर्शमात्र को मैं महापातक मानता हूँ। ऐसे वृज्जिसंघ के वाता-वरण में श्वासोच्छ्वास लेना, आत्महत्या से भी हीनतर है। मुझे मार दो। तुरन्त मार दो। पुलोमजा का पवित्र उपदेश सुन कर, आपको इस पुण्यकृत्य से वञ्चित रहना शोभा नहीं देता। वैशाली के लिच्छवि-वृन्द ! मेरे प्राणों का, इसी क्षण, हरण करो।"

लिच्छवि समवाय सन्न रह गया। अनेकों ने, लज्जित होकर, अपने शिर अवनत कर लिए। किसी को इतना साहस नहीं हुआ कि मुख से एक शब्द भी कह दे। दुर्गपाल की हुँकार सुन कर सब के हृदय प्रकम्पित हो उठे।

अनिरुद्ध ने देखा कि पुलोमजा, अट्टालक से अपसरण करके, अपने प्रासाद में चली गई है। उन्होंने भी, ग्लानि से विगलित होकर, अपने अश्व पर आरोहण किया। और दूसरे क्षण वे, लिच्छवि-गण की ओर अन्य दृष्टिपात किए बिना ही, राजप्रासाद की ओर चल पड़े।

राजकुमारी ने, अनिरुद्ध के आगमन का समाचार पाते ही, उनको तुरन्त अपने कक्ष में आमन्त्रित कर लिया। वार्तालाप आरम्भ हुआ, तब तक भी, अनिरुद्ध प्रकृतिस्थ नहीं हो पाए थे। उनको खिन्नमुख देख कर,

वत्सला ने पूछा : "दुर्गपाल ! आप तो अश्वश्रम से सर्वथा श्रान्त दीख पड़ते हैं।"

दुर्गपाल ने उत्तर दिया : "नहीं, राजकुमारि ! अश्वश्रम जिस दिन मुझको श्रान्त करने में समर्थ होगा, उस दिन आपको पाटलिग्राम में नवीन दुर्गपाल नियुक्त करना होगा।"

"तब ?"

"विशेष कुछ नहीं। मार्ग में पुलोमजा का उच्चाशय उपदेश श्रवण करके मेरी श्रोत्रवृत्ति कृतार्थ हो गई। अब अन्य कुछ श्रवण करने की अभिलाषा ही नहीं रही।"

वत्सला हँसने लगीं। फिर वे बोलीं : "उपदेश का श्रोता ही नवीन है, उपदेष्टा नहीं। वैशाली के शृङ्गाटक पर, अधुना, नित्यप्रति पुलोमजा के धर्मसंघ का सन्निपात होता है।"

अनिरुद्ध ने पूछा : "तो क्या आपने भी उसके शिक्षापदों का श्रवण किया है ?"

"उसके श्रीमुख से तो नहीं। किन्तु वैशाली के समस्त समाचार मेरे समीप संगृहीत होते रहते हैं। राजप्रासाद में भी पुलोमजा की एक उपासिका निवास करती है।"

"आपने उसका प्रतिरोध क्यों नहीं किया ?"

"प्रतिरोध करने का एक ही मार्ग है, दुर्गपाल ! मुझे भी, शृङ्गाटक पर संरूढ़ होकर, अपने धर्मसंघ का संग्रह करना पड़ेगा।"

"वैसा करने का परामर्श मैं आपको नहीं दूँगा। क्या कोई अन्य प्रतिकार नहीं है ?"

"मुझे ज्ञात नहीं। इसीलिए आपको आमन्त्रित किया है। अब आप ही प्रमाण हैं।"

दुर्गपाल ने कोई उत्तर नहीं दिया। उनकी समझ में ही नहीं आया कि वे क्या कहें। वैशाली में पदार्पण करने के पूर्व, उनको विदित नहीं था कि अनाचार का प्रचार इस प्रकार सम्पन्न हो रहा है। शृंगाटक पर पुलोमजा का प्रलाप सुनकर प्रचण्ड क्रोध से उनका मानस संतप्त हो गया था। किन्तु वे जानते थे कि क्रोध के द्वारा इस समस्या का समाधान

सम्भव नहीं। आज लिच्छवि-गण उनका रौद्र रूप देखकर, हठात्, हत-बुद्धि-से हो गए थे। किन्तु कौन कह सकता था कि वे नित्यप्रति, मौन रहकर, उनकी भर्त्सना सुनते रहेंगे? लिच्छवि-गण यदि तर्क करने के लिए तत्पर हो गए, तो क्या वे स्वयं भी उनके साथ तर्क करेंगे? और वे स्वयं यदि तर्क भी करने लगे, तो क्या पुलोमजा के प्रलाप का प्रत्युत्तर उनसे बन पड़ेगा? किन्तु वे तर्क करना नहीं जानते थे। तर्क करना उन्होंने सीखा ही नहीं था। वे युद्ध करना जानते थे। वृज्जिसंघ के स्वातन्त्र्य के लिए युद्ध। लिच्छवि-मर्यादा के लिए युद्ध। वैशाली के लिए...

अनिरुद्ध को किंकर्त्तव्यविमूढ़ देखकर वत्सला ने कहा: "आप मौन क्यों हो गए, दुर्गपाल! मैं तो आपसे पथप्रदर्शन की आशा किए बैठी हूँ।"

अनिरुद्ध ने उत्तर दिया: "आप परिहास मत कीजिए, राजकुमारि! यदि मेरे द्वारा किंचित् करणीय हो तो मुझे आदेश दीजिए, अन्यथा...

"अन्यथा?"

"मैं पाटलिग्राम लौट जाऊँगा। वहाँ का वातावरण ही मेरे लिए अधिक अनुकूल है। वैशाली में तो अब मेरे प्राण पसीजते हैं। लिच्छवि-गण का अधःपतन मुझसे नहीं देखा जाता।"

वत्सला मौन हो गई। अनिरुद्ध के आक्रोश में तथ्य था। वैशाली के नवीन वातावरण में स्वयं उनका भी श्वास रुद्ध होने लगा था।

दुर्गपाल ने प्रश्न किया: "आप आर्यश्रेष्ठ से क्यों नहीं कहतीं कि इस अनाचार का अवरोध करें? उनके आदेश को लिच्छवि-गण अमान्य नहीं करेंगे।"

वत्सला ने, आर्त होकर, उत्तर दिया: "यही तो आशंका है, दुर्गपाल! यदि लिच्छवि-गण ने आर्यश्रेष्ठ की अवहेलना की तो......

"तो वैशाली आपके निवास-योग्य स्थान नहीं रहेगा।"

"यह तो पलायन का परामर्श है।"

"पाप से पलायन करने में दोष क्या है, राजकुमारि!"

"किन्तु इस समय तो पाप को पराभूत करने का प्रसंग है।"

"उसका तो अन्य मार्ग अब नहीं रहा। यदि आर्यश्रेष्ठ ने लिच्छवि-

गण की भर्त्सना नहीं की तो लिच्छवि-गण, शीघ्र ही, हठकर बैठेंगे कि इस समस्या का समाधान परिषद के सन्निधान में होना चाहिए। और परिषद का निर्णय पाप के पक्ष में ही होगा।"

वत्सला, आपादमस्तक, काँप उठी। अनिरुद्ध ने कहा: "मैंने सत्य का साक्षात् करने में सकोच करना नहीं सीखा। मैं, जिस समय, समर-भूमि में सेना सजाता हूं तो यह सोचने में नहीं सकुचाता कि पराजय मेरे पक्ष की भी सम्भव है।"

वत्सला ने पूछा: "दुर्गपाल! यदि विपक्ष इतना प्रबल हो कि अपनी पराजय के प्रति सन्देह का स्थान ही न रह जाए, तो आप सन्धिविग्रह-महामात्य को क्या परामर्श देते है?"

अनिरुद्ध ने उत्तर दिया: "सन्धि का परामर्श, राजकुमारि!"

"तो इस प्रसंग मे भी आप वही परामर्श क्यों नही देते?"

"प्रतिपक्षी क्या इतना प्रबल है?"

"प्रतिपक्ष में यदि पुलोमजा ही होती तो उसको सबल मानने के लिए प्रमाण की आवश्यकता पड़ती। किन्तु पुलोमजा तो इस प्रसंग मे निमित्तमात्र है। पाला पड़ा है लिच्छवि-गण के पाशव-प्रवृत्ति-पुञ्ज से। पशुता को तो कोई परमपुरुष ही पराभूत कर सकता है।"

"लिच्छवि-गण में इस पशुता का प्रादुर्भाव क्योंकर हुआ?"

"यह विचार का विषय है, दुर्गपाल! विचार के लिए अवकाश चाहिए। इस समय तो अवकाश प्राप्त करने की समस्या है।"

"क्या आप पुलोमजा के साथ सन्धि करने की सोच रही हैं?"

"सोच तो रही हूँ। यदि आपको स्वीकार हो तो सन्धि सम्भव भी है।"

राजकुमारी, सहसा, अत्यन्त गम्भीर हो गई। उनके मुख पर न जाने कैसे एक विषाद की छाया अंकित होती जा रही थी। अनिरुद्ध ने, उनके मुखमण्डल पर अपनी दृष्टि निबद्ध, करके कहा: "आप आदेश दीजिए, राजकुमारि! मुझे क्या करना है?"

वत्सला ने, एक क्षण, निर्मम नयनों से अनिरुद्ध को निहारा। और फिर उन्होंने कह दिया: "पुलोमजा का पाणिग्रहण।"

अब की बार अनिरुद्ध, आपादमस्तक, सिहर उठे। किन्तु वत्सला ने उनकी विभीषिका को जैसे लक्ष्य ही नहीं किया। वे कहती रहीं : "पुलो-मजा आपसे प्रेम करती है। वह, आप की सहधर्मिणी बन कर, आपके धर्म का ही आचरण करेगी। वैशाली का वातावरण विषाक्त होने से बच जाएगा। लिच्छवि-गण लम्पटता की लाञ्छना से त्राण पा सकेंगे।"

अवनत-शिर अनिरुद्ध ने पूछा : "और यदि मुझको पुलोमजा के धर्म का आचरण करने लिए बाध्य होना पड़ा तो ?"

"वैसा क्यों होगा, दुर्गपाल ! आप पुरुष हैं, पुलोमजा नारी।"

"उसके शिक्षापदों का सश्रद्ध श्रवण करने वाले ये अन्य लिच्छवि क्या पुरुष नहीं है ?"

"किन्तु आप तो पुरुष श्रेष्ठ हैं, दुर्गपाल ! आपका अतिक्रमण पुलो-मजा नहीं कर पाएगी।"

दुर्गपाल हँसने लगे। वत्सला ने गम्भीर रह कर ही उनकी ओर देखा। तब दुर्गपाल बोले :

"पुलोमजा के विषय में आप विकट वितथ्य का प्रचार कर रही हैं, राजकुमारि ! पुलोमजा एक साधारण नारी नहीं है। वह भी नारी-रत्न है।"

दुर्गपाल के परिहास का उत्तर वत्सला ने नहीं दिया। वे एक, दीर्घ निश्वास छोड़ कर मौन हो गई।

एक क्षण के उपरान्त दुर्गपाल ने कहा : "आप आदेश दें तो मैं उसका पालन करूँगा, राजकुमारि !"

वत्सला बोली : "आदेश देने की न कहिए, दुर्गपाल ! मैं भला आप को आदेश किस प्रकार दे सकती हूँ ? आप वृज्जिसंघ के राजपुरुष है। और मैं......मैं तो कोई भी नहीं। मैं तो आपसे केवल अनुरोध ही कर सकती हूँ।"

"आपका अनुरोध मेरे लिए आदेश के समान है। किन्तु आदेश का अनुचरण करने के पूर्व मैं आपसे एक अधिकार की याचना करना चाहता हूँ।"

"कौन-सा अधिकार ?"

"अवकाश पाकर, जिस समय, आप इस समस्या का समाधान कर लें, तो मुझे माता जाह्नवी की जलधार में मग्न हो जाने की स्वतन्त्रता दे दें।"

वत्सला ने अपने पाणिपल्लव से अनिरुद्ध का वाणीद्वारा अवरुद्ध कर दिया। फिर वे, अपना मुख परावृत्त करके, अपने नयनों में आसन्न अश्रु-प्लावन को प्रतिषिद्ध करने का प्रयत्न करने लगीं। कक्ष का कोना-कोना एक असीम विकलता से विह्वल हो गया। कुछ क्षण तक, वे दोनों मौन बैठे रहे।

प्रकृतिस्थ होकर, वत्सला अनिरुद्ध की ओर अभिमुख हुईं। और, अपने अधरों को स्मित-सिक्त करके, वे, आर्द्रकण्ठ से बोलीं: "आप पाटलिग्राम लौट जाइए, दुर्गपाल! इसी क्षण। वैशाली में आपका अव-स्थान अब प्रयोजनीय नहीं।"

: ६ :

वैशाली के संस्थागार में, आज, वृज्जिसंघ की परिषद का सन्निपात होगा। अनंगरेखा के विषय में व्युत्थापित विवाद का विनिश्चय करने के लिए।

आषाढ़-पूर्णिमा का अपराह्ण। राजप्रासाद में, आर्यश्रेष्ठ महाली संस्थागार की ओर प्रयाण करने के लिए प्रस्तुत हो रहे है।

प्रतिहारी ने, आर्यश्रेष्ठ के कक्ष में प्रवेश करके, सूचना दी कि लिच्छवि-वृद्ध आर्य सुनक्खत आर्यश्रेष्ठ से साक्षात् करने के लिए, कक्ष के द्वारदेश पर प्रतीक्षा कर रहे हैं। आर्यश्रेष्ठ के अन्तर में, अकस्मात्, एक आशा का आविर्भाव हुआ। वे जानते थे कि आर्य सुनक्खत कुमारी पुलो-मजा के पृष्ठपोषक है। सम्भव था कि वे कोई योजना लेकर आए हों, जिसका आश्रय लेकर, वैशाली को विवाद से विमुक्त किया जा सके। आर्यश्रेष्ठ ने प्रतिहारी को आदेश दिया कि वह आर्य सुनक्खत को, तुरन्त ही, उनके कक्ष में प्रविष्ट करे। फिर वे स्वयं एक आसन पर उपासीन हो गए।

सुनक्खत ने, कक्ष में आकर, आर्यश्रेष्ठ का अभिवादन किया। तदु-परान्त, आर्यश्रेष्ठ के अनुरोध से, आसन ग्रहण करते हुए वे बोले: "आर्य-

श्रेष्ठ ! वृज्जिसंघ का भविष्य आज आपके ऊपर निर्भर करता है।"

आर्यश्रेष्ठ ने कहा : "यह क्या कह रहे हो, सुनक्खत ! ऐसा दुर्दिन कभी न आए कि वृज्जिसंघ का भविष्य एक लिच्छवि पर निर्भर करने लगे।"

"किन्तु, दैवयोग से, वह दुर्दिन आज उपस्थित हो गया है।"

"क्यों, सुनक्खत ! वृज्जिसंघ की परिषद ने क्या संन्यास ले लिया ?"

"प्रस्तुत प्रसंग पर परिषद यदि पूर्णतया प्रमाण होती तो मैं ऐसी बात न कहता।"

"परिषद ही प्रमाण है, सुनक्खत ! परिषद के अतिरिक्त वृज्जिसंघ में अन्य कौन प्रमाण होगा !"

"वैशाली के लिच्छवि-वृन्द अब ऐसा नहीं मानते, आर्यश्रेष्ठ !"

"लिच्छवि-वृन्द किसको प्रमाण मानते है ?"

"राजकुमारी वत्सला को।"

"सुनक्खत !!!"

आर्यश्रेष्ठ क्षुब्ध हो गए। किन्तु सुनक्खत ने, किंचितमात्र भी अप्रतिभ हुए बिना, शान्त वाणी में कहा : "आर्यश्रेष्ठ ! मैं धृष्ठता करने के लिए राजप्रासाद में नहीं आया। मैं तो यही विश्वास लेकर आया हूँ कि वृज्जिसंघ के राजा, मेरी स्पष्टवादिता को धृष्ठता समझ कर, अग्राह्य नहीं करेंगे। किन्तु, सम्भवतः, मैंने राजा के विषय में भूल की है।"

आर्यश्रेष्ठ ने, अपने-आपको संयत करके, गम्भीर वाणी में पूछा : "वत्सला के विषय में ऐसे अपवाद का प्रसार किसने किया ?"

सुनक्खत ने उत्तर दिया : "यदि इस प्रसंग को परिषद् के मतामत तक परिसीमित रक्खा गया होता, तो राजकुमारी के विषय में कदाचित् ऐसा अपवाद प्रसार नहीं पाता। किन्तु मैंने सुना है कि परिषद का मत-संग्रह करने के पूर्व, आप पूज्य प्रवेणी-पुस्तक का अवलोकन करके, प्रसंग के प्रज्ञप्त अथवा अप्रज्ञप्त होने का निश्चय करेंगे।"

"यह सब तो परिषद की प्रणाली के अनुकूल ही है।"

"मैं जानता हूँ, आर्यश्रेष्ठ ! परिषद की प्रणाली से मेरा पुराना परिचय है। किन्तु लिच्छवि-वृन्द ऐसा नहीं मानते।"

' लिच्छवि-वृन्द क्या मानते है ?"

"वे कहते है कि राजकुमारी के अनुरोध पर ही आपने, परिषद के मतामत को अविधेय घोषित करने के लिए, इस मार्ग का अवलम्बन लिया है।"

"किन्तु कतिपय लिच्छवि-वृद्ध, इस प्रकार का प्रस्ताव लेकर, आज पूर्वाह्न में ही मेरे पास आए थे।"

"जनश्रुति है कि राजकुमारी के इंगित पर ही उन लिच्छवि-वृद्धों ने ऐसा किया है।"

"तुम्हारी दोनों बातों में साम्य नहीं है, सुनक्खत ! वत्सला ने मुझ से अनुरोध किया है अथवा लिच्छवि-वृद्धों से ? कौन सी बात सत्य है ?"

"मैंने, आपके सन्मुख, अपनी बात नही कही। मैं तो केवल जनश्रुति की बाते कह रहा था। आप जानते हैं कि जनमत से साम्य की अपेक्षा नहीं की सकती। किन्तु, सत्य कुछ भी हो, दोनों बातों का निष्कर्ष एक ही निकलता है। इतना तो निश्चित है कि आप पूज्य प्रवेणी-पुस्तक की शरण लेंगे।"

"यदि परिषद के किसी वृद्ध ने ऐसा प्रस्ताव किया तो, प्रणाली के अनुसार, मुझे पूज्य प्रवेणी-पुस्तक का अवलोकन करना ही होगा।"

आर्य सुनक्खत मौन रहे। आर्यश्रेष्ठ ने पूछा : "तुम्हारी शंका का समाधान हो गया, सुनक्खत !"

सुनक्खत ने उत्तर दिया : "ऐसा न कहिए, आर्यश्रेष्ठ ! मुझे कोई शंका ही नहीं थी कि मैं समाधान खोजता। मैं तो केवल यही कह रहा था कि वैशाली का जनमत सशंक है। और यदि......

सुनक्खत, अपनी बात को पूरा किए विना ही, कुछ भयभीत-से मौन हो गए। आर्यश्रेष्ठ ने अधीर होकर पूछा : "यदि क्या ? तुमने अपनी बात पूरी क्यों नही की ?"

सुनक्खत ने उत्तर दिया : "यदि आपने प्रस्तुत प्रसंग को अप्रज्ञप्त घोषित कर दिया तो जनमत को विश्वास हो जाएगा कि आपके विषय में वह सन्देह सर्वथा सत्य है।"

"कौनसा सन्देह ?"

"आर्यश्रेष्ठ ! किसी-किसी लिच्छवि का मत है कि आपके आदेश से ही राजकुमारी ने अनंगरेखा के प्रतिपक्ष को प्रोत्साहित किया है ।"

आर्यश्रेष्ठ ने प्रतिहारी को पुकारा । फिर वे सुनक्खत से बोले : "मैं अभी वत्सला को बुलाकर, तुम्हारे समक्ष ही, सत्यासत्य का प्रकाशन करूँगा ।"

सुनक्खत ने कहा : "नहीं, आर्यश्रेष्ठ ! उसकी आवश्यकता नहीं । मैं आपकी बात पर विश्वास करता हूँ, किन्तु......

प्रतिहारी को कक्ष में आते देख कर सुनक्खत मौन गए । आर्यश्रेष्ठ ने उनसे पूछा :

"किन्तु क्या ?"

"अब सत्यासत्य के अन्वेषण के लिए समय कहाँ है, आर्यश्रेष्ठ !"

आर्यश्रेष्ठ ने प्रतिहारी को लौटाते हुए पूछा : "तो फिर ?"

"मैं आप पर विश्वास करता हूँ । किन्तु जनमत आपके प्रति सशङ्क है ।"

"क्यों ?"

"जनश्रुति है कि राजकुमारी तथा दुर्गपाल अनिरुद्ध को, मागध दुर्ग के धर्षण का परामर्श देकर भी, आपने परिषद में यह स्वीकार नहीं किया ।"

"तुम क्या यह कहना चाहते हो कि मैंने परिषद में मिथ्याभाषण किया है ।"

"मैं तो आपको सत्यवक्ता ही मानता हूँ । किन्तु......

"जाने दो वह बात । मुझको यह बतलाओ कि इस प्रसंग का उस प्रसंग से क्या सम्बन्ध है ?"

"जनमत मान बैठा है कि आप पुनरेण परिषद में मिथ्याभाषण करेंगे ।"

आर्यश्रेष्ठ का अन्तर गहन ग्लानि से भर गया । एक क्षण मौन रह कर, वे जैसे अपने-आप से ही कहने लगे : "लिच्छवि-गण न जाने यह क्यों भूल जाते है कि राजा की कन्या होने के साथ-साथ वत्सला एक

वयप्राप्त लिच्छवि-दुहिता है। उसको, प्रत्येक प्रसंग पर, अपना मतामत प्रगट करने का पूर्ण अधिकार है।"

सुनक्खत बोले : "मैं आपकी बात समझता हूं। किन्तु लिच्छवि-गण न मानेंगे।"

"लिच्छवि-गण को मिथ्या के प्रति इतना आग्रह कब से हो गया, सुनक्खत !"

"आर्यश्रेष्ठ ! सत्य और मिथ्या के मध्य का अन्तर, कभी-कभी, इतना सूक्ष्म हो जाता है कि साधारण-बुद्धि मनुष्य उसे ग्रहण नहीं कर सकते।"

"मुझे ऐसी आशा नहीं थी कि लिच्छवि-गण ऐसी साधारण-बुद्धि का परिचय देंगे।

"यह दुःख का विषय है कि लिच्छवि-गण ने आपको निराश कर दिया। किन्तु, आर्यश्रेष्ठ ! आप आज लिच्छवि-गण को निराश न करें।"

"लिच्छवि-गण मुझसे क्या आशा करते हैं ?"

"यही कि अनंगरेखा के प्रसंग पर आप प्रज्ञप्त-अप्रज्ञप्त का विघ्न उपस्थित किए बिना ही, परिषद् में मतसंग्रह करें।"

"यह कैसे सम्भव है, सुनक्खत ! परिषद के किसी वृद्ध ने यदि प्रज्ञप्त-अप्रज्ञप्त का प्रश्न उपस्थित किया तो मुझे बाध्य होकर पूज्य प्रवेणी-पुस्तक की शरण लेनी होगी।"

"आवश्यकतानुसार आप पूज्य प्रवेणी-पुस्तक का अवलोकन अवश्य करें, आर्यश्रेष्ठ ! किन्तु प्रसंग को अप्रज्ञप्त घोषित न करें।"

"इस विषय में तो पूज्य प्रवेणी-पुस्तक ही प्रमाण है। पुस्तक में जो प्रज्ञप्त है उसको मैं प्रज्ञप्त घोषित करूँगा, जो अप्रज्ञप्त है उसको अप्रज्ञप्त।"

"पुस्तक में इस प्रसंग पर जो प्रस्थापना है, उसे परिषद का प्रत्येक वृद्ध जानता है। विवाद का विषय तो यह है कि वृज्जिसंघ के राजा उस प्रस्थापना का अर्थ क्या करेंगे।"

"यह कर्त्तव्य तो वृज्जिसंघ के राजा, युग-युग से, पूर्ण करते आये है। आज इस विषय में विवाद क्यों ?"

"इसलिए कि आज, लिच्छवि-गण वैशाली के गणिकालय को अशून्य करने के लिए अधीर हैं।"

आर्यश्रेष्ठ अपने आसन से उठकर खड़े गए। सुनक्खत के लिए यह मूक संकेत था कि उनके चले जाने का समय हो गया। किन्तु सुनक्खत अपने आसन पर उपासीन रहे। क्षणोपरान्त वे बोले : "आर्यश्रेष्ठ ! मैंने अपना कर्त्तव्य पूर्ण कर दिया। यदि आपका निर्णय अनंगरेखा के विपक्ष में रहा तो वैशाली में एक विभीषिका का जन्म अनिवार्य हो जाएगा।"

आर्यश्रेष्ठ ने, असहिष्णु होकर, पूछा : "कैसी विभीषिका ?"

"वह सब कहने के लिए आप मुझे बाध्य न करें।"

"सुनक्खत ! तुम मुझको भयभीत करने आए हो ! न जाने तुमने यह दुःसाहस किस प्रकार किया ! आज मैं परिषद के समक्ष तुम्हारी इस कुचेष्टा का प्रकाशन करूँगा।"

"आप सर्वथा समर्थ हैं, आर्यश्रेष्ठ ! आप वृज्जिसंघ के राजा हैं। और मैं एक नगण्य लिच्छवि-वृद्ध मात्र।"

आर्यश्रेष्ठ ने अपना मुख परावृत्त कर लिया। वे ऐसे हीन व्यंग का उत्तर देना अपना अपमान मानते थे।

सुनक्खत, उत्थान करके, द्वार की ओर अग्रसर हुए। किन्तु निष्क्रमण के पूर्व, एक क्षण रुक कर, उन्होंने कहा : "आर्यश्रेष्ठ ! मैं आपको भयभीत करने नहीं आया था। मैं स्वयं भयभीत होकर, आपसे परित्राण पाने की आशा कर रहा था। मुझे भय है कि नर्तकी अनंगरेखा यदि वैशाली के गणिका पद पर प्रतिष्ठित नहीं हुई तो वह पद किसी अन्य लिच्छवि दुहिता को सुशोभित न करना पड़ जाए। और वह लिच्छवि दुहिता......

सुनक्खत, अपनी बात पूरी न करके, बाहर जाने लगे। आर्यश्रेष्ठ ने, उनको रोक कर, प्रश्न-सूचक स्वर में, उनका अन्तिम वाक्य दोहराया : "और वह लिच्छवि दुहिता ?"

सुनक्खत ने वाग्बाण का विमोचन कर दिया : "राजकुमारी वत्सला भी हो सकती है।"

आर्यश्रेष्ठ का शरीर जुगुप्सा से कण्टकित हो गया। सुनक्खत जैसे नीच व्यक्ति से वे और बात करना नहीं चाहते थे। उन्होंने पुनरेण अपना मुख परावृत्त कर लिया।

किन्तु सुनक्खत, दो पद प्रत्यागत होकर, संवेदना-पूर्ण वाणी में कहने लगे : "आर्यश्रेष्ठ ! मैं आपका हितचिंतक ही हूँ। इसीलिए आपके पास आया हूँ। इसीलिए आपकी अवहेलना सहन करता रहा हूँ। आप वृज्जिसंघ की पुरातन परम्परा से अनभिज्ञ नहीं। आम्रपाली के विषय में वह दुःखद काण्ड आपके जीवनकाल में ही घटित हुआ था। राजकुमारी वत्सला भी असाधारण सुन्दरी हैं। यदि एकाधिक लिच्छवि तरुण राजकुमारी के लिए मरण-मारण पर तत्पर हो गए तो वैशाली में प्रलय हो जायगी। मैं राजकुमारी को गणिकालय में देखना नहीं चाहता। उसके पूर्व मैं आत्महत्या कर लूँगा।"

आर्यश्रेष्ठ ने एक बार भी सुनक्खत की ओर नहीं देखा। न मुख से एक शब्द कहा। उनको आत्मसंयम करने में बाधा को बोध हो रहा था। उनके कराग्रों को, सहसा, कर्कश होते देखकर सुनक्खत समझ गए कि अब वहाँ रुकना उचित नहीं। वे चले गए।

किन्तु सुनक्खत के शब्दों ने आर्यश्रेष्ठ का हृदय उद्वेलित कर दिया था। वे जानते थे कि, पूज्य प्रवेणी-पुस्तक के विधानानुसार, यदि किसी लिच्छवि तरुणी के कारण लिच्छवि तरुणों में कलह उत्पन्न हो जाए, तो उस तरुणी को वैशाली की गणिका बनना पड़ता है। और उनके मानस में, बारम्बार, यह आशङ्का उठने लगी कि जो लिच्छवि तरुण आज एक अज्ञातकुलशीला नर्तकी के लिए लिच्छवि-परम्परा से परांगमुख होने के लिए प्रस्तुत हैं, वे कल वत्सला को गणिकालय के गर्त में गिराने के लिए भी कटिबद्ध हो सकते हैं। वैशाली के लिच्छवि-गण को, अकस्मात्, न जाने क्या हो गया था। किन्तु कुछ हो गया था अवश्य। अन्यथा एक ऐसे पाप-प्रसंग को लेकर, वृज्जिसंघ की परिषद को यह विडम्बना सहन नहीं करनी पड़ती।

वृज्जिसंघ के भविष्य के प्रति आशङ्का से आतङ्कित आर्यश्रेष्ठ महाली को यह स्मरण ही नहीं रहा कि उनको संस्थागार में जाना है। वे, चिंता-

निमग्न होकर, अपने कक्ष में, इतस्ततः पदचार करने लगे।

वत्सला ने कक्ष में प्रवेश करके कहा : "पिताजी ! द्वार पर रथ प्रस्तुत है।"

आर्यश्रेष्ठ ने, निर्निमेष नयनों से, दुहिता के देहभार पर दृष्टिपात किया। उस दिन तक, पिता ने कभी भी पुत्री की रूपयौवन-सम्पदा को नहीं देखा था। वत्सला, सर्वदैव, उनके निकट एक अबोध शिशु के समान रही थीं। आज प्रथमवार आर्यश्रेष्ठ ने राजकुमारी को देखा। और देखते ही उनका हृदय त्राहि-त्राहि करने लगा।

वत्सला साधारण तरुणी नहीं थीं। उनका रूप वैशाली में अप्रतिम था। और उस रूप को उद्दाम यौवन ने उत्कीर्ण किया था। जैसे तडित्पात के साथ झञ्झा का झोंका हो ! राजकुमारी का वर्ण किंचित श्यामल-द्युति था। उन्होंने, चित्र-विचित्र वेशभूषा अथवा प्रसाधन-द्रव्य के प्रयोग से, अपने सौन्दर्य को चमत्कृत करने की चेष्टा नहीं की थी। किन्तु उस सौन्दर्य में इतना सामर्थ्य था कि वैशाली में आग लगा दे। उस यौवन में इतना ज्वार था कि चाहे जिसका संयम भंग कर दे।

आर्यश्रेष्ठ के हृदय में एक टीस-सी उठी। उनका रोम-रोम एक अगाध व्यथा से व्याप्त हो गया। हा हन्त ! वत्सला ने इतना रूप क्यों पाया ? और क्यों चढ़ा इस सौन्दर्य पर इस उद्दाम यौवन का उभार। कुरूपा क्यों न हुई वत्सला ? असमय में ही विगतयौवना। पिता का वात्सल्य वत्सला को प्रत्येक अवस्था में प्राप्त हो जाता। किन्तु इस दुर्निवार दुर्दैव का......

पिता को अपनी ओर एक अभूतपूर्व भंगी से देखते हुए देख कर वत्सला विचलित हो गईं। उन्होंने, असमञ्जस में पड़ कर, पूछा : "पिताजी ! आप क्या देख रहे है ?"

आर्यश्रेष्ठ ने, आर्द्र कण्ठ से, उत्तर दिया :

"तुमको, वत्से ! तुमको देख रहा हूँ।"

"मुझे तो आप नित्यप्रति देखते हैं।"

"नहीं। इसके पूर्व मैंने कभी तुमको नहीं देखा। आज सर्वप्रथम देख रहा हूँ।"

वत्सला, पिता की बात सुनकर, किंचित चिन्तित हो गई। उन्होंने पूछा : "आपका चित्त तो प्रसन्न है ?"

आर्यश्रेष्ठ ने उत्तर दिया : "मैं सर्वथा प्रकृतिस्थ हूँ।"

"तो आइए, आपको रथारूढ़ करा आती हूँ। संस्थागार में जाने का समय हो गया।"

राजप्रासाद के द्वार पर आकर, आर्यश्रेष्ठ ने अपने रथ पर आरोहण किया। किन्तु सारथि ने अश्वद्वय की रश्मि को विकर्षित करने के लिए हाथ ऊपर उठाया तो उन्होंने उससे कहा : "सौम्य ! रथ को तनिक रोक लो।"

द्वार पर संरूढ़ वत्सला ने, प्रश्नसूचक दृष्टि से, पिता की ओर देखा। आर्यश्रेष्ठ ने अपना भुजद्वय प्रसारित करके कहा : "वत्से ! आज तुम मेरे साथ चलो।"

वत्सला, विस्मित होकर, बोलीं : "किन्तु संस्थागार में स्त्री का प्रवेश निषिद्ध है, पिताजी !"

"मुझको संस्थागार के द्वार पर छोड़ कर चली आना। तुम्हारे साथ दो बातें करने की उत्कट इच्छा हो रही है।"

राजकुमारी ने, एक वार, अपनी वेश-भूषा पर दृष्टिपात किया। राजप्रासाद से बाहर जाने के योग्य नहीं थी वह वेषभूषा। किन्तु पिता का आग्रह तथा समय का अभाव जानकर वे, इतस्ततः किए बिना ही, पिता के पार्श्व में उपासीन हो गईं। रथ राजपथ की ओर चल पड़ा।

आर्यश्रेष्ठ ने, तर्जनी से वत्सला की चिबुक उन्नमित करके, पूछा : "वत्से ! तुम विवाह कब करोगी ?"

वत्सला इस प्रश्न के लिए सर्वथा अप्रस्तुत थीं। इस विषय में कभी कुछ सोचा ही नहीं था उन्होंने। उनके मुख से केवल इतना ही निकला : "विवाह !"

"अब तुम किशोरी नहीं रहीं। तरुणी हो गई हो।"

"आपकी दृष्टि में भी ?"

"हाँ।"

"तो क्या हुआ ?"

"तुम्हारा विवाह जब तक नहीं होता तब तक मुझे चिन्ता रहेगी।"

"यह तो आप नई बात कह रहे है, पिताजी ! लिच्छवि दुहिता के विवाह को लेकर लिच्छवि पिता कभी चिन्तित नहीं होते।"

"वैशाली में अब नई बातें ही होने लगी है।"

राजकुमारी ने, अविलम्ब, यह अनुमान लगा लिया कि आर्यश्रेष्ठ किसी विषाद से ग्रस्त हैं। किन्तु विषाद का विषय वे नहीं समझ पाई। उन्होंने अनेकानेक विकट परिस्थितियों में पिता को देखा था। वे घोर से घोरतम संकट के समय भी विचलित नहीं होते थे। हृदय में सब के लिए सौहार्द, बुद्धि में विश्वास तथा मुख पर मुस्कान लेकर ही वे प्रत्येक परिस्थिति का सामना किया करते थे। किसी भी अवस्था मे अवसन्न होना उन्होंने नही सीखा था। आज, सहसा, न जाने उनको क्या हो गया था।

राजकीय चिन्ता के विषय मे पिता से प्रश्न पूछना राजकुमारी की शिक्षा के विरुद्ध था। यदि आर्यश्रेष्ठ उनको कोई आदेश देते थे तो वे प्राणपण से उसका पालन करती थीं। किसी प्रसग पर उनका परामर्श माँगा जाता था तो वे, स्पष्ट शब्दों में, अपना अभिमत व्यक्त कर देती थीं। किन्तु इससे अधिक कुछ नहीं। अपनी ओर से किसी प्रकार की जिज्ञासा प्रगट करना उनके लिए अचिन्तनीय था। अतएव वे, मौन होकर, उदासीन रहीं।

राजपथ निस्तब्ध था। लिच्छवि-गण, दल पर दल, संस्थागार की ओर जा चुके थे। उस नीरवता को भंग करते हुए, आर्यश्रेष्ठ ने वत्सला से पूछा : "वत्से ! अनिरुद्ध का क्या मत है ?"

वत्सला ने प्रतिप्रश्न किया : "किस विषय में, पिताजी !"

"तुम्हारे साथ विवाह करने के विषय में।"

वत्सला ने, व्रीडाभिभूत होकर, अपना शिर अवनत कर लिया। उनके मुखमण्डल पर लालिमा की एक लहर खेल गई। ललाट पर ललकने लगे कतिपय स्वेदबिन्दु।

वे मन-ही-मन सोचने लगीं : "पिताजी को यह कैसे ज्ञात हुआ कि मैं दुर्गपाल से प्रेम करती हूँ ? मैंने कभी इस विषय में कोई इङ्गित मात्र भी नहीं किया। मेरा विवाह दुर्गपाल से ही होगा, यह निश्चित है।

किन्तु वह दिन अभी दूर है। दुर्गपाल स्वयं भी सम्भवतः मेरे मानस की मूक स्पृहा से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। वैशाली में कोई भी नहीं जानता मेरे मूक प्रणय की कहानी। तो फिर पिताजी ने यह प्रश्न क्यों पूछा ?"

राजकुमारी को मौन देखकर, आर्यश्रेष्ठ ने उनके शिर का स्नेहस्पर्श किया। फिर वे बोले : 'मेरी बात का उत्तर नहीं दिया, वत्से !"

वत्सला ने कहा : "आप दुर्गपाल से पूछ लीजिए।"

"तो तुम अनिरुद्ध को स्वीकार करती हो ?"

आर्यश्रेष्ठ के मुख से सुख की एक निश्वास निकल गई। जैसे उनके शिर पर आई कोई विभीषिका विदूरित हो गई हो।

वत्सला के कपोलों पर लाज की लालिमा लुकछिप कर रही थी। और उनकी देहलता पर प्रस्फुटित हो रहे थे अगणित पुलक-प्रसून।

पिता एवं पुत्री में और वार्त्तालाप न हो सका। रथ संस्थागार के सम्मुख पहुँच चुका था।

वत्सला ने देखा कि, शृङ्गाटक पर सम्भूत होकर, लिच्छवि-गण का अपार जनसमवाय कोलाहल कर रहा है। जनसमवाय की उन्नमित दृष्टि आर्य पद्मकीर्ति के प्रासाद पर निविष्ट थी। वहाँ तोरण-द्वार के अट्टालक पर, अनंगरेखा को अपने पार्श्व में लेकर खड़ी पुलोमजा, मन्द-मन्द मुस्करा रही थी।

: ६ :

राज्यासन पर उदासीन होते ही आर्यश्रेष्ठ महाली को आभास हुआ कि संस्थागार के वातास में विक्षोभ-सा व्याप्त है। वे, संस्थागार में, अनेक वर्ष व्यतीत कर चुके थे। न जाने कितने क्षुद्र एवं गम्भीर प्रसंगों पर परस्पर परामर्श करते हुए लिच्छवि-वृद्धों को उन्होंने, वारम्वार, दृष्टिगत किया था। किन्तु आज के समान अस्थिरता का अनुभव उन्होंने, इसके पूर्व, कभी नहीं किया था। समस्त विषयों पर सर्वथा शान्त रहकर परामर्श करने के लिए ही, वृज्जिसंघ की यह पूज्य परिषद प्रसिद्ध थी।

एक क्षण, आर्यश्रेष्ठ महाली के मानस में संशय उठा कि वह विक्षोभ, बाह्य वातावरण में न होकर, उनके अपने अन्तर में विद्यमान है। वे स्वयं वृज्जिसंघ के भविष्य की दुश्चिन्ता से दुःखित थे। वे स्वयं लिच्छवि-गण

को पतनोन्मुख पाकर त्रस्त थे। वे स्वयं ही वत्सला के शिर पर आसन्न विभीषिका का विचार करके विकल थे।

किन्तु, दूसरे क्षण, उनको विश्वास हो गया कि बाह्य वातावरण में भी विक्षोभ विद्यमान है। वृद्ध-वृन्द के मुख का अवलोकन करके उन्होंने देखा कि वे सब विपन्न-से, व्यथित-से, विधुन्वित-से उदासीन हैं। आर्य-श्रेष्ठ को अपनी ओर दृष्टिपात करते देखकर अनेक वृद्धों ने अपने शिर अवनत कर लिए।

आज के सन्निपात में आर्य रत्नकीर्ति नहीं आए थे। एक अन्य महा-मात्य ने, आर्यश्रेष्ठ के समीप आकर, उनको सूचित किया कि आर्य रत्न-कीर्ति, किंचित् रुग्ण होने के कारण, अपने प्रासाद में विश्राम कर रहे है। आर्यश्रेष्ठ को आश्चर्य ही हुआ। पूर्वाह्न के समय ही तो आर्य रत्न-कीर्ति, राजप्रासाद में आकर, उनसे मिले थे। उन दोनों में, नर्तकी अनंग-रेखा के विषय में, विशद वार्त्तालाप भी हुआ था। आर्य रत्नकीर्ति इस प्रसंग के प्रति उदासीन थे। आर्यश्रेष्ठ ने. अनंगरेखा को गणिका-पद पर प्रतिष्ठित करने के विषय में, अपनी अरुचि से आर्य रत्नकीर्ति को सम्यक् सूचित किया था। रत्नकीर्ति को अनुपस्थित पाकर आर्यश्रेष्ठ को किंचित् मानसक्लेश सहन करना पड़ा। उनका विश्वास था कि रत्नकीर्ति यदि संस्थागार में उपस्थित होते तो वे उनके दुर्वह भार का एक अंश वहन करते। अष्टकुलिक के किसी अन्य महामात्य पर आर्यश्रेष्ठ की वैसी आस्था नहीं थी।

गणपूरक ने अपनी गणना समाप्त करके परिषद को प्रज्ञापित किया कि संस्थागार का प्रत्येक आसन अशून्य है। आर्यश्रेष्ठ महाली ने परिषद की ओर दृष्टिपात किया। वे लिच्छवि वृद्धों से मूक अनुरोध कर रहे थे कि जिसकी इच्छा हो वह, परिषद के समक्ष, कर्मवाचन करे।

तब आर्य सुनक्खत ने, अपने आसन से उत्थान करके, परिषद को सम्बोधित किया : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। यदि परिषद उचित काल समझे तो परिषद, वैशाली में सम्प्रति वर्तमाना, अप्रतिम-रूप-यौवन-गुण-सम्पन्ना, विज्ञात-गीत-वाद्य-नृत्य-नैपुण्या, शाक्य-दुहिता अनङ्गरेखा को वैशाली के गणिका-पद पर प्रतिष्ठित करे। यह

ज्ञप्ति है।"

आर्यश्रेष्ठ महाली ने, दृष्टि प्रसारित करके, परिषद को प्रज्ञापित किया कि किसी लिच्छवि-वृद्ध को ज्ञप्ति के द्वारा प्रस्तुत कर्म के प्रति आपत्ति हो तो वे निवेदन करें। कुछ क्षण तक, किसी लिच्छवि वृद्ध ने अपने आसन से उत्थान नहीं किया। आर्यश्रेष्ठ आश्वस्त-से होने लगे कि संकट टल गया।

उनकी आँखें परिषद के लिच्छवि वृद्धों पर आविष्ट थीं। किन्तु उनका ध्यान अपने अन्तर्मानस में आबद्ध था। वहाँ पर, वत्सला की विपन्न मुखाकृति मानो आर्तनाद कर रही थी कि आसन्न विभीषिका से मेरा परित्राण कीजिए।

आर्यश्रेष्ठ को वत्सला के परित्राण का एक ही पथ दिखलाई दिया। नर्तकी अनंगरेखा को वैशाली के गणिकालय में प्रतिष्ठित करना। अविलम्ब। किसी भी बाधा से विमूढ़ हुए बिना। वे, उसी पथ से, पुत्री का परित्राण करने के लिए व्यग्र हो उठे।

सुनक्खत ने परिषद से निवेदन किया : "आर्यश्रेष्ठ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। यदि परिषद उचित समझे तो परिषद इस कर्म को ज्ञप्ति-द्वितीय कर्म विहित करे। जिस आर्य को यह स्वीकार हो वे मौन रहें, जिस आर्य को यह स्वीकार न हो वे बोलें।"

आर्यश्रेष्ठ का अन्तर, सुनक्खत के प्रति कृतज्ञता से भर गया। उनकी भी यही इच्छा थी कि यथाशीघ्र इस कर्म की समापना हो। कर्म के ज्ञप्ति-चतुर्थ होने से सम्भावना थी कि परिषद के एकाधिक वृद्ध उसका विरोध करते। विरोध के कारण विलम्ब सम्भव था। और विलम्ब......

किन्तु, इसी समय लिच्छवि-वृद्ध आर्य भद्रसाल ने उत्थान करके कहा : "आर्यश्रेष्ठ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। मेरे मत में, परिषद के समक्ष प्रस्तुत कर्म पूज्य प्रवेणी-पुस्तक द्वारा अप्रज्ञप्त होने के कारण परिषद के लिए अकरणीय है।"

आर्यश्रेष्ठ महाली को जिस बाधा का भय था वही आ उपस्थित हुई। वे विषण्ण होकर परिषद की ओर देखने लगे। लिच्छवि-वृद्ध कोलाहल कर रहे थे। कोई कह रहा था कि कर्म प्रज्ञप्त है, कोई कह रहा था

अप्रज्ञप्त है ।

सुनक्खत ने परिषद को सम्बोधित किया : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे । यदि परिषद उचित समझे तो परिषद, प्रस्तुत कर्म के विषय में प्रज्ञप्त-अप्रज्ञप्त से अवगत होने के लिए लिए, आर्यश्रेष्ठ महाली से अनुरोध करे कि वे, पूज्य प्रवेणी-पुस्तक का अवलोकन करके, एतद्-विषयक विधान से परिषद को प्रज्ञापित करें ।"

परिषद ने मौन रहकर स्वीकार किया । तब मूर्छायमान-से आर्यश्रेष्ठ महाली, राज्यासन से उत्थान करके, प्रवेणी-पुस्तक की ओर अग्रसर हुए । उनका पादद्वय प्रकम्पित था । हृदय उद्वेलित । दृष्टि तिमिराच्छन्न ।

कुछ क्षण तक, प्रकम्पित अङ्गुलियों से प्रवेणी-पुस्तक के पृष्ठ पलट कर, आर्यश्रेष्ठ महाली ने परिषद को प्रज्ञापित किया : "आर्यवृन्द ! पूज्य प्रवेणी-पुस्तक के द्वाविंशति पर्व के त्रयत्रिंशति परिच्छेद की चतुर्चत्वारिंशत गाथा के अनुसार, यदि किसी लिच्छवि कुमारी के रूपवैभव से विमूढ़ हो कर, एकाधिक लिच्छवि पुरुष परस्पर मरण-मारण के लिए उद्यत हो जाएँ तो उस कुमारी को, गणभोग्या बनकर, वैशाली के गणिकालय में प्रवेश करना होता है ।"

प्रवेणी-पुस्तक को वस्त्राच्छादित करके, आर्यश्रेष्ठ महाली राज्यासन की ओर लौट आए । संस्थागार में पुनः कोलाहल होने लगा । आर्यश्रेष्ठ, राज्यासन पर उपासीन होकर, परिषद की ओर देखने लगे ।

तब आर्य भद्रसाल ने कहा : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे । मेरे मत में, पूज्य प्रवेणी-पुस्तक के पावन विधानानुसार, प्रस्तुत कर्म अप्रज्ञप्त एवं परिषद के लिए सर्वथा अकरणीय है । नर्तकी अनंगरेखा लिच्छविकुमारी नहीं, अज्ञातकुलशीला विदेशिनी हैं । वह वैशाली के गणिका-पद पर प्रतिष्ठित नहीं हो सकती ।"

आर्यश्रेष्ठ का हृदय, शूलविद्ध-सा होकर, रुदन करने लगा । यदि अनंगरेखा ने गणिका-पद प्राप्त नहीं किया तो वह पद वत्सला को......

सुनक्खत बोले : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे । मेरे मत में, पूज्य प्रवेणी-पुस्तक का यह पावन विधान, केवल विडम्बना-

अस्तु लिच्छवि कुमारी के प्रसंग में ही प्रजप्त एवं अप्रजप्त की प्रस्थापना करता है। किसी अन्य रूप-यौवन-गुण-सम्पन्ना सुन्दरी को वैशाली की गणिका घोषित करने के विषय में, इस विधान को निषेधात्मक मानना उचित नहीं।"

भद्रसाल ने उत्तर दिया : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। पूज्य प्रवेणी-पुस्तक की प्रस्थापना से यह ज्ञात हो जाने पर कि वैशाली की गणिका कौन स्त्री, किस अवस्था में बन सकती है, उपसिद्धि स्पष्ट है कि उस विशेष परिस्थिति के उपस्थित हुए बिना वैशाली की गणिका बनाने का प्रसंग ही उत्थापित नहीं होता। अतएव पूज्य प्रवेणी-पुस्तक का यह पावन विधान, प्रस्तुत कर्म के विषय में, नितान्तरूपेण निषेधात्मक है।"

सुनक्खत ने कहा : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। पूज्य प्रवेणी पुस्तक के किसी विधान को लेकर कोई विवाद उपस्थित होने पर, वृज्जिसंघ के राजा उस विधान का विनिश्चय करते हैं। यदि परिषद उचित समझे तो परिषद आर्यश्रेष्ठ महाली से अनुरोध करे कि वे इस विधान का विनिश्चय करके, परिषद में उत्थापित विवाद का उपशमन करें।"

परिषद ने, मौन रहकर, सुनक्खत का निवेदन स्वीकार किया।

और आर्यश्रेष्ठ महाली के मुख से, अनायास ही, ये शब्द निर्गत हो गए : "आर्यवृन्द ! मैं पूज्य प्रवेणी-पुस्तक के इस पावन विधान को, परिषद के समक्ष प्रस्तुत कर्म के विषय में, निषेधात्मक नहीं मानता। परिषद उचित समझे तो परिषद आर्य सुनक्खत को अनुज्ञा दे कि वे इस के विषय में प्रतिज्ञा का अनुश्रावण करें।"

परिषद ने मौन रहकर स्वीकार किया। सुनक्खत ने, मुस्कराकर, एक बार आर्यश्रेष्ठ की ओर देखा और फिर विजयगर्वित दृष्टि से परिषद की ओर। तब वे बोले : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। परिषद वैशाली में सम्प्रति वर्तमाना, अप्रतिम-रूप-यौवन-गुण-सम्पन्ना, विज्ञात-गीत-वाद्य-नृत्य-नैपुण्या, शाक्यदुहिता अनंगरेखा को वैशाली के गणिका पद पर प्रतिष्ठित करती है। जिस आर्य को यह स्वीकार हो वे

मौन रहें, जिस आर्य को यह स्वीकार नहीं हो, वे बोलें।"

भद्रसाल ने कहा : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। अनंगरेखा के विषय में, वैशाली के लिच्छवि-वृन्द वैशाली की वीथि-वीथि में, आवास-आवास में, दिन-प्रतिदिन, मास-प्रति-मास, अनवरत विवाद कर चुके हैं। परिषद के समक्ष उस समस्त मतामत की पुनरावृत्ति करना वाञ्छनीय नहीं। उससे परिषद में रोष की सृष्टि होगी। निश्चय नहीं हो सकेगा। दूसरी ओर, परिषद में अनेक लिच्छवि-वृद्ध ऐसे हैं जो, मौन रह कर, प्रस्तुत प्रतिज्ञा को स्वीकार नहीं कर सकते। अतएव यदि परिषद उचित समझे तो परिषद, इस प्रतिज्ञा के विषय में, शलाकाग्रहण द्वारा छन्दसंग्रह करे।"

आर्य सुनक्खत ने भद्रसाल का समर्थन किया। वे बोले : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। यदि परिषद उचित समझे तो परिषद गूढ़-शलाका-ग्रहण द्वारा प्रस्तुत प्रतिज्ञा के विषय में छन्दसंग्रह करे।"

भद्रसाल ने गूढ़-शलाका-ग्रहण का विरोध किया। वे कहने लगे : "आर्य-श्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। परिषद में अनेक लिच्छवि-वृद्ध ऐसे हैं जो, मन-ही-मन प्रस्तुत प्रतिज्ञा को स्वीकार करते हुए भी, प्रकाश रूप से, उसका समर्थन नहीं करेंगे। वृज्जिसंघ की परम्परा के अनुसार, लिच्छवि-वृद्ध का सत्य मत उसे ही माना जाता है जिसे वह वृद्ध प्रकाश रूप से प्रज्ञापित करने के लिए प्रस्तुत हो। अतएव, परिषद यदि उचित समझे तो परिषद विवृतक-शलाका-ग्रहण द्वारा प्रस्तुत प्रतिज्ञा के विषय में छन्द-संग्रह करे।"

सुनक्खत बोले : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। वृज्जिसंघ की परम्परा के अनुसार, लिच्छवि-वृद्ध का सत्य मत वही माना जाना चाहिए जिसे उस वृद्ध का अन्तःकरण पूर्णरूपेण स्वीकार करे। उस मत के विरुद्ध किसी मत को अभिव्यक्त करना मिथ्याचार है। किसी-किसी विशेष परिस्थिति में, यदि किसी लिच्छवि-वृद्ध के लिए अपने सत्य मत का प्रकाशन सम्भव न हो तो उस वृद्ध को सत्य के अव-लम्बन का अवसर अवश्य मिलना चाहिए। अतएव, प्रस्तुत प्रतिज्ञा के विषय में, गूढ़-शलाका-ग्रहण ही वाञ्छनीय है। विवृतक-शलाका-ग्रहण

से तो शलाका-ग्रहण का मूल प्रयोजन ही निष्फल हो जाएगा।"

एक अन्य लिच्छवि-वृद्ध ने, अपने आसन से उत्थान करके, आर्य-श्रेष्ठ महाली को सम्बोधित किया : "आर्यश्रेष्ठ ! परिषद शलाका-ग्रहण के विषय में आपका मत जानना चाहती है।"

आर्यश्रेष्ठ ने सुनक्खत की ओर देखा। सुनक्खत मुस्कराने लगे। तब आर्यश्रेष्ठ के मुख से, अनायास ही, ये शब्द निर्गत हुए : "आर्यवृन्द ! मेरे मत में गूढ़-शलाका-ग्रहण ही वाञ्छनीय है।"

आर्य भद्रसाल, हतप्रभ-से, अपने आसन पर उपासीन हो गए। आर्य-श्रेष्ठ का अप्रत्याशित आचरण उनकी बुद्धि के लिए, अकस्मात् ही, अगम्य हो गया। पूर्वाह्न में, जिस समय उन्होंने आर्यश्रेष्ठ से संलाप किया था, तब आर्यश्रेष्ठ का निश्चित मत था कि अनङ्गरेखा को वैशाली की गणिका बनाना लिच्छवि-गण के लिए घोर अनाचार होगा। किन्तु संस्थागार में पदार्पण करने के उपरान्त, आर्यश्रेष्ठ का आचरण, अनवरत, आर्य सुन-क्खत के अनुकूल रहा। इस मत-परिवर्तन का कारण न जानकर, आर्य भद्रसाल किंकर्तव्य-विमूढ हो गए। तदुपरान्त उन्होंने, मुख खोलकर, एक शब्द भी नहीं कहा।

शलाका-ग्राहापक ने शलाका-पेटिका को, राज्यासन के सम्मुख रखी पीठिका पर से उठाकर, संस्थागार के एक पार्श्व में विनिर्मित गूढ़-शलाका-ग्रहण-गृह में पहुँचा दिया। तदनन्तर लिच्छवि वृद्ध, एक के अनन्तर एक, कक्ष में प्रवेश करने लगे। प्रतिज्ञा के पक्षपाती वृद्ध श्वेत शलाका लेकर आए। विपक्षी वृद्ध कृष्ण शलाका। कक्ष से निष्क्रमण करते समय प्रत्येक वृद्ध की शलाका उनके उत्तरीय से आवृत थी।

शनैः-शनैः शलाका-ग्रहण सम्पूर्ण हुआ। शलाका-ग्राहापक ने, शलाका-पेटिका कक्ष में से लाकर, पुनः शिलासन पर स्थापित कर दी। आर्यश्रेष्ठ दत्तचित्त होकर, अवशिष्ट शलाकाओं की गणना करने लगे। और अन्त में, उन्होंने राज्यासन से उत्थान करके, परिषद को सम्बोधित किया :

"आर्यवृन्द ! परिषद द्वारा गृहीत श्वेत शलाका त्रयोविंशत्यधिक चतु-इशत है। कृष्ण शलाका चतुराशीत्यधिक द्विशत। परिषद ने प्रतिज्ञा को धारण किया है।"

परिषद विसर्जित होने लगी। संस्थागार से निष्क्रमण करने वाले वृद्धों के मुख से अनंगरेखा की विजय का प्रथम समाचार सुनकर, शृंगाटक पर समवेत लिच्छवि-समवाय जयघोष करने लगा।

सुनक्खत ने, राज्यासन के निकट आकर, आर्यश्रेष्ठ का अभिनन्दन किया। किन्तु आर्यश्रेष्ठ ने एक बार भी आँख उठाकर उनकी ओर नहीं देखा। केवल आर्यश्रेष्ठ के अधरोष्ठ जुगुप्सा से कुञ्चित हो गए।

मूर्च्छायमान आर्यश्रेष्ठ महाली ने, संस्थागार से निर्गत होकर, जिस समय अपने रथ पर आरोहण किया उस समय प्रदोष के प्रथम स्पर्श से शृंगाटक का अन्तरिक्ष कृष्णकाय होने लगा था। किन्तु उससे भी निबिडतर तिमिर आर्यश्रेष्ठ के अन्तर में घनीभूत होता जा रहा था।

जनसमवाय, अभी भी, आर्य पद्मकीर्ति के प्रासाद की ओर बद्धदृष्टि था। वहाँ तोरण-द्वार की अट्टालिका पर, नर्तकी अनंगरेखा को पार्श्व में लेकर खड़ी पुलोमजा अट्टहास कर रही थी। आर्यश्रेष्ठ की ओर देखने का अवकाश किसी लिच्छवि को नहीं मिला।

आर्य श्रेष्ठ महाली रथ पर उपासीन होते ही संज्ञा-विहीन हो गए। सारथि द्रुतवेग से रथ को प्रधावमान करता हुआ, उन्हें राजप्रासाद की ओर ले चला।

और उसी रात्रि के प्रथम याम में, आर्यश्रेष्ठ महाली ने अपने अश्रु-सिक्त नेत्र, लिच्छवि-गण की महानगरी के मालिन्य पर से अपसारित करके, सदा के लिए निमीलित कर लिए।

उत्तरार्ध

षष्ठ अंक

सूर्यास्त का समय। उत्तरपक्ष वैशाख के प्रतिपल प्रगाढ़तर होते हुए प्रदोष में, भागीरथी के पाटलिग्रामस्थ तीर्थ पर दण्डायमान तरुण शाक्य-श्रमण के काषायवस्त्र ग्रहण-ग्रस्त गभस्ति-से द्युतिमान हैं। श्रमण, अन्यान्य यात्रियों से अपसरित होकर, एक ओर खड़े हैं। पुण्यसलिला के वीचिविलास पर अपनी शान्त चितवन का सन्निवेश करके।

लिच्छवि दुर्ग की ओर से आगत एक मध्यवय सुभट ने, श्रमण के समीप आकर, बद्धाञ्जलि अभिवादन किया। श्रमण का आशीर्वाद पाकर, सुभट बोला : "भन्ते ! क्या आप भी, पारगमन के निमित्त, नौका की प्रतीक्षा कर रहे हैं ?"

श्रमण ने उत्तर दिया : "हाँ, सौम्य ! न जाने नौका के आने में इतना विलम्ब क्यों हो रहा है ? मैं सूर्यास्त से एक घटिका पूर्व यहाँ आया था। अभी तक नौका के आगमन का किंचित्मात्र आभास नहीं मिला।"

"भन्ते ! क्या आप प्रथम बार पाटलिग्राम के तीर्थ पर पधारे हैं ?"

"नहीं, सौम्य ! प्रथम बार तो नहीं। अनेक वर्ष के अनन्तर अवश्य। पाँच वर्ष पूर्व तो इस तीर्थ पर नौका मिलने में इतना विलम्ब नहीं होता था।"

सुभट हँसने लगा। किन्तु कुछ बोला नहीं। श्रमण ने, उत्सुक होकर पूछा : "तुम हँसे क्यों, सौम्य !"

सुभट ने उत्तर दिया : "भन्ते ! ऐसा प्रतीत होता है कि आपने आर्यश्रेष्ठ महाली के राजत्वकाल में इस तीर्थ से भागीरथी पार की थी। किन्तु अब तो वृज्जिसंघ के राज्यासन पर राजा रत्नकीर्ति विराजमान हैं। उनके राजत्व में प्रत्येक परम्परागत प्रथा परिवर्तित हो गई है।

अब वृज्जि महाजनपद में, समस्त कार्य सावकाश सम्पन्न होते हैं। त्वरा के लिए कोई भी तत्पर नहीं।"

सुभट के स्वर में व्यङ्ग था। उसकी अवहेलना करके, किन्तु प्रसंग को परिवर्तित किए बिना, श्रमण ने पूछा : "सौम्य ! वृज्जिसंघ में क्या नाविक नहीं रहे ? अथवा नौकाएँ नष्ट हो गई ?"

सुभट बोला : "भन्ते ! नाविक भी हैं और नौकाएँ भी। किन्तु निष्ठा नहीं रही। आप तो साधारण यात्रार्थी हैं। यदि वृज्जिसंघ की सेना को भी, मगधराज के सैन्य से सत्वर समर करने के लिए, इस पार उतरना हो तो भी वृज्जिसंघ की नौसेना को सावधान होते-होते, कई दिवस अतिवाहित हो जाएँ।"

श्रमण की उत्सुकता में और भी अभिवृद्धि हुई। प्रसंग को तनिक परिवर्तित करते हुए वे बोले : "सौम्य ! मैंने सुना है कि मगधराज की सेना को पाटलिग्राम में ही परास्त करने के लिए पाटलिग्राम का लिच्छवि दुर्ग ही पूर्णतया पर्याप्त है।"

सुभट ने कहा : "भन्ते ! पाटलिग्राम में अब लिच्छवि-गण का दुर्ग एक नहीं, दो हैं। किन्तु इष्टिका-समूह तथा पाषाण-शिला-पुञ्ज ही तो दुर्ग नहीं कहला सकता।"

"दुर्ग के लिच्छवि सुभट कहाँ गये ?"

"सुभट-समवाय के शरीर तो अब भी दुर्गद्वय के अभ्यन्तर ही अवस्थित हैं, भन्ते !"

"और उनका मन ?"

"मद्यपात्र में। नर्तकी के नखशिख में। द्यूतजनित विवाद और विद्वेष में। अब यदि मगधराज पाटलिग्राम के प्रति अभियान करें तो आर्य दुर्गपाल ही, एकाकी, राजगृह की ओर अभिमुख रहेंगे। लिच्छवि सुभट-समवाय तो, रणभेरी का अवघोष सुनते ही, शिर पर पाँव रखकर, वैशाली की ओर प्रधावमान हो जाएगा।"

श्रमण का मुख, सहसा, म्लान हो गया। एक क्षण मौन रहकर, उन्होंने सुभट को सम्बोधित किया : "सौम्य ! पाटलिग्राम के लिच्छवि दुर्गपाल कौन हैं ?"

सुभट ने उत्तर दिया : "आर्य अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र, भन्ते !"

"अनन्य वीर विदित होते हैं।"

"निःसन्देह, भन्ते ! आर्यश्रेष्ठ महाली के मरणोपरान्त, आर्य अनिरुद्ध के समान समरवीर, वृज्जिसंघ में, कोई दूसरा नहीं है।"

"दुर्गपाल किन्तु विलास-प्रिय प्रतीत होते हैं।"

सुभट का मुखमण्डल कठोर हो गया। मुखद्वार पर आई भर्त्सना को मुखरित होने से रोककर, वह असहिष्णु वाणी में बोला : "भन्ते ! आर्य अनिरुद्ध लिच्छविगण की पुरातन परम्परा के परमपूर्ण अनुयायी हैं। वे सुरा का स्पर्श भी नहीं करते। नर्तकी की ओर निहारना भी उनके निकट पातक है। द्यूतक्रीडा तो दूर की बात, वे पाशक से भी परिचित नहीं। आप, अज्ञानवश, आर्य अनिरुद्ध के प्रति अन्याय न करें।"

श्रमण ने हँसकर पूछा : "तो, सौम्य ! इसका अर्थ है कि पाटलिग्राम के लिच्छवि सुभट अपने नायक का नियन्त्रण मान्य नही करते।"

"मान्य करते थे किसी दिन। तब वृज्जिसंघ के राज्यासन पर आर्यश्रेष्ठ महाली आसीन थे, भन्ते ! उनके दिवंगत होते ही वृज्जिसंघ की नवीन राजकुमारी, पुलोमजा, ने एक दिन अकस्मात् पाटलिग्राम में पदार्पण किया। वे, लिच्छवि सुभट-समवाय को दुर्ग के प्राङ्गण में समवेत करके, कहने लगीं कि वृज्जिसंघ में युगपरिवर्तन हो चुका है; मगध के साथ युद्ध अब अतीत युग की कथामात्र है; भविष्य में शान्तिभङ्ग होने की आशङ्का अब नहीं रही; लिच्छवि सुभट-समवाय को अब अपने जीवन में रस का संचय तथा संस्कार की सृष्टि करनी चाहिए। राजकुमारी, यह सब कहकर, चली गई। दूसरे दिन, उनके द्वारा वैशाली से प्रेषित किये हुए सौरिक, अपने साथ एक सुन्दरी-समवाय को लेकर, दुर्ग-द्वय में आ जमे। तब से लेकर अद्यपर्यन्त, पाटलिग्राम के लिच्छवि सुभट निरन्तर अपने जीवन में रस का संचय तथा संस्कार की सृष्टि कर रहे हैं।"

"क्या वृज्जिसंघ की परिषद ने राजकुमारी की प्रेरणा का प्रत्याख्यान नहीं किया ?"

"परिषद में, अब पूर्व समय के समान, लिच्छवि-संस्कार-सम्पन्न

वृज्जिवृद्ध सन्निपात नहीं करते। राजा रत्नकीर्ति के निर्वाचित होते ही परिषद का भी नवसंस्कार हो गया। अब वैशाली का संस्थागार, विदेश में शिक्षित एवं लिच्छवि-संस्कार-शून्य कापुरुषों की क्रीड़ास्थली है। नर्तकी अनंगरेखा के पादाग्र का अहर्निश अवलेह करने वाले वे नाममात्र के वृज्जिवृद्ध, राजकुमारी पुलोमजा का प्रत्याख्यान किस प्रकार कर सकते हैं ?"

"तब तो दुर्गपाल के लिए यही उचित था कि वे अपने पद का परित्याग कर देते।"

"वह मैं नहीं जानता, भन्ते ! जनश्रुति है कि आर्य अनिरुद्ध, पद-त्याग करने का निश्चय करके, वृज्जिसंघ की भूतपूर्व राजकुमारी, वत्सला, से परामर्श करने के लिए, वैशाली गये थे। वत्सला ने उनको, अपने स्थान पर सावधान रहने का अनुरोध करके, पुनः पाटलिग्राम की ओर प्रेषित कर दिया। तब से वे सर्वथा मौन रहकर पाटलिग्राम में ही कालयापन कर रहे हैं।"

श्रमण मौन हो गए। लिच्छवि सुभट भी, कुछ क्षण उपरान्त, दुर्ग की ओर प्रत्यावर्तित हो गया।

तब, एक अन्य पुरुष ने, समीप आकर, श्रमण को सम्बोधित किया : "भन्ते ! आप क्या पारगमन के अभिप्राय से यहाँ उपस्थित हैं ?"

श्रमण ने उत्तर दिया : "हाँ, सौम्य ! किन्तु अब मुझे आशा नहीं कि नौका मिलेगी।"

"भन्ते ! यदि बाधा न हो तो आप हमारे यानपात्र को अपनी पद-रज से पवित्र कीजिए।"

श्रमण ने उस पुरुष को आपादमस्तक निहारा। वह वृज्जि महाजनपद का साधारण नौकाजीवी नहीं था। वृज्जि महाजनपद के नौकाजीवी शिशिर ऋतु में भी अधिकतर अर्धनग्न रहा करते थे। शैत्य में इतना सामर्थ्य नहीं था कि वह उन नौकाजीवियों के व्यायाम-बलिष्ठ, आतप-कृष्ण एवं कर्कश त्वचा-कवच का भेदन करता। किन्तु यह पुरुष तो निदाघ काल में भी कार्पासिक का कञ्चुक धारण किये हुए था। उसके पदत्राण-विहीन पाँव तथा उसका कृष्ण वर्ण दृष्टिगत करके ही श्रमण

ने अनुमान किया कि वह भी नौकाजीवी है।

श्रमण ने हँसकर कहा: "यानपात्र द्वारा यात्रा करने योग्य शुल्क शाक्यश्रमण के पास नहीं होता, सौम्य!"

पुरुष ने, विनीत वाणी में, कहा: "भन्ते! मैंने तो आपसे शुल्क की याचना नहीं की।"

"तुम नौकाजीवी हो, सौम्य! तुम्हारा यानपात्र तुम्हारे परिवार के भरणपोषण के लिए ही है। मैं धर्मसंघ का अकिञ्चन भिक्षु हूँ। मेरे लिए तो क्षुद्र नौका ही उपयुक्त होगी।"

"यानपात्र मेरा नहीं है, भन्ते! मैं इस योग्य कहाँ कि यानपात्र का क्रय कर सकूं। मैं तो एक अकिञ्चन अनुचर मात्र हूँ।"

"यानपात्र का स्वामी कौन है?"

"वृज्जिसंघ के राजा। मैं यानपात्र लेकर वैशाली की ओर प्रत्यावर्तन कर रहा था कि आपको देख पुण्यार्जन की अभीप्सा मेरे अन्तर में जाग उठी।"

"किन्तु यानपात्र पर कोई राजपुरुष यात्रा कर रहे होंगे?"

"नहीं, भन्ते! राजकुमारी पुलोमजा को चम्पा में छोड़कर यानपात्र रिक्त ही वैशाली की ओर लौट रहा है।"

"क्या राजकुमारी को प्रत्यावर्तन के निमित्त यानपात्र का प्रयोजन नहीं था?"

"भन्ते! वे स्थलपथ से राजगृह की ओर प्रयाण करेंगी। तदनन्तर, उनको पाटलिग्राम में आकर लिच्छवि सन्निवेश का निरीक्षण करना है। पाटलिग्राम में उनके आगमन की सूचना प्राप्त होते ही यह यानपात्र पुनः इस तीर पर प्रस्तुत हो जाएगा।"

"किन्तु, सौम्य! राजकुमारी द्वारा आमन्त्रित हुए बिना मैं, किस प्रकार, उनके यानपात्र पर पदार्पण करूँ! और तुम ही, स्वामिनी का स्पष्ट आदेश पाए बिना, किस प्रकार मुझको आमन्त्रित कर रहे हो?"

"भन्ते! राजकुमारी तो धर्मसंघ की अनन्य उपासिका हैं। उन्होंने अभी तक विवाह भी नहीं किया। जनश्रुति है कि धर्मसंघ में प्रव्रजित होने की आकांक्षा से ही वे गृहस्थ-जीवन अङ्गीकार करना नहीं चाहतीं।

उनके प्रत्येक अनुचर को उनका आदेश है कि वह जहाँ भी धर्मसंघ के श्रमण को देखे वहीं उनकी यथायोग्य सेवा करे।"

श्रमण स्तम्भित रह गए। अभी, कुछ क्षण पूर्व, लिच्छवि सुभट ने राजकुमारी के चरित्र का जो चित्र प्रस्तुत किया था उसकी तुलना में राजकुमारी का यह द्वितीय चित्र सर्वथा विपरीत था। धर्मसंघ की उपासिका भला किस प्रकार सुभट-समवाय को सुरा एवं सुन्दरी के उपभोग का उपदेश दे सकती थी? श्रमण कुछ भी नहीं समझ पाए। किन्तु यानपात्र द्वारा पारगमन का आमन्त्रण उन्होंने स्वीकार कर लिया।

नाविक का अनुसरण करते हुए श्रमण तीर्थ से कुछ दूर पूर्व की ओर गए। वहाँ एक यानपात्र, नदी-तीर से कुछ दूर अभ्यन्तर, जलधार पर प्लावमान था। विशालकाय यानपात्र। महार्घ काष्ठ से विनिर्मित। चित्र-विचित्र आलिम्पन तथा आलेख्य से चतुर्दिक चर्चित। वंशानुगत राज्यों के राजपुरुष अथवा ऐश्वर्यशाली कुलपुत्र, जलविहार के हेतु, इस प्रकार के यानपात्र का प्रयोग करते थे। श्रमण ने किसी लिच्छवि को, कभी भी इस प्रकार के यानपात्र पर नदी पार करते न देखा था, न सुना था।

श्रमण को लिच्छवि सुभट के शब्द स्मरण होने लगे : "उनके राजत्व में प्रत्येक परम्परागत प्रथा परिवर्तित हो गई है।" श्रमण का अपना अन्तर साक्ष्य देने लगा कि, अवश्य ही, प्रबल परिवर्तन हुआ है।

यानपात्र, एक द्विभूमि प्रासाद के सदृश था। नाविकों तथा अनुचरों के निवासयोग्य निम्नतल। वैहारिक उपकरणों से उत्फुल्ल उपरितल, जिसके तृतीयांश में एक हर्मिका प्रस्थापित थी तथा अवशेष अंश में एक प्रशस्त प्रांगण। हर्मिका का काष्ठकलेवर काञ्चन एवं रजत के तारों से खचित था। उसका एकमात्र द्वार प्रांगण की ओर अपावृत होता था। शेष तीन दिशाओं में दृष्टि प्रसार करने के लिए बने थे कतिपय वातायन और गवाक्ष। हर्मिका के गर्भ में कितने कक्ष हैं, यह अनुमान श्रमण नहीं कर पाए। किन्तु इतना वे तुरन्त समझ गए कि उन कक्षों में प्रसाधन तथा आमोद-प्रमोद के अनल्प साधन संगृहीत हैं।

हर्मिका की ओर दृष्टिपात करके, श्रमण तीर पर ही ठिठक गए। हर्मिका का द्वार अनपावृत था। नदी-तीर की ओर खुलने वाले वातायन

एवं गवाक्ष भी। किन्तु श्रमण को ऐसा आभास हुआ कि हर्मिका के गर्भ में कोई व्यक्ति विद्यमान है।

श्रमण को यानपात्र की ओर प्रधावित पुलिन पर पदार्पण न करते देखकर नाविक ने निवेदन किया : "भन्ते ! आइए। आप, उपरितल पर आरोहण करके, प्रांगण में आसन ग्रहण कीजिए।"

श्रमण ने प्रश्न किया : "सौम्य ! क्या तुम निश्चयपूर्वक जानते हो कि हर्मिका के भीतर कोई नहीं है ?"

"भन्ते ! इसके पूर्व ही मैं निवेदन कर चुका हूँ कि राजकुमारी ने चम्पानगरी में अवरोहण किया है। उनकी अनुपस्थिति में, अन्य कौन है जो हर्मिका में प्रवेश करे ?"

किसी के कथन पर अविश्वास करना श्रामण्य-धर्म के विरुद्ध है—यह विचार आते ही, श्रमण ने, मौन रहकर, पुलिन को पार किया और सोपान-श्रेणी का आरोहण करके, वे यानपात्र के उपरितल पर चले गए। प्रांगण की भूमि, हर्मिका से लेकर दूसरे प्रत्यन्त तक, एक महार्घ आस्तरण से आच्छादित थी। पार्श्व-द्वय पर प्रस्थापित थी एक प्रतनु परिवेष्टिनी। सुन्दर-सुन्दर स्वर्णिम काष्ठशलाकाओं से विरचित परिवेष्टिनी। प्रांगण के कोण-चतुष्टय पर दण्डायमान थे शुद्ध रजत के स्तम्भदण्ड, जिनके आधार पर, आवश्यकतानुसार, समस्त प्रांगण को वितानपट्ट से आवृत किया जा सकता था।

श्रमण ने, एक क्षण, हर्मिका की ओर दृष्टिपात किया। किन्तु, उस ओर से, किसी सूक्ष्म ध्वनि का आभास भी उन्हें उपलब्ध नहीं हुआ। तब वे, इतस्ततः दृष्टिपात किए बिना, प्रांगण के प्रत्यन्त में परिवेष्टिनी के आश्रय से अवस्थित पीठिका पर उपासीन हो गए। उनका पृष्ठ हर्मिका की ओर था और दृष्टि पूर्व दिशा की ओर प्रवाहित, जलधार पर।

दूसरे क्षण में श्रमण नेत्रोन्मीलन करके ध्यानस्थ हो गए। यानपात्र ने नदी-तीर का परित्याग करके पूर्व की ओर प्रस्थान किया। प्रथमतः मन्थरगति से। तदनन्तर उत्तरोत्तर द्रुततर। प्रदोष, धीरे-धीरे, गहन अन्धकार में परिणत होने लगा। किन्तु आकाश पर अवलम्बित चतुर्दशी का चन्द्रमा, अपनी ज्योत्स्ना के ज्वार से दिग्दिगन्त को देदीप्यमान करने

का दृढ़ मनोरथ धारण करके, अपनी पाण्डुर मुखच्छवि को प्रसाधित कर रहा था।

: २ :

श्रमण का ध्यान भंग हुआ तब यामिनी का प्रथम याम अतिवाहित-हो चुका था। निशाकर के कराग्र, आकाशपथ से अवतरण करके, यान-पात्र के प्रांगण को परिमार्जित कर रहे थे। अवनि-मण्डल के अन्त-प्रत्यन्त निस्सीम नीरवता में निमज्जित थे।

श्रमण ने, नेत्रोन्मीलन करके, एक बार अपने चारों ओर दृष्टिपात किया। तब वे, ससंभ्रम, उठकर खड़े हो गए। यानपात्र, अभी भी, भागीरथी के विशाल वक्ष पर प्रवाहमान था। गण्डकी की क्षुद्र-काय जलधार पर नहीं। दोनों ओर के तटप्रान्त पर किसी वसति का आभास उनको नहीं मिला। उनका मन कहने लगा कि यह तो, पाटलिग्राम से वैशाली की ओर जाने वाला, उनका पूर्वपरिचित जलपथ नहीं है। उनके अन्तर में किसी प्रवञ्चना की आशङ्का, अकस्मात् ही, अङ्कुरित होने लगी।

निम्नतल पर जाकर नाविक-गण से प्रश्न पूछने के उद्देश्य से, वे सोपान-श्रेणी की ओर अग्रसर हुए। किन्तु प्रांगण को पार करने के पूर्व ही, किसी कोकिल-कण्ठा के कूजित ने, हठात, उनको हतबुद्धि बना दिया। स्वर की स्वामिनी ने कहा था : "कहाँ जा रहे हो, उदय !"

श्रमण ने, चकित होकर, हर्मिका की ओर देखा। वहाँ, हर्मिकाद्वार की अवग्रहणी पर, अपावृत कपाट का अवलम्बन लेकर, शालभञ्जिका-सी शोभायमान थी एक अनिन्द्य सुन्दरी। उसको देखते ही श्रमण के मुख से, अनायास, निकल गया : "अनिले ! तुम !! यहाँ !!!"

सुन्दरी ने उत्तर दिया : "अनिला नहीं, उदय ! अनंगरेखा। अनिला मर गई। अनंगरेखा ने उसकी देह धारण की है।"

रूपवती रमणी ने, कङ्कण-स्वन को स्वरित करके, कपाट का अव-लम्बन त्याग दिया। फिर वह, नूपुरमाल को रणित करती हुई, अव-ग्रहणी का अतिक्रमण करने लगी। उसका भुजलता-द्वय अन्तरिक्ष में प्रसारित था। मानो वह, दूसरे क्षण में प्रधावमान होकर, श्रमण को अपने

आलिंगनपाश में आबद्ध कर लेगी।

श्रमण, एक क्षण मौन रहकर, भूमि-निविष्ट-दृष्टि खड़े रहे। फिर वे, प्रत्यावर्तन करके, पीठिका पर उपासीन हो गए। अनंगरेखा की ओर दृष्टिपात किए बिना ही, अवनत-मुख आयुष्मान उदय ने प्रश्न किया : "यह कैसा परिहास है, भगिनी!"

अनंगरेखा के मस्तक पर जैसे कोई प्रबल प्रहार पातित हुआ हो। वह प्रताड़ित-सी पीछे की ओर अपसरण करने लगी। उसकी करधनी में कंपित किङ्किणी-माल तथा पादपद्मद्वय पर पिहित नूपुर, करुण क्रन्दन-सा कर उठे। अपने दक्षिण पाणिपल्लव को निषेधात्मक मुद्रा में आकुंचित करती हुई अनंगरेखा बोली : "मुझ विरहिणी को भगिनी कह कर भग्नाश मत करो, उदय! अन्यथा मैं, इसी क्षण, भागीरथी की अतल-जलधार में अवस्कन्द करके आत्मघात कर लूँगी।"

श्रमण ने, अनंगरेखा की अनुनय को अस्वीकार करके, शान्त स्वर में पूछा : "भगिनि! मुझ जैसे अनागारिक भिक्षु को साथ लेकर तुम कहाँ जा रही हो?"

अनंगरेखा ने, श्रमण के निकट जाकर, उत्तर दिया : "विरहव्यथा से विकल हृदयसागर के तलदेश में प्रस्थापित है मेरा प्रणयप्रासाद। उस देश में, प्रणय को पराभूत करने वाला वंशाभिमान नहीं है। सौख्य की स्पृहा को संयम के शीकर से शीतल कर देने वाला श्रामण्य भी नहीं। वहाँ स्वाच्छन्द्य का निस्सीम साम्राज्य है। सौहार्द का निर्बाध नैखिल्य। तुम एक बार कह दो कि मेरे सहयात्री बनोगे। केवल एक बार हाँ कह दो, हृदयनाथ! केवल एक बार!"

नारी ने, भूमितल पर जानुद्वय निविष्ट करके, पुरुष से प्रणय की याचना की। किन्तु पुरुष ने विरक्ति से अपना मुख परावृत्त कर लिया। श्रमण के मुख से निकल गया : "शान्तं पापम्! शान्तं पापम्!!"

अनंगरेखा ने आहत-सी होकर उत्थान किया। नृत्य के नित्याभ्यस्त पदाघात से प्रांगण प्रतिध्वनित हो उठा। अन्तरिक्ष में एक आक्रोश-सा आप्लावित होने लगा।

माल्य, गन्ध एवं अंगराग के सौरभसार से आपूरित हो चले आयुष्मान उदय के नासिकारन्ध्र। किन्तु उन्होंने एक बार भी दृष्टि परावृत्त करके, नयन की कोर से भी, नयनाभिराम नतांगी को नहीं निहारा।

उपेक्षा के प्रहार से प्रकुपित नारी, अप्रतिहत पुरुष का आत्मसंयम देखकर, द्रवित हो गई। उसका कोकिलकण्ठ पुनरेण कूजित हुआ : "उदय! ज्योत्स्ना के ज्वार से जर्जरित अपनी विरहविदग्ध देह को, तुम्हारी चितवन के चन्दन में चर्चित करना चाहती हूँ। एक बार, अपना मुख मेरी ओर करके, मुझे देख लो। केवल एक बार मुझे देख लो, उदय!"

किन्तु आयुष्मान उदय अपने हठ पर अटल रहे। उनकी दृष्टि, अनंगरेखा की ओर परिसरण न करके, भागीरथी की जलधार पर आबद्ध हो गई।

अनंगरेखा ने अग्रसर होकर अभ्यर्थना की : "उदय! आविल जल के उस पार्थिव प्रसार में क्या देख रहे हो? एक बार, मेरे अन्तर में प्रवाहित प्रणय की पावन धार में भी नेत्र निमज्जित कर लो। केवल एक बार।"

प्रत्युत्तर में, आयुष्मान उदय ने अपने नेत्र निमीलित कर लिए।

परिचारिका ने, हर्मिका से निर्गत होकर, श्रमण की पीठिका से अनतिदूर एक आसन्दिका प्रस्थापित कर दी। अनंगरेखा का विकल कलेवर, छिन्नमूल पादप के समान, आसन्दिका पर आपातित हो गया। उसके पादपद्म श्रमण की ओर प्रसारित थे। देहयष्टि दूसरी ओर शायमान। उसका स्तनांशुक-शून्य तथा चन्दनानुलिप्त उत्तुंग पयोधर-द्वय, उत्तप्त उच्छ्वास से उत्तुंगतर होने लगा। अलस देह के असह्य भार से अवसन्न होने लगा कामिनी का कृश प्रयोदर-प्रान्त। महार्घ मसृण कौशेय की शुभ्रवर्ण शाटिका में से उभर आए उसके करभ-सन्निभ ऊरुयुगल। उसका एक पाणि-पल्लव, आसन्दिका पर अवस्थापित होकर, उसकी देहलता को बाहुलता का अवलम्बन प्रदान कर रहा था। और दूसरे पाणिपल्लव ने आवृत किया था अनंगरेखा का अश्रुविह्वल आननारविन्द।

यानपात्र का प्रान्त-प्रान्त परिपूर्ण नीरवता में निमज्जित था। नदी के उत्तरवर्ती तटप्रान्त से कभी-कभी उठने वाला शृगाल-वृन्द का विलाप, उस नीरवता को और भी प्रखर कर देता था।

यानपात्र, भागीरथी के जलप्रवाह पर पूर्वाभिमुख प्रयाणमान था। हिमकर का किरण-जाल, जलोर्मियों की दोला में दोलायमान होकर, श्रान्त-सा स्रोतस्विनी के क्रोड में शायमान होने लगा।

कुछ क्षण उपरान्त, प्रकृतिस्थ अनंगरेखा, अपने आसन से उत्थान करके, हर्मिका की ओर गई और एक दुकूल लेकर लौट आई। तब उसने पाषाण-प्रतिमा के समान स्थाणु श्रमण को सम्बोधित किया : "उदय ! वातास में शैत्य के शीकर स्फूर्त होने लगे हैं। अपने गात्रों को इस दुकूल से आच्छादित कर लो।"

अनंगरेखा का स्वर शान्त था। विनम्र और व्याकुल। आयुष्मान उदय ने भी शान्तभाव से उत्तर दिया : "नहीं, अनिले ! मेरे लिए मेरा उत्तरासंग पर्याप्त है। वरन् तुम्हारी विवस्त्र देह ही दुकूल से परावृत हो।"

"अहोभाग्य ! तुमने मेरे नाम का उच्चारण तो किया। और अपांग से ही क्यों न हो, मेरी ओर दृष्टिपात तो किया। किन्तु, उदय ! मुझको शीत का भय नहीं। तुम्हें शीत सता सकता है।"

"क्यों ?"

"तुम्हारे अन्तर में, संयम द्वारा सम्पन्न शैत्य, पहले से ही प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। मेरे अन्तर में आप्लावित है उत्कट माधुर्य की अमन्द ऊष्मा।"

"वासना का दाह माधुर्य नहीं होता।"

"यौवन जिसको माधुर्य कहकर जानता है, वार्धक्य उसी को वासना के नाम से विख्यात करता है।"

"नहीं, अनिले ! बुद्धि का दौर्बल्य, मन की लोलुपता तथा इन्द्रियवृन्द का उद्दाम विद्रोह, जब काव्य का कलेवर धारण करके प्रस्तुत होते हैं, तब वासना अपने-आपको माधुर्य कहकर अपना परिचय देती है।"

"वासना ही सही, उदय ! वासना की इतनी विपुल विगर्हा क्यों ?"

"इसलिए कि वासना प्राणी को परवश करती है। तब प्राणी पाप की ओर प्रवृत्त होता है। और पाप के प्रतिदिन परिवर्द्धित पुञ्ज से प्रच्छन्न होकर प्राणी एक दिन प्रणष्ट हो जाता है।"

"मरणधर्मा प्राणी समाप्त होने के लिए ही तो जन्म लेता है, देह धारण करता है।"

"नहीं, अनिले! प्राणी के देहधारण का प्रयोजन है अमृतत्व का अर्जन, असीम आनन्द की अभीप्सा। पाप के पङ्क मे प्रतिपल परिस्पन्दन करने के लिए प्राणी जन्म नहीं लेता।"

"पाप क्या है?"

"प्रवृत्ति के प्रति परायण रहना।"

"और पुण्य?"

"निवृत्ति द्वारा निर्वाण को प्राप्त होना।"

अनगरेखा मौन हो गई। एक क्षण तक कुछ चिन्तन करके वह बोली: "उदय! मै तुमसे शास्त्रार्थ करने के लिए तुमको अपने साथ नहीं लाई। मुझसे शास्त्रार्थ मत करो।"

आयुष्मान उदय ने पूछा: "तो उत्तर दो, अनिले! मुझसे तुम्हारा क्या प्रयोजन है?"

"मैंने तुमसे कहा तो था, उदय!"

"वह काव्य की कल्पना थी। मै सीधी भाषा को ही समझने का अभ्यासी हूँ।"

"मैं तुमसे प्रेम करती हूँ।"

"मै भी तुमसे प्रेम करता हूँ......

श्रमण के मुख से ये शब्द सुनकर अनगरेखा, अपना बाहुद्वय द्विधा करके, उनकी ओर अग्रसर हुई। उसकी आकाक्षा थी कि श्रमण को अपने आलिंगन मे आबद्ध करले। ये शब्द श्रवण करने के लिए न जाने कब से लालायित थी अनंगरेखा।

किन्तु श्रमण ने उसको उद्दाम आशा के उत्तुंग शिखर पर आरूढ होने का अवसर नही दिया। दूसरे ही क्षण, उन्होंने एक अन्य वाक्य का उच्चारण करके, उसको निराशा के गहन गर्त मे गिरा दिया। वे बोले: "मैं ससार के प्राणी मात्र से प्रेम करता हूँ, अनिले!"

श्रमण की प्रेमकथा का उत्तरार्द्ध सुनकर अनगरेखा के मुख से निकला: "ओ! निष्ठुर!! पाषाण!!!"

अनंगरेखा, अपना बाहुद्वय प्रसारित किए, पतझड़ के पत्रपुष्पविहीन पादप-सी प्रकम्पित खड़ी रह गई। आयुष्मान उदय की शान्त, गम्भीर मुखमुद्रा एक स्मित की सुधा से स्फीत हो चली।

श्रमण ने कहा : "नाविक को आदेश दे दो कि यानपात्र को पश्चिम की ओर प्रवाहित करे।"

अनंगरेखा ने, पदाघात करके, प्रत्युत्तर दिया : "यानपात्र पूर्व की ओर ही जाएगा।"

"तो मुझको उत्तरवर्ती तीर पर उतार दो। मैं वैशाली का पथ खोज लूँगा।"

"नहीं, तुमको मेरे साथ जाना होगा।"

"तुम्हारा गन्तव्य स्थान क्या है ?"

"मैं, तुमको साथ लेकर, महासागर के असीम अलिन्द पर, काल के अन्त तक अटन करती रहूँगी।"

आयुष्मान उदय मौन हो गए। अनंगरेखा, हर्मिका की ओर जाकर, मद्यभाण्ड एवं चषक ले आई। तब सुरभित सुरा से चषक को आपूरित करके, श्रमण की ओर बढ़ाती हुई वह बोली : "अधरमधु तो तुम्हारे भाग्य में नहीं है, उदय ! मधूकमधु का ही पान कर लो।"

श्रमण ने उत्तर दिया : "धर्मसंघ सुरापान का नितान्त निषेध करता है।"

"किन्तु यहाँ तो धर्मसंघ उपस्थित नहीं, उदय ! यहाँ मैं हूँ, और तुम। परिचारिका, अपने प्राणभय के कारण, यह सुसमाचार धर्मसंघ के स्थविर-समुदाय के समीप न ले जा सकेगी। मधूकमधु का पान कर लो, उदय !"

"मैं धर्मसंघ से भयभीत होकर मद्यपान से विरत नहीं हुआ, अनिले ! मैंने तथागत के धर्म-विनय को मनसा, वाचा, कर्मणा धारण किया है। धर्मसंघ द्वारा उपदिष्ट श्रामण्यधर्म में मेरी आस्था है।"

"सम्यक्। मधु का पान मत करो। किन्तु अपने अधरोष्ठ के ईषत् स्पर्श से मेरा पानपात्र पवित्र कर दो।"

"अपवित्र वस्तु कभी भी पवित्र नहीं हो सकती।"

अनंगरेखा ने, प्रकुपित होकर, पानपात्र को जाह्नवी की जलधार में परिक्षिप्त कर दिया। तब वह, अपने आसन से उत्थान करके, प्रांगण के उस पार दूसरे प्रत्यन्त-कोण पर आकर खड़ी हो गई। स्तम्भदण्ड का आश्रय लेकर। परिवेष्टिनी पर अपना एक पादपद्म प्रस्थापित करके।" प्रभञ्जन के प्रवाह में उसके वायपक्ष परिस्पन्दित होने लगे। और झर-झर गिरने लगा उसकी कवरी का कुसुमजाल।

अनेक क्षण अतिवाहित हो गए। आयुष्मान उदय ध्यानस्थ होने लगे। अनंगरेखा प्रकृतिस्थ। तब अनंगरेखा ने, श्रमण के समीप आकर, गम्भीर वाणी में कहा :

"उदय! तुमने मेरे साथ यह प्रवञ्चना क्यों की? क्या तुम हमारी प्रणयकथा का स्मरण नहीं कर पा रहे? क्या तुम्हारी स्मृति विभ्रष्ट हो गई?"

श्रमण ने उत्तर नहीं दिया। अनंगरेखा कहने लगी :

"मैं ही तुमको स्मरण करवाती हूँ। कपिलवस्तु की उस रिमझिम रात में, तुम तस्कर की नाईं तिरोहित रहकर, मेरे शयनकक्ष में प्रविष्ट हुए थे। तुमने, मेरा पाणिद्वय अपने पाणिपाश में लेकर, मेरा प्रणय प्राप्त करने की प्रार्थना की थी। तुमने मेरे पादद्वय पर अपना शिर अवनत कर दिया था। और तुम मुझको विरह की दुर्वह व्यथा देकर चले गए थे।

"मैंने तुम्हारे वचन पर विश्वास किया था। तुमने कहा था कि तुम अपने पिताजी से अनुज्ञा प्राप्त करके मेरा हरण करने आओगे। मैं, वंशाभिमानी शाक्यकुल की कुलपुत्री होकर भी, अपने कुलगौरव को कलुषित करने के लिए कटिबद्ध हो गई थी। मैंने यही श्रेयस्कर समझा था कि तुम्हारे लिच्छवि-कुल का गौरव गरिष्ठ रहे।

"अन्यथा तुम्हारी उस प्रणयोन्मादपूर्ण अवस्था में, मैं तुमको अपने साथ लेकर, कपिलवस्तु से पलायन कर सकती थी। उस ओर श्रावस्ती थी। वाराणसी और कौशाम्बी भी। आर्यावर्त का असीम प्रांगण मेरे लिए अपावृत था। जिस ओर मेरा मन मानता, उसी ओर तुमको ले जाकर मैं अपने अतृप्त यौवन को तृप्त कर सकती थी, तुम्हारे प्रणय का

प्रसाद पा सकती थी। तुम मुख खोल कर मेरी अवज्ञा नहीं करते। तुम काष्ठपुत्तलिका के समान मेरे संकेत-संकेत पर नर्तन करते।

"किन्तु मेरा प्रणय, पण्यविपणि में क्रीतविक्रीत कांचमणि के तुल्य कृत्रिम माणिक्य का मिथ्याचार नहीं था। मेरे प्रणय में आत्मबलिदान का बल था। ऐसे प्रणय के प्रति, तुमने इतना विकट विश्वासघात क्यों किया? उत्तर दो, उदय!"

अनङ्गरेखा ने, एक क्षण, मौन रहकर, श्रमण के मुख की ओर देखा। वे सर्वथा मूक उपासीन रहे। किन्तु उनकी दृष्टि अब अनङ्गरेखा की ओर थी। उनके नयन-कोरों में कारुण्य के अश्रुकण छलछलाने लगे थे।

अनङ्गरेखा फिर कहने लगी:

"वैशाली की ओर प्रस्थान करके तुम प्रत्यागत नहीं हुए, उदय! मैं प्रतिपल तुम्हारे प्रत्यावर्तन-पथ की ओर दृष्टिपात करती रह गई। दिन-प्रतिदिन, मास-प्रति-मास। मैंने, मृगया के मिष, अपने नगर से निष्क्रमण करके वैशाली जाने वाले पथ पर, योजन-योजन-भर, अपना अश्व प्रधावमान किया। इस प्रत्याशा से कि उस ओर से आते हुए तुमको हृदय से लगाकर अपने प्राणों का परित्राण कर पाऊँ। किन्तु तुम नहीं आए। तुम्हारा कोई समाचार भी नहीं आया।

"निराश होकर मैंने अपना विश्वासपात्र दूत वैशाली की ओर प्रेषित किया। वह भी तुमको वैशाली में नहीं देख पाया। वह कपिलवस्तु लौटा तो केवल इतना समाचार लेकर कि तुम, सहसा, धर्मसंघ में प्रव्रजित हो गए हो। मेरा मानस मृतप्राय हो गया, उदय! कैसा दुःसह दुःसमाचार था!

"मैं भी धर्मसंघ में प्रव्रजित हो जाती। मैं तुम्हारी सहधर्मिणी बन कर तुम्हारे पैतृक आवास में प्रवेश नहीं कर पाई थी। किन्तु मैं धर्मसंघ की विमल विनय से अनुशासित होकर तुम्हारे पथ की अनुगामिनी बन सकती थी। एक बार, उस पथ पर पदार्पण करने की उत्कट अभिलाषा ने मुझे अभिभूत भी किया था।

"किन्तु मेरे अन्तर में, धर्मसंघ के विरुद्ध न जाने कैसी दावानल-सी जल रही थी। धर्मसंघ ने मेरे मधुमास को पतझार में परिणत कर दिया

था। मैं धर्मसंघ को क्षमा न कर सकी......

आयुष्मान उदय ने, अपना दक्षिण हस्त उत्थापित करके, अश्रुसिक्त स्वर में कहा : "अनिले ! धर्मसंघ की निन्दा मत करो। तुम्हारा अपराधी मैं हूँ। तुम मेरी भर्त्सना करो। धर्मसंघ के प्रति तुम्हारी प्रतिहिंसा परित्याज्य है। धर्मसंघ ने तुम्हारे प्रति अपराध नहीं किया।"

अनंगरेखा ने, रुदन करके, पूछा : "किन्तु, उदय ! तुमने यह किया क्या ?"

'मैं सर्वथा विवश था, अनिले ! तुम्हारे साथ वचनबद्ध होकर गया तो मैं, पिताजी की आज्ञा प्राप्त करके अथवा न प्राप्त करके, कपिलवस्तु लौट जाने के लिए ही कटिबद्ध था। किन्तु पिताजी से परामर्श करने के पूर्व ही मैं वैशाली में आगत तथागत की चरणवन्दना करने चला गया। और फिर मैं अपने आवास में प्रत्यागत नहीं हो पाया। मैं आगार से अनागारक हो गया, अनिले !

"दशबल के दिव्य दृष्टिपात में न जाने कैसी ज्वाला-सी जल रही थी। जन्म-जन्मान्तर से संचित मेरा पापपुञ्ज, एक पल में, जल कर क्षार हो गया।

"महाश्रमण की महिमामयी मुस्कान से न जाने कैसा अमृत-सा झर रहा था। मेरी उद्दाम वासना की उद्दीप्त उल्का, एक क्षण में, भीगकर बुझ गई।

"तदुपरान्त मेरा मन मेरा अपना न रहा। मेरी बुद्धि सम्यक्-सम्बद्ध की हो गई। मेरा शरीर सर्वथा शीतल हो गया, अनिले ! तदुपरान्त मैं वह पुराना 'मैं' नहीं रहा।

"मानो मेरे मानसतल में, चिरयुग से समाधिस्थ मेरा स्रष्टा, मुझको काल के कराल चक्र से निकालने के लिए कृतनिश्चय हो उठा था।

"जिस उदय लिच्छविपुत्र ने, उस दिन, तुमको प्रणयबन्धन में आबद्ध किया था वह मर गया। मृत मनुष्य के विषय में शोक करना व्यर्थ है। मृत मनुष्य पर रोष करना भी व्यर्थ है, अनिले !"

अनंगरेखा, अपादमस्तक, अवसन्न हो गई। उसने प्रांगण की भूमि पर उपासीन होकर, अपने पाणियुगल से, अपना मुखमण्डल आवृत कर

लिया ।

श्रमण अपने आसन से उत्थान करके, अनंगरेखा के समीप आए। और फिर, उसके शिर का स्नेहस्पर्श करते हुए, वे बोले : "भावना के भार से अभिभूत मत हो, भगिनि !"

अनंगरेखा, आयुष्मान उदय के पादपद्मों में विलुण्ठित होकर, क्रन्दन करने लगी । श्रमण, करुणाभरी दृष्टि से, अन्तरिक्ष का अवलोकन करते खड़े रहे ।

: ३ :

पूर्वपक्ष ज्येष्ठमास की गोधूलि के गह्वर में, वैशाली की विमानमाला, आकाशपट पर आलिखित आलिम्पन-सी आभासित है। दिवसव्यापी दिनकरताप से संतापित लिच्छवि पौरगण, पुण्य-सलिला पयस्विनी-द्वय के वीचिविलास से शीतल पवमान का सेवन करने के लिए, शिविकाओं पर आरूढ़ होकर, अपने-अपने आवास से निष्क्रमण कर रहे हैं ।

और लिच्छवि-गण के आचरण का आद्योपान्त अवलोकन करने के लिए, क्षत्रियग्राम के शृङ्गाटक पर संरूढ़ है धर्मसंघ के श्रमण, आयुष्मान उदय ।

एक-एक शिविका पर उपासीन एक-एक मानव-मिथुन महासुख की मुद्रा में मुस्करा रहा है । मानो वे, सब-के-सब, जन्म-मरण तथा जरा-व्याधि के जगज्जाल से विमुक्त हुए विश्रब्ध देवद्वन्द्व हों ।

श्वासोच्छ्वास के सौक्ष्म्य से स्पर्धा करने वाले उनके परिधान में, काशी और कोसल के कुशल कर्मकारों का कौविद्य द्युतिमान है । स्त्री-स्त्री के स्तनपट्ट तथा शाटक में । पुरुष पुरुष के अधोवस्त्र तथा उत्तरीय में ।

शिर सबके उष्णीष-विहीन हैं । सद्यस्नात तथा कुसुमकल्पित कच-कलाप से सुसज्जित । पुरुष-पुरुष का आस्कन्ध कुञ्चित केशभार । अंगना-अंगना का, आनितम्ब आलम्बित एवं अगरुधूम से अभिषिक्त, अलक-जाल ।

राजपथ के पार्श्वद्वय पर प्रस्तुत प्रवीण पण्यविक्रेता, प्रकृत एवं अप्रकृत स्वर में, अपने-अपने प्रसाधन-पुञ्ज का प्रचार कर रहे हैं ।

कौशाम्बी तथा काम्पिल्य से आयात किये गए तिलकअञ्जन, नेत्राञ्जन, अधरराग, अगुरुचन्दन एवं आलक्तक। माहिष्मती तथा मथुरा के महार्घ मृगमोद, कर्पूर, कालीयक एवं यक्षकर्दम भी।

मालाकार, विविध विधि के पुष्पाभरणों से आपूर्ण वृन्तपिधान लेकर, लिच्छवि-वृन्द को लालायित कर रहे हैं। मणि-माणिक्य, मुक्ता एवं सुवर्ण के आभूषणों से विरक्त वैशाली की वरांगना को, कुसुम-विरचित कर्णपूर, कण्ठहार, केयूर, करधनी तथा लीलाकमल के प्रति लोभान्वित जानकर। प्रफुल्लित पुण्डरीक के अभ्रष्टक के प्रति, लिच्छवि पुरुष की प्रीति का परिचय पाकर।

प्रमदाओं के प्रेमपाश में परिक्षिप्त प्रत्येक लिच्छवि पुरुष, अपनी प्रणयिनी को प्रेमोपहार दे रहा है। किसी उत्पलनयना के दीर्घपक्ष्मल कटाक्ष से क्षत-विक्षत होने के लिए। किसी शिखरदशना श्यामा की स्मितसुधा में स्नात होने की स्पृहा से। किसी कोकिलकण्ठा के कल-स्वन से अपने कर्णकूप आपूर्ण करने की आकांक्षा से प्रेरित होकर।

चन्द्रवदना की चपल चितवन का अनुचर बना है प्रत्येक पुरुष का दृष्टिपात। जिस भी द्रव्य की ओर नतांगी के नेत्र उन्नमित होते हैं, वह पुरुष के संकेत से संकर्षित होकर, शिविका की ओर आ जाता है।

परस्पर प्रश्न पूछते और समाचार सुनाते हुए लिच्छवि-युगल, नगर के शृङ्गाटक पर स्थित अनंगरेखा के गणिकालय की ओर गम्यमान हैं। गणिकालय का प्रख्यात प्रमदोद्यान, विटप, वृक्ष, वेलि, वल्लरी तथा कुश-काश से सतत शीतल है। वहाँ हैं लता-वितान एवं कानन-कुञ्ज। धारायन्त्र और समुद्रगृह। क्रीडाशैल तथा मत्तमयूर। वहाँ देश-देश की विख्यात वारुणी उपलब्ध है। आसव, मधु, मैरेय और प्रसन्ना। रुचि के अनुरूप भक्ष्य एवं भोज्य भी।

गणिकालय का वातावरण उत्सव और समाज के लिए सर्वथा समीचीन है। आपानक एवं अभिसार के लिए भी। वहाँ पर प्रणयी-प्रणयिनी-द्वन्द्व, परस्पर पाणिमर्दन करते हुए, हृदय की विह्वलता को वाणी की अपेक्षा अंगस्पर्श द्वारा अभिव्यक्त करने के लिए विकल होकर, विविक्त वनवीथियों में विहार कर सकते हैं।

आयुष्मान उदय को, सहसा, विश्वास करना कठिन हो गया कि वे वैशाली में विद्यमान हैं। यह तो कौशाम्बी के नागरवृन्द का नित्य-नैमित्तिक क्रियाकलाप था। वैशाली के लिच्छवि-गण का नहीं।

इसके पूर्व उन्होंने किसी लिच्छवि पुरुष अथवा स्त्री को शिविका पर आसीन नहीं देखा था। लिच्छवि-गण शिविका के नाममात्र से सिहर उठा करते। मनुष्यों को पशु के समान यान में युक्त करना, वृज्जिसंघ में पातक कहलाता था। वैशाली की स्त्रियाँ रथारूढ़ होकर यात्रा किया करतीं। पुरुष अश्व के पृष्ठ पर आरोहण करके।

वृज्जि महाजनपद के कर्मठ कृषीवलों तथा कर्मकारों की कठोर-कष्ट-साध्य कमाई, आज, विदेश से आयात किये गए आमोद-प्रमोद के उप-हासास्पद उपकरणों पर लुट रही थी। एक युग वह भी था जब वृज्जि-संघ के सार्थवाह, वृज्जि महाजनपद में विरचित विविध वस्तुसमुदाय लेकर, दिग्दिगन्त में जाते थे और सुवर्ण, रजत तथा रत्न की राशि से अपने रासभ एवं बलीवर्द लादकर लाते थे।

आज लिच्छवि पुरुषों के अवयव, दिन-प्रति-दिन, रात-प्रति-रात, के अभिनव एवं अविरत विलास से विकलीकृत थे। एक युग वह भी था जब लिच्छवि-गण के गात्र, दैनन्दिन व्यायाम के दीर्घाभ्यास से दृढ़ तथा दृप्त रहा करते।

एक समय, लिच्छवि-गण की महिमामयी माताएँ यौवनोचित शृंगार एवं प्रणयाभिसार का परित्याग करके, वात्सल्य एवं व्यवहारकौशल द्वारा लिच्छवि गृहों को गौरवान्वित किया करतीं। आज वे ही मध्यवय महिलाएँ, प्रसाधन के प्रचुर प्रयोग की सहायता से, तरुणवय रमणियों के साथ रूप की स्पर्धा करने में रत थीं।

एक समय, लिच्छवि-वंश के धीसम्पन्न वृद्धगण के मुखों पर स्थविर-सुलभ संयम एवं शील छलका करता। आज उन्हीं वयोवृद्ध वक्त्रों पर विलासवैकल्य एवं वासना की वह्नि-ज्वाल जल रही थी।

एक समय, लिच्छवि तरुण प्रणयिनी प्रमदा के प्रति अपना परिपुष्ट प्रेमोद्गार भी, गुरुजनों के समक्ष व्यक्त करने में क्रीड़ा का अनुभव किया करते। आज वे ही तरुण, विनय के विचार-मात्र से विमुक्त

होकर, राजपथ के पद-पद पर, प्रणयव्यापार की प्रदर्शनी सजा रहे थे।

एक समय, लिच्छवि-कुल की किशोरवय कुलपुत्रियाँ तथा कुलवधुएँ, रहस रतिक्रीड़ा के समय भी, उच्छृङ्खल उद्‌गार का उच्चारण करने में कुण्ठा को बोध किया करतीं। आज वे ही कुलांगनाएँ, कुशीलव-कन्याओं से भ्रूविलास का भेद सीखकर, राजपथ के प्रकाश में, कोटि-कोटि कटाक्ष कसने पर कटिबद्ध थीं।

आयुष्मान उदय को शृंगाटक पर उपस्थित देखकर, कई मानवमिथुनों ने शिविका से अवरोहण करके, बद्धांजलि अभिवादन किया। श्रमण ने भी स्वस्तिमुद्रा में दक्षिण हस्त उत्थापित करके, उनकी कल्याण-कामना की। किन्तु धर्मसंघ के उपासकवृन्द का यह अभिनव रूप देखकर, श्रमण का मानस गहन ग्लानि से कण्टकित होने लगा था।

एक वृद्ध उपासक ने, आयुष्मान उदय को पहिचान कर, पूछा: "भन्ते ! आप तो प्रथम आश्रम के उदय लिच्छविपुत्र प्रतीत होते हैं !"

श्रमण ने उत्तर दिया : "सौम्य ! मेरा जन्म वैशाली में ही हुआ था।"

"भन्ते ! आपको धर्मसंघ में प्रव्रजित हुए कितने वर्ष हो गए ?"

"पांच वर्ष से कुछ मास अधिक।"

"इस अवधि में तो वैशाली में अनेक अभूतपूर्व परिवर्तन हो गए।"

"जिस वैशाली में मेरा जन्म हुआ था वह और ही थी। नई वैशाली तो मैंने आज ही देखी है।"

वृद्ध की सुगन्ध-स्नात सहधर्मिणी ने श्रमण से प्रश्न किया : "भन्ते ! आपने चारिका करते हुए अनेक जनपद और नगर देखे होंगे ?"

श्रमण ने उत्तर दिया : "हाँ, भगिनि !"

"क्या आपने कौशाम्बी भी देखी है ?"

"इस वार वहीं से चारिका करके आ रहा हूँ। उपसम्पन्न होने के उपरान्त मेरा प्रथम वर्षावास भी कौशाम्बी में ही व्यतीत हुआ था।"

वृद्धा का मुखमण्डल, सहसा, एक स्पृहा से स्फीत हो गया। वह स्वप्न देखती-सी बोली : "कौशाम्बी बहुत सुन्दर है ना, भन्ते !"

श्रमण ने उत्तर दिया : "सुन्दर-असुन्दर का अवलोकन करना, धर्म-

संघ के श्रमण की शिक्षा नहीं।"

किन्तु वृद्धा ने उनकी उपेक्षा को लक्ष्य ही नहीं किया। वह आत्म-विभोर होकर कहने लगी : "कौशाम्बी के नागर-गण को ज्ञान है कि रस और संस्कार किसे कहते हैं। वहाँ के कुलपुत्र एवं कुलपुत्रियाँ, कला-विनोद के कोविद हैं।"

आयुष्मान उदय ने वृद्धा के प्रलाप का प्रत्युत्तर नहीं दिया। वृद्ध दम्पति, शिविकारूढ़ होकर, अपने गन्तव्य की ओर चले गए।

शैशव तथा किशोरावस्था में श्रमण का क्रीड़ासहचर एक तरुण भी अपनी तरुणी भार्या को साथ लेकर उनके समीप चला आया। किन्तु उन दोनों में से किसी ने भी श्रमण का अभिवादन नहीं किया।

तरुण ने श्रमण को सम्बोधित करके कहा : "अरे, उदय ! तुम यहाँ क्या कर रहे हो ? तुम्हारा यह वेष तो तुमको इस समय, इस स्थान पर उपस्थित होने की आज्ञा नहीं देता।"

आयुष्मान उदय मौन रहे। तब युवती, उनको लक्ष्य करके, तरुण से बोली : "किसी श्रमण को यदि अपने काषायधारण पर पश्चात्ताप होने लगे तो वह क्या करे, प्रियतम !"

युवक ने युवती के व्यंग की अवहेलना करके, आयुष्मान उदय से पूछा : "वैशाली में कब आए ?"

श्रमण ने उत्तर दिया : "आज ही। प्रातःकाल के कुछ पूर्व।"

"यहाँ अवस्थान करोगे ?"

"हाँ, यहाँ पर कुछ काल यापन करने का मनोरथ है।"

"तो मुझ से मिलना कभी। अभी तो मैं व्यस्त हूँ। अवकाश के समय मेरे आवास पर आ जाना।"

"तुमको किस समय अवकाश मिलता है ?"

युवक कुछ चिन्तित हो गया। फिर जैसे अपने-आपसे बात करता हुआ कहने लगा ! "पूर्वाह्न में तो नहीं। मध्याह्न में भी......नहीं। अपराह्न के समय......

युवती बीच में ही बोल उठी : "अपराह्न में भी नहीं। किसी समय भी नहीं। मेरे प्रियतम जैसा कर्मण्य पुरुष किसी अकर्मण्य श्रमण से

सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकता ।"

युवक ने हतप्रभ-सा होकर शिर अवनत कर लिया। और युवती उसका हाथ पकड़ कर उसे शिविका की ओर ले चली। जाते-जाते वह, मुख परावृत्त करके, श्रमण से बोली : "यदि तुम्हारे मानस में यौवन का लेश-मात्र भी रस अवशिष्ट हो तो गणिकालय में आ जाना, श्रमण ! किसी भी रात्रि के प्रथम याम में। तब हम, यथासाध्य, तुम्हारा जीर्णोद्धार करने की चेष्टा करेंगे ।"

आयुष्मान उदय ने, शान्त स्वर में प्रश्न किया : "रात्रि के द्वितीय याम में आऊँ तो ?"

युवती ने उत्तर दिया : "द्वितीय याम तक, सुरा एवं सुन्दरी के साधक, सिद्धावस्था प्राप्त करके, कर्त्तव्य कर्म से विरक्त हो जाते हैं। उस समय तुम्हारा उद्धार सम्भव नहीं होगा ।"

वह युगल चला गया। आयुष्मान उदय, मन-ही-मन, युवती के अविकल विश्वास पर विस्मय करने लगे। पापी जब तक अपने पापाचार को प्रच्छन्न रखने का प्रयत्न करता रहता है, तब तक उसके उद्धार की आशा का परित्याग नहीं किया जा सकता। पाप की पराकाष्ठा तो तब प्राप्त होती है जब पापी अपने पापाचार को पुण्य कह कर प्रख्यात करने लगे।

कुछ क्षण उपरान्त, शिविकारूढ़ एक तरुण ने, आयुष्मान उदय को देखकर, पीछे से आने वाली दूसरी शिविका पर आरूढ़ एक अन्य तरुण से पूछा : "अहे, सौम्य ! धर्मसंघ का यह भिक्षुक इस समय, इस स्थान पर क्या कर रहा है ?"

दूसरे तरुण ने उत्तर दिया : "अनायास ही प्राप्त पक्वान्न से परिपुष्ट इसकी मानव-देह भी अभिसार की अभिलाषा करने लगी है।"

प्रथम तरुण बोला : "वैशाली अब सब प्रकार के अन्धविश्वास से विमुक्त हो चुकी है। काषायवस्त्रधारी तस्करों को अब यहाँ से तिरोहित हो जाना चाहिए ।"

द्वितीय तरुण ने कहा : "उस स्वर्णविहान की वेला में अभी विलम्ब है, सौम्य ! महाली की दारिका, वत्सला, अभी भी वैशाली में विद्यमान है। राजकुमारी पुलोमजा भी, न जाने क्यों, इन भिक्षुकों का भरण-पोषण

करनी रहती है ।"

प्रथम तरुण बोला : "कुछ दिन तक और धैर्य धारण करो, सौम्य ! वह दिन अधिक दूर नहीं है जब काषायवस्त्र का कलुष, वृज्जि महाजनपद से, अनन्त काल के लिए विलुप्त हो जाएगा ।"

आयुष्मान उदय, शृंगाटक को त्याग कर, वैशाली के दक्षिणद्वार पर प्रथम प्राचीर के अन्तर्धा अवस्थित गौतमक चैत्य की ओर चल दिये। उनके मन में राजपथ के प्रति एक घोर अरुचि ने जन्म लिया था। अत-एव उन्होंने एक रथ्यामार्ग का अवलम्बन लिया। उनको आशा थी कि रथ्यामार्ग, राजपथ की अपेक्षा, अधिक अनुकूल होगा।

किन्तु नवीन वैशाली से उनका यह प्रथम परिचय था। वे नहीं जानते थे कि एक ही विष वैशाली के प्रत्येक अवयव में व्याप्त हो चुका है। रथ्यामार्ग पर पदार्पण करते ही उन्होंने एक पानागार का दृश्य देखा। सुरा की सुगन्ध अथवा दुर्गन्ध के साथ-साथ, पानागार में से नर्तकी की नूपुरध्वनि तथा पुरुषों का प्रमत्त प्रलाप निर्गत हो रहे थे।

एक बार उनकी इच्छा हुई कि लौट कर राजपथ पर चले जाएँ। किन्तु वे वैशाली की वस्तुस्थिति का अवलोकन करने निकले थे। धर्म-संघ की विनय की अवहेलना करके। अतएव, आत्मसंयम का आश्रय लेकर, वे पानागार के सन्मुख दण्डायमान हो गए।

वहाँ पर वैशाली के मध्यवर्ग नागरिकों का समाज समवेत था। लिच्छवि क्षत्रियवृन्द के साथ-साथ गृहपतिक वैश्य भी। द्वार के उस पार परिवेश में, मण्डलाकार उपासीन होकर, कतिपय तरुण एवं वृद्ध पुरुष मद्यपान कर रहे थे। नवयौवना मधुबालाएँ, मद्यभाण्ड लिए, इत-स्ततः विचर रही थीं। कोई-कोई मद्यप, सुरामत्त होकर, किसी मधुबाला का हाथ पकड़ता था अथवा आंचल झटकता था तो वह मधुबाला, उसके समीप उपासीन होकर, दो क्षण संलाप करती थी। फिर वे दोनों, उत्थान करके, अन्तर्कक्ष की ओर चले जाते थे।

आपानक का आधार थी मद्यपमण्डल के मध्य में नर्तन करती हुई नर्तकी। अश्लील गीत का अवलम्ब लेकर अश्लील अंगहार करने में रत। गीत के किसी सारगर्भित शब्द को सुन कर अथवा नर्तकी की किसी गुह्य

चेष्टा पर मुग्ध होकर मद्यप-गण भी अश्लील इंगित करने लगते थे। रजत के कार्षापण, नागरिकों के कटिबद्ध से कर्षित होकर, नर्तकी के चरणों का चुम्बन करने की स्पर्धा में, परिवेश की परिक्रमा कर रहे थे।

आयुष्मान उदय, और भी कुछ क्षण तक वहाँ उपस्थान करके, वह दृश्य देखते रहते। किन्तु, अकस्मात् ही, एक रूपाजीवा ने, पानागार से निकल कर, उनको सम्बोधित किया। ताम्बूल-रस से रक्तिम अपने अधरोष्ठ पर अपनी एक अंगुली न्यस्त करके, वह बोली :

"भन्ते ! आप इस प्रकार, बाहर खड़े होकर, विरहज्वाल में क्यों जल रहे हैं ? आप पानागार में पदार्पण कीजिए।"

श्रमण ने, रूपाजीवा की ओर दृष्टिपात किए बिना ही कह दिया : "भगिनि ! मैं धर्मसंघ का भिक्षु हूँ।"

"तो क्या हुआ। आप तरुण भी तो हैं। सरोवर के समीप आकर ताप सहना—धर्मसंघ यह शिक्षा नहीं देता। हमारी राजकुमारी भी तो धर्मसंघ की उपासिका है। किन्तु वे कभी भी तारुण्य-सुलभ सौख्य का तिरस्कार नहीं करतीं। आपको मेरे कथन का विश्वास न हो तो इसी क्षण गणिकालय में जाकर अपनी आँखों से देख लीजिए। राजकुमारी का नयनयुगल सुरापान से लाल मिलेगा।"

"इस पानागार का प्रभु कौन है ?"

"राजा रत्नकीर्ति के आदेश से, वैशाली में इस प्रकार के अनेक पानागारों की व्यवस्था की गई है। वृज्जिसंघ में रस एवं संस्कार की सृष्टि के लिए नवीन राजा ने कोई त्रुटि नहीं रहने दी। आप किसी ओर चले जाइए। क्षत्रियग्राम की किसी वीथि में विचरण कीजिए। गीत तथा वाद्य की ध्वनि से आपके कर्णकुहर धन्य हो जाएँगे। एक-से-एक सुन्दर नर्तकी अब वैशाली की वीथि-वीथि में नर्तन करती है। यह हमारा सौभाग्य है कि आप हमारे पानागार पर पधारे हैं। आइए, मेरे साथ आइए।"

रूपाजीवा ने, हठात्, श्रमण के उत्तरासंग का आँचल पकड़ लिया। आयुष्मान उदय उसकी इस धृष्ठता के लिए प्रस्तुत नहीं थे। उनके मुख से, अनायास ही, निकला : "शान्तं पापम् ! शान्तं पापम् !!"

रूपाजीवा हँसने लगी। फिर उनका आँचल छोड़कर वह बोली : "ज्ञात

होता है कि आपको काषायवस्त्र धारण किए अधिक काल नहीं बीता। अन्यथा, आप भी, अन्यान्य काषायधारियों के समान, तुरन्त ही मेरा अधरामृत पान करने के लिए अधीर हो जाते। आज आप चले जाइए। आज आप में साहस नहीं है। जिस दिन आपके मन की यह भीरु भावना भाग जाए, उस दिन अवश्य इस ओर आइएगा। आपका रूपयौवन मेरे हृदय का हरण करके जा रहा है। अकारण ही मेरा मरण न होने पाए। आपको पाप लगेगा।"

आयुष्मान उदय ने, द्रुतपद से, उस स्थान का त्याग कर दिया। उनको भय होने लगा था कि, रूपाजीवा को विलम्ब करते देखकर, कहीं कोई मद्यप पुरुष उसकी सहायता के लिए न आ जाए।

: ४ :

गौतमक चैत्य का प्राङ्गण आज, पूर्व समय के समान, प्रकाशमान नहीं है। जिस प्राङ्गण में, सांझ प्रति सांझ, श्रद्धालु उपासकों का समवाय आकर, शत-शत तैलप्रदीप प्रज्वलित किया करता, उसी प्राङ्गण में आज दस-पांच दीपक अन्धकार के साथ असफल संघर्ष कर रहे हैं।

आयुष्मान उदय ने, प्राङ्गण का अतिक्रमण करके, चैत्य के मण्डप में पदार्पण किया। पूर्व समय में, वह मण्डप वैशाली की उत्सव-स्थली था। वहाँ आकर, अगणित उपासक देवता की आराधना किया करते। धूप, दीप, नैवेद्य, मङ्गलवाद्य और स्तवनगान की सहायता से। बालक और वृद्ध। तरुण और वयस्थ। स्त्री तथा पुरुष। क्षत्रिय, गृहपतिक, कर्मकारभ प्रत्येक वर्ग के उपासक।

किन्तु आज वहाँ श्मशान-सदृश शान्ति का साम्राज्य था। आयुष्मान उदय ने दृष्टि प्रसारित करके देखा कि मण्डप में, कुलीन कहलाने वाला, एक भी तरुण अथवा तरुणी नहीं है। दस-पाँच मध्यवर्ग वृद्ध एवं वृद्धाएँ मौन उपासीन होकर, मन-ही-मन, स्तवन-पाठ कर रहे थे।

गर्भगृह के द्वार पर, परित्यक्त पदार्थ-सा म्लानमुख उपासीन था चैत्य का चिर-परिचित पुजारी। आयुष्मान उदय भी, पुजारी के निकट जाकर, उपाविष्ट हो गए। फिर उन्होंने पुजारी को सम्बोधित किया :

"महात्मन्! आज चैत्य में, उपासकों की संख्या, इतनी न्यून

क्यों है ?"

पुजारी ने उत्तर दिया : "भन्ते ! उपासक-गण अब इस ओर नहीं आते।"

"उनकी उदासीनता का क्या कारण है ?"

"वृज्जिसंघ के नवीन राजा ने, नगर में, नवीन चैत्यों की स्थापना की है। अधिकांश उपासक-गण अब उसी ओर जाते हैं। विशेषकर वैशाली के कुलपुत्र एवं कुलाङ्गनाएँ। इस ओर कोई नहीं आता।"

श्रमण समझ गए कि पुजारी का संकेत किस ओर है। किन्तु, फिर भी, उन्होंने प्रश्न किया : "नवीन चैत्यों में आराध्य कौन हैं, महात्मन् !"

पुजारी ने कहा : "भगवान मन्मथ। वृज्जिसंघ में उनके समान कोई अन्य आराध्य नहीं रहा।"

"पुरातन देवताओं के विषय में राजा का क्या मन्तव्य है ?"

"राजा का मत है कि कालपरिवर्तन के साथ-साथ उपासना की पद्धति में भी परिवर्तन होना चाहिए। वृज्जिसंघ के लिच्छवि जब तक युद्धोपयोगी किन्तु गर्हित एवं ग्राम्य जीवन व्यतीत करते थे तब तक उनके लिए यह उचित था कि, पाषाण-प्रतिमाओं पर पत्रपुष्प समर्पित करके, अज्ञात-शक्ति देवताओं की अन्ध आराधना करते रहें। किन्तु वृज्जि महा-जनपद में अब शान्ति ने जन्म लिया है। इस नवीन युग में, लिच्छवि-गण का पुण्य कर्त्तव्य है कि वे, मानवोचित रस तथा संस्कार की साधना के लिए, ज्ञान एवं इन्द्रियगोचर परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करके, उप-भोग के उपकरणों का संग्रह करें।"

आयुष्मान उदय का मन कहने लगा कि वैशाली में अवश्य ही किसी उन्माद ने जन्म लिया है। जिसके साथ भी वार्त्तालाप करो वही रस एवं संस्कार की चर्चा करने लगता है। न जाने यह रस एवं संस्कार क्या है ? किन्तु......

पुजारी, किंचित् व्यङ्ग की वाणी में, कहने लगा : "भन्ते ! आपको तो यह सब विदित होना चाहिए। आप तो धर्मसंघ के श्रमण हैं। आप का धर्मसंघ ही प्राणपण से राजा का समर्थन कर रहा है। राजकुमारी आपके धर्मसंघ की अनन्य उपासिका मानी जाती हैं। गौतमक चैत्य भले

ही जनशून्य हो जाए, आपके संघाराम तो अब भी उपासक-उपासिकाओं से संकुल रहते हैं।"

आयुष्मान उदय ने उत्तर दिया : "मुझको कुछ भी विदित नहीं है, महात्मन् ! मैं आज ही वैशाली में आया हूँ। अनेक वर्ष के उपरान्त।"

"भन्ते ! आप इस चैत्य में किस प्रकार आ गए ? धर्मसंघ के श्रमण के लिए तो इस ओर दृष्टिपात करना भी निषिद्ध है।"

"मुझे ज्ञान नहीं, महात्मन् ! पूर्व समय में तो निषिद्ध नहीं था। आप तो जानते हैं कि तथागत ने इसी चैत्य में विहार करते समय शाक्य-श्रमण के त्रिचीवर-विधान पर विनय कहा था।"

"भन्ते ! उस समय मैं स्वयं यहाँ विद्यमान था। किन्तु भगवान भगवान थे। सनातन आर्य-धर्म के अवतार। धर्मसंघ तो, क्षिप्रगति से, एक संकीर्ण सम्प्रदाय में परिणत होता जा रहा है। धर्मसंघ के द्वारा धर्म की हानि ही होगी, भन्ते ! वृद्धि नहीं।"

आयुष्मान उदय मौन हो गए। धर्मसंघ की निन्दा श्रवण करना उनके लिए वस्तुतः निषिद्ध था। वार्त्तालाप का प्रसंग-परिवर्तन करने के लिए उन्होंने पूछा : "महात्मन् ! चैत्य की अवस्थानशाला में पुण्यवान परिव्राजक तो आते ही होंगे ?"

पुजारी ने उत्तर दिया : "परिव्राजक तो आते रहते हैं, भन्ते ! किन्तु वैसे उच्चकोटि के नहीं जैसे पूर्व समय में आया करते थे। अवस्थानशाला में निवास करने वाले अधिकतर परिव्राजक अब उदरपोषी ही होते हैं। कभी कोई पुण्यवान परिव्राजक आ भी जाते हैं तो अधिक दिन रुकते नहीं।"

"ऐसा क्यों ?"

"परिव्राजक-गण की परिशुश्रुषा अब वैशाली में नहीं हो पाती। वे पिण्डपात के लिए नगर में जाते हैं तो उनकी अवगणना होती है। उनके उपदेश का उपहास। एक वर्ष पूर्व यहाँ एक परिव्राजक का अपमान भी हो गया।"

"अपमान ! किसने अपमान किया ?"

"उनको चैत्य की अवस्थानशाला में आए दो-तीन दिन ही हुए थे

कि समस्त वैशाली में, उनके विरुद्ध, एक अपवाद विस्तृत होने लगा। लिच्छवि-गण कहने लगे कि वे कोसलराज के गूढ़पुरुष हैं और वृज्जिसंघ में अवन्ति का कृत्यपक्ष संग्रह करने आए हैं। विनिश्चय-महामात्य ने, राजपुरुष प्रेषित करके, उनको विनिश्चय-शाला में आहूत किया। जनगण के समक्ष उनसे ऐसे अनेक प्रश्न पूछे जो किसी परिव्राजक से कभी नहीं पूछे जाते। अन्ततः महामात्य ने निर्णय किया कि अपवाद अक्षरशः सत्य है। तब राजपुरुष, परिव्राजक के साथ जाकर, उनको वृज्जि महाजनपद के प्रत्यन्त पर छोड़ आए।"

"ये विनिश्चय-महामात्य कौन हैं ?"

"वर्षकार ब्राह्मण।"

"वे ही जो पूर्व समय में मगध के महामात्य थे।"

"हाँ, वे ही। आर्यश्रेष्ठ महाली के समय में वे वैशाली में शरणापन्न हुए थे। राजा रत्नकीर्ति ने, राजसत्ता प्राप्त करते ही, उनको महामात्य-पद पर आरूढ़ कर दिया।"

"वैशाली में जो अनाचार हो रहा है उसके सम्बन्ध में महामात्य का क्या मत है ?"

"वे इस अनाचार को लिच्छवि-गण का संस्कार कहते हैं।"

आयुष्मान उदय के मुख से एक दीर्घ निश्वास निकल गया। उन्होंने, मुख परावृत्त करके, मण्डप की ओर देखा। मण्डप अब सर्वथा शून्य था। आयुष्मान उदय ने भी, प्रस्थान करने के लिए, आसन से उत्थान किया। वे पुजारी से बोले : "महात्मन् ! वेला अधिक हो गई। अब मैं जाऊँगा। पुनः किसी दिन आकर आपके दर्शन करूँगा।"

पुजारी ने, प्रत्युत्थान करके, कहा : "भन्ते ! गौतमक चैत्य आपका अपना आवास है। यहाँ सदा आपका स्वागत होगा।"

आयुष्मान उदय गौतमक चैत्य से निर्गत हुए तो उनकी इच्छा हुई कि एक बार गणिकालय में जाकर भी वस्तुस्थिति का निरीक्षण कर लें। किन्तु सहसा उन्हें लिच्छवि युवती की कही बात स्मरण हो आई : "द्वितीय याम में, सुरा एवं सुन्दरी के उपासक, सिद्धावस्था प्राप्त करके, कर्त्तव्य कर्म से विरत हो जाते हैं।"

कौशाम्बी में, एक बार अनायास ही, उनको ऐसे समाधिस्थ साधकों का दर्शनलाभ हो चुका था। नारी एवं पुरुष, विवस्त्र होकर, मूढ़ पशुवृन्द के समान समागम कर रहे थे। उनका अनर्गल प्रेमालाप सुन कर श्रमण को अपने दोनों श्रोत्र अवरुद्ध करने पड़े थे। जीवन में एक बार पुनः उन महान साधकों का सत्संग करने के लिए श्रमण को साहस नहीं हुआ। वे रथ्यामार्ग से उत्तर दिशा की ओर अग्रसर होने लगे। उनका गन्तव्य-स्थान था महावन की कूटागार-शाला।

वैशाली में उन्होंने जो कुछ देखा-सुना था, उसका विश्लेषण करते हुए जा रहे थे श्रमण। रथ्यामार्ग पर अब अधिक यातायात नहीं था। पथप्रान्त में दो-चार पानागार उनको मिले। किन्तु वहाँ अब नूपुर का रणन तथा मद्यपों का प्रलाप नहीं सुनाई दिया। सम्भवतः वहाँ वास करने वाले समस्त साधक भी समाधिस्थ हो चुके थे।

तब, सहसा, आयुष्मान ने एक नारी का आर्तनाद सुना। आर्तनाद का अनुसरण करते हुए वे, द्रुतपद, एक वीथि में प्रविष्ट हो गए। किंचित् पथ पार करके उन्होंने देखा कि एक आवास के सम्मुख खड़ी एक तरुणी रुदन कर रही है। आवास का कपाट अनपावृत था।

तरुणी के निकट जाकर, आयुष्मान उदय ने पूछा : "यह क्या काण्ड है, भगिनि!"

तरुणी ने अश्रुमोचन करते हुए आर्द्रकण्ठ से उत्तर दिया : "भन्ते! मुझको मेरे पतिदेव ने अपने आवास से निर्वासित कर दिया है।"

"तुम्हारा पति लिच्छवि कुलपुत्र है?"

"वे कुलपुत्र है, भन्ते!"

"किन्तु लिच्छवि तो कभी स्त्री का अपमान नहीं करते।"

तरुणी की समझ में नहीं आया कि श्रमण की बात का क्या उत्तर दे। उसने तो विवाह होने के उपरान्त केवल लाञ्छना और अपमान ही सहे थे। वह, श्रमण का मुख देखती हुई, मौन खड़ी रही।

श्रमण ने पूछा : "तुम्हारा अपराध?"

तरुणी ने उत्तर दिया : "वे आज पानागार से प्रत्यागत हुए तो एक रूपाजीवा उनके साथ थी। मैंने आग्रहपूर्वक कहा कि मैं अपना आवास

अपवित्र नहीं होने दूंगी । तब उन्होंने कोपाविष्ट होकर मेरा ताड़न किया और तदनन्तर मुझे आवास से निर्वासित कर दिया । आवास का द्वार अवरुद्ध है । मैं कुलवधू हूँ, भन्ते ! उच्चकुल की दुहिता । इतनी रात को मैं इस उच्छृंखल नगरी में कहाँ जाऊँ ?"

तरुणी पुनरेण उच्चतर स्वर से रुदन करने लगी । श्रमण ने प्रश्न किया : "भगिनि ! क्या तुम्हारे श्वसुर जीवित हैं ?"

तरुणी बोली : हाँ, भन्ते ! श्वश्रू भी । किन्तु हमारा विवाह होते ही ये हठ कर के परिवार से पृथक हो गए । अन्यथा इस वीथि का यह क्षुद्र आवास क्या हमारे निवास-योग्य था । हमारा पैतृक आवास आप देख पाएँ तो विश्वास करें कि हम सत्यशः उच्च-कुलीन हैं ।"

श्रमण ने तरुणी के साथ अधिक आलाप नहीं किया । वे, अग्रसर होकर, कपाट पर करतलाघात करने लगे । अभ्यन्तर से एक तरुण ने, तुरन्त, द्वार अपावृत कर दिया । जैसे वह द्वार के समीप ही खड़ा हो । उसका एक हाथ पानप्रमत्त रूपाजीवा के गलदेश पर वेष्टित था । दूसरे में वह एक मद्यकूपी लिए था । श्रमण को देखते ही तरुण हँसने लगा । फिर, तरुणी को सम्बोधित करके कहने लगा : "वराकी ! तेरे जार के लिए आवास में स्थान है, किन्तु मेरी प्राणाधिका प्रेयसी के लिए नहीं ! और पुंश्चली कह रही थी कि आवास को अपवित्र नहीं होने दूंगी !"

आयुष्मान उदय समझ गए कि तरुण की दृष्टि में वे जारपुरुष हैं । उन्होंने अत्यन्त शान्त भाव से कहा : "सौम्य ! मैं रथ्यामार्ग से संघाराम की ओर जा रहा था । भगिनी का आर्तनाद सुन कर इस ओर चला आया ।"

तरुण अट्टहास करने लगा । फिर वह रूपाजीवा के कपोलों पर कतिपय चुम्बन अङ्कित करके बोला : "चोरी-चोरी जब मैं इसके पास जाया करता तो किसी के पूछने पर मैं भी इसको भगिनी कहा करता । किन्तु यह जानती थी कि यह मेरी कौन है ।"

श्रमण ने कहा : "मैं मृषावाद का अभ्यासी नहीं हूँ, सौम्य !"

"शाक्यश्रमण का छद्मवेश धारण करते समय तुमको यह स्मरण नहीं रहा कि शाक्यसंघ के श्रमण रात्रि के मध्यम याम में नगर की रथ्या

और वीथि में विहार नहीं करते। तुम जाओ। इस पुंश्चली को ले जाओ। जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ ले जाओ। अब यह मेरे काम की नहीं रही।"

तरुणी, अपने पति के अनाचार पर लज्जित होकर, बोली : "आर्य-पुत्र ! श्रमण की अवगणना करके आप क्यों अकारण अपने पाप-पुञ्ज को परिवर्धित कर रहे हैं ?"

तरुण पर मानो किसी ने प्रहार किया हो ! वह क्रोध से जल कर बोला : "अरि कुलटे ! तू मुझको पाप-पुण्य का पाठ पढ़ाएगी ! दूर हो जा !! नहीं तो प्राण ले लूँगा !!!"

तरुणी ने, दो पद अग्रसर होकर, कहा : "मैं अपने आवास में रहूँगी। मैं पण्यविपणि में क्रीत क्रीड़ादासी नहीं, तुम्हारी विवाहिता अर्धांगिनी हूँ।"

रूपाजीवा ने, रो कर, तरुण से कहा : "यदि मैं जानती कि मेरा ऐसा अपमान होगा तो मैं तुम्हारे साथ कभी नहीं आती।"

तरुण ने, अकस्मात्, अपने हाथ की मद्यकूपी अपनी स्त्री पर दे मारी। आयुष्मान् उदय, उत्पतित होकर, तरुणी के आगे खड़े हो गए। अन्यथा तरुणी का शिर क्षत-विक्षत हो जाता। श्रमण की देह दीर्घाकार थी। मद्यकूपी उनके वक्षस्थल पर पड़ी। कूपी भग्न होकर धरा पर गिर गई। श्रमण का उत्तरासंग तथा अधोवस्त्र मद्य से भीग गए। वीथि का रुद्ध वातास दुर्गन्ध से विद्ध हो गया। आवास का द्वार पुनरेण अवरुद्ध हो चुका था।

आयुष्मान उदय असमंजस में पड़ गए। उन्होंने तरुणी से अनुरोध किया कि वह, उनके साथ, अपने श्वसुरगृह अथवा पितृगृह में चली जाए। किन्तु तरुणी अपने हठ पर दृढ़ रही कि वह प्राण दे देगी किन्तु पतिदेव को एक रूपाजीवा के आलिङ्गन में छोड़कर, अन्यत्र नहीं जाएगी।

आयुष्मान उदय वैशाली की दशा देख चुके थे। उनका मन नहीं माना कि एकाकी नारी को असहाय छोड़कर चले जाएँ। किन्तु वे सर्वथा विवश थे। अतएव पति-परायणा तरुणी को सुखी रहने का आशीर्वाद देकर, वे संघाराम की ओर चल दिए।

: ५ :

क्षत्रियग्राम के पूर्वान्त में, दिवंगत आर्यश्रेष्ठ महाली का आवास। पूर्वाह्न की वेला। गृहतल में, परिवेण के पार, उपवेशनशाला के फलकास्तरण पर उपासीन है आयुष्मान् उदय, दुर्गपाल अनिरुद्ध और कुमारी वत्सला। गम्भीर परामर्श में प्रवृत्त।

वत्सला ने कहा : "भन्ते ! वर्षकार ब्राह्मण के विषय में आपने जिस रहस्य का उद्घाटन किया है, उसकी तथ्यता पर मुझे तनिक भी सन्देह नहीं। किन्तु मैं सर्वथा विवश हूँ। मैंने ही उस कितव का वैशाली में स्वागत किया था। वृज्जिवृद्धों द्वारा प्रगट विकट विरोध के विपरीत। अब मैं किस मुख से कहने जाऊँ कि मैंने एक विषधर व्याल को शरण देने के लिए वृज्जिसंघ को बाध्य किया था ?

"मैं परिहास से भयभीत नहीं हूँ, भन्ते ! यदि मेरे किए कुछ सम्भव हो तो मैं अपने जीवन का बलिदान देने के लिए भी प्रस्तुत हूँ। किन्तु मेरी सुनेगा कौन ? आज की वैशाली में, वृज्जिसंघ की कल्याण-कामना करने का अवकाश ही किसे है ? जिसको देखिए वही रस एवं संस्कार का संचय करने में संलग्न है।

"वर्षकार के विरुद्ध मेरा अभियोग सुनकर वैशाली के निवासी यही कहेंगे कि मैं, वृज्जिसंघ और मगध के मध्य स्थापित शान्ति को भंग करना चाहती हूँ। दुर्गपाल को विदित है कि पुलोमजा के प्रताप से, बहुत पूर्व ही, मैं वैशाली की वीथि-वीथि में कलह-परायणा कुचक्रकारिणी के नाम से कुख्यात हो चुकी हूँ। वर्षकार के विरुद्ध मुख खोलने से मेरी कुख्याति में ही वृद्धि होगी। लिच्छवि-गण सावधान नहीं होंगे।"

आयुष्मान उदय, वत्सला के विवशता-निवेदन को अस्वीकार करके, बोले : "मुझको वैशाली में वास करते हुए प्रायः एक मास व्यतीत हो चुका। प्रथमतः मैं, राजनीति का आश्रय लिए बिना, धर्मसंघ की सहायता से ही, लिच्छवि-गण को सावधान करना चाहता था। मुझको विश्वास था कि धर्म का अवलम्बन लेकर अधर्म का निरोध किया जा सकता है। अतएव मैंने धर्मसंघ के स्थविर-समुदाय से, वर्षकार के विषय में, विवाद किया। मैं समस्त चैत्यों की अवस्थान-शालाओं में आये हुए परिव्राजक-

वृन्द से मिला। मैं निर्ग्रन्थों के निकट गया। मैंने आजीवकों से आवेदन किया। मुझको आशा थी कि वे अधर्म के विरुद्ध सिंहनाद करके जनमत जागृत करने में मेरी सहायता करेंगे।

"किन्तु अब मैं उन सबकी ओर से निराश हो चुका हूँ। उनमें से किसी-किसी का मत है कि वृज्जिसंघ में धर्म की अभूतपूर्व वृद्धि हो रही है। कोई उदासीन है। कोई विक्षुब्ध। कोई लुब्ध। कर्मरत होने के लिए उनमें से कोई भी तत्पर नहीं। इसीलिए मैं तुम्हारे समीप आया हूँ।

"आर्यश्रेष्ठ महाली का राजत्वकाल मैंने अपनी आँखों से देखा था। तुम्हारा क्रियाकलाप मैंने अनेक लिच्छवि-गण के मुख से सुनता है। तुम और दुर्गपाल यदि पुरुषार्थ-परायण हो जाओ तो अब भी समय है। तुम राजा रत्नकीर्ति द्वारा प्रचारित क्लीवधर्म को धारण करने वाले कतिपय लिच्छवि-कुलों की ओर मत देखो। पुलोमजा द्वारा प्रवञ्चित कतिपय तरुण-तरुणियों की ओर भी नहीं। तुम उन अनेक लिच्छवि-गण को देखो जिनका आचार भ्रष्ट होकर भी जिनकी बुद्धि अभी भ्रष्ट नहीं हुई।"

वत्सला ने, एक क्षण मौन रह कर, श्रमण के कथन को हृदयङ्गम किया। फिर वे बोलीं :

"भन्ते ! आपने जो कुछ कहा वह सब सत्य है। मैं भी, अनवरत, अनेक लिच्छवि-कुलमुख्या से मिलती रहती हूँ। उनमें से अधिकतर यह स्वीकार करते हैं कि राजा रत्नकीर्ति लिच्छवि-मर्यादा का मूलोच्छेदन कर रहे हैं। उनमें से बहुतों ने वर्षकार ब्राह्मण के भेदोत्पादक कुचक्र का प्रत्यक्ष अनुभव किया है। वे यह भी मानते हैं कि पुलोमजा द्वारा प्रवर्तित विलास-चक्र का दुःखद परिणाम होगा। अतएव मैं मानती हूँ कि लिच्छवि-गण की बुद्धि अभी भ्रष्ट नहीं हुई।

"किन्तु, भन्ते ! बुद्धि से बड़ा भी एक मनस्तत्व है। निर्भीकता, तेज। वह तत्व आज लिच्छवि-गण में क्षीण हो गया। लिच्छवि-गण में आज निर्भीकता का अभाव है, तेज की त्रुटि है। अपने-अपने आवास में, परिजनों के साथ उपासीन होकर, आज अनेक लिच्छवि राजा रत्नकीर्ति की निन्दा करते हैं, वर्षकार के प्रति अविश्वास प्रगट करते हैं, पुलोमजा का प्रत्याख्यान भी करते हैं। किन्तु वे ही लिच्छवि जब परिषद में जाते

हैं तो उनमें परस्पर यह स्पर्धा लग जाती है कि राजा रत्नकीर्ति के अगणित गुणों की गाथा गाने में कौन अग्रगण्य है। वे ही लिच्छवि, वर्षकार ब्राह्मण के नित्यनवीन अन्याय अपनी आँखों से देख कर, जब विनिश्चयशाला से निकलते हैं तो वर्षकार की न्यायबुद्धि का साधुवाद करते हुए। वे ही लिच्छवि जब गणिकालय के आगे से गमनागमन करते हैं तो पुलोमजा के परम पारदर्शन की प्रशंसा करते हुए।

"आज सत्य को जानने वाला प्रत्येक लिच्छवि यह अपेक्षा करता है कि, उसके अन्तर में आविर्भूत आशङ्का तथा अविश्वास को परिषद में प्रकाशित करके, कोई अन्य लिच्छवि राजा रत्नकीर्ति के प्रकोप का प्रहार सहन कर ले और वह स्वयं चाटूक्ति-चातुर्य के बल पर राजा का कृपाभाजन बना रहे।

"ऐसी अवस्था में, भन्ते! आप ही मेरा पथप्रदर्शन कीजिए। आप यदि आदेश दें तो आज ही, इसी समय, शृंगाटक पर जा कर मैं राजा के विरुद्ध विद्रोह-वचन कहने के लिए तत्पर हूँ। वर्षकार ब्राह्मण का प्रकाशन करने के लिए भी प्रस्तुत हूँ। किन्तु मेरा मन कहता है कि मुझ एकाकिनी के किए कुछ होगा नहीं। लिच्छवि-गण मेरा उपहास करेंगे, मुझ को उन्मादग्रस्त बतलाएँगे। मेरे कथन को यथायथ मानने वाले भी मौन रहेंगे। वे निभृत में आकर मेरे साथ सहानुभूति प्रगट करेंगे। किन्तु, मेरे दुःसाहस के प्रति अनुकम्पा प्रदर्शित करते हुए, वे यह भी कहेंगे कि मैं उन्मादिनी हूँ जो राजा से रण करने के लिए उद्यत हो गई।"

वत्सला के कथन में सार था। आयुष्मान उदय, मौन रह कर, चिन्तानिमग्न हो गए। वे जानते थे कि निर्भीकता एवं तेज के अभाव में बुद्धि केवल भय का ही वहन करती है, निष्ठा तथा कर्म-परायणता का नहीं। और मनुष्य निर्भीक तब होता है जब वह अपने स्वार्थ का सर्वथा परित्याग कर दे। स्वार्थरत मनुष्य की बुद्धि, सत्य का साक्षात्कार करके भी, सत्याचरण का बल-प्रदान नहीं कर पाती।

आज वैशाली के अधिकांश लिच्छवि-गण स्वार्थ के कुत्सित कर्दम में आकण्ठ निमज्जित थे। उनकी स्वार्थ-भावना का उच्छेद तभी हो सकता था जब कि उनके अन्तःकरण में निवृत्ति का निश्चय निस्पन्दित होता, धर्म

को धारण करने की धृति उत्थान करती। किन्तु हा! हन्त! आज वैशाली में धर्म भी, स्वार्थ की मृगमरीचिका में भ्रमित होकर, सम्प्रदाय का रूप धारण कर चुका था।

दुर्गपाल अनिरुद्ध, आयुष्मान उदय तथा वत्सला को मौन देखकर, कहने लगे : "भन्ते! वृज्जिसंघ के धर्म-स्थविर सिंहनाद नहीं कर सकते। वृज्जिसंघ के लिच्छवि-गण का क्षात्र क्षीण हो गया। अतएव, वैशाली में विस्तृत होने वाले अधर्म का प्रकाश-पथ से विरोध करना आज असम्भव है। किन्तु फिर भी मैं निराश नहीं हूँ, भन्ते! मेरा मन कहता है कि एक अन्य मार्ग अभी भी हमारे लिए अपावृत है। यदि राजकुमारी रुष्ट न हों तो मैं उस मार्ग का मर्म आपके सम्मुख निवेदन करूँ।"

आयुष्मान उदय ने, आश्चर्यान्वित होकर, पूछा : "राजकुमारी! राजकुमारी का इस परामर्श से क्या प्रयोजन है, दुर्गपाल!"

वत्सला हँसकर बोलीं : "भन्ते! दुर्गपाल की राजकुमारी पुलोमजा नहीं, मैं हूँ। आज प्रायः पाँच वर्ष से, मैं इनको बारम्बार समझाती रही हूँ कि राजप्रासाद से निष्क्रमण करने के उपरान्त मैं राजकुमारी नहीं रही। किन्तु दुर्गपाल हठीले हैं। सुनकर भी अनसुनी करते रहे हैं।"

दुर्गपाल ने कहा : "भन्ते! आप ही इस विवाद का विनिश्चय कीजिए। क्या राजप्रासाद की प्रस्तर-शिलाओं का सानिध्य ही जिस-तिस को वृज्जिसंघ की राजकुमारी बना देने में समर्थ है? क्या वृज्जिसंघ की राजकुमारी से किसी गुणसम्पदा की अपेक्षा करना अन्याय है?"

आयुष्मान उदय ने मैत्रीपूर्ण दृष्टि से दुर्गपाल की ओर देखा। फिर वे वत्सला की ओर देखकर मुस्कराने लगे। वत्सला बोलीं : "दुर्गपाल! मैं आपसे विवाद करना नहीं चाहती। और आज हम एक गम्भीर विषय पर वार्त्तालाप कर रहे हैं। आयुष्मान उदय को राजकुमारी शब्द सुनकर जिस व्यक्ति का स्मरण होता है उसका नाम पुलोमजा है, वत्सला नहीं। अतएव आप यदि आज भरके लिए मेरा नाम लेकर पुकारें तो......

दुर्गपाल ने कहा : "सो मुझे स्वीकार नहीं, राजकुमारि! जिस ध्येय की उपलब्धि के लिए यह समस्त समारम्भ हो रहा है, उसकी आदितः अवहेलना करने का अनुरोध आप मुझसे न करें।"

आयुष्मान उदय ने पूछा : "ध्येय क्या है, दुर्गपाल !"

दुर्गपाल ने उत्तर दिया : "राजकुमारी को पुनरेण वैशाली के राज-प्रासाद में प्रतिष्ठित करना।"

वत्सला बोलीं : "वह तो तभी सम्भव है जब वृज्जिसंघ का राजा—मुझको पुत्रिकापद प्रदान करे।"

दुर्गपाल ने कहा : "सो क्यों, राजकुमारि ! वृज्जिसंघ का राज्यासन क्या वृज्जि महाजनपद की जनपद-कल्याणी का तिरस्कार करेगा ?"

वत्सला स्तम्भित रह गई। उनके मुख से एक ही शब्द निकला : "दुर्गपाल !!!"

आयुष्मान उदय ने देखा कि वार्त्तालाप का विषयान्तर होने लगा है। वे दुर्गपाल को सम्बोधित करके बोले : "दुर्गपाल ! तुम मुक्ति के एक नए पथ का संकेत कर रहे थे। वह क्या है ? तुम अपना मत व्यक्त करो। राजकुमारी की ओर से मैं वचन देता हूँ कि वे, तुम्हारा वक्तव्य पूरा होने के पूर्व, किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं करेंगी।"

अनिरुद्ध ने, विजय-गर्वित दृष्टि से, वत्सला की ओर देखा। फिर वे कहने लगे :

"भन्ते ! वृज्जिसंघ में जो कुछ हो रहा है वह एक कुचक्र का कुपरिणाम है। कुचक्र मगधराज की ओर से चल रहा है। वृज्जिसंघ के राजा मगधराज के प्रिय वयस्थ हैं। अतएव कुचक्र का प्रकाशन किसी प्रकार भी सम्भव नहीं। ऐसी अवस्था में वृज्जिसंघ के हितचिन्तकों का कर्त्तव्य हो जाता है कि कुचक्र का विरोध कुचक्र से करें। वृज्जिसंघ के विपक्ष ने जिस हीन उपाय का आश्रय लिया है, उसी उपाय का अवलम्बन लेकर हमें भी आत्मरक्षा के लिए तत्पर हो जाना चाहिए।"

दुर्गपाल की बात सुनकर, वत्सला संयम धारण नहीं कर पाईं। वे बोलीं : "दुर्गपाल ! कुचक्र के द्वारा कुचक्र का विनाश क्या सम्भव है ? हम दोनों एक बार वैसी चेष्टा करके देख चुके। किन्तु परिणाम क्या हुआ ? द्वार पर दण्डायमान शत्रु दुर्ग में प्रवेश कर गया और...

दुर्गपाल वत्सला की शंका का समाधान करने के लिए अधीर होने लगे। वार्त्तालाप को पुनरेण विवाद की ओर अग्रसर होते देखकर, आयु-

ष्मान उदय ने दुर्गपाल को सम्बोधित किया :

"दुर्गपाल ! तुम अपना वक्तव्य पूरा करो। तुम्हारी योजना सुनकर ही हम निश्चय करेंगे कि तुम जो करना चाहते हो वह कुचक्र है अथवा अन्य कुछ।"

दुर्गपाल कहने लगे : "भन्ते ! मैं यह स्वीकार करता हूं कि वैशाली के लिच्छवि-गण राजा रत्नकीर्ति का विरोध नहीं करेंगे। किन्तु वैशाली तो वृज्जिसंघ का आद्यन्त नहीं। वैशाली के बाह्यान्तर भी वृज्जि महा-जनपद में अनेक निगम और ग्राम हैं। वैशाली के बाह्यान्तर भी एक अपार जनगण है जो वैशाली की विलास-लीला से संत्रस्त है।

"एक समय था जब वैशाली के लिच्छवि-परिवार-प्रमुख अपनी प्रजा का परित्राण किया करते। उस समय लिच्छवि प्रभुगण के ग्रामस्थ कर्म-चारी-वृन्द जानपद जनता के ऊपर अत्याचार नहीं कर पाते थे। किन्तु अब तो कदाचित् ही कोई लिच्छवि-परिवार-प्रमुख, अपने भोग्यग्राम में जाकर, यह देखने का कष्ट करता है कि उसके अधीनस्थ कृषीवल तथा कर्मकार कैसे हैं। विलास-परायण लिच्छवि परिवारों के व्यय में वृद्धि हो जाने के कारण, जानपद जनता द्वारा आदेय कर एवं शुल्क में भी, दिन-प्रतिदिन, वृद्धि हो रही है। अतएव वृज्जिसंघ की प्रजा में वैशाली के प्रति विक्षोभ है, असन्तोष है...

वत्सला ने पूछा : "इसका आपके पास क्या प्रमाण है, दुर्गपाल !"

उत्तर दिया आयुष्मान उदय ने। वे बोले : "वैशाली की ओर चारिका करते समय मैंने वृज्जि महाजनपद के अनेक ग्राम एवं निगम देखे हैं। मैं साक्षी हूँ कि दुर्गपाल का विवरण सर्वथा सत्य है।"

दुर्गपाल कहने लगे : "तो, भन्ते ! हमारा कर्त्तव्य सर्वथा स्पष्ट है। हमको वृज्जि महाजनपद के जानपद प्रान्तों में अपना पक्ष संगृहित करना चाहिए। हमको एक दृढ़ सेना सजानी चाहिए, जो समय पाकर वैशाली का मानमर्दन कर सके। दृढ़व्रती जानपद जनता के समक्ष, वैशाली के लम्पट लिच्छवि एक क्षण भी नहीं ठहर पाएँगे। और राजकुमारी अना-यास ही वृज्जिसंघ के राज्यासन पर सुशोभित हो जाएँगी।"

वत्सला का मुख विक्षोभ से विकृत हो गया। वे, तर्जनी से दुर्गपाल

की ताड़ना करती हुई, बोलीं : "लिच्छवि-वंश के शोणितप्रवाह का संतरण करके, मैं राज्यासन पर आरोहण करूँगी, दुर्गपाल !! आपको यह कहने का दुःसाहस किस प्रकार हुआ ? क्या आपको यह स्मरण नहीं रहा कि मैं उभयपक्ष से सुजात लिच्छवि-दुहिता हूँ ? आपकी नाईं मैथिली माँ की सन्तान नहीं। छिः छिः, दुर्गपाल ! आपको ऐसा कुचक्र रचने की यह कुबुद्धि किसने दी ?"

आयुष्मान उदय ने कहा : "राजकुमारि ! लिच्छवि-वंश का विध्वंस तो दुर्गपाल की कुबुद्धि के बिना भी दुर्निवार्य है। और तुम क्या वैशाली में विचरण करते हुए इन अस्थि मज्जा-मांस के पुतलों को लिच्छवि-वंश के प्रतीक मानती हो ? लिच्छवि-मर्यादा का अपमान करने वाले इन अनाचारियों के लिए तुम्हारे मानस में इतनी ममता क्यों ? लिच्छवि-वंश की परम्परा है वृज्जि महाजनपद का परित्राण। वृज्जि महाजनपद की जनता के जीवन में सुख एवं समृद्धि का संचय। जानपद जनता को त्रसित करने वाले और वृज्जिसंघ के स्वातन्त्र्य से शत्रुता करने वाले, ये लम्पट तो लिच्छवि नहीं हैं। ये तो लिच्छवि-कुल को कलङ्कित करने वाले, कुपथ-गामी, कुलघातक हैं। इनको, इनके धर्मद्रोह तथा स्वदेशद्रोह के लिए, दंड मिलना चाहिए।"

वत्सला, अपना सिर अवनत करके, मौन हो गईं। चिन्तानिमग्न। किंकर्त्तव्य-विमूढ़-सी। श्रमण की भर्त्सना में सत्य का समावेश था। किन्तु, फिर भी, वे लिच्छवि-वंश के विरुद्ध कुचक्र रचने के लिए, किसी प्रकार प्रस्तुत नहीं थीं।

आयुष्मान उदय ने दुर्गपाल से प्रश्न किया : "दुर्गपाल ! पाटलिग्राम के दुर्गद्वय में, तुम्हारे अधीनस्थ जो लिच्छवि सुभट-समवाय है, उसको क्या तुम इस शुभ कार्य के लिए समुत्साहित नहीं कर सकते ?"

अनिरुद्ध ने उत्तर दिया : "भन्ते ! पाटलिग्राम भी वैशाली के पाप-पङ्क से प्रलिप्त हो गया है। वहाँ के लिच्छवि सुभट भी, सुरा एवं सुन्दरी की उपासना करके, निःसत्व हो चुके हैं। उनकी ओर से मुझको अधिक आशा नहीं।"

"मुझको आशा है, दुर्गपाल ! यदि तुम प्रयत्न करो तो पाटलिग्राम

के लिच्छविवृन्द को पाप के गर्त से निकाल सकते हो। तब तुमको, जानपद जनता की सहायता से, लिच्छवि-वंश का विध्वंस करने के लिए बाध्य नहीं होना पड़ेगा।"

वत्सला ने आशाभरी दृष्टि से आयुष्मान उदय की ओर देखा। दुर्गपाल मौन रहे। तब आयुष्मान उदय ने वत्सला को सम्बोधित किया :

"राजकुमारि ! तुम कह रही थी कि वैशाली में भी अनेक लिच्छवि, मन ही मन, इस नवीन व्यवस्था का विरोध करते हैं। मेरा अनुभव भी तुम्हारी बात का समर्थन करता है। अतएव तुम्हारा कर्त्तव्य भी निश्चित है। तुम वैशाली में गुह्य-संगठन का संग्रह करो। मैं तुम दोनों की यथासाध्य सहायता करूंगा।"

वत्सला ने कहा : "भन्ते ! इस योजना के अवयव क्या-क्या हैं ?"

श्रमण ने उत्तर दिया : "पाटलिग्राम के दुर्गद्वय में जितने भी सुभट लिच्छवि-मर्यादा के प्रति अनुरक्त हैं, उन सबको दुर्गपाल एक गुह्य-संगठन के सूत्र में ग्रन्थित करें। भ्रष्ट सुभटों को पाटलिग्राम से अपसारित करके वैशाली में भेज दें। उनका स्थान लेने के लिए, तुम वैशाली से मर्यादा-परायण सुभट पाटलिग्राम की ओर प्रेषित करती रहना। इस प्रकार शीघ्र ही वह समय प्राप्त होगा जब पाटलिग्राम का लिच्छवि-सैन्य, वैशाली की ओर आकर, अनाचार का अन्त कर सकेगा।"

"यह तो गृहयुद्ध की योजना है, भन्ते !"

"गृहयुद्ध प्रयोजनीय हुआ तो मैं उसको भी ग्रहण करूँगा, राजकुमारि ! किन्तु मेरा विश्वास है कि, इस मार्ग के अवलम्बन से, गृहयुद्ध का अवसर नहीं आएगा। जिस रात्रि को पाटलिग्राम का लिच्छवि-सैन्य भागीरथी को पार करके वैशाली की ओर प्रयाण करने लगे, उसी रात्रि को वैशाली के क्षत्रियग्राम में विद्रोह जगाने का भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ। दुर्गपाल को वैशाली का दक्षिण-द्वार अपावृत मिलेगा। और रत्नकीर्ति, पुलोमजा, वर्षकार तथा उनके अनुचर कारावरुद्ध।"

आयुष्मान उदय ने, एक क्षण मौन रह कर दुर्गपाल तथा वत्सला की ओर देखा। फिर वे वत्सला से बोले : "राजकुमारि ! तुम प्रस्तुत हो ?"

वत्सला ने उत्तर दिया : "मैं सर्वथा प्रस्तुत हूँ, भन्ते !"

दुर्गपाल बोले : "मैं भी, भन्ते !"

तब आयुष्मान उदय ने कहा : "दुर्गपाल ! तुम, वैशाली की ओर से विक्षुब्ध होकर, पाटलिग्राम की ओर प्रयाण करो और वहाँ जाकर तुरन्त ही अपना कार्य आरम्भ कर दो। राजकुमारी और मैं, वैशाली में रह कर, अपना-अपना करणीय कर्म करेंगे। मन्त्रणा का प्रयोजन होने पर तुम मुझको सूचित करना। मैं ही पाटलिग्राम आ कर तुमसे मिलूँगा। किन्तु तुम, राजाज्ञा पाए बिना, भूलकर भी वैशाली में पदार्पण मत करना। न राजकुमारी से किसी प्रकार का सम्पर्क स्थापित करना।"

वत्सला ने कहा : "किन्तु, भन्ते ! दुर्गपाल तो प्रायशः मुझसे मिलते रहे हैं। उस क्रम में अकस्मात् व्याघात होने के कारण क्या सन्देह को स्थान नहीं मिलेगा ?"

श्रमण ने उत्तर दिया : "वैशाली की वीथि-विथि में यह विख्यात हो जाएगा कि तुम दोनों के मध्य मनोमालिन्य हो गया है।"

अब की बार दुर्गपाल ने पूछा : "मनोमालिन्य का कारण क्या कहेंगे, भन्ते !"

उत्तर दिया वत्सला ने : "वह तो सुकर कार्य है, दुर्गपाल ! आप जानते हैं कि पुलोमजा आपके प्रति आसक्त है। इसीलिए राजा रत्नकीर्ति ने, अभी तक, आपको अपदस्थ नहीं किया। पुलोमजा को पूर्ण आशा है कि एक न एक दिन आप उसके 'प्रणय' का प्रत्युत्तर देंगे। इसीलिए पुलोमजा ने, बारम्बार पाटलिग्राम जा-जाकर, आपके चारों ओर 'रस एवं संस्कार' की सृष्टि की है। उसका यह दृढ़ विश्वास है कि आपके मूढ़ मानस में भी, एक-न-एक दिन, 'रस एवं संस्कार' का उद्रेक होगा। उसे आशा है कि, एक-न-एक दिन, आपका यह 'श्रमानुपोचित' आग्रह भङ्ग हो जाएगा। आप पुलोमजा के प्रणय का प्रत्युत्तर दीजिए, दुर्गपाल ! मेरे और आपके मध्य मनोमालिन्य की समस्या का समाधान हो जाएगा।"

दुर्गपाल रुष्ट-से होकर बोले : "राजकुमारि ! इसके पूर्व भी आप, एक बार, ऐसा ही अनुरोध मुझसे कर चुकी है। उस समय भी मैंने सफलता-प्राप्ति के उपरान्त आत्मघात करने की अनुज्ञा माँगी थी। यदि आप मुझको वह अनुज्ञा देने के लिए तत्पर हों तो मैं भी प्रस्तुत हूँ।"

श्रमण ने कहा : "राजकुमारि ! मिथ्याचार का परामर्श आप दुर्गपाल को न दें। वह न वाञ्छनीय है, न प्रयोजनीय।"

वत्सला ने हँसकर उत्तर दिया : "मिथ्याचार का परामर्श मैं नहीं दे रही, भन्ते ! मेरा अनुरोध है कि दुर्गपाल सत्यशः पुलोमजा से प्रेम करने लगें।"

श्रमण भी हँसने लगे। फिर वे बोले : "उस अवस्था में दुर्गपाल हमारे काम के नहीं रह जाएँगे।"

वत्सला अथवा दुर्गपाल कुछ कहें इसके पूर्व ही, एक परिचारिका ने उपवेशनशाला के द्वार पर उपस्थित होकर, वत्सला को सूचित किया कि वृज्जिसंघ के दण्डबल-महामात्य, आर्य सुनक्खत-उनसे साक्षात करने के लिए आवास के अलिन्द पर दण्डायमान हैं। उपवेशनशाला में उदासीन तीनों व्यक्तियों ने ससंभ्रम एक-दूसरे की ओर देखा। तब वत्सला ने परिचारिका को आदेश दिया : "हञ्जे इसी क्षण बाहर जाकर आर्य सुनक्खत को आसन दो। मैं तुरन्त ही उनका स्वागत करने के लिए आ रही हूँ।"

परिचारिका चली गई। वत्सला ने कहा : "भन्ते ! यह तो अपशकुन हुआ है। आर्य सुनक्खत वर्षकार ब्राह्मण द्वारा संचालित कुचक्र के अविभाज्य अंग हैं।"

श्रमण ने कहा : "मुझे ज्ञात है।"

वत्सला ने, उत्थान करके, कहा : "मैं आर्य सुनक्खत से मिलकर अभी आती हूँ।"

श्रमण ने वारण किया : "राजकुमारि ! तुम सुनक्खत को साथ ले कर यहीं चली आओ। तुरन्त।"

वत्सला, असमंजस में पड़कर, बोलीं : "किन्तु......

"सुनक्खत जानता है कि मैं यहाँ विद्यमान हूँ।"

"किन्तु दुर्गपाल......

"दुर्गपाल की उपस्थिति से भी वह अनभिज्ञ नहीं है। सुनक्खत वर्षकार ब्राह्मण की गूढ़-प्रणिधि का प्रधान पुरुष है। उसकी दृष्टि से बच कर, कोई भी विशिष्ट व्यक्ति वैशाली में यातायात नहीं कर सकता।"

वत्सला और दुर्गपाल अवाक् रह गए। वे दोनों सुनक्खत को दुष्ट और धूर्त मानते थे। किन्तु उन्होंने, स्वप्न में भी, यह कल्पना नहीं की थी कि सुनक्खत मगधराज के गूढ़पुरुष हैं।

वत्सला बोलीं: "भन्ते! आर्य सुनक्खत तो राजा रत्नकीर्ति के अन्तरङ्ग मित्र हैं। तो क्या राजा रत्नकीर्ति भी......

श्रमण ने हँसकर कहा: "रत्नकीर्ति गूढ़पुरुष नहीं, मूढ़पशु है। उसकी मूढ़ता तथा पशुत्व का प्रश्रय पाकर गूढ़पुरुष अपना काम कर रहे हैं। आँखों का अन्धा और अहंकार का कीड़नक रत्नकीर्ति यह समझे बैठा है कि वह अखिल आर्यावर्त में शान्ति की स्थापना करेगा। यह अहंकार उसका विनाश कर देगा। रत्नकीर्ति का पतन अवश्यम्भावी है। प्रश्न यह है कि वह पतन वृज्जिसंघ के हितचिन्तकों द्वारा सम्पन्न होगा, अथवा साम्राज्यलोलुप अजातशत्रु द्वारा। किन्तु अब तुम विलम्ब मत करो, राजकुमारि! सुनक्खत को सम्मानपूर्वक यहाँ ले आओ।"

वत्सला, अलिन्द की ओर जाकर, आर्य सुनक्खत को अपने साथ ले आई। दुर्गपाल ने गात्रोत्थान करके आर्य सुनक्खत का अभिवादन किया। और आर्य सुनक्खत ने, बद्धाञ्जलि हो, आयुष्मान उदय का। फिर वे उपासीन होकर बोले: "छः वर्ष पूर्व, इसी दिन, आर्यश्रेष्ठ महाली का स्वर्गवास हुआ था। मैंने सोचा कि जाकर वत्सला का समाचार ले आऊँ। वत्सले! मुझे आशा है कि पिता के निधन से उद्भूत तुम्हारा शोक अब शान्त हो चुका है?"

वत्सला ने विनीत वाणी में कहा: "आर्य! आपके वर्तमान रहते मुझे शोक किस बात का?"

"सौभाग्यवती हो, वत्सले! अब तुम इस वृद्ध का एक अनुरोध मान लो।"

"आज्ञा दीजिए, आर्य!"

"तुमको कुमारी देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता है। अब तुम विवाह कर लो।"

वत्सला ने, व्रीडाभिभूत होकर, अपना शिर अवनत कर लिया। आर्य सुनक्खत ने श्रमण से पूछा: "भन्ते! इस विषय में आपका क्या

मत है ?"

श्रमण ने उत्तर दिया : "इस विषय में मतामत व्यक्त करने की अनुमति धर्मसंघ अपने श्रमण को नहीं देता।"

"तो क्या धर्मसंघ राजव्यवस्था के विषय में मतामत व्यक्त करने की अनुमति देता है ?"

"यह प्रश्न तुम धर्मसंघ से ही पूछ लो।"

"किन्तु, भन्ते ! आप भी तो धर्मसंघ के प्रतिनिधि हैं।"

"धर्मसंघ का कोई प्रतिनिधि नहीं होता।"

"भन्ते ! इतने दिन से आप जिस मत का प्रचार वैशाली में कर रहे हैं, वह क्या धर्मसंघ का मत है ?"

"नहीं, वह मेरा मत है।"

"क्या वत्सला भी आपका मत मानती है ?"

"इनके मतामत की गवेषणा करने मैं इनके पास नहीं आया।"

"और दुर्गपाल अनिरुद्ध ?"

आर्य सुनक्खत के इस प्रश्न का उत्तर दुर्गपाल ने स्वयं दिया : "आर्य महामात्य ! मैं तो वृज्जिसंघ का एक अकिञ्चन अनुचर मात्र हूँ। राज्य की ओर से जैसी भी आज्ञा मुझको जिस समय भी दी जाती है, उसका पालन करने के अतिरिक्त मैं अन्य कुछ नहीं जानता।"

आर्य सुनक्खत ने वत्सला को सम्बोधित किया : "वत्सले ! तुम्हारा क्या मतामत है ?"

वत्सला ने पूछा : "किस विषय में, आर्य !"

"वृज्जिसंघ की प्रस्तुत शासनप्रणाली के विषय में।"

"आर्य ! उस ओर से मैं सर्वथा उदासीन हूँ।"

आर्य सुनक्खत हँसने लगे। फिर वे आयुष्मान उदय की ओर अभिमुख होकर बोले। "एक अनुचर, दूसरी उदासीन। और भन्ते ! एक दिन इन दोनों ने ही गुप्त मन्त्रणा करके पाटलिग्राम के मागध दुर्ग का धर्षण किया था।"

श्रमण मौन रहे। वत्सला बोलीं : "आर्य ! वह तो हमारे शैशव-काल की कहानी है। अब हम दोनों सयाने हो गए हैं।"

दुर्गपाल ने कहा : "आर्य ! इस समय तक हमने आर्यश्रेष्ठ राजा रत्नकीर्ति का शान्ति-सन्देश श्रवण नहीं किया था।"

आर्य सुनक्षत्र बोले : "शान्ति का सन्देश सुन कर भी, अनेक दिन तक, तुम दोनों उसका विरोध करते रहे हो।"

वत्सला ने उत्तर दिया : "आर्य ! दुर्बुद्धि का क्षय और सुबुद्धि का समुदय एक दिन में तो नहीं होता। पूर्व संस्कार भी तो अपना हठ करते रहते है।"

आर्य सुनक्षत्र ने, प्रसंग-परिवर्तन करते हुए, कहा : "वत्सले ! मैं एक गुरुतर कार्य का भार ले कर तुम्हारे पास आया हूँ। वह भार वैशाली में तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई भी वहन नहीं कर सकता।"

वत्सला बोली : "आज्ञा दीजिए, आर्य !"

"आरम्भ मे ही आर्यश्रेष्ठ की यह आकांक्षा रही है कि उनका शान्ति सन्देश आर्यावर्त में सर्वत्र, विस्तारित हो। उसके पूर्व, उनका सन्देश वृज्जि महाजनपद में सर्वमान्य होना चाहिए। तभी वे उन्नतशीर्ष होकर अपने सन्देश का प्रचार अन्यत्र करने में समर्थ हो सकेंगे।"

"इस महान् समारम्भ में मैं अकिंचन आर्यश्रेष्ठ की क्या सहायता कर सकती हूँ ?"

"तुम अकिंचन नहीं हो, वत्सले ! आज भी वैशाली के लिच्छविगण मे एक ऐसा दल विद्यमान है जो मुख से मौन रह कर, मन-ही-मन, आर्यश्रेष्ठ का विरोध करता है। और वह दल तुम्हारा-अनुयायी है। तुम यदि, शृंगाटक पर दण्डायमान होकर, स्पष्ट शब्दों में यह कह दो कि तुम आर्यश्रेष्ठ से सहमत हो तो वृज्जिसंघ में विभेद का आमूल उच्छेद हो जाएगा।"

"किन्तु आर्य......"

वत्सला किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर मौन हो गई। आयुष्मान उदय ने उनसे कहा : "वत्सले ! तुम अभी कुछ क्षण पूर्व कह रही थी कि आर्यश्रेष्ठ के विरुद्ध तुम्हारी कुबुद्धि का क्षय हो गया और सुबुद्धि का उदय हुआ है। तब तुमको, अपने कर्त्तव्य का भार-वहन करने मे, बाधा का बोध क्यों हो रहा है ?"

वत्सला फिर भी मौन रहीं। उनकी समझ में नहीं आया कि आयुष्मान उदय उनको, आर्य सुनक्खत का प्रस्ताव स्वीकार करने का परामर्श दे रहे हैं अथवा उस प्रस्ताव के विरुद्ध चेतावनी। श्रमरण ने फिर से कहा :

"तुम क्षत्रिय-दुहिता हो, वत्सले ! तुमने लिच्छवि-वंश में जन्म लिया है। अकर्मण्य और उदासीन रहकर जीवनयापन करना तुमको शोभा नहीं देता। तुमको कर्म-क्षेत्र में पदार्पण करना चाहिए। सुनक्खत तुमको कर्मरत होने का सुअवसर दे रहा है।"

वत्सला ने, श्रमरण का आशय ग्रहण करके, आर्य सुनक्खत से कहा : "आर्य ! आपकी आज्ञा मेरे लिए शिरोधार्य है। मैं शृङ्गाटक पर जाऊँगी। किन्तु अपनी अकर्मण्यता का परित्याग करने में मुझको कुछ समय लगेगा।"

आर्य सुनक्खत, वत्सला के मस्तक का स्नेह-स्पर्श करके, बोले : "सौभाग्यवती हो, वत्सले ! तुम यथाशीघ्र कर्मरत होने का संकल्प करो।"

फिर उन्होंने आयुष्मान उदय को सम्बोधित करके, पूछा : "भन्ते ! क्या मेरा यह अनुमान उचित है कि आपका मत भी परिवर्तित हो गया ?"

आयुष्मान उदय ने उत्तर दिया : "नहीं, तुम्हारा अनुमान अनुचित है। मेरा मत अभी भी वही है जो अब तक था।"

"तो, भन्ते ! आपने वत्सला को मेरा मत मानने के लिए क्यों प्रोत्साहित किया ?

"धर्म का तत्त्व यही है कि प्रत्येक व्यक्ति, अपने स्वभाव के अनुसार स्वधर्म का निर्णय करके, प्राणपण से उसका पालन करे।"

"भन्ते ! क्या आर्यश्रेष्ठ अपने स्वभाव के अनुसार स्वधर्म का आचरण नहीं कर रहे ?"

"असुरत्व की उपासना करने के कारण रत्नकीर्ति का स्वभाव उपहत हो चुका है।"

"असुरत्व ही सही, भन्ते ! असुरत्व भी तो स्वभाव ही है। उस स्वभाव से ही स्वधर्म निर्णीत क्यों न हो ?"

"यह भी तुम्हारी भूल है। मनुष्य स्वभावतः धर्म की ओर प्रवृत्त होता है। अधर्म की प्रवृत्ति मनुष्य का स्वभाव नहीं हो सकती।"

"यह तो विवाद का मार्ग है, भन्ते !"

"धर्म की गवेषणा तथा प्राप्ति के पथ पर अनेक समय विवाद भी उत्थापित होता है।"

"अद्भुत है, भन्ते ! आपका धर्मचिन्तन। अपूर्व है, भन्ते ! आपका धर्मानुशीलन !"

आयुष्मान उदय यह नहीं समझ सके कि आर्य सुनक्खत व्यंगोक्ति कर रहे हैं, अथवा साधुवाद। सुनक्खत की स्वरभङ्गी में किसी प्रकार का संकेत नहीं था। किन्तु सुनक्खत के आशय से अवगत होना प्रयोजनीय न जान कर, उन्होंने अपने आसन से उत्थान किया। और वत्सला, अनिरुद्ध तथा सुनक्खत का प्रत्युत्थानपूर्वक सम्मोदन ग्रहण करके, वे आर्यश्रेष्ठ महाली के आवास से निकल आए।

सप्तम अंक

दुर्गपाल अनिरुद्ध ने, पाटलिग्राम में प्रत्यागत होते ही, अपने गूढ़-संगठन का सूत्रपात कर दिया। वे प्रत्येक लिच्छवि सुभट के स्वभाव एवं आचार-व्यवहार से सुचारु परिचित थे। जिस सुभट के विषय में उनका विचार था कि वह अशासनीय एवं अशिक्षणीय है, उसको उन्होंने सर्वप्रथम मागध दुर्ग में स्थानान्तरित कर दिया। मागध दुर्ग के शैक्ष्य लिच्छवि सुभट लिच्छवि दुर्ग में लौटने लगे। इस प्रकार प्रायः दो मास व्यतीत होते-होते लिच्छवि दुर्ग पूर्णतया परिशुद्ध हो गया।

तदनन्तर, अनिरुद्ध मागध दुर्ग की ओर ध्यानाविष्ट हुए। वहाँ पर समवेत सुभट, विलासलोलुप होने के कारण, वैशाली लौट जाने के लिए लालायित रहते थे। वे वैशाली के नवीन वैभव पर विमुग्ध थे। अतएव उन सबको, एक-एक करके, वैशाली लौटा देना दुर्गपाल के लिए दुःसाध्य नहीं रहा। उनका स्थान लेने लगे, वैशाली से नवागत, वत्सला के विश्वस्त लिच्छवि युवक।

यह समस्त कर्म सम्पन्न करते समय दुर्गपाल नितान्त गोपनीय नीति का अवलम्बन ले रहे थे। दुर्गद्वय में गीत, वाद्य तथा सुरा-सुन्दरी का विधान अणुमात्र भी विशृङ्खल नहीं हुआ। कुशीलव कन्याएँ और सौरिक-वृन्द अपनी आय में अभूतपूर्व वृद्धि का अनुभव करने लगे।

किन्तु अनिरुद्ध द्वारा अनुशासित सुभट अब अपने चषक का चुम्बन-मात्र करके उन्मत्त होने का अभिनय करते थे। सुरा को स्वयं उदरस्थ न करके वे उसे सुन्दरी-समुदाय के उदर में उतारने लगे। अधिक मद्यपान से अभिभूत वाराङ्गनाओं के आलिङ्गन अब अभिसार की पूर्ति के पूर्व ही स्खलित होने लगे।

इस समारम्भ में दुर्गपाल सब समय मुनक्खत के गुप्तचरों की ओर

से सतर्क रहे। उनको विदित था कि पाटलिग्राम का प्रत्येक समाचार, शीघ्रातिशीघ्र, मुनक्खत के निकट निवेदित होता रहता है। अतएव दुर्गपाल द्वारा आचरित द्वैधीभाव के फलस्वरूप मुनक्खत को प्राप्त समस्त समाचार अब गूढ़-संगठन की सुविधा को ही समुत्पन्न करने लगे।

दुर्गपाल ने, मुनक्खत के गुप्तचरों का सन्धान करके, उनमें से प्रत्येक को किसी-न-किसी प्रकार अपना कृपाभाजन बना लिया। वे गुप्तचर, समय असमय में, दुर्गपाल के आगार में आमन्त्रित होने लगे। वहाँ, सुरा एवं सुन्दरी की सहायता से, उनका समुचित सत्कार होने लगा। दूसरी ओर दुर्गपाल ने अपने विश्वासपात्र पुरुषों को मुनक्खत के विश्वासपात्र बनाने में भी साफल्य-लाभ किया। मुनक्खत को, दिन-प्रतिदिन, यह समाचार मिलने लगा कि पाटलिग्राम का पुरातनता-प्रेमी दुर्गपाल अब परम्परागत विधिनिषेध का त्याग करके नवविधान के पौर परायण होने लगा है। और मुनक्खत, शनैः शनैः, पाटलिग्राम की ओर से निश्चिन्त हो गए।

उधर वैशाली में, सहसा, एक जनप्रवाद प्रसार पाने लगा। प्रवाद के अनुसार वत्सला दुर्गपाल अनिरुद्ध के कदाचार का समाचार सुनकर उनसे पराङ्मुख हो गई थीं। अब वे, दुर्गपाल का नाम सुनते ही, ग्लानि का प्रदर्शन करती थीं।

वैशाली से प्रत्यागत अनेक वैशाली-वासी कह रहे थे कि दुर्गपाल अनिरुद्ध भी वत्सला से घृणा करने लगे हैं और वे अब वत्सला का नाम-मात्र सुनकर क्रुद्ध हो जाते हैं। दुर्गपाल के आचरण ने प्रवाद का समर्थन किया। अनेक दिन से किसी वैशाली-वासी ने दुर्गपाल को आर्यश्रेष्ठ महाली के आवास की ओर गमनागमन करते नहीं देखा था। वे राज-कार्य-वश वैशाली में आते रहते थे। किन्तु वत्सला का नाम भी किसी ने उनके मुख से नहीं सुना। वे अन्तर्दुर्ग से निकल कर सीधे पाटलिग्राम की ओर चले जाते थे।

प्रवाद सुनकर पुलोमजा का रोम-रोम पुलकायमान हो उठा। दुर्गपाल का अभूतपूर्व आचरण उसने भी अपनी आँखों से देखा था। अब वे उसका तिरस्कार नहीं करते थे। उनके वार्त्तालाप में भी अब माधुर्य का मिश्रण

होने लगा था। फिर भी पुलोमजा को, सहसा, विश्वास नहीं हुआ कि अनिरुद्ध तथा वत्सला के मध्य चिरदिन के लिए मनोमालिन्य हो गया है।

तब एक दिन, अवसर पाकर, पुलोमजा ने, प्रसंगवश, वत्सला के समक्ष अनिरुद्ध की चर्चा कर दी। वत्सला ने तुरन्त ही, अधरोष्ठ कुञ्चित करके, अपना मुख परावृत्त कर लिया। अन्य दिन, दुर्गपाल को राजप्रासाद में आया देखकर, पुलोमजा ने उनके समक्ष वत्सला का नाम ले दिया। दुर्गपाल के क्षुब्ध पदाघात से पुलोमजा का कक्ष प्रतिध्वनित हो उठा।

पुलोमजा की अनेक वर्ष की तपस्या के उपरान्त अब समय आया था कि वह, अनिरुद्ध को अपने आलिङ्गन में आबद्ध करने के लिए, अन्तिम किन्तु अपराजेय प्रयत्न करे। अभी तक उसके समस्त प्रयत्न असफल रह गए थे।

पावस ऋतु अतिवाहित हो गई। शरद् ऋतु का प्रथम मास भी। और तब, आश्विन पूर्णिमा के पुण्य पर्व पर, वैशाली में कौमुदी-महोत्सव का महान् समारोह समुपस्थित हुआ।

नवविधान के पूर्व भी वैशाली के लिच्छवि-गण इस पर्व के अवसर पर महोत्सव मनाया करते। किन्तु राजा रत्नकीर्ति के राज्यासन पर आसीन होते ही, इस महोत्सव में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए थे। राजा रत्नकीर्ति ने पारसीकपुरी का कौमुदी-महोत्सव देखा था। वहाँ इस अवसर पर, शासकवर्ग की सुन्दरियाँ सुरत-रंग की सहायता से अपना-अपना प्रणयपात्र मनोनीत किया करतीं।

राजा रत्नकीर्ति के परामर्श से, पुलोमजा ने वैशाली में भी पारसीक पद्धति का प्रवर्तन किया। कौमुदी-महोत्सव के उपलक्ष्य में, विशिष्ट-विशिष्ट लिच्छवि-कुलों के अविवाहित तरुण एवं तरुणियाँ राजोद्यान में समाहूत होने लगीं। सुरापान एवं संगीतास्वादन करने के उपरान्त, लिच्छवि-युगल एक-एक करके, उद्यान के निभृत निकुञ्जों में निहित हो जाते थे। और प्रभात के समय राजकुमारी पुलोमजा को प्रज्ञापित किया जाता था कि कौन-कौन से युगल परस्पर पाणिग्रहण के लिए प्रस्तुत हैं।

इस प्रणय-यज्ञ का प्रारम्भ, किन्तु, कौमुदी-महोत्सव के पूर्व ही हो जाता था। पुलोमजा वैशाली के प्रत्येक प्रगल्भ तरुण एवं तरुणी से परि-

चित थी। उसको प्रतिदिन यह समाचार प्राप्त होता रहता था कि कौन तरुणी, किस तरुण के लिए, तरङ्गायित अपनी तृषा से तप्त होकर, तिमिङ्गल-सी तिलमिला रही है, और कौन युवक किस युवती के भ्रूविलास से भूविलुण्ठित है। मन्मथ के प्रत्येक मर्मवेध का संकेत मिलते ही, पुलोमजा विरहातुर वराङ्गना तथा वरयुवक को राजप्रासाद में आमन्त्रित करके, अनुरोध करती थी कि वे दोनों, आगामी कौमुदी-महोत्सव तक, विरहवास करें। विरहवास की विधि का साङ्गोपाङ्ग वर्णन पारसीकपुरी के एक प्रख्यात पण्डित द्वारा प्रणीत पुस्तक में प्रस्थापित था।

पारसीक सम्राट द्वारा अनेक वार पुरस्कृत उस पण्डित का विधान था कि प्रणय-पीड़ा को प्रगाढ किए विना, प्रमदा और प्रणयी का परिणयन पूर्णतया परित्याज्य है। पीडा-प्रागाढ्य की प्राप्ति के लिए, प्रसंगानुसार, दीर्घ अथवा लघु विरहवास विहित था। पण्डित का यह पुष्ट मत था कि विरहवास की प्रवारणा के लिए, एक पुरी में, एक ही पर्व पूर्वनिश्चित होना चाहिए। उस पुण्य पर्व के पूर्व, प्रणयी एवं प्रणयिनी परस्पर प्रेमालाप कर सकते थे। प्रेमोपहार का आदान-प्रदान भी। किन्तु परिणयन द्वारा प्रणय-समापन नहीं।

प्रणय-समापन तभी विहित था जब कि तरुण एवं तरुणी, मिथुन-संयोजन-शास्त्र का आद्योपान्त पारायण करके, प्रणय-प्रागल्भ्य की परीक्षा देने के लिए प्रस्तुत हो जाएँ। इस परीक्षा में अनुत्तीर्ण प्रमदा एवं प्रणयी, परस्पर प्रपीड़न ही कर सकते थे, प्रणयपथ पर पराक्रम नहीं।

पुलोमजा ने, वैशाली में, विरहवास की प्रवारणा के लिए कौमुदी-महोत्सव का पर्व निश्चित किया था। उस रात को, राजोद्यान के वल्ली-लीलागृहों में, गुप्त-रण का समारम्भ होता था। पुलोमजा भी इस समर में सम्मिलित होती थी। किन्तु, अभी तक, वैशाली का कोई वरयुवक पुलोमजा का पाणिग्रहण नहीं कर पाया था। किसी ने भी, पुलोमजा द्वारा प्रत्यपेक्षित प्रागल्भ्य का परिचय नहीं दिया था।

इस बार, वह पुण्य-पर्व आते ही, पुलोमजा का मानस एक अभूतपूर्व आशा से पुलकित हो उठा। दुर्गपाल अनिरुद्ध ने कौमुदी-महोत्सव में उपस्थित होने का आमन्त्रण स्वीकार कर लिया था। पुलोमजा भी, प्रचुर

प्रसाधन-द्रव्य का व्यय करके, निश्चय कर चुकी थी कि इस बार वह अपने अनेक दिन के मनोनीत प्रणयपात्र को प्राप्त करके ही लीलागृह से लौटेगी।

अनिरुद्ध का पुष्यरथ राजोद्यान के द्वार पर आकर अवस्थित हुआ तो रात्रि का द्वितीय याम अतिवाहित हो चला था। सुरापान तथा संगीत के रसास्वादन से परितृप्त युवक-युवती-वृन्द सुरत-रण के लिए विकल होने लगे थे। किन्तु आज, पुलोमजा ने विहार की वेला प्रज्ञापित करने में विलम्ब कर दिया। वह न जाने किस की प्रतीक्षा में, बारम्बार, राजोद्यान के द्वार तक यातायात कर रही थी।

दुर्गपाल ने राजोद्यान के प्रांगण में प्रवेश किया तो अनेक प्रमदाओं ने, एक साथ उनकी ओर प्रधावमान होकर, उनको चारों ओर से पर्यवसित कर लिया। तब, सुरापान से प्रमत्त एक प्रमदा ने, अपने प्रकोष्ठ के कङ्कण द्वय को हस्तमुद्रान्यास के द्वारा मुखरित करके, अनिरुद्ध से प्रश्न किया : "प्रणय की इस अपूर्व वेला में आप एकाकी क्यों, दुर्गपाल !"

उत्तर दिया अग्रसर होती हुई पुलोमजा ने : "अनिरुद्ध एकाकी नहीं है।"

साथ ही, पुलोमजा की बाहुलता दुर्गपाल के भुजपरिघ का परिवेष्टन करने लगी। लिच्छवी तरुण-समाज तुरन्त समझ गया कि दुर्गपाल की प्रणयिनी कौन है। दुर्गपाल, पुलोमजा की ओर देखते हुए, मुस्करा रहे थे। जैसे बालक की अबोध चेष्टाओं पर कोई वयस्क मुस्कराया करता है।

पुलोमजा ने अधीर होकर कहा : "मेरे साथ चलो, अनिरुद्ध !"

दुर्गपाल ने पूछा : "किन्तु कहाँ ?"

"उस ओर। वल्लीलीलागृह में। तुम्हारी स्वीकारोक्ति सुनते ही मैंने, विशिष्ट शिल्पकार नियोजित करके, लीलागृह का निर्माण करवाया है।"

"तुमने तो मुझको कौमुदी-महोत्सव में अंशग्रहण करने का आमन्त्रण दिया था।"

"तुमको विदित होना चाहिए कि महोत्सव के विधान में परिवर्तन हो चुका है।"

"नवविधान क्या है, पुलोमजे !"

पुलोमजा उत्तर देती उसके पूर्व ही एक प्रमदा ने उससे पूछ लिया : "राजकुमारि ! विरहवास का विधान क्या आपके लिए विहित नहीं है ?"

पुलोमजा बोली : "भद्रे ! मैं विधान का अतिक्रमण नहीं कर रही। मैं, दीर्घ दश वर्ष से, इनके लिए विरहवास करती रही हूँ। इनके लिए जिस विरह-व्यथा का दहन मैंने किया है, उसको वहन करने की क्षमता किसी अन्य लिच्छवि-दुहिता में नहीं।"

एक अन्य प्रमदा ने हँसकर कहा : "राजकुमारी तो विरह-व्यथा के विस्फोट से विवस्त्रा हुई जा रही है।"

प्रमदा-वृन्द अट्टहास कर उठा। प्रणयी-दल, एक ओर खड़ा, स्पृहा-सूचक, स्मित विकीर्ण कर रहा था।

दुर्गपाल, मानो आकाश से गिर कर, गहन गिरिगह्वर में निगूढ हो गए। उनको अपने परित्राण का पथ नहीं दीख पड़ा। इस नग्न निर्लज्जता के लिए वे सर्वथा अप्रस्तुत थे।

पाटलिग्राम से प्रस्थान करते समय अनिरुद्ध ने सोचा था कि, राजोद्यान में जाकर, उनको वैशाली में व्याप्त विलास द्वारा उद्भूत विश्रृङ्खला के सम्बन्ध में विज्ञ होने का अवसर मिलेगा। उनका गूढ़-संगठन समारम्भ अब सम्पूर्ण था। अब वे, वैशाली पर प्रहार करने के लिए, आयुष्मान उदय से परामर्श करना चाहते थे।

अनिरुद्ध ने आशा की थी कि, कौमुदी-महोत्सव में कुछ समय व्यतीत करके, वे एक निश्चित स्थल पर श्रमण के साथ साक्षात्कार करने चले जाएँगे। किन्तु यहाँ तो किसी अन्य ही आयोजना का आविर्भाव होने लगा। पक्षी पाश में पदार्पण कर चुका था। व्याध उसके पक्ष काट कर उसे परतन्त्र किया चाहता था। दुर्गपाल, पाश को छिन्न करके, निकल भागने का उपाय सोचने लगे।

एक प्रमदा ने, पुलोमजा के अनावृत पयोधर-मण्डल का मर्दन-सा करके, उपालम्भ किया : "राजकुमारि ! यह आप का अन्याय है। हम सब तो न जाने कब से सुरत-रण के लिए आतुर हैं। किन्तु हमको आपने लीलागृह-गमन की आज्ञा नहीं दी। अब आप का प्रणयी आ गया तो

आप, इसी क्षण, लीलागृह में लुप्त हो जाने के लिए लालायित है। आप को अपने समान आतुर हुए बिना हम न जाने देंगी।"

प्रमदा-वृन्द ने, एक स्वर से, अपनी प्रतिनिधि का समर्थन किया : "हम न जाने देंगी।"

प्रथम कामिनी के कपोल पर नृशंस नखक्षत करती हुई पुलोमजा, दुर्गपाल को लेकर, उस स्थल पर पहुँची जहाँ सुरापान एवं संगीत के साधन समुपस्थित थे। और अपने हाथ से, एक आसव-आपूर्ण पानपात्र दुर्गपाल को देकर वह नर्तन करने लगी। अनिरुद्ध के अतिरिक्त, वहाँ पर उपस्थित अन्य सब युवक एवं युवतियाँ, उन्मत्त होकर, अश्लील इङ्गित एवं शब्द का अनर्गल व्यवहार कर रहे थे।

अनिरुद्ध आँखों से तो पुलोमजा का नृत्य देख रहे थे। किन्तु उनका मन कहीं अन्यत्र चला गया था। वे, भूतकाल के गर्भ में प्रवेश करके, एक अन्य नर्तकी का नृत्य अपने स्मृतिपट पर देखने लगे। पाटलिग्राम के मागध दुर्ग में हो रहा था वह नृत्य। मगध के ग्राम्य सैनिकों के मनो-रंजन के लिए। किन्तु उस निसर्ग-नृत्य की तुलना में, पुलोमजा का विलास-मय पादविक्षेप, ग्रीवाभंग, भ्रूविलास एवं मुद्राविन्यास, न जाने क्यों, इतना निस्वाद एवं निरानन्द था। अनिरुद्ध, अस्थिर-से उपासीन होकर, आसव-पान का उपक्रम करते रहे।

तब, सहसा, पुलोमजा के पाणिस्पर्श ने उनकी समाधि भङ्ग कर दी। दुर्गपाल ने देखा कि अब वहाँ उन दोनों के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। वे, ससंभ्रम उत्थान करते हुए, बोले : "पुलोमजे ! वे सब कहाँ गए ?"

पुलोमजा ने उत्तर दिया : "अपने-अपने स्थान पर। तुम मेरे साथ आओ। लीलागृह के शिलासन पर विस्तीर्ण शय्या-तल्प तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।"

दुर्गपाल अवसन्न हो गए। वे अनुनय के स्वर में बोले : "किन्तु मुझे तो इसी समय पाटलिग्राम की ओर प्रत्यावर्तन करना है, पुलोमजे ! मेरे शिर पर सीमान्त की संरक्षा का भार है। मैं अधिक समय तक पाटलि-ग्राम से दूर नहीं रह सकता।"

पुलोमजा ने कहा : "पाटलिग्राम में तुम्हारा प्रवास पूर्ण हो चुका,

अनिरुद्ध ! अब तुम पाटलिग्राम को भूल जाओ। महाली की दारिका का भय नहीं होता तो इसके बहुत पूर्व ही तुम वैशाली के वैभव का उपभोग करते। अब उस ओर की आशंका मिट गई। अब तुम्हें पाटलिग्राम की ओर प्रत्यावर्तन करना नहीं होगा।"

अनिरुद्ध समझ गए कि पुलोमजा के कथन का आशय क्या है। जिस कुचक्र के आवर्त में आबद्ध करके वे पुलोमजा को पराभूत करना चाहते थे, उसी की कराल कारा में वे स्वयं निरुद्ध हो चुके थे। मुक्ति का उपाय सोचने के लिए अवकाश की आवश्यकता थी। दुर्गपाल, मौन रह कर, पुलोमजा के साथ हो लिए।

पुलोमजा के लीलागृह में, सुरतरंग के उपयुक्त समस्त उपकरण उपस्थित थे। गन्ध, माल्य, अनुलेप, ताम्बूल, मुखवास। तूलगर्भित तल्प पर दुर्गपाल को उपासीन करके, उनके पार्श्व में उपासीन होती हुई पुलोमजा ने प्रश्न किया : "प्राणाधार ! प्रकृति के प्रमदोद्यान में, प्रमदा और पुरुष के प्रणय का क्या स्थान है ?"

अनिरुद्ध ने उत्तर दिया : "वही जो झञ्झावात में झूलते हुए निरालम्ब नीड का होता है।"

"नीड तो किसी पल भी नष्ट हो सकता है।"

"किसी पल भी।"

"तो पक्षी नीड का निर्माण क्यों करता है ?"

"इसलिए कि नीड-निर्माण उसका निसर्ग-धर्म है।"

"और नीड को नष्ट कर देना झञ्झावात का निसर्ग-धर्म ?"

"हाँ।"

पुलोमजा के आसवपान से आरक्त कपोलों पर, सहसा, चिन्ता की पाण्डुरता प्रस्फुटित होने लगी। किन्तु अनिरुद्ध ने उसकी मनोदशा को लक्ष्य नहीं किया। उस रूपगर्विता रमणी की समस्त सौन्दर्यश्री तथा उसकी देहयष्टि का यौवनसार उनको आकृष्ट करने में असफल हो चुका था।

पुलोमजा ने मानो अपने आपको सान्त्वना देते हुए कहा : "वैशाली की किसी प्रमदा का प्रणय-नीड आपन्न नहीं हो पाएगा। वैशाली में,

काल के अन्त तक, झञ्झावात का प्रवेश सम्भव नहीं।"

अनिरुद्ध ने उदासीन भाव से कह दिया : "कौन जाने !"

"आपन्न होने की आशङ्का हो तो भी मैं नीड का निर्माण करूँगी।"

"किन्तु नीड का सहचर भी तो चाहिए।"

"सहचर मेरे समीप उपासीन है।"

"विपिन-प्रान्त का वन्य मयूर, प्रमदोद्यान की क्रीडामयूरी के साथ मिलन-मनोरथ नहीं कर सकता।"

"क्रीडामयूरी, किन्तु, वन्य मयूर के लिए ही विकल है।"

अनिरुद्ध मौन हो गए। पुलोमजा ने उनके उत्तर की अपेक्षा न करके अपना विवस्त्र वपु उनके अङ्क में आलम्बित कर दिया। उसका बाहु-मण्डल दुर्गपाल की ग्रीवा को मण्डित करने लगा।

अनिरुद्ध ने, आत्मसंयम का अवलम्बन लेकर, एक क्षण पुलोमजा के यौवन-परिपुष्ट देहभार को दृष्टिगोचर किया। उद्दाम वासना से विह्वल वामा का श्वासोच्छ्वास उनके निस्पृह, निस्पन्द वक्ष को विद्ध कर रहा था।

किन्तु शतसहस्र शत्रुदल का संहार करने में समर्थ महारथी की लौह-मुष्टि, एक कमनीय कान्ता के करपाश से अपनी ग्रीवा को मुक्त नहीं कर पाई। उस मुक्तिसंचय में वृज्जिसंघ की मृत्यु सम्भाव्य थी। वे जानते थे कि अब की बार उन्होंने पुलोमजा का तिरस्कार किया तो वह आहत हर्यक्षी के समान उन पर प्रत्याक्रमण करेगी। क्या वे उस आक्रमण के लिए प्रस्तुत हैं?—इसी एक प्रश्न का प्रत्युत्तर खोजते हुए वे, प्रस्तर-प्रतिमा के समान, सम्मूढ-से उपासीन रहे।

कामोद्वेग से कम्पित होती हुई पुलोमजा कूक उठी : "बड़े निष्ठुर हो, नाथ !"

दुर्गपाल ने निरीह-सा उत्तर दिया : "यह निष्ठुरता नहीं, निवृत्ति है, पुलोमजे !"

"प्रवृत्ति के पूर्व निवृत्ति कैसी ?"

अनिरुद्ध ने उत्तर नहीं दिया। पुलोमजा, अपना आननेन्दु उन्नत करके, दुर्गपाल की ओर देख रही थी। उसके दीर्घपक्ष्म नयनोत्पल नितान्त निस्पन्द थे। अधरराग से अभिसिक्त अधरोष्ठ अधीर। किन्तु दुर्गपाल ने

अपाङ्ग से भी उसका अवलोकन नहीं किया।

तब पुलोमजा ने, आर्द्रकण्ठ से, अनुनय की : "मेरे नयनों में अपने नयन निमज्जित करके देखो।"

अनिरुद्ध बोले : "नयन-निमज्जन के बिना ही मैं जानता हूँ कि तुम्हारे नयनों में क्या है।"

"क्या है ?"

"उन्माद।"

"प्रणयोन्मेष को उन्माद कहते हो ?"

"उन्माद को प्रणयोन्मेष नहीं मानता।"

"एक बार मेरे अधर पर अपना अधर न्यस्त करके निरीक्षण करो।"

"गरलपान के योग्य गुरुतर साहस नहीं है मुझमें।"

पुलोमजा, प्रताड़ित-सी, अनिरुद्ध के अङ्क से अलग हो गई। वह नहीं जानती थी कि उसके अधरोष्ठ में गरल था अथवा अमृत। किन्तु अनिरुद्ध का वाग्बाण, अवश्य ही, विष से विदिग्ध था। पुलोमजा का हृदय विदीर्ण हो गया। वह, अपने स्वर को प्रखर करके, दृप्त वाणी में बोली : "अनिरुद्ध ! सावधान होकर सुनो। आज मैं, अपना और तुम्हारा एक निश्चय करने का व्रत लेकर आई हूँ।"

अनिरुद्ध ने पूछा : "कैसा निश्चय ?"

"यदि तुम प्राण धारण करना चाहते हो तो तुमको मेरा प्रणय स्वीकार करना होगा।"

"मेरे प्राण लेने वाले का अभी जन्म ही नहीं हुआ, पुलोमजे ! तुम परिहास मत करो।"

"यह परिहास नहीं, प्रणयद्यूत का अन्तिम अक्षपात है।"

"किन्तु मैंने द्यूत का निमन्त्रण ही कब स्वीकार किया ?"

"तुम द्यूतशाला में पदार्पण करके पण से पराङ्मुख होना चाहते हो।"

पुलोमजा ने, सिंहनी के समान प्लुत-उत्थान करके, लीलागृह के लतावितान में विन्यस्त करपालिका निकाल ली। और पल-भर भी प्रतीक्षा किए बिना, उसने दुर्गपाल के दक्षिण पार्श्व पर प्रबल प्रहार कर दिया।

अनिरुद्ध, तड़ितगति से उत्पतित होकर, एक ओर हो गए। अन्यथा पुलोमजा उनके प्राणों का अपहरण कर चुकी थी। करपालिका-प्रहार के वेग का प्रतिहरण करने में अशक्त पुलोमजा, तल्पशय्या पर अधोमुख पतित हो गई। दुर्गपाल ने, उसका वलयबन्धन पकड़कर, करपालिका को उसके हाथ से गिरा दिया।

दूसरे क्षण, पुलोमजा के प्रलयकारी रुदन से, राजोद्यान का दिग्दिगन्त प्रकम्पित हो उठा। वह, लीलागृह से निष्क्रमण करके, राजप्रासाद की ओर प्रधावमान थी। और इसके पूर्व कि अनिरुद्ध अपनी विषम स्थिति का सम्यक् सन्धान कर पाते, अनेक निकुञ्जों से निर्गत तरुण-तरुणी-समवाय ने उनको चारों ओर से घेर लिया।

दुर्गपाल यदि इच्छा करते तो उसी क्षण उन नग्न नायक-नायिका-वृन्द का निवारण करके, राजोद्यान से चले जाते। किन्तु, न जाने क्यों, वे स्थाणु-सदृश अपने स्थान पर अचल हो गए। सर्वथा मूक। किसी के प्रश्न का भी प्रत्युत्तर उन्होंने नहीं दिया।

तब राजा रत्नकीर्ति, कतिपय शस्त्र-सज्जित प्रहरीगण के साथ, उस स्थल पर आ पहुँचे। पुलोमजा उनका अनुसरण कर रही थी। राजा ने कर्कश कण्ठ से कहा : "नराधम ! तूने तस्कर के समान राजोद्यान में प्रवेश करने का साहस किस प्रकार किया ?"

अनिरुद्ध स्तम्भित रह गए। उनके मुख से इतना ही निकला : "तस्कर के समान !!"

"हाँ, तस्कर के समान। इन अबोध बालकों के अनुष्ठान में विघ्न उपस्थित करना तुझको शोभा नहीं देता। तू अपने-आपको शूरवीर कहता रहा है।"

"किन्तु, आर्यश्रेष्ठ......

"मैं कुछ भी सुनना नहीं चाहता। तू प्रत्यन्त-दुर्ग का प्रहरी है। तेरे लिए, राजाज्ञा के विना, एक क्षण भी दुर्ग से दूर रहना अक्षम्य अपराध है। वैशाली के वासी तेरे ऊपर विश्वास करके ही विश्रब्ध होकर शयमान हैं। और तू अपने नियोग पर न रहकर निरीह नागरिकों के प्रति अनाचार-रत है। छिः ! छिः !!"

दुर्गपाल ने रत्नकीर्ति के अभियोग के विरुद्ध आत्ममार्जना का प्रयत्न नहीं किया। वे, जडमूर्ति के समान, अपने स्थान पर खड़े, पिता के पृष्ठ पर प्रच्छन्न पुलोमजा की ओर देखते रहे।

सैनिकों ने, राजा की आज्ञा से अग्रसर होकर, अनिरुद्ध को निगडित कर दिया। अनिरुद्ध ने उनका भी विरोध नहीं किया। वे, शिर अवनत करके, सैनिकों का अनुसरण करने लगे।

रत्नकीर्ति ने, जाते-जाते, युवक-युवती-वृन्द को सम्बोधित किया : "महोत्सव में अकस्मात् उपस्थित इस अप्रत्याशित बाधा के कारण मैं अत्यन्त अवसन्न हूँ। राजकुमारी भी। किन्तु अब कोई बाधा उपस्थित नहीं होगी। तुम निश्चिन्त होकर महोत्सव मनाओ।"

राजा, बन्दी को अपने साथ लेकर, राजप्रासाद की ओर चले गए। किन्तु पुलोमजा ने पिता का अनुगमन नहीं किया। उसने एक अन्य लिच्छवि युवक को अपना प्रणयी प्रज्ञापित किया। और, मुहूर्त-भर के व्याघात को विस्मृत करके, युवक-युवती-समाज, पुनरेण, सुरत-रण में अवतीर्ण हो गया।

दूसरे दिन, पूर्वाह्न के समय ही, संस्थागार में समाहूत परिषद ने दुर्गपाल अनिरुद्ध के अपराध का अन्वेषण किया। उनके विरुद्ध साक्षी थे स्वयं राजा रत्नकीर्ति। परिषद ने, एकमत होकर, अकर्मण्यता एवं कर्त्तव्य-हिंसा के दोष से दूषित अनिरुद्ध को दुर्गपाल के पद से अपदस्थ कर दिया।

अनिरुद्ध ने, वारम्वार, आग्रहपूर्वक निवेदन किया कि वे, राजकुमारी पुलोमजा द्वारा आमन्त्रित होकर ही, राजोद्यान में प्रविष्ट हुए थे। किन्तु किसी वृद्ध ने उनके कथन पर विश्वास प्रगट नहीं किया। न किसी ने शंका उठाई कि जो पुरुष अनेक वर्ष तक पाटलिग्राम की सुरक्षा इतने सुचारु रूप से करता रहा है वह, अकस्मात् ही, इतना जघन्य अपराध कैसे कर सकता है।

अनेक वृद्धों ने, पुलोमजा का पक्ष लेकर, विपुल वाग्धारा प्रवाहित की। वे कहने लगे कि राजकुमारी ने वृज्जिसंघ के जीर्णोद्धार के लिए जो कुछ किया है उसके कारण प्रत्येक लिच्छवि उनका चिरकृतज्ञ है;

राजकुमारी ने, अपने स्वार्थ एवं सुख की पूर्ण अवहेलना करके लिच्छवि-गण के जीवन में रस एवं संस्कार का सृजन किया है; और अब राज-कुमारी ने, साहसपूर्वक, पाटलिग्राम के दुर्गपाल-वेषधारी तुच्छ तस्कर का प्रकाशन करके, वृज्जिसंघ का परित्राण किया है।

पुलोमजा की प्रत्युत्पन्नमति पर प्रहर्षित परिषद ने, एकमत से, पुलोमजा को वृज्जि महाजनपद की जनपद-कल्याणी के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

: २ :

कृष्णपक्ष कार्तिक प्रतिपदा की इस घटना से त्रयोदश दिवस उपरान्त, एक अन्य दिन के अपराह्न में, धर्मसंघ की परिषद, चतुर्दशी का उप-स्थान करने के लिए, महावन की कूटागारशाला में समाहूत हुई। आयु-ष्मान उदय भी उपस्थानशाला में एक ओर उपासीन थे।

प्रातिमोक्ष का पाठ प्रारम्भ हुआ। पाराजिक-चतुष्टय का पाठ करके, पाठकार भिक्षु ने धर्मसंघ को सम्बोधित किया : "आयुष्मानों से पूछता हूँ कि क्या आप सब इन चारों दोषों से परिशुद्ध हैं? जिस आयुष्मान से इन चार दोषों में से कोई दोष हुआ हो वह आयुष्मान उस दोष को प्रगट करे। दोष न होने पर मौन रहना चाहिए। मौन रहने पर मैं आयुष्मानों को शुद्ध समझूँगा। जो आयुष्मान, तीन अनुश्रावण करने पर, स्मरण होते हुए भी, विद्यमान दोष को प्रगट नहीं करता वह, जान-बूझ-कर, मृषावाद का दोषी बनता है। भगवान ने जान-बूझकर किये गए मृषावाद को अन्तरायिक कर्म कहा है। स्मृति-सम्पन्न आयुष्मान को शुद्ध होने की कामना से विद्यमान दोष प्रगट करना चाहिए।"

पाठकार भिक्षुक ने, एक क्षण मौन रहकर, धर्मसंघ की ओर देखा। प्रत्येक भिक्षु, सावधान होकर, अपने आसन पर उपासीन था। किसी भिक्षु ने, आसन से उत्थान करके, दोष प्रगट करने का प्रयत्न नहीं किया।

पाठकार ने द्वितीय अनुश्रावण किया : "द्वितीय वार भी आयुष्मानों से पूछता हूँ कि क्या आप इन चार दोषों से शुद्ध हैं?"

भिक्षुसंघ मौन रहा। पाठकार ने तृतीय अनुश्रावण करके धारणा प्रज्ञापित की : "आयुष्मान इन चारों दोषों से परिशुद्ध हैं, इसलिए मौन

है—ऐसी मैं धारणा करता हूँ।"

पाठकार भिक्षु संघादिसेस के त्रयोदश दोषों का पाठ करने के लिए प्रस्तुत हुआ। तब एक तरुण भिक्षु ने, अपने आसन से उत्थान करके, कहा : "भन्ते! पूज्य सघ मुझको श्रवण करे। उपस्थान में उपस्थित एक आयुष्मान ने, स्मरण रहते हुए भी, अपने में विद्यमान प्रथम पाराजिक दोष को प्रगट नहीं किया।"

संघस्थविर ने उस भिक्षु से प्रश्न किया : "आयुष्मान उपतिष्य! क्या तुमको ज्ञात है कि कलह अथवा द्वेष के कारण किसी आयुष्मान पर पाराजिक का दोषारोपण करना सघादिसेस दोष है?"

उपतिष्य ने मौन रहकर स्वीकार किया कि वह संघादिसेस का दोष जानता है। तब सघस्थविर ने कहा : "आयुष्मान उपतिष्य! दोष से दूषित आयुष्मान का प्रकाशन करो।"

उपतिष्य ने, तर्जनी से आयुष्मान उदय की ओर संकेत करके, कहा : "भन्ते! पूज्य सघ मुझको श्रवण करे। आयुष्मान उदय प्रथम पाराजिक के दोष से दूषित हैं।"

आयुष्मान उदय, अवाक् होकर, खड़े हो गए। भिक्षुसंघ निर्निमेष नयनों से उनकी ओर देख रहा था। संघस्थविर ने प्रश्न किया : "आयुष्मान उदय! क्या तुम अपना दोष स्वीकार करते हो?"

आयुष्मान उदय ने उत्तर दिया : "भन्ते! मैंने धर्मसंघ में प्रव्रजित होने के पूर्व भी कभी मैथुन नहीं किया। प्रव्रज्या पाने के उपरान्त तो कौन कहेगा। आयुष्मान उपतिष्य ने मेरे विषय में भूल की है।"

संघस्थविर ने उपतिष्य की ओर देखा। वह बोला : "आयुष्मान उदय! क्या आपको स्मरण है कि आप, धर्मसंघ में प्रव्रजित होने के पूर्व, अनिला नाम की शाक्यदुहिता से प्रेम करते थे?"

आयुष्मान उदय ने उत्तर दिया : "मुझे स्मरण है।"

"क्या आपको यह भी स्मरण है कि आपने, पावस की एक रात में, तस्कर के समान छुपकर, अनिला के आगार में प्रवेश किया था?"

"स्मरण है।"

"क्या आपको यह भी स्मरण है कि आपने शाक्यकुमारी के पर्यङ्क

पर आरूढ़ होकर उसके साथ मैथुन किया था ?"

"मैंने शाक्यकुमारी के पर्यङ्क का भी स्पर्श नहीं किया। उसके अङ्ग-स्पर्श की तो बात ही क्या है।"

उपतिष्य ने, एक क्षण मौन रहकर, भिक्षुसंघ की ओर देखा। फिर वह आयुष्मान उदय से बोला : "आयुष्मान उदय ! क्या आपको स्मरण है कि आपने, राजगृह से वैशाली की ओर चारिका करते समय, पाटलिग्राम के तीर्थ से एक यानपात्र पर आरोहण करके भागीरथी को पार किया था ?"

आयुष्मान उदय ने उत्तर दिया : "स्मरण है।"

"क्या आपको यह भी स्मरण है कि उस यानपात्र पर वैशाली की गणिका अनङ्गरेखा अपनी परिचारिका सहित विद्यमान थी ?"

"गणिका यानपात्र पर थी।"

"तब आपने यानपात्र पर क्यों यात्रा की ?"

"जिस समय मैंने वह यात्रा स्वीकार की, उस समय मुझे विदित नहीं था कि यानपात्र पर कोई स्त्री विद्यमान है। नाविक ने मेरे समीप आकर यही कहा था कि यानपात्र पर कोई नहीं है।"

"क्या आपको ज्ञात है कि गणिका अनङ्गरेखा वही पुरानी शाक्य-दुहिता है, जिसके साथ आपने अभिसार किया था ?"

"मैंने अनिला के साथ कभी अभिसार नहीं किया। यह सत्य है कि अनिला ने ही अनङ्गरेखा का रूप धारण किया है। किन्तु अनङ्गरेखा को देखने के पूर्व मुझे इस रूप-परिवर्तन का ज्ञान नहीं था।"

"ज्ञान होने के उपरान्त आपने उसके साथ मैथुन क्यों किया ?"

"आयुष्मान उपतिष्य ! तुम्हारे पास क्या प्रमाण है कि मैंने मैथुन किया ?"

"अनङ्गरेखा की परिचारिका का साक्ष्य। वह यानपात्र पर प्रस्तुत थी। उसी ने आपको मद्यपान के उपकरण दिये थे।"

"मद्यपान !!"

"हाँ, मद्यपान। गणिका के अधरोष्ठ द्वारा विचुम्बित चषक में, गणिका के अर्धपीत मद्य का पान।"

"यह सब आद्योपान्त मृषावाद है।"

आयुष्मान उपतिष्य ने, एक बार फिर, भिक्षुसंघ की ओर दृष्टिपात किया। तब वह बोला : "आयुष्मान उदय ! आप जिस दिन वैशाली में आए उस दिन रात्रि के मध्यम याम तक आप कहाँ थे ?"

आयुष्मान उदय ने उत्तर दिया : "मुझको नगर में विलम्ब हो गया था।"

"किन्तु धर्मसंघ के श्रमण, किसी आवश्यक कार्य के बिना, मध्याह्न के उपरान्त नगर में प्रवेश नहीं करते।"

"मुझको आवश्यक कार्य था।"

"पानागार में ?"

आयुष्मान उदय मौन हो गए। उनका मन, सहसा, न जाने कैसी एक ग्लानि से भर गया था।

उपतिष्य ने, अवनत होकर, अपने पाँव के समीप पड़ा उत्तरासंग उठा लिया। फिर उस उत्तरासंग को आयुष्मान उदय की ओर उत्क्षिप्त करता हुआ वह बोला : "आयुष्मान उदय देखें कि यह किस का उत्तरासंग है।"

आयुष्मान उदय ने देखा कि वह उनका ही उत्तरासंग है। वही उत्तरासंग जो, उनके वैशाली-आगमन के अगले दिन, खो गया था। उन्होंने कहा : "उत्तरासंग मेरा है। बहुत दिन पूर्व मेरे आगार में से खो गया था।"

"खो गया था अथवा आपने छुपा दिया था ?"

"उत्तरासंग को मैं क्यों छुपाने लगा ?"

"इसलिए कि उत्तरासंग पर आपके पाप का प्रमाण अङ्कित है।"

"मैंने कोई पाप नहीं किया।"

"तब संघ ही इस विषय में प्रमाण है।"

आयुष्मान उदय मौन रहे। आयुष्मान उपतिष्य ने, उनके निकट आकर, वह उत्तरासंग अपने हाथ में ले लिया। और उसको विस्तीर्ण करके, भिक्षुसंघ को प्रदर्शित करता हुआ, वह बोला : "भन्ते ! पूज्य संघ मुझको श्रवण करे। यह उत्तरासंघ मद्य गिर जाने के कारण मलिन है।

वीर्यपात के कारण भी। संघ इस उत्तरासंघ का सम्यक् परीक्षण करे।"

भिक्षुसंघ में कोलाहल होने लगा। उपतिष्य के समीप उपासीन एक स्थविर भिक्षु ने उत्तरासंघ की परीक्षा करके कहा : "आयुष्मान उपतिष्य का अभियोग सत्य है।"

तदनन्तर वह उत्तरासंघ परिषद में परिभ्रमित होने लगा। प्रत्येक भिक्षु ने, परीक्षा करके, कहा : "आयुष्मान उपतिष्य का अभियोग सत्य है।"

भिक्षुसंघ की अवगणना करके, आयुष्मान उदय ने संघस्थविर को सम्बोधित किया : "भन्ते ! राजकुमारी पुलोमजा के विषय में धर्मसंघ का क्या मत है ?"

संघस्थविर ने उत्तर दिया : "आयुष्मान उदय ! उनके समान धर्म-संघ की अनन्य उपासिका अखिल आर्यावर्त में अन्यत्र अविद्यमान है।"

"क्या राजा रत्नकीर्ति भी धर्मसंघ के उपासक हैं ?"

"नहीं, राजा रत्नकीर्ति धर्मसंघ के उपासक तो नहीं हैं। किन्तु उनको तथागत के शिक्षापदों पर अचल आस्था है।"

"वैशाली की वीथि-वीथि में पानागार और वारवेश्म प्रस्थापित करने की शिक्षा तो तथागत ने कभी नहीं दी।"

"आयुष्मान ! क्या इसी आवश्यक कार्य से तुम उस रात को नगर में गए थे ?"

"वैशाली मेरी मातृभूमि है, भन्ते ! वैशाली का दर्शन करना मेरा कर्त्तव्य था। मैंने वैशाली में वृद्धि पाते हुए दुराचार का दुःसमाचार कौशाम्बी में सुना था। मैं देखना चाहता था कि वह समाचार सत्य है अथवा असत्य।"

"तुम भूल करते हो, आयुष्मान उदय ! शाक्यश्रमण की कोई मातृ-भूमि नहीं होती। उसके लिए सर्वत्र एक समान है।"

आयुष्मान उदय ने उत्तर नहीं दिया। तब संघस्थविर ने पूछा : "तुमने वैशाली के पानागार ही देखे अथवा अन्य कुछ भी ?"

आयुष्मान उदय ने उत्तर दिया : "मैं गौतमक चैत्य में भी गया था, भन्ते !"

"शाक्यश्रमण के लिए सर्वथा निषिद्ध यह दूसरा दुष्कृत्य तुमने किया।"

संघस्थविर की भर्त्सना पर ध्यान न देकर, आयुष्मान उदय ने पूछा : "भन्ते ! क्या यह सत्य है कि एक वर्ष पूर्व गौतमक चैत्य की अवस्थान-शाला में आये हुए किसी परिव्राजक को अपमानित करके वृज्जि महाजन-पद से निकाल दिया गया था ?"

संघस्थविर ने उत्तर दिया : "परिव्राजक के वेष में वह कोसलराज का गूढ़पुरुष था।"

"उसके गूढ़पुरुष होने का प्रमाण क्या था ?"

"विनिश्चय-महामात्य ने कोई प्रमाण पाकर ही निर्णय किया होगा।"

"किन्तु विनिश्चय-महामात्य तो स्वयं मगधराज के गूढ़पुरुष है ?"

संघस्थविर हँसने लगे। आयुष्मान उदय ने कहा : "भन्ते ! आपका मेरी बात का विश्वास नहीं होता तो महापरिनिर्वाण सूक्त की प्रथम भाणवार का पाठ कीजिए।"

अब की बार संघस्थविर क्षुब्ध हो गए। वे आयुष्मान उदय की भर्त्सना करते हुए बोले : "उदय ! तुम अविनय कर रहे हो। तुम्हारे कथन का आशय है कि मैंने महापरिनिर्वाण सूक्त का पाठ नहीं किया। किन्तु तुमको ज्ञात होना चाहिए कि वह सूक्त मुझको मुखस्थ है।"

"तब तो, भन्ते ! आपको विदित होगा कि तथागत जिस समय, अन्तिम वार, राजगृह में विहार कर रहे थे, उस समय वर्षकार ब्राह्मण ने उनसे वृज्जिसंघ की दुर्जेयता का भेद पूछा था। तथागत ने वह भेद वर्षकार ब्राह्मण को बताया था। उस समय वर्षकार ब्राह्मण मगध के महा-मात्य थे और अजातशत्रु का आदेश पाकर ही भगवान के निकट गए थे।"

संघस्थविर ने, करुणदृष्टि से, आयुष्मान उदय की ओर देखा। फिर वे बोले : "उदय ! न जाने कौनसे अन्यतीर्थिक सूक्त का पाठ करके तुमको मतिविभ्रम हो गया है। धर्मसंघ द्वारा संगायन किए गए विनय तथा धर्म में, राजधर्म-विषयक कथा का क्या काम ? महापरि-निर्वाण सूक्त में किसी वर्षकार ब्राह्मण का उल्लेख नहीं।"

आयुष्मान उदय समझ गए कि संघस्थविर ने महापरिनिर्वाण सूक्त

का नाम ही सुना है, पाठ नहीं किया। अतएव वे मौन हो गए। वे जानते थे कि सूक्त का पाठ करके सुनाने पर भी संघस्थविर उनकी बात नहीं मानेंगे और न ही धर्मसंघ का कोई भिक्षु उनका समर्थन करेगा।

तब, संघस्थविर का संकेत पाकर, आयुष्मान उपतिष्य ने भिक्षुसंघ को सम्बोधित किया : "भन्ते ! पूज्य संघ मुझको श्रवण करे। आयुष्मान उदय मैथुन-दोष से दूषित हैं। यदि संघ उचित समझे तो संघ आयुष्मान उदय को संघ से निर्वासित करे। यह ज्ञप्ति है।"

भिक्षुसंघ ने मौन रहकर स्वीकार किया। संघस्थविर ने कहा : "यह कर्म ज्ञप्ति-द्वितीय है।"

तब, आयुष्मान उपतिष्य ने अनुश्रावण किया : "भन्ते ! पूज्य संघ मुझको श्रवण करे। संघ, मैथुन-दोष से दूषित उदय भिक्षु को संघ से निर्वासित करता है। जिस आयुष्मान को स्वीकार हो, वे मौन रहें। जिस आयुष्मान को स्वीकार न हो, वे बोलें।"

धर्मसंघ ने मौन रहकर स्वीकार किया। उपतिष्य बोले : "भन्ते ! पूज्य संघ मुझको श्रवण करे। संघ ने उदय भिक्षु को संघ से निर्वासित किया है। संघ को स्वीकार है, इसलिए संघ मौन है—ऐसा मैं धारण करता हूँ।"

आयुष्मान उदय, एक भी शब्द कहे बिना उपस्थान-शाला से निकल कर, कूटागार-शाला का परिवेण पार करते हुए, संघाराम के बाहर चले गए।

: २ :

अनिरुद्ध अपनी कुलवीथि में वास करने लगे। आयुष्मान उदय गौतमक चैत्य की अवस्थानशाला में। वत्सला ने पुनरेण विविक्तवास का आश्रय लिया। वृज्जिसंघ के परित्राण-हेतु किया हुआ उनका प्रथम प्रयास असफल हो चुका था। किन्तु उन तीनों के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को यह ज्ञात नहीं था कि उन्होंने ऐसा कोई प्रयास किया भी था।

अनिरुद्ध की आकांक्षा थी कि वे, पाटलिग्राम में जाकर, वैशाली के विरुद्ध विद्रोह व्युत्थापित करें। उनका विश्वास था कि उनके द्वारा अनुशासित सुभट-समवाय, तुरन्त ही भागीरथी पार करके, वैशाली में प्रव-

नित वेश्यातन्त्र का विध्वंस कर देगा। भल्लिक आदि नायकवृन्द ने, विश्वस्त दूत प्रेषित करके, अनिरुद्ध के आदेश की याचना भी की। वे अपने अप्रतिम नेता के अपमान का शोध करने के लिए व्यग्र थे। किन्तु वत्सला ने उस पराक्रम के परामर्श को नहीं माना। उनका मानस गृहयुद्ध की आशङ्का से आतङ्कित हो उठा।

पाटलिग्राम के सुभट-समवाय को केवल इतना ही ज्ञात था कि दुर्ग-पाल अनिरुद्ध, किसी अभूतपूर्व अभियान के आशय से ही, उनको अनु-शासित कर रहे थे। किन्तु उनमें से किसी को यह विदित नहीं था कि अभियान किस ओर अनुष्ठित होगा। दुर्गपाल के अपदस्थ होने का समा-चार सुनकर सुभट-समवाय क्षुब्ध हो गया। तब भल्लिक आदि नायकवृन्द ने उनको समझाया कि यदि वे दुर्गपाल अनिरुद्ध की आज्ञा पालन करना चाहते हैं तो वे, लिच्छवि-परम्परा से पराङ्मुख न होकर, अपने आचार पर आरूढ़ रहें।

किन्तु पाटलिग्राम का नवीन दुर्गपाल, राजकुमारी पुलोमजा द्वारा प्रदर्शित पथ का पथिक था। पाटलिग्राम में, उसका पदार्पण होते ही, दुर्गद्वय के वातावरण में पुनरेण परिवर्तन होने लगा। नेतृत्वविहीन लिच्छवि सुभट पुनः आचारहीन हो चले। और अनिरुद्ध के द्वारा कई मास के परिश्रम से प्रस्थापित दृढ़-संगठन, कतिपय दिवस में ही, विध्वस्त हो गया। अनिरुद्ध के अटल अनुयायी पाटलिग्राम का परित्याग करने लगे।

तब अकस्मात् ही पुलोमजा द्वारा प्रवर्तित विलास-चक्र के आवर्तन में से एक अभूतपूर्व घटना का आविर्भाव हुआ। पौषमास का पूर्वपक्ष था। पूर्वाह्न की वेला। एक लिच्छवि-कन्या चापाल चैत्य से लौट रही थी। एक लिच्छवि कुमार ने अनेक स्त्री-पुरुषों के देखते-देखते कन्या को बलात् उठाकर अपने रथ पर आरूढ़ कर लिया। कन्या चीत्कार करती रही। किन्तु कुमार उसको लेकर राजपथ पर अपना रथ प्रधावमान करता हुआ अपने आवास में चला गया।

अपहृता कन्या के क्रन्दन की कहानी कन्याकुल ने सुनी। उस कुल के अनेक पुरुष, तुरन्त ही शस्त्रास्त्र धारण करके, कुमारकुल की वीथि

पर सन्निपात करने लगे। वैशाली की वह विश्रब्ध वीथि, एक लिच्छवि द्वारा हत दूसरे लिच्छवि के रक्त से सिक्त होने वाली थी। इसके पूर्व वैशाली में कभी भी ऐसा पात नहीं हुआ था। लिच्छवि और लिच्छवि के मध्य शस्त्रसम्पात की सम्भावना वैशाली के लिए एक अभूतपूर्व आशंका बनकर आई।

वत्सला यह समाचार सुनते ही अपना रथ प्लुतगति से प्रधावमान करके वहाँ आ पहुँचीं और आक्रान्त वीथि के प्रवेश-द्वार पर दोनों दलों के मध्य में अपना रथ संस्थापित करके कहने लगीं : "आर्यवृन्द ! शान्ति-पूर्वक समाधान का प्रयत्न किए बिना एक लिच्छवि दूसरे लिच्छवि पर शस्त्रपाणि होकर आक्रमण करे यह तो वैशाली की लिच्छवि-परम्परा नहीं है।"

कन्याकुल के प्रमुख ने उत्तर दिया : "एक अनिच्छन्ती अबला का आततायी के समान अपहरण करना भी तो लिच्छवि-परम्परा नहीं रही।"

वत्सला ने कुमारकुल के प्रमुख को सम्बोधित किया : "आर्य ! क्या यह सत्य है कि अपहृता कन्या अनिच्छन्ती है ?"

प्रमुख ने उत्तर दिया : "वह कन्या हमारे कुमार की वाग्दत्ता थी। न जाने किसके परामर्श से भ्रान्त होकर उसने कुमार के साथ विवाह करना अस्वीकार कर दिया। कुमार को आशा है कि उसकी अनुनय सुनकर कन्या अपनी भूल का परित्याग कर देगी।"

"किन्तु, आर्य ! अनुनय करने के लिए तो अपहरण आवश्यक नहीं था।"

प्रमुख मौन हो गए। उस ओर से अपहर्ता कुमार ने अग्रसर होकर कहा : "राजकुमारी पुलोमजा का उपदेश है कि प्रत्येक लिच्छवि प्रमदा को पराक्रमी पुरुष से प्रेम करना चाहिए। मैंने पराक्रम किया है। अत-एव उसको मुझसे प्रेम करना ही होगा।"

कुमार का अनर्गल प्रलाप सुनकर ग्लानि से वत्सला का मानस विषाक्त हो गया। किन्तु वे कुछ कहतीं उसके पूर्व ही कुमार कहने लगा : "जो लिच्छवि प्रमदा पराक्रमी पुरुष से प्रेम नहीं करती वह संस्कार-विहीन है, रस की मर्मज्ञ नहीं। उसको सुसंस्कृत करना तथा रसज्ञ बनाना

मेरा कर्त्तव्य है।"

वत्सला की इच्छा हुई कि कृपाण लेकर उस कुलाङ्गार का कण्ठ-कर्तन कर दे। पराक्रम की ऐसी परिभाषा उन्होंने जीवन मे सर्वप्रथम सुनी थी। जुगुप्सा से उन्होने अपना मुख परावृत्त कर लिया।

उसी समय कन्याकुल द्वारा राजप्रासाद में प्रेषित पुरुष वहाँ लौट आया। कन्याकुल के प्रमुख ने उससे पूछा : "आर्यश्रेष्ठ का क्या आदेश है, वत्स!"

पुरुष ने उत्तर दिया : "आर्यश्रेष्ठ ने कहा है कि वे कलहकारी कुल की ओर से कुछ भी सुनने को प्रस्तुत नहीं।"

"कलहकारी कुल?"

"अर्थात् हमारा कुल। आर्यश्रेष्ठ हमारे कुल पर ही क्रुद्ध है।"

"हमारे कुल का क्या दोष है?"

"मैंने भी आर्यश्रेष्ठ से यह प्रश्न पूछा था। उन्होंने उत्तर दिया कि वे विवाद करना नही चाहते।"

"तो क्या राज्य के सुभट हमारी सहायता के लिए नही आएँगे?"

"नही। आर्यश्रेष्ठ ने कहा है कि जो कुल अपने बाहुबल का आश्रय लेकर न्याय-अन्याय का निश्चय करना चाहता है, उस कुल को राज्य की सहायता नहीं मिल सकती।"

प्रमुख का मुख क्रोध से आरक्त हो गया। दूसरे क्षण, कन्याकुल के अगणित कृपाण कोष से निर्गत होकर अन्तरिक्ष में उत्थापित हो गए। विकट विग्रह आसन्न था।

वत्सला, अपने रथ से अवरोहण करके, पक्षद्वय के मध्य में जा खड़ी हुई। सारथि ने उनका रथ एक ओर अपसारित कर लिया। वत्सला, अपने बाहुयुगल को प्रसारित करके, उच्च स्वर से बोली : "आर्यवृन्द! मेरे कथन का श्रवण किए बिना शस्त्रसम्पात हुआ तो मेरी देह का पात भी उनके साथ ही होगा। मैं आर्यश्रेष्ठ महाली की दुहिता हूँ। उनकी एक मात्र अवशिष्ट सन्तान। एक समय आप आर्यश्रेष्ठ की आज्ञा पालन करना अपना परम कर्त्तव्य मानते थे। आज वे वैशाली मे विद्यमान नही। उनकी अनुपस्थिति में आपको मेरी अभ्यर्थना पर ध्यान देना होगा।"

कन्याकुल का तरुण-समवाय एक स्वर से चीत्कार कर उठा : "कुमारि! हमारे पास इतना समय नहीं है कि व्यर्थ के विवाद मे नष्ट करें। हमारी निरपराध भगिनी अपहर्ता आततायी के आवास मे अवरुद्ध है। उसका सतीत्व प्रतिपल सकटापन्न है। कुमारि ! आप हमारे मार्ग से हट जाइए।"

वत्सला ने कन्याकुल के प्रमुख से बद्धाञ्जलि प्रार्थना की : "आर्य ! आप अपने तरुण-समवाय को तनिक शान्त कीजिए।"

प्रमुख बोला : "किन्तु, वत्से ! उनको आश्वासन क्या दूँ ?"

वत्सला ने कुमारकुल के प्रमुख से पूछा : "आर्य ! क्या आप विनिश्चय-महामात्य के निकट व्यवहार-निवेदन के लिए प्रस्तुत है ?"

प्रमुख ने उत्तर दिया : "सर्वथा प्रस्तुत है, वत्से ! तुम्हारे आने के पूर्व ही मैने कन्याकुल से अनुनय की थी कि उनको हमारे विरुद्ध परिवेदना हो तो वे विनिश्चय-महामात्य से आवेदन करे।"

कन्याकुल का प्रमुख बोला : "वत्से ! हम भी व्यवहार-निवेदन स्वीकार करते है। किन्तु उसके पूर्व, अपहृता कन्या की कारामुक्ति वाञ्छनीय है। कुमारकुल उसे मुक्त करने के लिए प्रस्तुत नही।"

कुमारकुल के प्रमुख ने कहा : "कन्या को हम, व्यवहार-निवेदन के समय विनिश्चय-शाला मे समुपस्थित कर देगे।"

कन्याकुल के प्रमुख ने विरोध किया। वह बोला : "आर्य ! आप अपने कुमार को समुपस्थित कीजिए। कन्या को समुपस्थित करना हमारा कर्त्तव्य है।"

कुमारकुल का प्रमुख मौन हो गया। वत्सला ने उससे कहा : "आर्य ! कन्याकुल की यह अभ्यर्थना मै सर्वथा सम्यक् मानती हूँ। आपको आपत्ति नहीं करनी चाहिए।"

उत्तर दिया अपहर्ता कुमार ने : "कुमारि ! आप कन्याकुल का पक्ष लेने के लिए ही यहाँ आई है। तब आपने मध्यस्थता का मिथ्याचार क्यों किया ?"

वत्सला अवाक् रह गई। वह कुमार तो सत्यश: आततायी था। उसी क्षण हनन के योग्य। अन्य समय होता तो वे उसका युद्ध के लिए आह्वान करतीं। किन्तु आज की स्थिति कुछ और ही थी। उनके धैर्यच्युत होते

ही, दो लिच्छवि-कुलों के शोणित से धरा के लाल हो उठने का भय था। वे शान्त रहकर बोली : "छिः छिः, कुमार ! कैसी कुत्सित बात कह रहे हो !"

किन्तु कुमार का ध्यान तब तक अन्यत्र आविष्ट हो चुका था। कन्याकुल के समवाय का संतरण करके, आयुष्मान उदय उस ओर आ रहे थे।

श्रमण का जन्म भी कुमारकुल के एक परिवार में हुआ था। उनका पैतृक आवास भी उसी वीथि में था। उनके पिता एवं भ्रातृवृन्द भी उस समय वहाँ पर समुपस्थित थे। किन्तु वैशाली में प्रत्यावर्तन करने के उपरान्त वे आज प्रथम बार इस ओर आए थे।

आयुष्मान उदय ने, धर्मसंघ से निर्वासित होकर भी, काषायवस्त्र का परित्याग नहीं किया था। वे अपने-आपको शाक्यश्रमण कहकर ही अपना परिचय देते थे। वीथि के प्रवेश-द्वार की ओर अग्रसर होते हुए श्रमण को देखकर, धर्मसंघ के उपासक लिच्छवि-वृन्द ने उनका अभिवादन किया। अनायास ही। उनके तपस्तेज से अभिभूत होकर। यह स्मरण होने के पूर्व ही कि वे अब धर्मसंघ द्वारा मान्य शाक्यश्रमण नहीं है।

वत्सला ने आयुष्मान उदय को परिस्थिति का संक्षिप्त परिचय दिया। तब आयुष्मान उदय ने कुमारकुल के प्रमुख से प्रश्न पूछा : "सौम्य ! तुमको उचित है कि कन्याकुल के प्रस्ताव को स्वीकार कर लो।"

उत्तर दिया अपहर्ता कुमार ने : "किन्तु, भन्ते ! मेरी प्रियतमा मुझको त्याग कर अपने कुल के साथ जाना नहीं चाहती। उसको अपने प्राणों का भय है।"

"सौम्य ! यदि तुम्हारी बात में तथ्य है तो मैं कन्याकुल की ओर से वचनबद्ध होता हूँ कि वे कन्या को अपने साथ ले जाने का दुराग्रह नहीं करेंगे। किन्तु सत्यासत्य के सन्धान के लिए यह आवश्यक है कि कन्याकुल का प्रमुख एक बार कन्या से मिलकर उसका मन्तव्य जान ले।"

"अपने कुलप्रमुख के प्रभाव से मेरी प्रिया भयान्वित हो जाएगी।"

"तो कुमारी वत्सला उसके पास जाएगी।"

"कुमारी वत्सला पक्षपातिनी है। मै उनका विश्वास नहीं करता।"

"तो, सौम्य ! मैं स्वयं कुमारी से साक्षात् करूँगा।"

"तुम ! तुम उसके पास नही जा सकते। एक गणिका के कारण अपने धर्मविनय से स्खलित श्रमणास्पद को तो मैं अपनी प्रिया की छाया का भी स्पर्श नहीं करने दूँगा।"

किन्तु आयुष्मान उदय, कुमार के अपशब्दों की अवहेलना करके, अग्रसर होने लगे। कुमार ने उनका पथ अवरुद्ध कर लिया। वह कृपाण-हस्त होकर उच्च स्वर से आक्रोश करने लगा : "श्रमणास्पद ! यदि तूने एक पद भी आगे बढ़ाया तो तेरे प्राण ले लूँगा।"

कन्याकुल के कृपाण भी पुनरेण निकल आए। उस ओर का कोलाहल सुनकर, आयुष्मान उदय ने उनसे अभ्यर्थना की : "आप शान्त रहिए। इस कुमार का समस्त कुल पाप-परायण है। अन्यथा कुलवृद्धों के समक्ष इस प्रकार की धृष्ठता करने का साहस इसे नहीं होना। आपके भुजबल की परीक्षा का समय तब आएगा जब, कुमारकुल की शुद्धि के प्रयत्न में, कुमार के कृपाण से विद्ध मेरी देह प्राणशून्य हो चुकेगी। तब तक आप शान्त रहें।"

फिर वे, कुमार को सम्बोधित करके, बोले : "सौम्य ! हठ मत कर। शाक्यश्रमण प्राण दे देते है किन्तु अपने सत्यपथ से पराङ्मुख नहीं होते।"

कुमार ने, तिरस्कार की हँसी हँसकर, कहा : "शाक्यश्रमण ! तू ! ! तब तो मैं भी अपने-आपको तथागत कहने लगूँ तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।"

आयुष्मान उदय ने कुमारकुल के प्रमुख से कहा : "क्या आप इस दुर्बुद्धि का दमन नहीं कर सकते ?"

प्रमुख मौन रहा। एक क्षण तक उनके प्रत्युत्तर की अपेक्षा करके आयुष्मान उदय पुनरेण अग्रसरण के लिए उद्यत हो गए। अपहर्ता कुमार ने अपने कृपाण की अणि उनके अनावृत्त वक्ष पर न्यस्त कर दी। वीथि के वातायनाग्रों पर उपस्थित कुलाङ्गनाएँ करुण क्रन्दन करने लगीं।

दूसरे क्षण, वीथि के अभ्यन्तर से, एक नारीकण्ठ का निनाद निर्गत हुआ : "भन्ते ! आप रुक जाइए । रुक जाइए, भन्ते ! आपका कार्य मैं सम्पन्न करूँगी ।"

जनसमवाय ने, एकदृष्टि होकर, उस ओर देखा । एक मध्यवय लिच्छवि माता, अपहृता कुमारी का हाथ अपने हाथ में लेकर, वीथि के प्रवेश-द्वार की ओर आ रही थी ।

अपहर्ता कुमार ने उस ओर धावमान होकर कहा : "माता ! तुम यह क्या कर रही हो ?"

लिच्छवि नारी ने उत्तर दिया : "मुझे माता कहकर कलङ्कित मत कर, कुलाङ्गार ! तुझको जन्म देने की अपेक्षा मैं वन्ध्या ही रह गई होती तो श्रेयस्कर होता । यदि मैं यह जानती कि मैंने अपनी कुक्षि में एक कुपुत्र को धारण किया है तो मैं आत्मघात कर लेती । मेरा कल्याण होता । मेरे पितृकुल तथा श्वसुरकुल का कल्याण भी । मेरी सन्तान के द्वारा एक कुलपुत्री के प्रति अनाचार तो न होता । मेरा कुपुत्र एक पूज्य श्रमण के प्राण लेने के लिए तो तत्पर न होता । तुझे अपने गर्भ में धारण करके, तेरा पालन-पोषण करके मैंने घोर कुकृत्य किया है । किन्तु यदि तूने मुझको फिर से माता कहकर पुकारा तो इस कृपाण से तेरे प्राण ले लूँगी ।"

माता ने अपने आंचल में से एक कृपाण निकालकर अपने हाथ मे ले लिया । उनके नयनों से अग्निस्फुलिंग झर रहे थे ।

अपहृता कुमारी, अवसर देखकर, कन्याकुल की ओर भाग गई और, अपने पिता से लिपटकर, भीत मृगी-सी अश्रुमोचन करने लगी ।

अपहर्ता कुमार ने अपने कुलसमवाय को सम्बोधित किया : "आर्य-वृन्द ! आज हमारे कुल का मानमर्दन हो रहा है । हमारी कुलवीथि पर आक्रमण करके ये आततायी मेरी वाग्दत्ता को लिये जा रहे हैं । आपने यदि आततायी का पथ अवरुद्ध नहीं किया तो आपको धिक्कार है ।"

कुमारकुल के कृपाण उत्तोलित हो गए । कन्याकुल भी प्रत्याक्रमण के लिए प्रस्तुत हुआ ।

तब उस लिच्छवि माता ने, खड्गहस्ता होकर, दृप्त स्वर में उद्घोष

किया : "आर्यवृन्द ! यदि कन्याकुल के किसी लिच्छवि का रक्तबिन्दु भी भूपतित हुआ तो मैं अपने हाथ से अपने कुपुत्र का वध करूँगी । अथवा इस कुपुत्र के हाथों से अपने प्राण देकर अपने मातृत्व की मर्यादा का त्राण करूँगी । हमारी कुलवीथि के द्वार पर आया कन्याकुल हमारा अभ्यागत है ।"

वत्सला ने, अपना बाहुद्वय प्रसारित करके, कहा : "आर्यगण ! परस्पर आक्रमण करने के पूर्व आपको मेरे शव पर पदार्पण करके जाना होगा ।"

आयुष्मान उदय, अपने दोनों हाथ उद्यत करके, बोले : "लिच्छवि-पुत्रो ! तुम्हारे समुत्थित शस्त्र सर्वप्रथम इस श्रमण का शरीर विद्ध करेंगे । शरीर में प्राण रहते मैं तुम्हारे कुलक्षय का साक्षी नहीं बनूँगा ।"

तब, अकस्मात्, आर्य सुनक्खत कतिपय राजपुरुषों को अपने साथ लेकर, उस स्थल पर आए । वे बोले : "आर्यवृन्द ! आर्यश्रेष्ठ की आज्ञा है कि वादी तथा प्रतिवादी, दोनों को ही, बन्दी कर लिया जाए। दोषादोष का विनिर्णय कल विनिश्चय-शाला में व्यवहार द्वारा किया जाएगा ।"

वत्सला ने सुनक्खत से पूछा : "आर्य ! वादी कौन है ?"

सुनक्खत ने अपहर्ता कुमार की ओर संकेत करके कहा : "यह कुलपुत्र ।"

"और विवादी ?"

"यह कुलपुत्री ।"

"किन्तु, आर्य ! साहस तो कुमार ने किया है ।"

"साहस के पूर्व का भी एक प्रसंग है जिससे तुम्हारा परिचय नहीं ।"

वत्सला को कोई पूर्वप्रसंग ज्ञात नहीं था । अतएव वे, विस्मित-सी, मौन हो गईं ।

आयुष्मान उदय ने सुनक्खत से प्रश्न किया : "महामात्य ! व्यवहार-निवेदन करने, सर्वप्रथम, कौन गया था ? कन्यापक्ष अथवा कुमारपक्ष ?"

सुनक्खत ने प्रतिप्रश्न किया : "तुम्हारा आशय ?"

"वादी वही होता है जो सर्वप्रथम व्यवहार-निवेदन करे ।"

सुनक्खत हँसने लगे । फिर वे बोले : "तुमको वृज्जिसंघ का विनिश्चय-

महामात्य न बनाकर लिच्छवि-गग ने भूल की है। और तुमने काषाय धारण करके।"

महामात्य ने राजपुरुषों को आज्ञा दी कि वे कन्या तथा कुमार को बन्दी बना लें। दोनों कुलों में से किसी के मुख से एक शब्द नहीं निकला। और सुनक्खत्त अपने वादी तथा विवादी को लेकर, चले गए।

: ४ :

पर दिवस के पूर्वाह्न में, वैशाली की विनिश्चय-शाला, जनसंकुल थी। कन्यापहरण-काण्ड द्वारा व्युत्पन्न व्यवहार के विषय में, वृज्जिसंघ के विनिश्चय-महामात्य, वर्षकार ब्राह्मण, का न्याय-निर्णय सुनने के लिए। वत्सला कन्याकुल की स्त्रियों के साथ उपासीन थीं। अनिरुद्ध, कन्याकुल की पुरुष-पंक्ति में संरूढ़।

वर्षकार ब्राह्मण ने, धर्मासन पर उपासीन होकर, वादी को आदेश दिया कि वह अपना अभियोग अभिव्यक्त करे। अपहर्ता कुमार ने, धर्मासन के सम्मुख उपस्थान करके, कहा : "आर्य महामात्य ! एक वर्ष पूर्व, एक उत्सव के अवसर पर, कौतुकागार के प्राङ्गण में दोलारूढ़ इस कुमारी ने मेरी ओर मुग्ध दृष्टि से देखकर, मेरे हृदय को अपने कटाक्षबाण से क्षत-विक्षत कर दिया। मैंने इसके कुल, वीथि तथा आवास का अनुसन्धान करके, अपनी दूती के द्वारा, इसके निकट अपना प्रणयपत्र प्रेषित किया। इसने भी, प्रत्युत्तर में, एक प्रणयपत्र भेजा......

महामात्य ने कहा : "कुमार ! कन्या द्वारा प्रेषित प्रणयपत्र प्रस्तुत करो।"

कुमार ने, कौशेयवस्त्र पर आलिखित प्रणयपत्रों की एक पोट्टलिका महामात्य के हाथ में देकर, कहा : "इसने एक पत्र नहीं, अनेक पत्र प्रेषित किए हैं। समय-समय पर। वे सब इस पोट्टलिका में एकत्रित हैं, आर्य महामात्य !"

वर्षकार ने, एक क्षण, उस पत्र-पुञ्ज की परीक्षा करके, कुमारी से पूछा : "कुमारि ! क्या ये पत्र तुम्हारे हैं ?"

धर्मासन से अनतिदूर अवरूढ़ कुमारी ने, अवनत-शिर होकर, उत्तर दिया : "हाँ, आर्य महामात्य ! मैंने......

वर्षकार ने, कुमारी की अवगणना करके, कुमार से कहा : "कुमार! अपना आवेदन आगे कहो।"

कुमार बोला : "आर्य महामात्य! तदुपरान्त, गणिकालय के प्रमदोद्यान में तथा अन्य कई स्थानों पर, अनेक वार, मैंने इस कुमारी से भेंट करके, इसके साथ प्रेमालाप किया। और इसने वचन दिया कि आगामी अर्थात् गत कौमुदी-महोत्सव के अवसर पर, यह मेरे प्रणय-प्रागल्भ्य की परीक्षा करके, अपना पाणिपल्लव मुझे समर्पित करेगी।"

वर्षकार ने कुमारी से पूछा : "कुमारि! क्या यह सब सत्य है?"

कुमारी ने आर्द्रकण्ठ से उत्तर दिया : "सत्य है, आर्य महामात्य! राजकुमारी पुलोमजा...

वर्षकार ने कुमारी की भर्त्सना करते हुए कहा : "तुमसे जो प्रश्न पूछा जाए उसी का उत्तर दो। तुम विवादी हो। विवादी को अनर्गल प्रलाप नहीं करना चाहिए।"

कुमारी, भयभीत होकर, अपने कुल की पुरुष-पंक्ति की ओर देखती हुई, मौन हो गई। वर्षकार ने कुमार को संकेत किया कि वह अपना वक्तव्य कहे।

कुमार कहने लगा : "आर्य महामात्य! गत कौमुदी-महोत्सव के पुण्य पर्व में, हम दोनों, राजकुमारी द्वारा आमन्त्रित होकर, राजोद्यान में गए। इसने मेरे साथ सुरापान किया, गीत गाए, नर्तन किया। तब हम दोनों ने, सुरत-रण के लिए, लीला-गृह में प्रवेश किया। एक मुहूर्त तक यह मेरे संग अभिसार-रत भी रही। किन्तु, अकस्मात्, न जाने क्यों, यह मुझसे विमुख हो गई और मेरे प्रणय का प्रत्याख्यान करके अपने आवास में चली गई। तब से लेकर इसका हरण करने के समय तक, मैंने इसके निकट अनेक प्रणयपत्र प्रेषित किए। इसने एक का भी प्रत्युत्तर नहीं दिया। मैंने एक पत्र में प्रस्ताव किया कि यह, एक वार, केवल एक वार, मेरे साथ साक्षात्कार कर ले। इसने, तिरस्कारपूर्वक, अभद्र भाषा में कहला भेजा कि यह एक कापुरुष से किसी प्रकार का सम्पर्क रखने की इच्छुक नहीं।

"आर्य महामात्य! सब ओर से सर्वथा निराश होकर ही, मुझे,

अपना अधिकार अक्षुण्ण रखने के लिए, इसका हरण करने पर विवश होना पड़ा। इसने मुझे कापुरुष कहा था। कुमारी-हरण क्षत्रियवंश की पुनीत परम्परा है। मेरा विश्वास था कि अब मेरा पुरुषार्थ देखकर, इसका जीर्ण प्रणय पुनरेण प्राणान्वित हो जाएगा। किन्तु, उसके पूर्व ही, इसके कुल ने, विप्लव करके, विघ्न उपस्थित कर दिया। मुझे अपने विश्वास की परीक्षा करने का समय ही नहीं मिला।"

महामात्य ने कुमारी से पूछा : "कुमारि ! क्या कुमार का कथन सत्य है ?"

कुमारी ने उत्तर दिया : "आर्य महामात्य ! यह सत्य है कि मैं, इस कुमार को अपना प्रणय-सहचर बनाकर ही, कौमुदी-महोत्सव के पुण्य पर्व पर राजोद्यान में गई थी। मैंने, पूर्वकृत्य के उपरान्त, इसके साथ, लीला-गृह में प्रवेश भी किया था। प्रेमालाप भी। किन्तु, तदनन्तर, तुरन्त ही इस कापुरुष के प्रति मेरा मोह दूर हो गया।"

"विमुख होने का कारण ?"

"आर्य महामात्य ! मेरी आँखों के सम्मुख वृज्जिसंघ के अप्रतिहत महारथी, आर्य अनिरुद्ध, के साथ राजकुमारी पुलोमजा ने प्रवञ्चना का व्यवहार किया। मैंने इस कापुरुष से कहा कि यह पापाचार का प्रकाशन करे। किन्तु इसने उत्तर दिया कि यह रक्तपाती पुरुष के निमित्त, अपने सुख की अवहेलना करके, न्याय-अन्याय के प्रपंच में नहीं पड़ना चाहता। उसी क्षण यह मेरी दृष्टि में हेय हो गया। ऐसे स्वार्थलोलुप तथा भीरु पुरुष की पत्नी बनना मैं, नरक में भी, स्वीकार नहीं कर सकती।"

वर्षकार ब्राह्मण, सहसा, किंचित चिन्तित-से हो गए। उन्होंने एक बार अनिरुद्ध की ओर दृष्टिपात किया। मैथिलीपुत्र, सावधान होकर, कन्या की ओर देख रहे थे।

तब एक निश्चय-सा करके वर्षकार ब्राह्मण ने कन्या से पूछा : "कुमारि ! वह कौनसा पापाचार था जिसका प्रतिरोध करने के लिए यह कुमार प्रस्तुत नहीं हुआ ?"

कन्या ने उत्तर दिया : "आर्य महामात्य ! आर्य अनिरुद्ध राज-कुमारी द्वारा आमन्त्रित होकर ही राजोद्यान में आए थे। मैंने अपनी आंखों

से देखा था कि राजकुमारी, उनके भुजदण्ड पर अपनी बाहुलता वेष्टित करके, उन्हें अपने लीलागृह की ओर ले जा रही हैं। किन्तु राजकुमारी ने राजा के सम्मुख मृषावाद किया और राजा ने, आर्य अनिरुद्ध को तस्कर कहकर, उन्हें बन्दी बना लिया। यह प्रवञ्चना थी, पापाचर था।"

"किन्तु, कुमारि ! उस विषय में तो वृज्जिसंघ की परिषद परामर्श करके प्रतिज्ञा धारण कर चुकी है। परिषद ने एकमत से निर्णय किया है कि अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र ने अनाचार किया था।"

"आर्य महामात्य ! पूज्य परिषद ने, सत्य के साक्षी के अभाव में, आर्य अनिरुद्ध के साथ अन्याय किया है।"

"अनिरुद्ध के विरुद्ध साक्ष्य स्वयं आर्यश्रेष्ठ ने दिया था।"

"राजा से सत्य को गोपन किया गया है।"

"तुम्हारे वचन का प्रमाण ?"

"मैंने अपनी आँखों से सब देखा था।"

"तुम्हारे वचन का साक्षी ?"

कुमारी मौन हो गई। उसका साक्षी वैशाली में कोई नहीं था।

वर्षकार ने पूछा : "कुमारि ! अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र राजोद्यान में आया तब रात्रि का कौनसा याम था ?"

कुमारी बोली : "आर्य महामात्य ! उस समय रात्रि का द्वितीय याम था।"

"तुम किस समय राजोद्यान में गई थीं ?"

"प्रदोष के तुरन्त उपरान्त।"

"तुमने मद्यपान किया था ?"

"किया था, आर्य महामात्य !"

"तब क्या यह सम्भव नहीं कि प्रभूत मद्यपान से प्रमत्त होकर तुमने कल्पना में जो देखा और सुना उसीको तुमने सत्य मान लिया ?"

"मैंने अल्पमात्रा में ही मद्यपान किया था, आर्य महामात्य ! मैं एक क्षण के लिए भी प्रमत्त नहीं हुई थी।"

"मद्यप सदा कहता है कि उसने अल्पपान किया है। मद्यप कभी अपने-आपको प्रमत्त नहीं मानता। उसकी दृष्टि में अन्य जन ही प्रमत्त

होते हैं।"

यह तर्क कन्या के लिए अनतिक्रमणीय था। वह मौन होकर महामात्य का मुख देखने लगी।

तब वत्सला ने, अपने आसन से उत्थान करके, महामात्य को सम्बोधित किया: "आर्य महामात्य! कौमुदी-महोत्सव के अवसर पर अनेक कुलपुत्र एवं कुलपुत्रियाँ राजोद्यान में उपस्थित थे। यह कुमारी सम्भवतः प्रमत्त हो गई हो। किन्तु कोई अन्य कुलपुत्र अथवा कुलपुत्री यदि इसके कथन का समर्थन करे तो इसका कथन सत्य मानना होगा।"

वर्षकार ब्राह्मण वत्सला की ओर देखकर मुस्कराने लगे। फिर वे बोले: "वत्सले! तुम विवादी का समर्थन करना चाहती हो अथवा मैथिलीपुत्र के आचरण की मार्जना?"

विनिश्चय-शाला में उपस्थित अनेक नर-नारी, महामात्य का व्यंग सुनकर, हँसने लगे। किन्तु वत्सला तनिक भी हतप्रभ नहीं हुई। वे बोलीं: "आर्य महामात्य! जिस पुरुषश्रेष्ठ का आचरण दर्पण के समान स्वच्छ और निर्मल हो, उसके आचरण की मार्जना का भार मुझे वहन करना नहीं होगा। मैं तो विवादी के प्रति न्याय की प्रत्याशा से ही ऐसा कह रही हूँ।"

वर्षकार ब्राह्मण ने विनिश्चय-शाला में उपस्थित जनसमवाय को सम्बोधित किया: "लिच्छविवृन्द! इस शाला में उपस्थित कोई पुरुष अथवा स्त्री विवादी के वचन का समर्थन करना चाहता हो तो वह शपथ ग्रहण करे।"

विनिश्चय-शाला एक क्षण के लिए निस्तब्ध हो गई। वत्सला ने, अपनी दृष्टि प्रसारित करके, शाला के प्रत्येक पार्श्व पर उपस्थित नर-नारी-गण को निहारा। वहाँ पर अनेक कुलपुत्र एवं कुलपुत्रियाँ उपस्थित थे, जिन्होंने कौमुदी-महोत्सव की रात्रि राजोद्यान में व्यतीत की थी। किन्तु उनमें से किसी ने भी एक शब्द बोलने के लिए मुख नहीं खोला।

हताश-सी वत्सला महामात्य से बोलीं: "आर्य महामात्य! व्यवहार एक दिवस के लिए स्थगित किया जाए। कल पूर्वाह्न में ही मैं साक्षी उपस्थित करूँगी।"

महामात्य ने, वत्सला की भर्त्सना करते हुए, कठोर स्वर में कहा : "तुमको क्या यह स्मरण नहीं रहा कि इस व्यवहार में विवादी तुम नहीं, अन्य कोई है।"

"अपराध क्षमा करें, आर्य महामात्य ! विवादी कन्या ही अपनी ओर से साक्षी प्रस्तुत करेगी।"

कन्या ने, आशा से उत्फुल्लित होकर, कहा : "हाँ, आर्य महामात्य ! साक्षी मैं ही प्रस्तुत करूँगी।"

वर्षकार ने कन्या से पूछा : "तुम आज अपना साक्षी लेकर क्यों नहीं आईं ?"

कन्या ने उत्तर दिया : "आर्य महामात्य ! मुझको यह ज्ञात नहीं था कि यह प्रसंग उपस्थित होगा।"

"मैं व्यवहार को स्थगित करता हूँ। किन्तु कल यदि किसी ने भी तुम्हारे पक्ष में साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया तो तुमको मूक रहकर कुमार से विवाह करना होगा। तुमको स्वीकार है ?"

"नहीं, आर्य महामात्य ! व्यवहार का निर्णय मेरे पक्ष में हो अथवा मेरे विरुद्ध, इस कापुरुष का मुख भी देखना मुझे स्वीकार नहीं।"

वर्षकार ब्राह्मण ने अपहर्ता कुमार से कहा : "कुमार ! विवादी पक्ष ने अपने समर्थन में कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया। अतएव व्यवहार में तुम्हारी विजय हुई। मेरे निर्णय के अनुसार तुमको पूर्ण अधिकार है कि कन्या को अपने आवास में ले जाओ।"

कुमार, हर्षोन्मत्त होकर, कन्या की ओर अग्रसर होने लगा। कन्या ने, भीत मृगी की नाईं धर्मासन की ओर धावमान होकर, वर्षकार ब्राह्मण के चरण पकड़ लिए। फिर वह, रुदन करती हुई, बोली : "इस मानव-पशु से मेरा परित्राण कीजिए, आर्य महामात्य !"

महामात्य ने, अपना मुख परावृत्त करके, उत्तर दिया : "कुमारि ! विनिश्चय-शाला में अपशब्द का प्रयोग निषिद्ध है। व्यवहार में तुम्हारी पराजय हुई है। तुम्हारे दुराग्रह को हम ग्रहण नहीं कर सकते। हम बहुकृत्य, बहुकरणीय हैं। हमारा समय नष्ट मत करो।"

कुमार ने, अग्रसर होकर, कुमारी के दक्षिण हस्त का प्रकोष्ठ अपने

कराल करपाश में कस लिया। कन्या आर्तनाद करने लगी। किन्तु कुमार, उसकी अवहेलना करके, कन्या को अपकृष्ट करने लगा।

अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र ने, अकस्मात् अग्रसर होकर, हुंकार किया: "कुमार! अबला के प्रति अनाचार मत करो!! अबला को मुक्ति दो!!!"

कुमार ने कुपित होकर कहा: "धिक्! वह अबला नहीं, मुझ जैसे महारथी की भार्या है।"

"धर्मपूर्वक पाणिग्रहण के बिना लिच्छविदुहिता किसी की भार्या नहीं होती, कुमार! कन्या को मुक्त कर दो।"

"मेरे हाथ में यदि खड्ग होता तो इसी समय तुमको तुम्हारी धृष्ठता का दण्ड देता।"

अनिरुद्ध ने, उत्पतित होकर, कुमार के प्रसाधित कपोल-प्रान्त पर एक प्रबल चपेटाघात किया। कुमार ने, सन्न होकर तुरन्त ही, कन्या का हस्त मुक्त कर दिया।

दूसरे क्षण, कुमारकुल की पुरुषपंक्ति में से परिक्षिप्त एक कृपाण कुमार के निकट आ गिरा। तब कुमार ने, कृपाण को कोष-विनिर्गत करके, अनिरुद्ध तथा कन्या पर आक्रमण कर दिया।

अनिरुद्ध विकट योद्धा थे। यदि उनको कन्या के त्राण की चिन्ता न होती तो वे, सम्यक्रूपेण, अपना त्राण कर लेते। किन्तु कन्या को बचाने की चेष्टा में वे स्वयं आहत हो गए। कुमार के कृपाण-प्रहार ने उनका स्कन्ध-देश क्षत-विक्षत कर दिया।

अपने शरीर से निस्सरित रक्तस्राव देखकर, अनिरुद्ध के नेत्र क्रोधानल से जल उठे। कुमार के वक्ष पर पदाघात करके उन्होंने उसे, उसी क्षण, धराशायी कर दिया। और दूसरे क्षण, कुमार का कृपाण लेकर उन्होंने उस नराधम का मस्तक छेद दिया।

विनिश्चय-शाला में आतङ्क छा गया। खड्गहस्त अनिरुद्ध कुमारकुल की पुरुषपंक्ति की ओर दृष्टिपात करते हुए सिंहगर्जना कर रहे थे। उन पुरुषों में से किसी को इतना साहस न हुआ कि आगे आकर उस महारथी से मोर्चा ले ले।

किन्तु विनिश्चय-महामात्य का आदेश पाकर, जब कतिपय सशस्त्र राजपुरुष अनिरुद्ध को बन्दी बनाने के लिए अग्रसर हुए तो उन्होंने, खड्ग को फेंक कर, शान्त भाव से आत्म-समर्पण कर दिया।

वत्सला के देखते-देखते, एक क्षण में, यह समस्त नाटक अभिनीत हो गया। और उनके देखते-देखते ही, वर्षकार ब्राह्मण ने, अनिरुद्ध के अपराध का विचार करके, उनको आजीवन वृज्जि महाजनपद से निर्वासित कर दिया।

राजपुरुषों को आदेश मिला कि वे, अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र को निगडित करके, वृज्जि महाजनपद के पूर्ववर्ती प्रत्यन्त पर, कौशिकी नदी के पार, अंगुत्तराप के महावन में छोड दें। तदनन्तर अनिरुद्ध ने यदि वृज्जि महाजनपद में पदार्पण किया तो वे प्राणदण्ड के पात्र थे।

वत्सला, मूक रहकर, अश्रुजल का संवरण करती हुई अपने आवास की ओर चली गई।

: ५ :

वृज्जिसंघ की राजकीय नौका ने, प्रत्यूष के समय, बन्दीकृत अनिरुद्ध को कौशिकी के पूर्ववर्ती तट पर उतार दिया। उनके दोनों हस्त, एक रज्जुपाश से, उनके पृष्ठ-प्रदेश की ओर बद्ध थे।

अनिरुद्ध नदी-तट पर अवरूढ़ होकर नवोदित मार्तण्ड-मण्डल की मङ्गलछवि निहारने लगे। उनके साथ आने वाले दो सैनिकों में से एक उनको रज्जुपाश से उन्मुक्त करने लिए प्रयत्नवान हुआ।

सहसा उन्होंने अनुभव किया कि उनके करसंपुट पर ईषदोष्ण जल-बिन्दु गिर रहे हैं। तब उन्होंने मुख मोड़ कर देखा। रज्जुपाश को उन-मुक्त करने में रत सैनिक अश्रुमोचन कर रहा था। सैनिक के मुख की एक-एक रेखा, कारुण्य के अतिरेक से, आर्तक्रदन में मुखरित हुआ चाहती थी। अनिरुद्ध को अपनी ओर दृष्टिपात करते देख कर सैनिक का संयम भंग हो गया। वह रुदन करने लगा।

अनिरुद्ध का विरक्ति से विजड़ित मानस संवेदना के इस आघात को वहन नहीं कर सका। उनका कण्ठ गद्गद् हो गया। नेत्र आर्द्र। उनका अन्तर आग्रह करने लगा कि वे भी जी भरकर रुदन करें।

किन्तु वे रो नहीं सके। अपनी मर्यादा की आत्मचेतना ने उनके द्रवित अश्रु एक निमेष में शुष्क कर दिए। तब वे, अपने स्वर को संयत करके, सैनिक से बोले : "लिच्छवि होकर रोता है! कायर!"

सैनिक के कम्पित कर निश्चेष्ट हो गए। उसने एक बार अनिरुद्ध की ओर देखा। और वह, तुरन्त ही, और भी उच्च स्वर से क्रन्दन करने लगा।

अनिरुद्ध ने उसकी अवहेलना करके दूसरे सैनिक से कहा : "रज्जुपाश का मोचन तुम करो। इस कायर से नहीं खुलेगा।"

दूसरे सैनिक ने कटिबन्ध से कटार निकाल कर कहा : "रज्जुपाश का छेदन कर देता हूँ, आर्य!"

अनिरुद्ध ने, निषेध करते हुए, कहा : "तुम क्या शत्रु द्वारा बद्ध लिच्छवि को मुक्त करने आए हो, सैनिक! तुम वृज्जिसंघ के राजा द्वारा दण्डित अपराधी को निर्वासित करने आए हो। रज्जुपाश का छेदन वाञ्छनीय नहीं। पाश को खोलना होगा।"

रज्जुपाश खुलता रहा। और अनिरुद्ध उन्नतशिर उपस्थान करके निर्निमेष नेत्रों से महावन की ओर देखते रहे।

हाथ मुक्त होते ही उन्होंने पश्चिम की ओर मुख मोड़ा और, बद्धाञ्जलि होकर, सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ मातृभूमि को प्रणाम किया। फिर वे, एक शब्द भी कहे बिना, द्रुतपद से महावन में प्रवेश कर गए।

उन्होंने रात्रिजागरण करके ही रथयात्रा की थी। सैनिकों ने भोजन प्रस्तुत किया था, किन्तु उन्होंने ग्रहण नहीं किया था। नौकारोहण करते समय भी सैनिकों ने उनका पाथेय उन्हें देना चाहा था, किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया था। वृज्जिसंघ का राजकीय अन्नजल ग्रहण करने में उनको ग्लानि का बोध हुआ था। किन्तु महावन में कुछ दूर जाते-जाते वे क्षुधा एवं तृषा से त्रस्त होने लगे।

वे, इधर-उधर से कुछ फलपुष्प संग्रह करके खाते हुए, जलाशय की खोज में पूर्वाभिमुख जा रहे थे। विश्राम करने के पूर्व वे उस महापथ तक पहुँचने के लिए व्यग्र थे जो, उनकी अभिज्ञता के अनुसार, किरात जनपद से चम्पानगर तक जाता था।

पथचार करते-करते वे विचार करने लगे कि वे, अन्ततः, जाएँगे

किस ओर ?

वे, वृज्जि महाजनपद में लौटकर, मिथिला जा सकते थे। वहाँ उनका मातुलकुल था। मातामह एवं मातामही भी जीवित थे। वहाँ उनको शरणापन्न होने में कठिनाई नहीं होती। किन्तु मिथिला के विदेह-गण वृज्जि-संघ के अधीन थे। विदेह जनपद वृज्जि महाजनपद का एक प्रदेश मात्र। और वे वृज्जि महाजनपद से आजीवन निर्वासित। पुनर्प्रवेश करने पर प्राण-दण्ड के पात्र। मिथिला जाकर, मातुलकुल को विपिन्न करने के लिए उनका मन नहीं माना।

वे, भागीरथी को पार करके, चम्पानगर में जा सकते थे। वहाँ उनके अनेक मित्र थे। उन्हीं के समान मगधराज अजातशत्रु के विरुद्ध विद्रोह-परायण। किन्तु अब वे पाटलिग्राम के दुर्गपाल नहीं थे। अब उनमें क्षमता नहीं थी कि अङ्ग जनपद में व्युत्थापित विद्रोह की अणुमात्र भी सहायता कर सकें। और चम्पा में, पद-पद पर, अजातशत्रु के गुप्तचर विद्यमान थे। उन्हें अपने प्राणों का भय नही था। तो भी वे, अपने कारण, अपने मित्रगण को संकटापन्न करने के लिए प्रस्तुत नहीं हो सके।

वे, वृज्जि महाजनपद के उत्तरवर्ती पार्वत्य-पथ को पार करके, मल्ल महाजनपद में प्रवेश कर सकते थे। मल्लगण उनका स्वागत करते। किन्तु मल्लगण तो लिच्छवि-गण से घृणा करते थे। उनका स्वागत करके मल्लगण उनसे यह अपेक्षा करते कि वे भी लिच्छवि-गण के विरुद्ध विष-वमन करें। किन्तु वह क्या उनके लिए सम्भव था ? लिच्छवि-गण के प्रति उनका अपरिमेय प्रेम अभी भी अक्षुण्ण था। उनका विद्वेष था तो उस राजव्यवस्था से जिसने लिच्छवि-गण को स्वधर्म-भ्रष्ट कर दिया था। नहीं, मल्ल महाजनपद में उनका गमन किसी प्रकार भी वाञ्छनीय नहीं था।

वे, सदानीरा को पार करके, कोसल महाजनपद में जा सकते थे। किन्तु कोसल की अमात्य-परिषद तो, राजा रत्नकीर्ति की चाटूक्ति करके, उनकी मैत्री प्राप्त करने का प्रयास कर रही थी। वह राजा रत्नकीर्ति के अपराधी को प्रश्रय नहीं देती। कोसल मे, एक प्रकार से, उनका प्रवेश ही निषिद्ध था।

अथवा वे, मध्यमण्डल को पार करके, प्रतीची के अग्रगण्य महाजनपद, अवन्ति, में जा सकते थे। अंगुत्तराप से पुण्ड्र। पुण्ड्र से सुह्म। सुह्म से कलिंग। कलिंग से दक्षिणापथ का महारण्य उत्तीर्ण करके विदर्भ। और विदर्भ से अवन्ति। अवन्ति में उनका स्वागत सम्भव था। अवन्ति भी मगध का शत्रु देश था। अवन्तिराज भी, अजातशत्रु के विरुद्ध, मण्डल-प्रोत्साहन करने के लिए प्रयत्नवान थे। उज्जयिनी से आने वाले अनेक सार्थवाह, अजातशत्रु के विरोधी पाटलिग्राम के दुर्गपाल से परिचित थे।

किन्तु उनका मन कहने लगा कि अवन्ति के तन्त्र में किसी मूलतत्त्व का अभाव है। अन्यथा, इतना अपार सैन्यबल लेकर भी, वह राष्ट्र मगध के समान तुच्छ शक्ति से, पद-पद पर, पराभूत न होता। अवन्ति के देखते-देखते, अजातशत्रु ने अवन्ति के पोष्यपुत्र, भर्गसंघ, का विनाश करके भर्ग जनपद को अपने साम्राज्य में समाविष्ट कर लिया था। अब अवन्ति का एक अन्य मित्र, वत्स राष्ट्र, अजातशत्रु द्वारा आक्रान्त था और प्राची तथा मध्यमण्डल में किसी को यह आशा नहीं थी कि अवन्ति समय पर वत्स की सहायता करेगा। वैशाली में आने वाले अवन्ति के सार्थवाह अवन्ति के मित्रराष्ट्रों की निन्दा और अवन्ति के शत्रुराष्ट्रों की स्तुति करते-करते नहीं अघाते थे।

इसके अतिरिक्त, अवन्ति के सम्बन्ध में एक अन्य बात का स्मरण करके वे सिहर उठे। उन्होंने सुना था कि अवन्ति में केवल सत्ता और वैभव का ही आदर किया जाता है। अवन्ति का शासकवर्ग विश्वास और निष्ठा का आदर करना नहीं जानता था। अवन्ति के सार्थवाह-समूह का व्यवहार उन्होंने, वैशाली में, अपनी आँखों से देखा था। सार्थवाह भी केवल सत्ता और वैभव पर ही मुग्ध थे। जब तक वे पाटलिग्राम के दुर्गपाल रहे तब तक अवन्ति के अनेक सार्थवाह उनका सत्कार करते रहे, उनसे परिचित होकर आत्मतुष्टि का बोध करते रहे। किन्तु ज्यों ही वे, पदच्युत होकर, वैशाली के साधारण आवास में निवास करने लगे, त्यों ही अवन्ति का प्रत्येक सार्थवाह उनका नाम तक भूल गया। अवन्ति के समस्त सार्थवाह, सहसा, राजा रत्नकीर्ति के अनन्य भक्त बन गए थे। राजा के विद्रोही को पहिचानने तक में वे अपना अपमान समझते थे।

वे यदि अवन्ति गए तो अपना परिचय क्या देंगे ? यही कि वे वृज्जिसंघ से आजीवन निर्वासित, वृज्जि महाजनपद में पुनर्प्रवेश के साथ प्राणदण्ड से दण्डित, पाटलिग्राम के पदच्युत दुर्गपाल हैं ? तब क्या कोई अवन्तिवासी उनको भोजन के लिए भी पूछेगा ? अवन्ति में कौन सुनेगा उनकी बात ? उनका यथोचित आदर-सत्कार वहाँ कौन करेगा ?

तो फिर ? सहसा अनिरुद्ध ने अनुभव किया कि उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग अध्वश्रम से क्लान्त हैं। उनके निराश मानस का भार वहन करने में असमर्थ। उनका शरीर स्वेदजल से स्नात था। तृषा से तप्त हो चला था उनका तालु-तल।

सूर्यदेव शिखरायमाण हो रहे थे। उनके प्रखर किरणजाल से तपकर वसन्त का वातास भी अनिरुद्ध की अर्धनग्न देह को प्रताड़ित-सा करने लगा। अनिरुद्ध ने दृष्टिप्रसारित करके इतस्ततः देखा। फिर वे द्रुतपद से अग्रसर होने लगे। सामने की ओर महापथ का आभास था।

कुछ दूर जा कर, अनिरुद्ध ने महापथ ही नहीं पाया, अपितु, महापथ के उस पार, एक स्वच्छ जलाशय भी। जलाशय के समीप एक जीर्णशीर्ण पर्णकुटी भी, अनेक दिन से परित्यक्त होकर, किसी नवागन्तुक की प्रतीक्षा में प्राण धारण किए खड़ी थी। अनिरुद्ध ने, स्नान करके, जलपान किया। तदनन्तर, पर्णकुटी के अपेक्षाकृत परिष्कृत प्रान्त में अपना उत्तरीय आस्तीर्ण करके उन्होंने अपनी निद्राभिभूत देह लम्बायमान कर दी। स्वर्ग का-सा सुख था उस विश्राम की वेला में।

किन्तु अनिरुद्ध के भाग्य में उस समय विश्राम नहीं बदा था। महापथ पर दक्षिण दिशा की ओर से प्रधावमान तुरगपदचाप सुनकर उनके चिर-अभ्यस्त कान सावधान हो गए। अन्तर में एक आशा का संचार हुआ। सम्भवतः कुछ अश्वारोही सार्थवाह महापथ से जा रहे थे। उनसे भोजन प्राप्त करने की आशा में, अनिरुद्ध तुरन्त ही उत्थान करके महापथ की ओर चल पड़े।

तुरगपदध्वनि निकट आने लगी। कुछ क्षण उपरान्त, पथप्रान्त पर धूलि का धवल बलाहक उठाते हुए कतिपय अश्वारोही उनके दृष्टिपथ पर आविर्भूत हुए। प्लुतगति से प्रधावमान अश्वारोही।

अनिरुद्ध का मन कहने लगा कि वे अश्वारोही रुकेंगे नहीं । वे किसी अन्यात्रव्यक कार्यवश उत्तर दिशा की ओर जाते हुए प्रतीत होते थे । निराश-से होकर वे धूलिधूमरित होने से बचने के लिए महापथ का तट त्याग कर पर्णकुटी की ओर प्रत्यावर्तन करने लगे ।

किन्तु, दूसरे ही क्षण, महापथ निस्तब्ध हो गया । और एक सरसराता हुआ शर, अनिरुद्ध से अनतिदूर एक वृक्ष को विद्ध कर गया । उनको यह समझने में विलम्ब नहीं हुआ कि बाण उनको ही लक्ष्य करके मुञ्चित हुआ है । हठात् इस आशङ्का से उनका अन्तर आप्लावित हो चला कि वे अश्वारोही उनकी हत्या करने आए हैं । वे तुरन्त ही एक सघन बनकुञ्ज में तिरोहित हो गए । साथ ही, अनेक बाण वायुमण्डल को विक्षुब्धित करते हुए उस ओर से निकल गए ।

अनिरुद्ध ने अपने निभृत स्थान से देखा कि पाँच अश्वारोही, इतस्ततः दृष्टिपात करते हुए, महावन के उसी प्रान्त की ओर आ रहे हैं । उनकी वेषभूषा देखते ही अनिरुद्ध ने पहिचान लिया कि वे मागध सैनिक है । अनिरुद्ध की प्रत्युत्पन्नमति ने एक क्षण में अनुमान कर लिया कि मागध सैनिक उन्हीं का अनुसन्धान करते हुए उस ओर आए हैं और उनके प्राण आपन्न हैं ।

अनिरुद्ध के पास किसी प्रकार के शस्त्रास्त्र नहीं थे । उनका उत्तरीय पर्णकुटी में रह जाने के कारण, कटितट से ऊपर उनकी देह भी सर्वथा अनावृत थी । असि-प्रहार से आहत एक स्कन्ध अभी-भी कसक रहा था । ऐसी अवस्था में वे पलायन करके ही अपना परित्राण कर सकते थे ।

एक क्षण के लिए किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गए अनिरुद्ध । प्राणों का मोह परामर्श दे रहा था कि इसी पल पलायन करो । दूसरी ओर, ग्लानिगर्भित अभिमान आक्रोश करने लगा कि प्राणों का परित्राण करके क्या होगा ? अब उनके प्राणधारण का प्रयोजन ही क्या रह गया था ? संसार की दृष्टि में ? उनकी अपनी दृष्टि में ?

अश्वारोही, निकुंज के निकट आकर, धरा पर शायित अपने निष्फल शरसमूह का अवलोकन करने लगे । प्रत्येक सैनिक का शरीर लौहकवच से कसा हुआ था । प्रत्येक के शिर पर शिरस्त्राण । हाथों में शरासन ।

पृष्ठ पर तूणीर। कटिसूत्र से आलम्बित असियष्टि। अश्व की ग्रीवा-ग्रन्थि पर निबद्ध खेटक। नेत्रों में विकट विद्वेष की वह्निज्वाल। जैसे कोई व्याध वृन्द अपने आखेट की खोज कर रहा हो।

अनिरुद्ध की शिराओं में स्रावमान लिच्छवि रक्त उत्पात करने लगा। परिघसदृश भुजदण्डद्वय का परिपुष्ट स्नायुमण्डल स्फूर्त होने लगा। तब, क्षुधित हर्यक्ष के समान उत्पतन करके, उन्होंने अपने समीप आए हुए एक मागध अश्वारोही को धराशायी कर दिया। और दूसरे अश्वारोही अपने सहचर की सहायता करें उसके पूर्व ही वे, सैनिक का धनुष और तूणीर अपने अधिकार में करके, महावन में प्रवेश कर गए। वृज्जिसंघ के लक्ष्यवेधी धनुर्धर, किसी निभृत स्थान का आश्रय लेकर, शत्रुदल का शिरच्छेद करने के लिए लालायित थे।

किन्तु महावन की ओर से भी कतिपय मागध अश्वारोही आ रहे थे। अनिरुद्ध यह अनुमान नहीं लगा सके कि उस ओर और कितने सैनिक हैं। उस ओर जाने से उनके प्राण पुनरेण आपन्न हो सकते थे। अतएव, वे प्रत्यावर्तन करके, महापथ की ओर भागे। महापथ के दूसरी ओर के महावन में शरण लेने के लिए।

दक्षिण एवं पूर्व की ओर से, उनको लक्ष्य करके, बाणवर्षण हो रहा था। किन्तु मगध के धनुर्धर उनके समान लक्ष्यवेधी नहीं थे। अनिरुद्ध अनाहत रह ही महापथ को प्राप्त करने लगे। किसी अन्य अश्वारोही का साहस नहीं हुआ कि अपना अश्व अग्रसर करके उनके समीप जाए।

तब, अकस्मात् ही, उत्तर दिशा से आते हुए एक रथ के अवघोष ने महावन की नीरवता को भङ्ग कर दिया। अनिरुद्ध आशङ्कित-से होकर उस ओर देखने लगे। और इसके पूर्व कि वे शत्रु-मित्र का निश्चय करते, एक चिरपरिचित किन्तु फिर भी चिरनूतन नारी कण्ठ के निनाद ने उनके कर्णकुहर कुसुमित कर दिए। रथ पर आरूढ़ वत्सला कह रही थीं: "मैं आ गई हूँ, दुर्गपाल! मैं आ गई हूँ।"

अनिरुद्ध स्तम्भित रह गए। किन्तु दूसरे क्षण आतङ्कित भी। वत्सला ने अपने प्राण भी आपन्न कर लिये थे।

वत्सला का रथ अनिरुद्ध के समीप आया। सर्वाङ्गसम्पूर्ण सानाह्य

रथ था। अनिरुद्ध उस पर आरूढ़ हो गए। तब वत्सला ने, अश्वद्वय के पृष्ठ पर प्रतोद का प्रचण्ड प्रहार करके, रथ को दक्षिण दिशा की ओर उड्डीयमान कर दिया।

अनिरुद्ध ने कहा : "उस ओर नहीं, राजकुमारि ! उस ओर शत्रु का सैन्य समवेत है।"

वत्सला ने उनकी ओर देखे बिना और रथ के वेग में वृद्धि करते हुए उत्तर दिया : "भय नहीं, दुर्गपाल ! मैं आपके प्राणों का त्राण करने आई हूँ, हनन करने नहीं। आप, अविलम्ब ही, वारबाण तथा शिरस्त्राण धारण कीजिए।"

रथ प्रधावमान रहा। अनिरुद्ध रथाङ्ग पर निविष्ट वारबाण इत्यादि धारण करने लगे। शस्त्रास्त्र-सज्जित होकर वे बोले : "राजकुमारि ! मैं प्रस्तुत हूँ।"

वत्सला ने, मुख परावृत्त करके, एक बार उत्तर दिशा की ओर दृष्टि-पात किया। शत्रु का सैन्य उनका अनुसरण नहीं कर रहा था। वत्सला ने अनुमान कर लिया कि दक्षिण की ओर, अनतिदूर, अवशिष्ट शत्रुसैन्य संरूढ़ है। अन्यथा प्रथम सैन्यदल अवश्य ही उनका अनुसरण करता।

तब, वत्सला ने अपना रथ रोक लिया। फिर वे, रश्मिप्रग्रह को अनिरुद्ध की ओर बढ़ाती हुई बोलीं : दुर्गपाल ! आप सारथ्य सम्पन्न कीजिए। शत्रु के साथ शस्त्रसम्पात मैं करूँगी।"

अनिरुद्ध ने विरोध किया। वे बोले : "यह क्या परिहास है, राज-कुमारि ! मेरे उपस्थित रहते आप......

"मैं जानती हूँ कि आप पुरुष है, और मैं अबला नारी। किन्तु मैं लिच्छवि नारी हूँ, दुर्गपाल ! और आप आहत पुरुष। क्षतविक्षत स्कन्ध लेकर आप क्या युद्ध करेंगे ?"

अनिरुद्ध ने वत्सला का आपादमस्तक अवलोकन किया। सुभट-सुलभ समर-सज्जा से श्रीसम्पन्न वत्सला की वह महिमामयी मूर्ति उनके लिए सर्वथा नवीन थी। वे मुग्ध होकर उस मूर्ति को निर्निमेष नेत्रों से निहा-रते रहे।

वत्सला ने, अपने ललाटतट पर प्रादुर्भूत स्वेदजल को पोंछते हुए,

कहा : "मुझको देखने का बहुत समय मिलेगा, दुर्गपाल ! इस समय आप करणीय कर्म कीजिए ।"

अनिरुद्ध ने पुनः बाधा उपस्थित की । वे कहने लगे : "किन्तु, राज-कुमारि...

"आप महारथी हैं, दुर्गपाल ! किन्तु अद्वितीय सारथि भी । आप ही सन्मुख समवेत शत्रुसैन्य का संतरण करने में समर्थ हैं । मेरा साहस नहीं होता । दक्षिण दिशा में हमारा पथ अवरुद्ध है । हमें उत्तर की ओर प्रत्यावर्तन करना होगा ।"

अनिरुद्ध ने रश्मि-प्रग्रह ग्रहण किया । और वत्सला ने अपने शरासन पर शरसन्धान । फिर वे, हँसकर, बोलीं : "अब मेरी संरक्षा का भार आप पर है, दुर्गपाल ! आप रथसंचालन के चातुर्यवैचित्र्य द्वारा शत्रु का बाणवर्षण विफल कीजिए । किन्तु मेरा एक बाण भी विफल जाए तो कहिएगा कि मैंने लिच्छवि माता का स्तन्यपान नहीं किया ।"

अनिरुद्ध ने, एक बार उत्तर दिशा की ओर देखकर, शत्रुसैन्य के व्यूह का विधान समझ लिया । फिर उनका हुँकार सुनकर अश्वद्वय वायु-वेग से उड़ चला । कुछ दूर जाने पर उन्होंने देखा कि उनका पूर्व-परिचित मागध अश्वारोही-दल पथ-प्रान्त को अवरुद्ध करके खड़ा है ।

विपक्षी का रथ अपने समीप आते देखकर मागध सैनिकों ने भी अपने अश्व दक्षिण दिशा की ओर प्रधावमान किए । विकट संघर्ष समुपस्थित था । मानो मागध कटक के कराल कल्लोल से, एक क्षण क्रीड़ा करके, अनिरुद्ध की रथतरणी चूर्ण हो जाएगी । आकाशपथ उभयपक्ष के विपुल बाणवर्षण से आच्छादित हो चला । वत्सला, अविराम बाण-मुञ्चन करती हुई, एकाकी ही, अनेक मागध सैनिकों के साथ समर-रत थीं ।

किन्तु रथ तथा मागध-सैन्य का संघर्ष नहीं हुआ । शत्रुदल अभी वियत् दूर था कि अनिरुद्ध द्वारा संचालित रथ, अकस्मात् ही, पथ-प्रान्त पर अचल हो गया । और शत्रु का तुरग-समवाय, अपने प्रवृद्ध वेग के वशीभूत होकर, रथ के पार्श्व-द्वय से दक्षिण दिशा की ओर निकल गया । वत्सला ने जयघोष किया : "पाटलिग्राम का दुर्गपाल दुर्धर्षणीय है !"

मगध के हतप्रभ योद्धा जब तक अपने अश्व परावृत कर पाए तब तक अनिरुद्ध का रथ, मरुकान्तार के झंझावात के समान, दूर निकल गया। अनिरुद्ध, रथ के पुरोभाग में, उत्तराभिमुख अवरूढ़ थे। वत्सला, रथ के पश्चातभाग में, दक्षिणाभिमुख। कुछ दूर जाकर अनिरुद्ध ने कहा : "राजकुमारि ! अब आप रथ का सारथ्य कीजिए। मागध सैन्य हमारा अनुधावन कर रहा है। प्राणविसर्जन किए विना विमुख नहीं होगा।"

शत्रुपक्ष के दो अश्वारोहियों का, अपने लक्ष्यवेधी शरसम्पात द्वारा शिरच्छेद करती हुई, वत्सला बोलीं : "आप अनेक वार, अनेक शत्रुगण के प्राण लेकर प्रभूत पुण्यार्जन कर चुके हैं, दुर्गपाल ! पुञ्जीभूत पुण्य के प्रभु आप इस दरिद्र को भी किंचित पुण्यार्जन करने दीजिए।"

"यह घोरकर्म पुरुष के द्वारा करणीय होते हैं। नारी के द्वारा करणीय नहीं, राजकुमारि !"

अन्य तीन मागधों के मस्तक विद्ध करती हुई वत्सला ने कहा : "किन्तु मैं तो लिच्छवि नारी हूँ ! लिच्छवि पुरुषों का पतन होने पर यह घोरकर्म भी लिच्छवि ललना को करना होगा।"

अनिरुद्ध ने कहा : "वह समय अभी-भी दूर है, राजकुमारि ! तब तक...

कतिपय और मागधों को धराशायी करती हुई वत्सला, हँस कर, बोलीं : "तब तक लिच्छवि पुरुष सारथ्य सीख ले। लिच्छवि नारी नरमेध की साधना करेगी।"

वत्सला के दुर्निवार बाणवर्षण से विद्ध होकर मागधों के मस्तक भूविलुण्ठित हो रहे थे। तब एक मागध बाण ने भी लक्ष्यवेध करने में साफल्यलाभ किया। वत्सला के वाम हस्त का वलयबन्ध विद्ध हो गया। उनके हस्त से स्खलित शिरासन रथाङ्ग में गिर पड़ा। और उनके मुख से निर्गत हुआ व्यथा का एक सूक्ष्म-सा सीत्कार। किन्तु फिर भी वे, खेटकहस्ता होकर, शत्रु के प्रहार को परास्त करती रहीं।

अनिरुद्ध ने, मुख परावृत्त करके, वत्सला की ओर देखा। वे एक पल में परिस्थिति से परिचित हो गए। रश्मिप्रग्रह के ईषत् प्रकर्ष से रथ पुनरेण संस्थित हो गया। मागध सैनिक, पुनरेण रथ का अतिक्रमण

करके, उत्तर दिशा की ओर निकल गये। और वे अश्व परावृत्त करके दक्षिणाभिमुख हुए तब तक अनिरुद्ध ने अपने पदतल पर पड़ा शरासन समुद्यत कर लिया।

अनिरुद्ध ने, वत्सला के पृष्ठ पर बंधे तूणीर से बाण निकाल कर, शरसन्धान किया तो शत्रुपक्ष की ओर से आते हुए शर-समूह को देख कर वत्सला विकल वाणी में बोलीं : "दुर्गपाल ! अपने प्राणों का परित्राण कीजिए।"

अनिरुद्ध सहसा रथ के गर्भ में उपासीन हो गए। फिर वे, वत्सला का हस्त प्रकंपित करके, उनको भी उपाविष्ट करते हुए हँस कर कहने लगे : "मुझे किन्तु मागध प्राणों का हरण करना है, राजकुमारि !"

शत्रु का वार विफल होते ही अनिरुद्ध ने अपना बाण-विमोचन-वैचित्र्य विकसित किया। वत्सला अपने तूणीर में से बाण निकाल कर उनको दे रही थीं। और उनके प्रत्येक शरसन्धान के साथ, मागध मस्तक कबन्ध से कटकर भूतल पर शायित हो रहे थे। देखते-देखते, अनिरुद्ध ने अवशिष्ट मागध अश्वारोहियों का विनाश कर दिया। महापथ अब शत्रुविहीन था। श्मशान-सा नीरव भी।

अनिरुद्ध अपने अधोवस्त्र का आंचल फाड़ कर वत्सला के व्रण पर बाँधने लगे तो वत्सला बोलीं : "उस वस्त्र का आवेष्टन नहीं, दुर्गपाल !"

अनिरुद्ध ने प्रश्न किया : "किन्तु अन्य वस्त्र अब कहाँ है, राजकुमारि !

"आवेष्टन भी है और औषधि भी। किन्तु उनका प्रयोग अभी प्रयोजनीय नहीं।"

"तब क्या आप व्रणविदीर्ण मणिबन्ध लेकर ही वैशाली लौटेंगी ?"

"वैशाली लौटने में अभी विलम्ब है। आप मेरे साथ आइए।"

वत्सला रथ से अवरोहण करके शत्रु के शवसमूह की ओर चल पड़ीं। अनिरुद्ध ने उनका अनुसरण किया। एक शव के समीप जाकर वत्सला रुकीं और अपने कटिबन्ध में आलम्बित असियष्टि अनिरुद्ध को देती हुई बोलीं : "कृपाण से इसका कवच काट डालिए, दुर्गपाल ! इसने कौशेय का कञ्चुक धारण किया है। इसी वस्त्र के आवेष्टन से मणिबन्ध

बाँधूँगी।"

अनिरुद्ध अवाक् रह गए। वत्सला से इस प्रकार की नृशंसता की आशा उन्हें नहीं थी। वे किंकर्त्तव्य-विमूढ़ खड़े रहे। वत्सला ने पूछा : "आप क्या मौन रहे हैं, दुर्गपाल ! कृपाण से करणीय कर्म कीजिए ना।"

अनिरुद्ध ने कहा : "राजकुमारि ! शत्रु की मृत देह की दुर्गति आप मुझसे क्यों करवा रही हैं ? मैंने, आजीवन, जीवित शत्रु से ही युद्ध किया है। मृत शत्रु के शव का स्पर्श कभी नहीं किया।"

"इस दस्युदल को अपना शत्रु कह कर आप इनकी मानवृद्धि कर रहे हैं।"

"सोच तो मैं भी यही रहा हूँ कि ये मागध सैनिक मेरी खोज में इस ओर आए तो कैसे ? इनको मेरे इस ओर आने का समाचार किसने दिया ? अभी कल ही तो मेरा निर्वासन हुआ था। और आज मध्याह्न के समय इतने मागध सैनिक, मेरी गतिविधि से विज्ञ होकर, अकस्मात् मेरे ऊपर आक्रमण करने आ गए।"

वत्सला ने अनिरुद्ध के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। अनिरुद्ध के हाथ से कृपाण लेकर उन्होंने मृत मागध का कवच काट डाला। फिर वे, उसके कक्षस्थ कोष की ओर संकेत करती हुई, बोलीं : "इस कोष का अन्वेषण कीजिए, दुर्गपाल !"

अनिरुद्ध ने, अवनत होकर, कोष में हस्तप्रसार कर दिया। दूसरे क्षण वे एक शासनपत्र अपने हाथ में लेकर अवलोकन कर रहे थे।

वत्सला ने पूछा : "किसका शासनपत्र है ?"

अनिरुद्ध ने उत्तर दिया : "वर्षकार ब्राह्मण की मुद्रा से अंकित है।"

वत्सला, तुरन्त ही, शासनपत्र को अपने हाथ में लेकर अवलोकन करने लगीं। अनिरुद्ध ने पूछा : "क्या लिखा है, राजकुमारि !"

वत्सला ने उत्तर दिया : "आपके नौकावरोहण का समय एवं स्थान। साथ ही इस भूभाग का विशद वर्णन। मागध को आदेश दिया गया है कि आपके प्राण लेकर आपके शव को धरा के गहन गर्भ में निगूढ़ कर दिया जाए।"

"मागध कौन है ?"

"पाटलिग्राम का दुर्गपाल ।"

अनिरुद्ध ने, अवसन्न होकर, वत्सला के वाक्य की पुनरावृत्ति की : "पाटलिग्राम का दुर्गपाल !!"

वत्सला बोलीं : "हाँ, पाटलिग्राम का मागध दुर्गपाल । जिस समय आपको रथारूढ़ करके वैशाली से निर्वासित किया जा रहा था, उसी समय मागध सैन्य पाटलिग्राम के दुर्ग-द्वय में प्रवेश कर रहा था ।"

"किन्तु वैशाली में सन्निपात-भेरी का शब्द तो मैंने नहीं सुना ।"

"शब्द होता तो आप सुनते । मागध आक्रमण का समाचार लेकर वैशाली की ओर आने वाला लिच्छवि सुभट मार्ग में ही मार डाला गया । भागीरथी के इस पार । वृज्जिसंघ की भूमि पर । अन्ततः, अर्धरात्रि के समय समाचार मिला तो दुर्गद्वय का पतन हो चुका था ।"

"और पाटलिग्राम का लिच्छवि सैन्य क्या हुआ ?"

"नौकारोहण द्वारा पलायन की स्पर्धा में कई शत लिच्छवि जाह्नवी की जलधार में निमग्न हो गए । कई शत लिच्छवि पाटलिग्राम के पश्चिमवर्ती विपिन में विकीर्ण हो गए । शत्रु से युद्ध करके एक भी लिच्छवि ने वीर-गति प्राप्त नहीं की ।"

अनिरुद्ध मौन हो गए । उनको अपने साथ लेकर, वत्सला ने पुनः, रथारोहण किया । तब औषधि-मञ्जूषा से आवेष्टन निकाल कर, अनिरुद्ध ने कहा :

"अपना हाथ मेरे हाथ में दीजिए, राजकुमारि !"

वत्सला अनिरुद्ध की ओर देखकर हँसने लगीं । फिर वे बोलीं : "वह दिन अभी दूर है, दुर्गपाल ! आपने अभी तक, राजगृह के दुर्ग पर, वृज्जि-संघ का विजयध्वज उत्तोलित नहीं किया ।"

अनिरुद्ध ने, व्रीड़ाभिभूत होकर, अपना शिर अवनत कर लिया । वत्सला ने कहा : "दुर्गपाल ! स्मरण कीजिए कि पाटलिग्राम में उस दिन मैंने आपको क्या वचन दिया था । वत्सला का पाणिग्रहण करने के पूर्व आपको वत्सला के प्रण को पूरा करना होगा ।"

अनिरुद्ध ने उत्तर नहीं दिया । वे मौनभाव से, रथाग्र पर उदासीन होकर, रथ चलाने लगे ।

वत्सला ने अपना मणिबन्ध आवेष्टित करते-करते पूछा : "क्या सोच रहे हैं, दुर्गपाल !"

अनिरुद्ध ने उत्तर दिया : "यही कि पाटलिग्राम के मागध दुर्ग का घर्षण करते समय मैंने क्या-क्या कल्पनाएँ की थीं। उस युद्ध में वीरगति-प्राप्त लिच्छवि सुभटों की आत्माएँ आज मुझे शाप दे रही हैं, राजकुमारि !"

"आपने क्या पाप किया है ?"

"मैंने, प्राण धारण करते हुए भी, लिच्छवि-गण को स्वधर्म-भ्रष्ट होने दिया। मैंने वैशाली में प्रतिदिन प्रवृद्ध पापाचार का विरोध नहीं किया। मैंने वृज्जिसंघ को पाप के गर्त में गिरकर गर्हित होने दिया।"

"किन्तु आप कर ही क्या सकते थे, दुर्गपाल ! वृज्जिसंघ के संस्थागार में समवेत समस्त वृज्जिवृद्धों ने जिस कौकृत्य-कलाप को प्रश्रय दिया उसका विरोध आप एकाकी किस प्रकार करते ?"

"मैं बहुत कुछ कर सकता था, राजकुमारि ! बहुत कुछ कर सकता था। मैं उस अधर्मरत अनार्य, रत्नकीर्ति, का वध कर सकता था। मैं उस पुश्चली पुलोमजा के प्राण ले सकता था।"

"आप और क्या-क्या वीरोचित कृत्य कर सकते थे ?"

वत्सला के स्वर में व्यङ्ग था। भर्त्सना भी। किन्तु अनिरुद्ध ने उनकी उपेक्षा कर दी। वे तिक्त स्वर में बोले : "मैं आपके समान लिच्छवि-परम्परा का परम उपासक नहीं हूँ, राजकुमारि ! किसी दिन भी नहीं था। वह परम्परा कभी की जराजीर्ण हो चुकी। उसकी रक्षा करते हुए वृज्जिसंघ की रक्षा सम्भव नहीं।"

वत्सला ने कहा : "जिस वृज्जिसंघ में से लिच्छवि-परम्परा लुप्त हो गई उसको वृज्जिसंघ कहेगा ही कौन ?"

"वृज्जिसंघ न रहे, वृज्जि महाजनपद का स्वातन्त्र्य तो रह जाएगा। एक समय इस महाजनपद में मिथिला का वंशानुगत राज्य था। काल के प्रवाह में, वह राजवंश इस महाजनपद की सुरक्षा करने के योग्य नहीं रहा। उस राजवंश का ध्वंस करके लिच्छवि-गण ने वैशाली में गणराज्य की स्थापना की। महाजनपद के स्वातन्त्र्य का त्राण हुआ। प्रजा के सुख-

सामृध्य मे अभिवृद्धि हुई। उस दिन मिथिला का वह विगत-सामर्थ्य राजवंश भी कह सकता था कि, वंशानुगत परम्परा का प्रत्याख्यान करके, लिच्छवि-गण वृज्जि महाजनपद का विध्वंस कर रहे हैं। किन्तु वह अभियोग क्या सत्य होता, राजकुमारि! अथवा एक असत्य लाञ्छन मात्र ?"

वत्सला का भ्रूयुगल, सहसा, कुञ्चित हो गया। मुखमुद्रा कठोर। तब वे कर्कश वाणी में बोलीं: "तो मैथिली माँ का पुत्र आज मिथिला के राजवंश का जीर्णोद्धार करने के लिए लालायित है ?"

अनिरुद्ध ने पूछा: "यदि लालायित हो भी जाऊँ तो अभद्र क्या है, राजकुमारि !"

"वैशाली के लिच्छवि क्या वेश्यापुत्र है जो अपनी दायाद के लिए द्वन्द्व नही करेंगे ?"

अनिरुद्ध हँसने लगे। फिर वे तिरस्कारपूर्ण स्वर में बोले: "वैशाली के लिच्छवि ! अथवा वारवनिता की पादाङ्गुलि पर अवशिष्ट आलक्तक का अवलेह करने वाले लम्पट ?"

वत्सला के मुख से एक क्रुद्ध फूत्कार निर्गत हुआ। किन्तु उन्होंने अनिरुद्ध के अनर्गल अभियोग का उत्तर नही दिया। एक क्षण उपरान्त, अनिरुद्ध अपने वाग्वाण से स्वय ही विद्ध होने लगे। उनकी इच्छा हुई कि वत्सला से क्षमा माँगें। किन्तु वत्सला के प्रति भी उनके मानस में विक्षोभ था। वे मौन रह कर रथ-संचालन करते रहे। वत्सला भी रथाङ्ग पर मौन उपासीन थी।

कुछ दूर जाकर, अनिरुद्ध ने रथ को रोक लिया। फिर वे, वत्सला की ओर देखे विना ही, बोले: "वृज्जि महाजनपद का सीमान्त अब अनतिदूर है, राजकुमारि ! आप अपना रथ संभालिए। मैं अब अपने गन्तव्य की ओर जाना चाहता हूँ।"

वत्सला ने कहा: "मेरा और आपका गन्तव्य तो एक ही है, दुर्गपाल ! मुझको त्याग कर आप किस ओर जाएँगे ?"

"आप तो वैशाली जाएँगी ना ?"

"हाँ। मिथिला के मार्ग से।"

"तब मैं आपके साथ किस प्रकार जा सकता हूँ ?"

"क्या बाधा है ?"

"मैं वृज्जि महाजनपद मे आजीवन निर्वासित हूँ।"

"एक लिच्छविपुत्र को वृज्जि महाजनपद से निर्वासित करने का अधिकार तो सभापति ब्रह्मा तथा देवेन्द्र शक्र को भी नहीं है, दुर्गपाल !"

"किन्तु राजा रत्नकीर्ति इस देवद्वय से भी अधिक शक्तिमान हैं, राजकुमारि !"

वत्सला ने उत्तर नहीं दिया। अनिरुद्ध रथ से अवरोहण करके बोले : "मुझे विदा कीजिए, राजकुमारि !"

वत्सला ने कहा : "आपको विदा करना होता तो मैं सारी रात रथारूढ़ रहकर इस निर्जन विपिन में क्यों आती ?"

"मेरे प्राणों की रक्षा करके आपने मुझ पर असीम अनुकम्पा की है। मैं चिरदिन तक आपका कृतज्ञ रहूँगा।"

"किन्तु मैं तो कृतज्ञता-उपार्जन करने के लिए यहाँ नहीं आई। मैं तो केवल ऋणशोध करने आई थी। उस दिन आपने, दो बार अपने प्राण संकट में डाल कर, मेरी प्राण-रक्षा की थी। आज मैं किंचित् उऋण हो गई।"

अनिरुद्ध ने कुछ नहीं कहा। वे, एक बार वत्सला की ओर दृष्टिपात करके, दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े।

वत्सला ने, रथ से अवरोहण करके, उनका अनुसरण किया। तब अनिरुद्ध ने, रुककर, उनकी ओर देखे बिना ही, उनसे पूछा : "आप इस ओर कहाँ जा रही हैं, राजकुमारि !"

वत्सला ने उत्तर दिया : "जहाँ मेरे दुर्गपाल जा रहे हैं।"

"किन्तु......

"आप ही वृज्जिभूमि का परित्याग करके चले जा रहे हैं तो मैं उस ओर प्रत्यावर्तन करके क्या करूँगी, दुर्गपाल ! आपके अतिरिक्त अब वहाँ मेरा कौन है ?"

अनिरुद्ध ने मुख परावृत्त करके वत्सला की ओर देखा। वत्सला के नेत्रोत्पलों पर अश्रु के नीहारकण निखर रहे थे।

तब, हठात् ही, अनिरुद्ध का आत्मसंयम भङ्ग हो गया। वत्सला को

अपने आलिङ्गन-पाश में आबद्ध करते हुए, वे आर्द्रकण्ठ से बोले : "राजकुमारि ! वत्सले !!"

वत्सला ने, अनिरुद्ध के वक्षस्थल में अपना मुख छुपाते हुए, कहा : "दुर्गपाल !!"

और वे दोनों, कुछ क्षण तक मूक रह कर, प्रेमाश्रु-मोचन करते रहे। वत्सला के अश्रुजल से अनिरुद्ध का वक्षस्थल भीग गया। अनिरुद्ध के अश्रुजल से वत्सला का सीमन्त।

तब अनिरुद्ध ने पूछा : "क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ, राजकुमारि !"

वत्सला ने उत्तर दिया : "नहीं, दुर्गपाल ! यह सत्य है।"

"स्वप्न होता तो श्रेयस्कर होता।"

"क्यों ?"

"सत्य मरणशील होता है, मिट जाता है।"

"और स्वप्न ?"

"स्वप्न की आयु अनन्त है।"

अष्टम अंक

पर्यङ्क पर उपासीन अनिरुद्ध ने, अपने अङ्क में न्यस्त-मस्तका देवी वत्सला के मसृण मूर्धज-जाल में अपनी अंगुलियाँ उलझाते हुए, उपालम्भ किया : "देवि ! तुम्हारी प्रतिज्ञा थी कि तुम, वैशाली के दक्षिण द्वार पर उपस्थान करके, राजगृह का धर्षण करके प्रत्यागमन करने वाले लिच्छवि विजेता के गले में बरमाल न्यस्त करोगी। किन्तु, हठात्, तुमने एक लांछित लिच्छवि से गांधर्व विवाह कर लिया।"

वामहस्त के प्रकोष्ठ पर परिवेष्टित पुष्पवलय से पति का कपोल-तट स्पर्श करती हुई देवी वत्सला ने उत्तर दिया : "आर्यपुत्र ! गन्तव्य की ओर गमन करते-करते, अनेक वार पथ-परिवर्तन करना पड़ता है। राजगृह का राजन्य आज वृज्जि महाजनपद की पावन पृथिवी को पद-दलित करने के लिए प्रयत्नवान है। उसको परास्त कर सकने वाले एकमात्र पराक्रमी पुरुष को पलायन से पराङ्मुख करने का एक ही पथ रह गया था। नारी के प्रणय का प्रत्यक्ष बन्धन।"

"प्रत्यक्ष बन्धन क्यों ?"

"इसलिए कि अप्रत्यक्ष प्रणय के प्रति आप सशङ्क होने लगे थे।"

"नहीं, देवि ! मुझको पूर्ण विश्वास था कि किसी-न-किसी दिन मैं तुम्हारे प्रणय का प्रसाद अवश्य पाऊँगा।"

"आपका वह विश्वास क्षीण होने लगा था, आर्यपुत्र ! अन्यथा आप अंगुत्तराप के उस जनशून्य कान्तार में मुझको निरालम्ब छोड़ कर चले जाने के लिए तत्पर नहीं होते।"

"वह तो मेरा मति-विभ्रम था। क्षणभंगुर संशयोत्पत्ति।"

"उसी संशय ने आपका पुरुषार्थ क्षीण कर दिया था।"

"क्यों ?"

"पुरुषार्थ प्रणय-सापेक्ष होता है। प्रणय की प्रेरणा पाए बिना पुरुष निवृत्ति की ओर उन्मुख होता है। प्रवृत्ति की ओर नहीं।"

देवी वत्सला के कथन में सत्य का समावेश था। अनिरुद्ध मौन हो गए। तब वत्सला, अपने पुष्पवलय पर दृष्टि निविष्ट करके, हँसने लगीं। अनिरुद्ध ने पूछा : "देवि ! तुम हँसीं क्यों ?"

वत्सला ने पुष्पवलय की ओर संकेत करके उत्तर दिया : "आपके मण्डन-माधुर्य की मितव्ययता देख कर।"

"मातुल द्वारा प्रदत्त इस प्रासाद के उद्यान में कतिपय कुसुमकोरकों के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला।"

"मिथिला के मालाकार क्या मर गए ?"

"उनको देने के लिए मेरे पास द्रव्य नहीं था।"

"मातामही से द्रव्य-याचना क्यों नहीं की ?"

"याचना को मैं यथोचित नहीं मानता। मैं लिच्छवि हूँ, देवि !"

"नवोढा वधू के लिए भी याचना नहीं कर सकते ?"

अनिरुद्ध मौन रहे। वत्सला, गात्रोत्थान करके उनके सन्मुख उपासीन होती हुई, बोलीं : "और आप कह रहे थे कि आप लिच्छवि-परम्परा के परम उपासक नहीं है !"

अनिरुद्ध ने कहा : "लिच्छवि-परम्परा अब प्राणहीन है, देवि ! उसकी उपासना करके कोई उपलब्धि सम्भव नहीं।"

"यह आपकी भूल है, आर्यपुत्र ! जब तक आप प्राण धारण करते है, तब तक लिच्छवि-परम्परा भी प्राणवान है। जब तक आप विद्यमान हैं, तब तक लिच्छवि-परम्परा भी विद्यमान है। वृज्जिसंघ की विजय भी।"

"मैं एक सम्बलहीन लिच्छवि हूँ, देवि ! मुझ अकिञ्चन के द्वारा वृज्जिसघ का कौनसा कल्याण सम्भव है ?"

"यह आपके द्वारा विचारणीय विषय है। आप करना क्या चाहते है, आर्यपुत्र !"

"तुम्हारी प्रतिज्ञा की पूर्ति।"

"मेरी प्रतिज्ञा तो पूर्ण हो चुकी। मैंने जिसको पराक्रमी पुरुष माना

उसके गले में वरमाल न्यस्त कर दी। अब वह पुरुष अपने पराक्रम का परिचय दे।"

अनिरुद्ध, चिन्तित-से होकर, मौन हो गए। वत्सला ने, एक क्षण उनके मुख का भाव निहार कर, पूछा : "आर्यपुत्र ! आप किंकर्त्तव्य-विमूढ़ क्यों हो गए ?"

अनिरुद्ध ने उत्तर दिया : "मैं किंकर्त्तव्य-विमूढ़ नहीं हूँ, देवि ! किन्तु मैं यह सोचता हूँ कि मैं जिसको कर्त्तव्य मानता हूँ उसको तुम, कदाचित्, कलुष कर्म कहोगी।"

"आपकी कर्त्तव्य-धारणा क्या है ?"

"विदेह जनपद में वैशाली के विरुद्ध विद्रोह।"

"तदनन्तर ?"

"मिथिला में शक्ति-संचय करके वैशाली की विजय।"

"यह तो संघभेद का मार्ग है, आर्यपुत्र ! यही तो वर्षकार ब्राह्मण द्वारा भी अभीप्सित है। इस प्रकार तो राजगृह के राजन्य की ही उद्देश्य-पूर्ति होगा।"

"एक बार संघभेद किए विना वृज्जिसंघ के परित्राण का कोई मार्ग नहीं रहा।"

"किन्तु इस मार्ग पर पदार्पण करने का परामर्श मैं आपको नहीं दूँगी। यह तो मरण का मार्ग है।"

"हमारे सम्मुख एक उदाहरण भी है, देवि ! कुशीनगर के संस्थागार में जिस समय कदाचार होने लगा तब पावा के मल्लगण ने अपने स्वाधीन संस्थागार की स्थापना की थी।"

"उसके फलस्वरूप मल्ल गणराज्य की दुर्दशा भी आप देख रहे हैं। अब वे मल्लगण कहाँ हैं जिनका एक तरुण योद्धा, एकाकी ही, असंख्य लिच्छवि योद्धाओं की अवहेलना करके, अपनी प्रिया को वैशाली की अभिषेक-पुष्करिणी में स्नान करा ले गया। मल्ल गणराज्य आज सामर्थ्य-हीन है। कोसल की कृपा का दीन-हीन भिक्षुक।"

"पावा के मल्लगण यदि, कुशीनगर पर आक्रमण करके, पुनरेण समवेत गणराज्य की स्थापना करते तो मल्लगण अपनी पुरातन प्रतिष्ठा

का पुनरोद्धार कर सकते थे।"

"यही क्या निश्चित था कि विजय पावा के मल्लगण की ही होती? उनकी पराजय भी सम्भव थी।"

"कुशीनगर के कुकर्मरत मल्लगण पावा के मल्लगण को परास्त नहीं कर सकते थे।"

"कर सकते थे, आर्यपुत्र! कुशीनगर में कोसल के सैन्य का स्वागत करके।"

"कोसल क्यों उनकी सहायता करने जाता?"

"कोसल कुशीनगर की सहायता के लिए नहीं, अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिये ही कुशीनगर जाता। कुशीनगर के दुर्ग में प्रविष्ट कोसल की सेना को वहाँ से निकालता कौन?"

"किन्तु वृज्जिसंघ के लिए यह उपमा सर्वथा समुचित नहीं, देवि! वैशाली में तो किसी परराज्य की वाहिनी प्रवेश नहीं कर सकती।"

"क्यों नहीं, आर्यपुत्र! मगध की वाहिनी अब वैशाली से बहुत दूर नहीं रही। वह, भागीरथी के उस पार, पाटलिग्राम में प्रस्तुत है।"

"तो क्या वैशाली का लिच्छविवंश इतना पतित हो गया कि विदेह के विरुद्ध मगध की सहायता ग्रहण करेगा?"

"समस्त लिच्छवि-वंश पतित न हुआ हो तो भी, वैशाली में वह लिच्छवि-कुल-कलङ्क रत्नकीर्ति तो विद्यमान है। उसको मगध का आवाहन करने से कौन रोक लेगा? विदेह की सेना वैशाली के दुर्ग तक पहुँचेगी उसके पूर्व ही दुर्ग का दक्षिण द्वार मागध सेना के लिए अपावृत हो जाएगा।"

"वैशाली में चेष्टा होनी चाहिए कि रत्नकीर्ति वैसा न कर पाए।"

"यदि वैसी चेष्टा सफल हो सके तो विदेहभूमि में विद्रोह करने की आवश्यकता नहीं रह जाएगी।"

वत्सला का तर्क अकाट्य था। किन्तु अनिरुद्ध की शंका का समाधान नहीं हुआ। वे बोले: "केवल वैशाली के गूढ़-संगठन पर निर्भर नहीं रहा जा सकता, देवि! एक बार वह प्रयत्न करके हम असफल रह चुके हैं।"

"आपके दुराग्रह के कारण ।"

"तो क्या मैं पुलोमजा के पापाचार को प्रश्रय देता ?"

"पापाचार क्यों ? आप उसका पाणिग्रहण कर सकते थे ।"

अनिरुद्ध हँसने लगे । यह वही पुराना प्रस्ताव था जिसको लेकर वे एक बार वत्सला के साथ विवाद कर चुके थे । विवाद से दूर रहने की इच्छा करते हुए वे बोले : "देवि ! यदि मैं पुलोमजा का पाणिग्रहण कर लेता तो तुम किस के गले में वरमाल डालतीं ?"

वत्सला ने कहा : "मैं इस जन्म में कुमारी ही रह जाती । मैं तपस्या करती कि आगामी जन्म में आपका वरण करूँ ।"

"विवशता तो तपस्या नहीं होती, देवि ।"

"विवशता ही सही, आर्यपुत्र ! मेरी वैशाली तो बच जाती । मेरा वृज्जिसंघ तो ध्वंस की ओर धावमान नहीं होता ।"

वत्सला के नयन आर्द्र हो गए । वाणी विह्वल । मानो वैशाली की दुर्दशा पर ध्यान आविष्ट होते ही उनका हृदय विदीर्ण हो जाएगा ।

अनिरुद्ध का अन्तर कहने लगा कि उनके समक्ष उपासीन नारी के रूप में वस्तुतः, वृज्जिसंघ की पूज्य प्रवेणी-पुस्तक के प्रणेताओं की अमूर्त आत्मा मूर्त होकर अवतरित हुई है। प्रवेणी-पुस्तक में समष्टि की कल्याणकामना के लिए व्यष्टि के सुख का सर्वोत्सर्ग विहित था । प्रवेणी-पुस्तक का वह विधान, एक क्षण भी विस्मृत न कर पाने के कारण ही, वत्सला सत्यशः लिच्छविदुहिता थी । अन्यथा लिच्छवि-कन्या-सुलभ कमनीय कलेवर तो पुलोमजा ने भी पाया था । पुलोमजा की शिराओं में भी लिच्छवि-रक्त प्रवाहित था। पुलोमजा की देह भी वृज्जिभूमि के अन्नजल से ही पुष्ट हुई थी ।

अनिरुद्ध ने, अकस्मात् ही, लिच्छवि-परम्परा का गुह्य तत्त्व हृदयङ्गम कर लिया है । वह परम्परा विविध विधिनिषेध की विराट वर्णमाला नहीं थी । संस्थागार के प्रस्तर एवं पाषाण भी नहीं । लिच्छवि परिषद में परामर्श करते हुए वृज्जिवृद्धों का सजग समुदाय भी नहीं । पूज्य प्रवेणी-पुस्तक द्वारा प्रदत्त मूलमन्त्र विस्मृत हो जाने पर न समष्टि की सुरक्षा सम्भव थी, न व्यष्टि की ।

लिच्छवि-वंश की लक्ष्मी को पाकर अनिरुद्ध आज धन्य हो गए थे। आज तक वे वत्सला को एक अनुपम गुण-सम्पदा-सम्पन्न रमणी-रत्न मान कर ही उनका प्रणय-प्रसाद पाने की स्पृहा करते आए थे। आज, अकस्मात्, वत्सला उनके लिए एक ललाम ललना मात्र नहीं रही। आज उन्होंने लिच्छवि-वंश की कुलदेवी का कलुषविहीन दिव्यवपु धारण कर लिया। अनिरुद्ध का अन्तर आग्रह करने लगा कि देवी के चरणों में अपना मस्तक न्यस्त कर दें।

और वत्सला के विविध रूप, सहसा, लिच्छवि-वंश की कुलदेवी के ही विविध रूप बन गए। वैशाली के राजप्रासाद में वृज्जिसंघ की राजकुमारी का रूप धारण करके वास करने वाली कुलदेवी। पाटलिग्राम के मागध दुर्ग में कुशीलव-कन्या का कदर्य वेश धारण करके नर्तन करने वाली मायामयी देवी। अंगुत्तराय के वनप्रान्त में वारवाण और शिरस्त्राण से सज्जित होकर, मागध मुण्डों को भूविलुण्ठित करने वाली रौद्ररूपधारिणी देवी। और उस क्षण, उनके प्रणय-पाश में आबद्ध, शुभ्रवसना, मुक्त-कुन्तला, चिन्तितवदना नवोढा का नव्यरूप विकसित करने वाली हृदया-ह्लादिनी देवी।

अनिरुद्ध के रोम-रोम में हर्षोन्मेष होने लगा। अब वे दुर्दैव के प्रबल प्रपात से पथभ्रष्ट पुरुषार्थ-प्रवहण के आपन्न आरोही नहीं थे। अब वे ध्यानरत धीर अध्वग थे। संशयविहीन। उत्कट उत्साह से उत्थान करने के लिए उद्यत। अब उनकी गणना में जय-पराजय का प्रसंग गौण था। प्रधान प्रसंग था प्रबल पराक्रम। पञ्चत्व-प्राप्ति पर्यन्त पूर्ण पुरुषार्थ।

कक्ष के कपाट पर किसी ने कराघात किया। अनिरुद्ध एवं वत्सला, एक साथ पर्यङ्क से अवरोहण करके, द्वार अपावृत करने के लिए अग्रसर हुए। उन दोनों की मुदित मुखमुद्रा देखकर प्रतीत होता था कि जिनकी प्रतीक्षा वे दोनों कर रहे थे वे आ पहुँचे हैं।

कपाट खुलते ही, बहिर्प्रान्त के परिपुष्ट अन्धकार में भी आयुष्मान उदय का गौरवर्ण मुख आभासित हो उठा। उनके सद्यधौत, स्वच्छ काषायवस्त्र चारों ओर एक किरणजाल सा विकीर्ण कर रहे थे।

श्रमण ने दम्पति का बद्धाञ्जलि अभिवादन ग्रहण करके कक्ष में प्रवेश

किया। वत्सला ने पर्यङ्क का तल्प अपसारित करके उस पर एक आस्त-रण बिछा दिया। तब आयुष्मान उदय पर्यङ्क पर आरूढ़ हो गए। पति एवं पत्नी ने भूमितल पर ही आसन ग्रहण किए। श्रमण के आयत अक्षि-युगल से, उन दोनों के लिए, मैत्री की सुधाधार झर रही थी।

अनिरुद्ध ने कहा: "भन्ते! हम दोनों आज प्रत्यूष के समय से ही आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। आपके आगमन में बहुत विलम्ब हुआ।"

आयुष्मान उदय बोले: "सौम्य! मुझे तुम्हारा सन्देश ही विलम्ब से मिला। तुम्हारे द्वारा प्रेषित पुरुष जब वैशाली पहुँचा तो मैं वहाँ विद्य-मान नहीं था। मैं पाटलिग्राम के मागध सन्निवेश का निरीक्षण करने चला गया था।"

वत्सला ने कहा: "भन्ते! वैशाली के समाचार सुनाइए। मुझको वैशाली से विलग हुए एक पक्ष बीत गया।"

श्रमण मुस्कराने लगे। फिर वे बोले: "भगिनि! वे दिन अब नहीं रहे जब वैशाली में समाचार समुत्पन्न हुआ करते। अब तो अन्यत्र समु-त्पन्न समाचार का श्रवण करके ही वैशाली सन्तोष कर लेती है।"

"क्या पाटलिग्राम जाने के लिए लिच्छवि सैन्य समाहूत नहीं हुआ?"

"नहीं, सैन्य समाहूत नहीं हुआ। समाहूत हुआ केवल परिषद का वृज्जिवृद्ध-वृन्द। राजा रत्नकीर्ति ने मगध के प्रति रोष-प्रकाश का मिथ्या-चार करके कह दिया कि मगध महाबलवान है और वृज्जिसंघ अत्यन्त दुर्बल; बल का संचय किए बिना मगध के साथ विग्रह करना बुद्धिमानी नहीं।"

अनिरुद्ध के मुख से अनायास ही निकल गया: "कापुरुष!!"

वत्सला ने व्यग्रभाव से पूछा: "भन्ते! क्या बल का संचय किया जा रहा है?"

आयुष्मान उदय ने उत्तर दिया: "रस और संस्कार के संचय से किसी को अवकाश मिले तो बलसंचय की चिन्ता करे।"

"तो परिषद में उस प्रलाप का क्या प्रयोजन था?"

"प्रलाप का प्रयोजन प्रलाप ही होता है, भगिनि! कोई-कोई मोघ-मनुष्य मुख से उच्चारित शब्दजाल को ही क्रियान्वित कर्म मान लेता है।

उसके कर्म का श्रोत सर्वथा शुष्क हो जाता है। अवशिष्ट रह जाता है कण्ठ से निर्गत विविध ध्वनियों का धारासम्पात। वह मनुष्य ध्वंस की ओर धावमान होता है। यदि उसके वाग्जाल से विजड़ित होकर कोई राष्ट्र भी कर्त्तव्यच्युत हो जाए तो उस राष्ट्र का दुर्दिन भी दूर नहीं रह जाता।

"आज शान्ति का स्तवनपाठ करते-करते प्रत्येक लिच्छवि-वृद्ध का वक्त्र विजृम्भित है। किन्तु उनकी बुद्धि में व्यवसाय नहीं रहा। उनकी बुद्धि विलास से विगलित है। निष्ठा का स्थान निरे नैपुण्य ने ले लिया है। उनके हाथ शान्ति की सुरक्षा के लिए शस्त्र धारण नहीं कर सकते। उनके हाथों में अब मद्यभाण्ड तथा पानपात्र का भारवहन करने का ही सामर्थ्य रह गया है। अतएव वे सबके-सब, रत्नकीर्ति के कण्ठ से निर्गत निःसार निनाद को ही पराक्रम की पराकाष्ठा मान कर, संस्थागार से सीधे गणिकालय की ओर चले जाते हैं। संस्थागार के बाहर उनको स्व-देश अथवा स्वधर्म की चिन्ता नहीं रहती। उनको, किसी ओर से भी, कर्मचक्र-प्रवर्तन की प्रेरणा नहीं मिलती। मानो वे मान बैठे हों कि मगध की अपार सेना के शस्त्रसम्पात को भी रत्नकीर्ति अपने शब्दजाल से शिथिलित कर देगा। यदि लिच्छवि मानस, शीघ्र ही इस विकार से विमुक्त नहीं हुआ तो वृज्जिसंघ का विध्वंस दुर्निवार्य है।"

वत्सला, अवनत-मुख होकर, उपासीन रहीं। मौन। उनका अन्तर कह रहा था कि आयुष्मान उदय के विश्लेषण में अणुमात्र भी अतिशयोक्ति नहीं है। किन्तु प्रश्न तो यह था कि लिच्छवि-गण का उस लाञ्छना से त्राण किस प्रकार किया जाए। क्या श्रमण के पास इस प्रश्न का कोई उत्तर था? वे यह ही पूछना चाहती थीं कि अनिरुद्ध ने आयुष्मान उदय से कहा: "भन्ते! मैंने अनेक वार राजा रत्नकीर्ति के विषय में विचार किया है। किन्तु अभी तक मैं यह नहीं समझ सका कि वृज्जि महाजनपद की पुण्यभूमि पर, लिच्छवि-गण की वैशाली में, ऐसे नराधम का जन्म किस प्रकार हुआ?"

आयुष्मान उदय ने उत्तर दिया: "सौम्य! रत्नकीर्ति का एक इति-हास है जो तुम नहीं जानते। मैं भी नहीं जानता था। किन्तु वैशाली में आकर मेरे मन में शंका होने लगी कि सम्भवतः वह लिच्छवि-वंश की

सन्तान ही नहीं है। शंका का समाधान करने के लिए मैंने उसके विगत-जीवन का इतिवृत्त संगृहीत किया। मेरी शंका सत्य निकली।"

अनिरुद्ध अवाक् रह गए। वत्सला भी नेत्र विस्फारित करके आयुष्मान उदय का मुख देखने लगी। श्रमण कहने लगे: "मेरे कथन का यह आशय नहीं कि रत्नकीर्ति का जन्म लिच्छवि माँ के पेट से नहीं हुआ। उसका गर्भाधान करने वाले पिता भी लिच्छविपुत्र ही थे। किन्तु रज एवं वीर्य के संघात से तो केवल मनुष्य का शरीर ही सृष्ट होता है। मनुष्य के संस्कार नहीं। रत्नकीर्ति के संस्कार लेशमात्र भी लिच्छवि-संस्कार-संगत नहीं।"

वत्सला ने पूछा: "भन्ते! लिच्छवि-वंश में जन्म लेकर भी राजा रत्नकीर्ति अलिच्छवि किस प्रकार हो गए?"

आयुष्मान उदय ने उत्तर दिया: "आर्य पद्मकीर्ति के म्लेच्छाचार की कहानी तुमने सुनी है, भगिनि! वे वैशाली का उपहास करते थे। उनका विश्वास था कि विदेश में शिक्षित हुए बिना कोई लिच्छवि शिष्ट नहीं हो सकता। अतएव आर्य पद्मकीर्ति ने अपने एकमात्र पुत्र को शिक्षा-ग्रहण के निमित्त तक्षशिला प्रेषित किया था। वहाँ पर जाकर रत्नकीर्ति अर्थशास्त्र के अप्रतिम आचार्य, विरूपाक्ष, के शिष्य बने। उस समय उनके सहपाठी थे मगध के वर्तमान सम्राट, कुणीक अजातशत्रु, तथा अवन्ति के वर्तमान सन्धि-विग्रह-महामात्य, प्रवरसेन। किन्तु अध्यापन अभी अवशिष्ट ही था कि पारसीक असुरसाम्राज्य की म्लेच्छवाहिनी ने गान्धार के प्राचीन गणराज्य को ध्वस्त कर दिया। शिष्यत्रय, आचार्य के साथ तक्षशिला से पलायन करके, मद्रदेश की महानगरी, शाकल, में चला आया। आचार्य विरूपाक्ष का हृदय क्रन्दन कर रहा था कि आर्यावर्त में प्रविष्ट पारसीक दस्युदल का दमन होना चाहिए। किन्तु परस्पर विभेद से विकल होने के कारण उत्तरापथ के राष्ट्रों में किसी ने भी आचार्य का सिंहनाद नहीं सुना। तब आचार्य ने अपने तीनों शिष्यों को आदेश दिया कि वे, पृथक्-पृथक्, पारसीक देश में जाकर पारसीक शक्ति संचय का रहस्य हृदयङ्गम करें।

"अजातशत्रु, रत्नकीर्ति तथा प्रवरसेन, प्रायः एक वर्ष तक पारसीक

साम्राज्य के विभिन्न प्रान्तो का पर्यटन करते रहे । फिर उन्होंने पारसीक-पुरी मे भी किंचित् काल यापन किया । अन्तत, जब वे तीनो शाकल में प्रत्यागत हुए, तब आचार्य ने उनसे, पृथक्-पृथक्, पारसीक शक्तिसंचय का रहस्य पूछा ।

"अजातशत्रु ने कहा कि पारसीक शक्ति का रहस्य उनके सर्वकालीन सैन्यसंग्रह तथा सार्वभौम शासनतन्त्र मे निगूढ है । पारसीक सम्राट्, आर्यावर्त के अधीश्वरो के समान, अपने राष्ट्र की रक्षा करने अथवा चक्रवर्ती-पद पाने के लिए, समय-समय पर सैन्यसंग्रह नही करते । वे, अपने प्रत्येक प्रत्यन्त पर विद्यमान परराष्ट्रो को पराधीन बनाने के लिए, एक विराट वाहिनी प्रतिपल प्रस्तुत रखते है । पारसीक सम्राट, पराजित राष्ट्र को अपना करद मात्र बना कर, उस राष्ट्र का शासनतन्त्र, आचार-परम्परा अथवा स्वधर्म अक्षुण्ण नही रहने देते । पराजित देश मे अपना उपरिक तथा सैन्य- सन्निवेश स्थापित करके वे उस देश की शासन-प्रणाली, आचार-परम्परा तथा स्वधर्म का आमूल उच्छेद करते है । अत , आर्यावर्त पर आक्रान्त पारसीको का पथ तभी अवरुद्ध हो सकता है जबकि आर्यावर्त मे भी उनके सदृश सैन्य-संग्रह तथा सार्वभौम शासनतन्त्र का उदय हो।

"रत्नकीर्ति ने पारसीक शक्ति का रहस्य अन्य प्रकार से हृदयङ्गम किया था । उसने कहा कि अन्यान्य राष्ट्रों की अपेक्षा सबल होने के कारण पारसीक साम्राज्य परराष्ट्र-विजय नही करता । पारसीक शासकवर्ग की जीवन-प्रणाली पर प्रलुब्ध होकर, परराष्ट्र ही स्वेच्छा से, पारसीक सम्राट के प्रति आत्मसमर्पण कर देते है । पारसीक जीवन-प्रणाली मे रस एव संस्कार का प्रबल समुच्चय विद्यमान है । उसके विपरीत, आर्यावर्त के शासक-वर्ग की पुराण-परम्परा रस एव संस्कार को वर्जित एव त्याज्य मानती है । किन्तु संसार का कोई भी शासक-वर्ग रस एव संस्कार के प्रलोभन का संवरण नही कर सकता । फलत. आर्यावर्त के प्रत्येक राष्ट्र का शासकवर्ग पारसीक साम्राज्य का स्वागत करता है जिससे कि पारसीक शासक-वर्ग द्वारा उपभुक्त रस एव संस्कार उसके अपने जीवन में भी उपलब्ध हो सके । अतएव पारसीक सेना का पथ अवरुद्ध करने का एक ही पथ है । आर्यावर्त का प्रत्येक शासक-वर्ग अपने-अपने जीवन मे रस एव

संस्कार का संचय करे।

"प्रवरसेन ने, पारसीक भूमि में कालयापन करके भी, पारसीक शक्ति-संचय की ओर दृष्टिपात नहीं किया। पारसीक साम्राज्य में पदार्पण करते ही उसकी दृष्टि वहाँ के म्लेच्छाचार पर निविष्ट हो गई। और वह उस आततायी-तन्त्र का तीव्र विरोध करने के लिए व्यग्र हो उठा। उसने शाकल में आकर आचार्य से निवेदन किया कि आर्यावर्त के विविध राष्ट्रों को, स्वेच्छा से समवेत होकर, पारसीक आक्रमण को पराभूत करना चाहिए। समवेत होने के लिए यह आवश्यक नहीं कि समस्त आर्यावर्त में एक शासनतन्त्र की स्थापना हो अथवा आर्यावर्त के राष्ट्र अपनी-अपनी आर्य-परम्परा की अवहेलना करें। पारसीक सेना को पराभूत करने के लिए इतना ही पर्याप्त है कि आर्यावर्त के राष्ट्र, परस्पर सन्धि स्थापित करके, एक मित्रमण्डल का गठन करें। तब आर्यावर्त की सम्भूत शक्ति पारसीक साम्राज्य को आर्यावर्त से अपदस्थ करने में ही नहीं, अपितु सर्वथा ध्वस्त करने में भी समर्थ हो जाएगी।

"अजातशत्रु ने अपने आर्य-परम्परा-परायण पिता के प्राण लेकर, मगध में सर्वकालीन सैन्यसंग्रह का सूत्रपात्र किया है। उसने अङ्ग महाजनपद के प्राचीन राजवंश तथा आचार-प्रणाली का आमूल उच्छेद कर दिया। भर्ग जनपद का स्वधर्म भी उसके द्वारा उच्छिन्न होने लगा है। मगध की अपनी आर्यपरम्परा भी उस आततायी के कारण मरणोन्मुख है।

"प्रवरसेन के परामर्श से अवन्तिराज ने उत्तरापथ के गणराज्यों को एक सन्धि के सूत्र में सन्निविष्ट कर लिया है। मध्य-मण्डल में भी अवन्ति का अध्यवसाय सफल होने लगा है। प्राची में मल्लगण अब अवन्ति के मित्रमण्डल में समाविष्ट होने वाले हैं। केवल मगधराज तथा वैशाली के लिच्छवि-गण ही अवन्ति के आमन्त्रण की अवगणना कर रहे हैं।

"और रत्नकीर्ति का कार्यकलाप तो तुम अपनी आँखों से देख ही चुके।"

आयुष्मान उदय ने अपना कथन समाप्त किया। अनिरुद्ध एवं वत्सल दत्तचित्त होकर उनका प्रत्येक शब्द श्रवण कर रहे थे। श्रमण ने एक विलक्षण विश्लेषण प्रस्तुत किया था। आर्यावर्त में एवं आर्यावर्त के परे

चलने वाले सन्धि-विग्रह-चक्र का दिग्दर्शन था वह। अनिरुद्ध एवं वत्सला ने, जीवन में प्रथम वार, संसारव्यापी संघर्ष का सिंहावलोकन किया।

तब अनिरुद्ध ने प्रश्न पूछा : "भन्ते ! क्या कारण है कि अजातशत्रु तथा रत्नकीर्ति अपने-अपने प्रयास में सफल हो रहे हैं और प्रवरसेन केवल अवन्ति के अतुलनीय वैभव का ही क्षय कर रहे हैं ?"

आयुष्मान उदय ने उत्तर दिया : "अजातशत्रु की सफलता का रहस्य है अजातशत्रु द्वारा प्रत्येक राष्ट्र में अपने कृत्यपक्ष का संग्रह। अजातशत्रु जिस राष्ट्र को जीतना चाहता है उस राष्ट्र को उसका कृत्यपक्ष पहिले से ही जर्जर कर देता है। अजातशत्रु जिस राष्ट्र को उदासीन रखना चाहता है उस राष्ट्र को उसका कृत्यपक्ष प्रतिवेशी राष्ट्र से विग्रह-रत कर देता है। अजातशत्रु जिस राष्ट्र को मित्र बनाना चाहता है उस राष्ट्र को उसका कृत्यपक्ष मगध के प्रति मुग्ध कर लेता है। इसलिए अजातशत्रु जब भी साम, दान, दण्ड, भेद का प्रयोग करता है, तभी वह सफल हो जाता है। अभी, उस दिन, अजातशत्रु ने वृज्जिसंघ को अपना मित्र एवं वत्स को उदासीन बना कर भर्ग जनपद पर अधिकार कर लिया। अब वह, वर्षकार ब्राह्मण द्वारा वैशाली में संगृहीत कृत्यपक्ष की सहायता से, मित्रघात के लिए कटिबद्ध है।

"रत्नकीर्ति का पथ है प्रत्येक मनुष्य में विद्यमान पशुत्व का प्रोत्साहन। उस पथ का प्रदर्शक एवं पथिक, दोनों ही, विनाश को प्राप्त होते हैं। किन्तु कुछ समय के लिए, उन दोनों को ऐसा भ्रम होता है कि वे किसी गन्तव्य की ओर गमन कर रहे हैं। रत्नकीर्ति की सफलता ही उसकी अवश्यम्भावी असफलता है। अपने राष्ट्र को कापुरुषता का पाठ पढ़ाने वाला राजा अधिक दिन तक राज्य नहीं कर सकता।

"प्रवरसेन अपने विश्वास पर दृढ़ है। किन्तु उस विश्वास को आर्यावर्त के किसी अन्य शासकवर्ग तक पहुँचाने का प्रयास उसने नहीं किया। आज अवन्ति के मित्रमण्डल में, अवन्ति के अतिरिक्त किसी अन्य राष्ट्र की दृष्टि उत्तरापथ पर आविष्ट नहीं। अवन्ति का प्रत्येक मित्रराष्ट्र यह मानता है कि पारसीक आक्रमण को विफल करना एकमात्र अवन्ति का ही दायित्व है। अतएव अवन्ति की सबलता से क्षुद्र लाभ उठाने के

प्रलोभन से प्रेरित होकर ही ये राष्ट्र अवन्ति के साथ मैत्री का आडम्बर रचते हैं। कोई भी राष्ट्र अपने क्षुद्रातिक्षुद्र स्वार्थ का परित्याग करने के लिए प्रस्तुत नहीं। आर्यावर्त का स्वार्थ कोई नहीं देख पाता। अपने मित्र-राष्ट्रों के मध्य विद्यमान क्षुद्र द्वन्द्व दूर करने में ही अवन्ति का समस्त समय एवं सम्बल अपव्ययित होता रहता है। राष्ट्र-राष्ट्र को धनदान द्वारा मित्र बनाने के दुराग्रह के अतिरिक्त मित्र-संग्रह का अन्य मार्ग ही अवन्ति को ज्ञात नहीं। पारसीक आक्रमण के विरुद्ध जिस मित्रमण्डल का गठन अवन्ति द्वारा अभीप्सित है वह विश्वास की एकरसता सम्पादित किए विना सम्भव नहीं। किन्तु विश्वास नाम के तत्त्व से अवन्ति के शासकवर्ग का परिचय ही नहीं। मैत्रीसंग्रह करते समय, अवन्ति प्रत्येक शासकवर्ग में एक ही गुणधर्म की गवेषणा करता है : वह शासक-वर्ग सम्यक्-रूपेण सत्तारूढ़ है अथवा नहीं। उस शासकवर्ग के विश्वास का सन्धान करना अवन्ति के लिए एक गौण प्रसंग है। प्रवरसेन स्वयं ही वैशाली में आकर रत्नकीर्ति से मैत्री की याचना करने वाले हैं। प्रवरसेन ने एक बार भी यह नहीं सोचा कि रत्नकीर्ति अवन्ति से घृणा करता है और वह घृणा जब तक रत्नकीर्ति के हृदय में विद्यमान है तब तक रत्न-कीर्ति की मैत्री, यदि मिल भी जाए तो भी, सर्वथा अर्थहीन है। रत्न-कीर्ति प्रवरसेन को उसका अपमान करके लौटाएगा......

वत्सला, सहसा, उत्कण्ठित होने लगी। मगध के विरुद्ध अवन्ति और वृज्जिसंघ के मध्य मैत्री-संग्रह करना उनकी और अनिरुद्ध की पुरानी आकांक्षा थी। अवन्ति के सन्धि-विग्रह-महामात्य स्वयं ही वैशाली में आएँ और अपमानित होकर लौट जाएँ ! वत्सला को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने आयुष्मान उदय से पूछा : "किन्तु, भन्ते ! पारसीक असुरसाम्राज्य के विरुद्ध न सही, मगध के विरुद्ध तो अवन्ति की सहायता रत्नकीर्ति को भी अपेक्षित है। अभी उस दिन तो मगध ने पाटलिग्राम का धर्षण किया है। क्या उस विश्वासघात के उपरान्त भी रत्नकीर्ति अजातशत्रु को क्षमा कर देंगे और प्रवरसेन का अपमान करेंगे ?"

आयुष्मान उदय हँसने लगे। फिर वे बोले : "भगिनि ! तुम रत्न-कीर्ति को नहीं जानती। मन-ही-मन वह अजातशत्रु का अनन्य भक्त है।

वह किसी दिन भी अजातशत्रु के साथ द्रोह नहीं करेगा। इसीलिए, वर्षकार के विषय में जब तक रत्नकीर्ति को यह भ्रम रहा कि ब्राह्मण अजातशत्रु का विद्वेषी है तब तक वह वर्षकार के प्रति विक्षुब्ध रहा। किन्तु अजातशत्रु के प्रति ब्राह्मण की भक्ति व्यक्त होते ही रत्नकीर्ति ने उसको वृज्जिसंघ का महामान्य बना दिया। इसीलिए, रत्नकीर्ति का अपना अभिमत है कि पाटलिग्राम पर मगध का अधिकार रहे तभी न्याय की रक्षा हो सकेगी। रत्नकीर्ति ने कभी पाटलिग्राम को अपनाया होता तो वह पाटलिग्राम के कारण अजातशत्रु पर रोष करता। अजातशत्रु यदि वैशाली को भी ध्वस्त कर दे तो भी रत्नकीर्ति उस पर क्षुब्ध नहीं होगा। वह लिच्छवि-गण को ही दोष देता रहेगा।"

वत्सला विस्मित होकर मौन हो गई। अनिरुद्ध ने अपनी शंका व्यक्त करते हुए कहा : "भन्ते ! आप कह रहे थे कि रत्नकीर्ति ने, पाटलिग्राम के प्रसंग पर, परिषद के समक्ष रोष प्रगट किया है। तो क्या...

आयुष्मान उदय बोले : "वारवनिता-वृन्द के सहवास में एक आयु व्यतीत कर चुका है रत्नकीर्ति। वह अभिनय के एक-एक अङ्ग से अभिज्ञ है। वर्षकार को शरणदान देने के समय उसने जो अभिनय किया था उसको यह भगिनी जानती है। परिषद बहुमत से वर्षकार को शरण देने के लिए कृतप्रतिज्ञ थी। अतएव अन्तःकरण में वर्षकार का घोर विरोधी होते हुए भी रत्नकीर्ति ने परिषद के समक्ष वह प्रतिज्ञा प्रस्तुत कर दी जिसके परिणामस्वरूप वर्षकार वृज्जिसंघ में शरणापन्न हुआ। पाटलिग्राम के पतन पर भी परिषद में विक्षोभ उत्पन्न हुआ था। रत्नकीर्ति ने भी विक्षोभ का अभिनय कर दिया। किन्तु अब वह इस खोज में है कि किसी अन्य विक्षोभ की सृष्टि करके मगध के विरुद्ध उद्भूत विक्षोभ को विनष्ट कर दे।"

वत्सला ने विजयमहोत्सव का वह अवसर स्मरण किया जबकि रत्नकीर्ति ने स्वयं अपने मुख से पारसीक साम्राज्य तथा मगधराज का स्तुतिवादन किया था। यह बात उन्हें श्रमण ने समझा दी कि रत्नकीर्ति किस कारण से पारसीक साम्राज्य के प्रति श्रद्धान्वित है। किन्तु अजातशत्रु र रत्नकीर्ति की श्रद्धा का भेद वत्सला की समझ में नहीं आया। अत-

एव उन्होंने श्रमण से पूछा : "भन्ते ! अजातशत्रु ने तो अपने साम्राज्य में किसी प्रकार के रस एवं संस्कार की सृष्टि नहीं की। वरन् जो कुछ भी रस एवं संस्कार वहाँ पूर्व समय में विद्यमान था उसको नष्ट ही किया है। तब रत्नकीर्ति किस कारण से मगधराज पर मोहित है ?"

आयुष्मान उदय ने उत्तर दिया : "केवल इसलिए कि अजातशत्रु, पारसीक असुरसाम्राज्य का विरोध करने वाले राष्ट्र, अवन्ति, का प्रतिपक्षी है।"

"तब तो, भन्ते ! रत्नकीर्ति सर्वथा विक्षिप्त है।"

"स्वधर्म से पराङ्मुख होकर मनुष्य की पाशविक प्रवृतियों की पूजा करने वाला प्रत्येक व्यक्ति विक्षिप्त होता है। धर्म ही मनुष्य की दैवी-सम्पद् है। इन्द्रियों का उपभोग नहीं। रस एवं संस्कार भी नहीं।"

अनिरुद्धने कहा : "भन्ते ! रत्नकीर्ति ने अपने साथ समस्त लिच्छवि-गण को भी विक्षिप्त कर दिया है। अतएव उसको विक्षिप्त कहने वाला व्यक्ति आज वृज्जिसंघ में विक्षिप्त कहलाता है।"

आयुष्मान उदय ने मुस्करा कर अनिरुद्ध की ओर देखा। फिर वे बोले : "इसी लिए तो वृज्जिसंघ का धर्मप्राण धनुर्धर मिथिला में अज्ञातवास कर रहा है।"

वत्सला ने प्रश्न किया : "भन्ते ! ऐसी परिस्थिति में स्वधर्म के अनुयायी का क्या कर्त्तव्य है ?"

श्रमण ने उत्तर दिया : "जिस प्रकार भी सम्भव हो उसी प्रकार, जो भी सम्बल उपलब्ध हो उसी को लेकर, जितना शीघ्र हो सके उतना शीघ्र, रत्नकीर्ति के अनाचार-तन्त्र का आमूल उच्छेद। रत्नकीर्ति का नाम लेने वाला वृज्जिसंघ में न रहे—ऐसा प्रयत्न करना।"

अनिरुद्ध ने कहा : "किन्तु, भन्ते ! हम दोनों तो अत्यन्त अकिंचन हैं।"

श्रमण बोले : "सौम्य ! तुम्हारे पास धर्म का धन है। उस धन का जितना भी व्यय तुम करोगे उसमें उतनी ही वृद्धि होगी। धर्म के नाम पर लिच्छवि-गण को सगठित करने के लिए कटिबद्ध हो जाओ। वैशाली में तथा वैशाली के बाहर, वृज्जिसंघ मे सर्वत्र ही गूढ़-संगठन सर्वथा

सम्भाव्य है। किन्तु वर्षकार ब्राह्मण की गूढ़-प्रणिधि से सब समय सावधान रहना।"

अनिरुद्ध ने वत्सला की ओर देखा। तब वत्सला ने उनसे कहा : "आर्यपुत्र ! अब आप वृज्जिभूमि पर ही अज्ञातवास करने के लिए प्रस्तुत हो जाइए। श्रमण का आशीर्वाद हमारे साथ है। धर्म की जय होगी।"

अनिरुद्ध ने, उत्थान करके, आयुष्मान उदय के चरणों में अपना मस्तक अवनत कर दिया।

: २ :

पूर्वाह्न का वेलाप्रसार अभी अवशिष्ट है। वातायन में से प्रवाहित, वसन्त ऋतु का वन-विलुलित वातास, राजा रत्नकीर्ति का मनोरञ्जन करने में असफल रहकर, मानो स्वयं संतप्त हुआ चाहता है। राजा रत्नकीर्ति, वैशाली के राजप्रासाद में, एक सुप्रशस्त एवं सुसज्जित कक्ष के आस्तरण पर, इतस्ततः पदचार-रत है। अत्यन्त विक्षुब्ध एवं विमना। स्कंधदेश से बारम्बार स्खलित उत्तरीय को, भर्त्सना के भाव से, यथास्थान स्थापित करते हुए।

राजा का ललाटतल वलयित है। भ्रूद्वय उत्क्षिप्त। अधरोष्ठ बारम्बार स्फूर्त। मानो वे इसी क्षण एक दीर्घ, दारुण वक्तृता दे डालेंगे। मुखमण्डल की एक-एक रेखा से रौद्र झर रहा है। आगार की एकाधिक प्रदक्षिणा करके भी उनकी अधीरता अशान्त ही रह गई।

तब आगारद्वार पर प्रणत प्रतिहारी ने नम्र निवेदन किया : "आर्यश्रेष्ठ ! अवन्ति के सन्धि-विग्रह-महामात्य, आर्य प्रवरसेन, आपसे साक्षात्कार करने के लिए सतृष्ण होकर, राजप्रासाद के द्वार पर, आपके आदेश की प्रतीक्षा कर रहे है।"

राजा का पदचार रुक गया। क्रोधानलनिविष्ट दृष्टि से प्रतीहारी को हतप्रभ करते हुए उन्होंने गर्जना-सी की : "प्रवरसेन अर्धकाष्ठा विलम्ब करके आया है।"

प्रतीहारी, भय से प्रकम्पित होकर, अवनत-शिर खड़ी हो गई। मानो उसने कोई महान अपराध किया हो। राजा ने, उसकी तर्जना करते हुए, पुनः गर्जना की : "मूर्ख के समान मेरा मुख क्या देख रही है, दासीदुहिते !

जाकर अपना नियोग अशून्य कर।"

किन्तु प्रतीहारी तो आर्य प्रवरसेन के विषय में राजा का आदेश प्राप्त करने आई थी। वह, उसी स्थान पर स्थिर रहकर, भीरुभाव से बोली : "आर्यश्रेष्ठ ! अवन्ति के......

राजा ने चीत्कार किया : "मैं बधिर नहीं हूँ री, वराकी ! मैंने सुन लिया कि प्रवरसेन आया है। आने दे।"

प्रतीहारी पुनः किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई। वह स्पष्टतया नहीं समझ पाई कि राजा के कथन का क्या आशय है। अवन्ति के अभ्यागत को राजा के आगार में ले आए अथवा उनकी अवहेलना करे। उसको अचल देखकर राजा का धैर्य नष्ट हो गया। वे प्रतीहारी की ओर अग्रसर होते हुए हुँकार कर उठे : "तू नहीं जाएगी ! तुझे अर्धचन्द्र देकर निकालना होगा !"

दीनवदना प्रतीहारी भयभीत होकर इतस्ततः दृष्टिपात करने लगी। इसी समय राजकुमारी पुलोमजा ने आगार में प्रवेश किया। पिता को प्रतीहारी पर प्रकुपित पाकर पुलोमजा को प्रत्यय हो गया कि प्रतीहारी ने अवश्य ही कोई अक्षम्य अपराध किया है। पुलोमजा का पाणिपल्लव, तुरन्त ही, प्रतीहारी के कपोलप्रान्त पर पातित हुआ। फिर वह क्रुद्ध स्वर में बोली : "दासीपुत्रि ! तुझे क्या यह ज्ञात नहीं कि आर्यावर्त्त के अग्रगण्य आर्यश्रेष्ठ कितने व्यस्त रहते हैं ? तू इनका समय नष्ट करने के लिए इस ओर क्यों आई ? तेरी नित्य-नवीन नृशंसता के कारण इनका स्वास्थ्य शिथिल होता जा रहा है।"

पुलोमजा द्वारा प्रदत्त प्रसाद पाकर प्रतिहारी वहाँ से द्रुतपद पलायन कर गई। तब पुलोमजा ने, अपने स्वर को वात्सल्य-विदिग्ध करके, पिता से कहा : "पिताजी ! अवन्ति का प्रवरसेन आपके दर्शन की आकांक्षा से द्वारदेश पर प्रस्तुत है।"

राजा रुष्ट होकर बोले : "तू उसको अपने साथ लेकर क्यों नहीं आई ?"

पुलोमजा ने, विनीत बनकर, उत्तर दिया : "उसको आपके आगार तक लाने के पूर्व मैं यह देख लेना चाहती थी कि आपको अवकाश भी है

अथवा नहीं। आपका आदेश......

रत्नकीर्ति ने, और भी रुष्ट होकर, कहा : "तेरे आने के पूर्व ही उस अभागे की प्रतीक्षा में मेरे समय का अपव्यय हो चुका है। अब तू भी मेरा समय नष्ट मत कर।"

पुलोमजा चली गई। रत्नकीर्ति ने, आगार के पृष्ठप्रदेश की ओर प्रत्यावर्तन करके, कुड्या पर आलम्बित दीर्घकाय दर्पण में अपनी आकृति का अवलोकन किया। दूसरे क्षण उनका मानस एक अवसाद से भर गया। वे, वारम्वार, यह विस्मृत कर बैठते थे कि वे एक वयोवृद्ध एवं विलास-विगलित व्यक्ति हैं। वैशाली की वराङ्गनाएँ तथा वारवनिताएँ अहर्निश उनसे कहती रही थीं कि वे यौवनश्री-सम्पन्न तरुण हैं। विक्षोभ के कारण इस समय उनकी मुखाकृति और भी विकृत हो गई थी।

रत्नकीर्ति ने अपने मुख के स्नायुमण्डल को शिथिलित कर लिया। ललाट पर पड़े बल विलुप्त हो गए। भ्रूद्वय ने अपना सहजभाव धारण किया। कपोल-द्वय पर दौड़ती हुई रेखाएँ रौद्र से रिक्त होने लगीं। अन्त में अपने अधरोष्ठ को एक स्मित से स्फीत करके, उन्होंने अपने क्लान्त कलेवर को एक तूलगर्भित तल्प से आच्छादित मञ्चपीठिका पर अर्द्धशायमान कर दिया।

तब पुलोमजा-पुरस्सरित प्रवरसेन ने आगार में प्रवेश किया। राजा रत्नकीर्ति ने प्रत्युथान किये बिना ही, अपने सन्मुख पड़ी एक आसन्दिका की ओर संकेत करके, कहा : "आओ प्रवरसेन ! आसन ग्रहण करो। तुम से वार्त्तालाप किए कई वर्ष हो गए।"

प्रवरसेन, उपासीन होकर, बोले : "आर्यश्रेष्ठ ! आपने तो अब अवन्ति की ओर आना ही छोड़ दिया। प्रत्येक महोत्सव के अवसर पर मैं आपकी प्रतीक्षा करता हूँ। क्या अब आपको उज्जयिनी के महोत्सव भी मुग्ध नहीं करते ?"

"प्रवरसेन ! वृज्जिसंघ के सुचारु शासन का भार इतना दुर्वह है कि मेरे अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति उसका वहन नहीं कर सकता। अतएव......"

बात पूरी किए बिना ही रत्नकीर्ति किंचित् गम्भीर हो गए। फिर

समीप ही संरूढ़ पुलोमजा को देखकर वे बोले : "पुलोमे ! प्रवरसेन के लिए पानीय प्रस्तुत कर।"

पुलोमजा चली गई। तब रत्नकीर्ति ने कहा : "मैं तुम्हारे स्वागतार्थ वैशाली से प्रत्युदगमन नहीं कर सका। तुम रुष्ट तो नहीं हो गए प्रवरसेन !"

प्रवरसेन ने अपने मुखमण्डल को मैत्रीभाव से मुग्ध करके उत्तर दिया : "नहीं आर्यश्रेष्ठ ! मैं जानता हूँ कि आप कितने व्यस्त हैं। पाटलिग्राम के पतन का समाचार......

रत्नकीर्ति, बीच में ही, बोल उठे : "सो तो है ही। किन्तु एक अन्य कारण से भी सर्वलोक-समक्ष मैंने तुम्हारी अवहेलना की है।"

प्रवरसेन ने, उत्कण्ठित होकर, पूछा : "अन्य कारण क्या है, आर्यश्रेष्ठ !"

राजा रत्नकीर्ति, अपने स्वर को अत्यन्त गम्भीर बनाकर, प्रवरसेन के शिर पर से अन्तरिक्ष में दृष्टि आविष्ट करते हुए, बोले : "वृज्जिसंघ में कुछ समय से, अवन्ति के विरुद्ध विक्षोभ का विस्तार हो रहा है। अतएव मैं......"

अवन्ति के महामात्य एक क्षण अवाक् रह गए। किन्तु रत्नकीर्ति को अपनी बात पूरी करते न देखकर उन्होंने पूछा : "अवन्ति के विरुद्ध विक्षोभ ! वृज्जिसंघ में !! यह तो मैं अन्यत्र अश्रुत का श्रवण कर रहा हूँ, आर्यश्रेष्ठ !"

रत्नकीर्ति ने उत्तर दिया : "तुम तो कल ही वैशाली में आए हो। तुमको कैसे यह समाचार विदित होता ?"

"किन्तु, आर्यश्रेष्ठ ! आर्यावर्त के प्रत्येक प्रान्त से समस्त समाचार, दिवस-प्रति दिवस, उज्जयिनी में उपलब्ध होते रहते है। आज के पूर्व मैंने......

"प्रवरसेन ! मुझे ज्ञात है कि अवन्ति की गूढ़-प्रणिधि का प्रवेश एवं प्रसार सर्वत्र है। वैशाली में भी अवन्ति के सार्थवाह-वेशी गूढ़पुरुष नित्य-प्रति आते रहते हैं। किन्तु चार-वृत्तान्त-संग्रह में भूल भी तो सम्भव है।"

"आर्यश्रेष्ठ ! मैंने चार-वृत्तान्त के आधार पर विस्मय प्रगट नहीं

किया। अन्यान्य माध्यम से भी तो समाचार प्राप्त होते हैं। वृज्जिसंघ के सार्थवाह मास-प्रतिमास अवन्ति के एकाधिक नगर एवं निगम में आते रहते हैं। विदेश से आगत सार्थवाह-वृन्द से वार्तालाप करके देशान्तर का समाचार संग्रह करते रहना मेरा स्वभाव है। मुझे तो किसी ने...

रत्नकीर्ति, सहसा, असहिष्णु-से हो गए। विवाद को समाप्त करने के निश्चयात्मक भाव से उन्होंने, बीच में ही, कह दिया : "तुम मानो अथवा न मानो, प्रवरसेन ! वृज्जिसंघ के विषय में वृज्जिसंघ के राजा का वचन ही प्रमाण है। अवन्ति के सन्धि-विग्रह-महामात्य की आत्मप्रवञ्चना नहीं।"

प्रवरसेन, एक क्षण के लिए, हतप्रभ-से हो गए। फिर उन्होंने राजा रत्नकीर्ति का वचन प्रमाण मानते हुए प्रश्न किया : "आर्यश्रेष्ठ ! अवन्ति के विरुद्ध लिच्छवि-गण के इस विक्षोभ का हेतु क्या है ? जहाँ तक मुझे विदित है, अवन्ति ने अभी तक वृज्जिसंघ के प्रति कोई अपराध नहीं किया।"

रत्नकीर्ति बोले : "वृज्जिसंघ के प्रति अपराध की बात मैं भी नहीं कहता, प्रवरसेन ! किन्तु लिच्छवि-गण के मन में यह आशङ्का जन्म ले चुकी है कि अवन्ति ने जो अपराध आज उत्तरापथ तथा मध्यमण्डल में किया है वही कल प्राची में भी अवन्ति द्वारा किया जाना अशक्य नहीं।"

"अवन्ति के शासकवर्ग को अभी तक सर्वथा अविदित, वह कौनसा अपराध है, आर्यश्रेष्ठ !"

"आज अखिल आर्यावर्त में सर्वत्र यह सुना जाता है कि अवन्ति अपने अपार वैभव के कारण प्रमत्त होकर आर्यावर्त के समस्त स्वाधीन राष्ट्रों को आत्मसात् करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ है।"

"अवन्ति की इस दस्युवृत्ति का प्रमाण ?"

"मैंने अपनी आँखों से देखा है कि उत्तरापथ के गणराज्य किस प्रकार अवन्ति की साम्राज्यलिप्सा का ग्रास बन चुके हैं। मध्यमण्डल में तुम्हारे पर्यटन का वृत्तान्त सुनकर अनुमान होता है कि अवन्ति अब मध्यमण्डल में भी अपना मुख विस्फारित करने के लिए उद्यत है।"

"अवन्ति का साम्राज्य न जाने आपने कहाँ से देख लिया ? अवन्ति

ने अद्यपर्यन्त किसी अन्य राष्ट्र की सूच्यग्र-समान भूमि पर भी अधिकार नहीं किया।"

"तब तुम ही कह दो कि उत्तरापथ के गणराज्यों से, अधुना, अवन्ति का क्या सम्बन्ध है ?"

"वे समस्त गणराज्य अवन्ति के मित्रराष्ट्र हैं।"

"सम्भवत: इसीलिए अवन्ति ने उन समस्त राष्ट्रों में अपनी सेना को सन्निविष्ट किया है।"

"आप व्यङ्ग कर रहे हैं, आर्यश्रेष्ठ ! किन्तु मैं उत्तेजित नहीं हूँगा। अवन्ति ने अपनी सेना का एक पदाति भी बलपूर्वक किसी राष्ट्र में प्रेषित नहीं किया। उन राष्ट्रों ने, पारसीक असुरसाम्राज्य द्वारा आक्रान्त होकर, स्वेच्छा से ही अवन्ति की सेना को आमन्त्रित किया है।"

राजा रत्नकीर्ति हँसने लगे। जैसे किसी अबोध शिशु ने अपटु प्रलाप किया हो। फिर वे बोले : "प्रवरसेन ! उत्तरापथ के गणराज्य यदि सत्यश: पारसीक साम्राज्य द्वारा संत्रस्त हैं तो वे, अपने मध्य चलने वाले सतत् संघर्ष का परित्याग करके, परस्पर एकता का संग्रह क्यों नहीं कर लेते ? वे यदि समवेत होकर समुत्थान करें तो अवन्ति की सहायता के बिना भी पारसीक आक्रमण को परास्त कर सकते हैं। किन्तु मैंने तो अपनी आँखों से देखा है कि उत्तरापथ का प्रत्येक गणराज्य अपने प्रतिवेशी राष्ट्रों के साथ संघर्षरत है। सो भी क्षुद्रातिक्षुद्र विभेद के कारण। केकय-देश मद्रदेश से शत्रुता कर रहा है। किसलिए ? वितस्ता के प्रवाह में विग-लितप्राय एक क्षुद्र द्वीप के लिए। सौवीर एवं शिवि नित्यप्रति परस्पर रक्तपात करने के लिए रत रहते हैं। त्रिगर्त और यौद्धेय, मालव एवं अम्बष्ठ, शाल्व तथा अग्रश्रेणीवृन्द किसी भी दो प्रतिवेशी राष्ट्रों के मध्य मित्रता का समावेश नहीं।"

"यह सब समझने के लिए आपको उन राष्ट्रों के अतीत इतिहास एवं विद्वेष-परम्परा से परिचित होना होगा।"

"तो तुम्हारे विचार में मैं उनका इतिहास नहीं जानता !! प्रवरसेन ! अज्ञता का ऐसा गर्हित अभियोग मुझ पर आरोपित करना सर्वथा हास्या-स्पद है। क्या तुमको यह ज्ञात नहीं कि मैं एकाधिक इतिहास-ग्रन्थों का

प्रणेता हूँ। किन्तु जाने दो वह बात। मैं तुमसे यही पूछता हूँ कि उन राष्ट्रों के अतीत इतिवृत्त से उनके वर्तमान का क्या सम्बन्ध है? अवन्ति यदि चेष्टा करे तो क्या अपने मित्रराष्ट्रों के मध्य शान्ति की स्थापना नहीं कर सकता?"

"अवन्ति उसी दिशा में प्रयत्न-परायण है, आर्यश्रेष्ठ! किन्तु शान्ति तो एक दिन में साधनीय नहीं। और एक सीमा के परे अवन्ति भी विवश है। उन देशों की आभ्यन्तर शासनप्रणाली तथा आचार-परम्परा में अवन्ति अपना हस्तक्षेप नहीं कर सकता। ऐसा करना अवन्ति की अपनी आर्य-परम्परा के प्रति अपराध होगा। अवन्ति उन राष्ट्रों के स्वधर्म की अवहेलना करके उनको शान्ति के लिए विवश नहीं कर सकता।"

"कर नहीं सकता अथवा करना नहीं चाहता?"

"प्रश्न का तात्पर्य?"

"मैंने सुना है कि उन राष्ट्रों को पृथक्-पृथक् परतन्त्र करने की आकांक्षा से प्रेरित होकर ही अवन्ति उनको एक मित्रमण्डल में ग्रथित नहीं होने देता।"

रत्नकीर्ति का अभिनव अभियोग सुन कर अवन्ति के महामात्य अवसन्न हो गए। फिर उन्होंने, किंचित् कुपित होकर, व्यङ्ग किया: "अवन्ति की हितकामना के लिए अवन्ति आपका आभारी है, आर्यश्रेष्ठ! अवन्ति की अमात्यपरिषद ने भी कभी अवन्ति की आकांक्षा का इतना सूक्ष्म सन्धान नहीं किया।"

रत्नकीर्ति का मुख क्रोध से ताम्रवर्ण हो गया। अपने स्वर को प्रखर करके उन्होंने आक्रोश किया: "तुम मेरा अपमान कर रहे हो, प्रवरसेन! वह भी वैशाली के राजप्रासाद में!!"

प्रवरसेन ने भी अपने स्वर को प्रखर करके कहा: "आप अवन्ति पर लाञ्छन लगाते जाएँ और मैं स्वदेशद्रोही के समान उनको स्वीकार करता जाऊँ—अवन्ति के सन्धि-विग्रह-महामात्य से क्या आप यही अपेक्षा करते हैं?"

राजा रत्नकीर्ति का मुख तुरन्त मृदुल हो गया। अकस्मात् ही उनको स्मरण होने लगा कि पुलोमजा अभी तक अतिथि के लिए पानीय लेकर

नहीं आई। प्रवरसेन की बात का उत्तर न देकर वे, द्वार की ओर दृष्टि-पात करते हुए, पुकार उठे : "पुलोमे ! पुलोमजे !! पानीय लाने क्या गई, कहीं मर गई, वराकी !"

फिर वे प्रवरसेन को सम्बोधित करके बोले : "प्रवरसेन ! तुम्हारे आतिथ्य-सत्कार में त्रुटि हुई, इसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। मैं तुमको राजप्रासाद के अवस्थानागार में आमन्त्रित करता। किन्तु वहाँ इस समय अन्य अतिथि विद्यमान हैं। अतएव मुझे तुम्हारे निवास का प्रबन्ध अपने पैतृक आवास में ही करना पड़ा।"

प्रवरसेन भी अपने आचरण पर पश्चाताप-सा करते हुए कहने लगे : "मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ, आर्यश्रेष्ठ ! आप अकारण ही अप्रतिभ न हों।"

"मैंने पुलोमजा को आदेश दिया है कि वह आज रात के समय तुम को गणिकालय में आमन्त्रित करे। वहाँ तुम अनङ्गरेखा का नृत्य-नैपुण्य देखना। अनङ्गरेखा वृज्जिसंघ की विभूति है, प्रवरसेन ! उसके साथ सुरत-रण किए बिना तुम वैशाली से मत लौट जाना।"

इसी समय, परिचारिका के हाथ मद्यभाण्ड तथा पानपात्र लेकर, पुलोमजा ने कक्ष में प्रवेश किया। पुलोमजा ने अपनी देह पर प्रभूत प्रसा-धन-द्रव्य का व्यय किया था। आगार का कोना-कोना सुवास से सुरभित हो उठा। राजकुमारी राजा रत्नकीर्ति को सम्बोधित करके बोली : "पिताजी ! मैं कई बार इस ओर आई। किन्तु आपको व्यस्त देख कर लौट गई।"

राजा ने, मौन रह कर, पुलोमजा की आत्ममार्जना स्वीकार कर ली। तब परिचारिका को प्रत्यावर्तित करके, पुलोमजा ने आसव का भाण्ड अपने हाथ में उठाया और वह आर्य प्रवरसेन से बोली : "आर्य महा-मात्य ! आप आसव का पान करेंगे अथवा मधु का ? मेरे पास उज्ज-यिनी की सुगन्धित सुरा भी है।"

प्रवरसेन ने पुलोमजा के हाथ में उठा हुआ भाण्ड देख कर उत्तर दिया : "आसव का ही पान करूँगा, वत्से !"

राजा रत्नकीर्ति ने कहा : "प्रवरसेन ! आसवपान का अभ्यास जिसे

न हो उसके लिए यह पेय उन्मादजनक है।"

प्रवरसेन बोले : "मद्यपान के विषय में मेरा अभ्यास अत्यल्प ही है, आर्यश्रेष्ठ !"

रत्नकीर्ति ने कटाक्ष किया : "इसीलिए तो अवन्ति, अभी तक, पारसीक प्रणाली का विरोध करने में असफल रहा है।"

प्रवरसेर मौन रहे। वे पुनः विवाद करने के इच्छुक नहीं थे। तब प्रवरसेन को मधु से आपूरित एक चषक देकर, अपने पानपात्र में आसव भरते, हुए, रत्नकीर्ति ने प्रश्न किया : "प्रवरसेन ! वैशाली में तुम्हारे अकस्मात् आगमन का कारण क्या है ?"

प्रवरसेन ने, मधु की एक घूंट पीकर पानपात्र को पीठिका पर रखते हुए, उत्तर दिया : "आर्यश्रेष्ठ ! मैं यह जानने के लिए आया हूँ कि, मगध द्वारा पाटलिग्राम के धर्षण के उपरान्त, वृज्जिसंघ मगध के विषय में क्या धारणा करता है। यदि वृज्जिसंघ पाटलिग्राम की पुनर्प्राप्ति के लिए प्रयत्नवान होगा तो अवन्ति वृज्जिसंघ की सहायता करेगा।"

राजा रत्नकीर्ति ने उत्तर नहीं दिया। वे मौन रहकर, निर्निमेष नेत्रों से, प्रवरसेन को निहारने लगे। जैसे उनके मर्मस्थल पर कोई कठोर आघात हुआ हो और वे अवसन्न-से रह गए हों।

अवन्ति के महामात्य ने पूछा : "आप चिन्ता-ग्रस्त क्यों हो गए, आर्यश्रेष्ठ !"

रत्नकीर्ति ने, आर्द्रकण्ठ से, उत्तर दिया : "प्रवरसेन ! मुझको यही आशंका थी कि वृज्जिसंघ तथा मगध के मध्य इस क्षुद्र विसंवाद से लाभान्वित होने का लोभ अवन्ति द्वारा संवरण नहीं हो सकेगा।"

प्रवरसेन स्तम्भित रह गए। वे अपने तूणीर में एक ही अचूक वाण लेकर आए थे। उनको पूर्ण आशा थी कि वह वाण अपने लक्ष्य को वेध देगा। किन्तु यहाँ उस आशा के विपरीत ही फल हुआ। वाण का संधान करते ही वह, विपक्षी की ओर न जाकर, उनके अपने हृदय में आ लगा। प्रवरसेन अपने आसन पर विजड़ित हो गए। उनके मुख से एक भी शब्द नहीं निकला।

तब राजा रत्नकीर्ति ने ही वह मृत्यु का-सा मौन भंग किया। वे

बोले : "प्रवरसेन ! वृज्जिसंघ और मगध के मध्य मनोमालिन्य का जो एकमात्र कारण था वह अब नहीं रहा। अब मगध तथा वृज्जिसंघ सर्वथा विश्रुब्ध होकर परस्पर शान्ति की साधना कर सकते हैं। उस शान्ति के धवल परिधान पर अभी तक कलह का एक कलुष विद्यमान था। पाटलिग्राम के घटनाचक्र ने उस कलुष को धो दिया।"

विमूढ़-से उपारीन प्रवरसेन ने पूछा : "वह कलुष क्या था, आर्यश्रेष्ठ !"

"वृज्जिसंघ द्वारा पाटलिग्राम में दुर्गनिवेश। लिच्छवि-गण ने यह दुराचार उस समय किया था जब वे मरण-मारण को ही मानवजीवन की परमोपलब्धि मानते थे। वह तमिस्र युग अब व्यतीत हो गया। अब वैशाली के लिच्छवि-गण अपने जीवन में रस तथा संस्कार का संचय कर रहे हैं। अब वे किसी के द्वारा भी प्रचोदित होकर मगध के साथ रक्त-पान-रत नहीं होंगे। अब न कोसल का कुचक्र उनको वैसी कुचेष्टा की ओर कटिबद्ध कर सकता है, न अवन्ति की अमात्यपरिषद।"

"तो क्या, आपके मत में, लिच्छवि-गण ने कोसल की स्वार्थ-रक्षा के लिए ही पाटलिग्राम में अपना दुर्गनिवेश किया था ? अजातशत्रु द्वारा, वारम्वार, आक्रान्त होकर नहीं ?"

"वृज्जिसंघ तथा मगध के मध्य तो उस समय कोई संघर्षस्थान नहीं था, प्रवरसेन ! संघर्ष-रत थे मगध तथा कोसल। कोसल के कुबुद्धि सम्राट द्वारा काशीग्राम का अपहरण होने के कारण। लिच्छवि-गण ने तो उस दिन अकारण ही मगध के साथ वैमनस्य का बीजारोपण कर लिया था।"

"किन्तु मैंने तो सुना है कि कोसल के साथ विग्रहरत होने के पूर्व ही मगधराज, भागीरथी को पार करके, वृज्जिसंघ को ध्वस्त करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ थे। मगध एवं वृज्जिसंघ की नौसेनाओं में उस समय घोर संघर्ष हो रहा था।"

रत्नकीर्ति हँसने लगे। फिर वे बोले : 'प्रवरसेन ! मगध तथा वृज्जिसंघ के परस्पर प्रभेद की विगत गाथा गाने में मुझे तो कोई पुण्य-लाभ प्रतीत नहीं होता। मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है कि वह प्रभेद अब नहीं रहा। मैं तुमसे पूछता हूँ कि अवन्ति का मगध के साथ क्या वैर है ?

मगध ने अभी तक तो अवन्ति की धरा का धर्षण नहीं किया।"

प्रवरसेन ने उत्तर दिया: "धरा का धर्षण ही तो वैर का एकमात्र कारण नहीं होता, आर्यश्रेष्ठ !"

"मैं तो वैर के किसी कारण को भी नहीं मानता। तुम स्वयं भी अभी-अभी कह रहे थे कि वृज्जिसंघ को, पाटलिग्राम के धर्षण के कारण अवन्ति की सहायता लेकर, मगध के साथ वैमनस्य की सृष्टि करनी चाहिए।"

"मैंने कभी नही कहा कि वैमनस्य की सृष्टि करनी चाहिए। वैमनस्य विद्यमान है, इसी विश्वास के कारण मैंने अपनी मन्त्रणा निवेदित की थी। किन्तु वह बात जाने दीजिए। आप मगध तथा अवन्ति के वैमनस्य का कारण जानना चाहते हैं। क्या आपको ज्ञात है कि मगधराज ने, पारसीक सम्राट के साथ सन्धि स्थापित करके, अवन्ति का पार्ष्णिग्राह बनने का प्रण किया है?"

"ऐसी किसी सन्धि का समाचार मुझे नहीं मिला। वृज्जिसंघ की गूढ़-प्रणिधि, अवन्ति की गूढ़-प्रणिधि के समान, देशान्तर की प्रदक्षिणा नहीं करती। किन्तु फिर भी, मैं मान लेता हूँ कि मगध एवं पारसीक साम्राज्य के मध्य सन्धि स्थापित हुई है। तुम मुझे यह बतलाओ कि क्या अवन्ति द्वारा आक्रान्त दो स्वाधीन राष्ट्रों को परस्पर सन्धि करने का अधिकार नहीं? दण्डनीति की पुरातन परम्परा का अवलम्बन लेना क्या एकमात्र अवन्ति के लिए ही विधेय है?"

"आपका यह कथन कि पारसीक असुरसाम्राज्य अवन्ति द्वारा आक्रान्त है, सत्य नहीं है, आर्यश्रेष्ठ !"

"सत्य क्या है यह कोई नहीं जानता। तुम भी नहीं जानते। मैं भी...इस प्रसंग में पारसीक सम्राट के लिए वही सत्य है जिसे वे सत्य मानें। पारसीक सम्राट का मन्तव्य है कि अवन्ति ने, उनके साम्राज्य पर आक्रमण करने के लिए ही, उत्तरापथ में अपने मित्र-मण्डल का संगठन किया है। पारसीक सम्राट अपने साम्राज्य को अवन्ति द्वारा आक्रान्त मानते हैं।"

"पारसीक सम्राट का इस विषय में क्या मत है, यह बात आप भूल

जाइए, आर्यश्रेष्ठ ! मै तो इस विषय में आपका मत जानना चाहता हूँ ।"

"वृज्जिसघ इस विषय में सर्वथा उदासीन है। वृज्जिसंघ की तो यही शुभकामना है कि आर्यावर्त के किसी अंचल में भी शान्ति भंग न हो, किसी राष्ट्र की भी निरीह प्रजा को युद्ध की विडम्बना न वहन करनी पड़े, वसुधरा का आङ्गन निरपराधों के रक्त से अपवित्र न हो ।"

"अवन्ति की भी यही आकांक्षा है, आर्यश्रेष्ठ ! अवन्ति भी यही चाहता है कि आर्यावर्त में सर्वत्र ही शान्ति का साम्राज्य हो । युद्ध करने के लिए अवन्ति भी लेशमात्र लालायित नहीं । किन्तु आर्यावर्त पर पारसीक असुरसाम्राज्य का आक्रमण हुआ तो उसको परास्त करने के लिए अवन्ति युद्ध से पराङ्मुख नहीं होगा। आक्रमणकारी के सन्मुख अवनत होने की अपेक्षा, अवन्ति विनाश का वरण करना श्रेयस्कर समझता है । विशेषकर उस दशा में जबकि वह आक्रमणकारी एक अनार्य असुर हो।"

"किसी को अनार्य अथवा असुर कह कर तुम अपनी वाणी को ही विगर्हित कर रहे हो । तुम्हारे कथन मात्र से कोई असुर अथवा अनार्य नहीं हो जाता "

"आर्यश्रेष्ठ ! काम्बोज, गान्धार तथा सिन्धुदेश में पारसीक म्लेच्छतन्त्र का ताण्डव आप अपनी आँखों से देख चुके है ।"

"मैने कोई ताण्डव नहीं देखा । पारसीक तन्त्र को म्लेच्छतन्त्र कह कर युद्ध का अवसर खोजना ही म्लेच्छाचार है, प्रवरसेन !"

"आप भलीभाँति जानते है कि पारसीक म्लेछवाहिनी ने, आर्यावर्त के पददलित राष्ट्रों में, आर्य-परम्परा का आमूल उच्छेद किया है, ब्राह्मणों का अकारण वध किया है, यज्ञशालाओं को अश्व-शालाओं मे परिणत किया है । ऐसे अधर्म-रत अनार्य आततायी के मूलाच्छेद के लिए किया जाने वाला युद्ध भी धर्म-युद्ध ही होगा । किन्तु, फिर भी, अवन्ति पारसीक असुरसाम्राज्य के विरुद्ध आक्रमणात्मक अभियान करने का अभिलाषी नहीं ।"

"तो फिर सिन्धुनद के पूर्ववर्ती तीर पर अनेक दुर्गनिवेश करके, अवन्ति ने अपनी मेना को किसलिए वहाँ सन्निविष्ट किया है ?"

"इसीलिए कि पारसीक म्लेछवाहिनी सिन्धु का संतरण करने का

साहस न कर सकें।"

"किन्तु युद्ध के समारम्भ से तो युद्ध की सम्भावना बढ़ती ही है, घटती नहीं।"

"आप घटना-क्रम के पौर्वापर्य पर भी तो विचार कीजिए, आर्यश्रेष्ठ! अवन्ति युद्ध के लिए उस समय प्रस्तुत हुआ है जबकि पारसीक म्लेच्छ-वाहिनी ने काम्बोज, गान्धार तथा सिन्धुदेश को ध्वस्त और उत्तरापथ के अन्य राष्ट्रों को सन्त्रस्त कर दिया। यदि अवन्ति युद्ध के लिए तत्पर न हुआ होता तो आज उत्तरापथ का एक भी आर्यराष्ट्र आर्यावर्त की परिधि में न रह गया होता और अवन्ति के अपने प्रत्यन्त पर पारसीक सेना के सन्निवेश होते।"

"भूतकाल में क्या हुआ होता और क्या न हुआ होता, यह कपोल-कल्पना का विषय है, प्रवरसेन! मैं उस विवाद में पड़ना नहीं चाहता। मैं तो यही जानना चाहता हूँ कि वर्तमान समय में शान्ति की स्थापना किस प्रकार सम्भव है।"

"उत्तरापथ में तो अब सर्वत्र ही शान्ति स्थापित है। असुरसेना अब भूल कर भी सिन्धुनद को पार करने का परिश्रम नहीं करेगी। उत्तरा-पथ के राष्ट्र सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।"

"रक्तपात के लिए उद्यत सैन्यबल पर निविष्ट शान्ति को मैं शान्ति नहीं मानता। वह किसी समय भी भंग हो सकती है।"

प्रवरसेन मौन हो गए। अब वे निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि रत्न-कीर्ति वस्तुतः अज्ञ हैं अथवा विज्ञ होकर अज्ञता का अभिनय कर रहे हैं। महामात्य के मौन को अपने कथन के अर्थगौरव का लक्षण मानकर, रत्न-कीर्ति ने दृप्त स्वर में कहा : "मेरी बात का उत्तर नहीं दिया, प्रवरसेन!"

प्रवरसेन ने मुस्करा कर कहा : "आपने कोई बात कही हो तो उत्तर दूँ।"

रत्नकीर्ति की दृष्टि, सहसा, पुलोमजा की ओर गई। उनके मत में पुलोमजा को उनका पराभव देखने का कोई अधिकार नहीं था। वे कोपाविष्ट होकर पुलोमजा से बोले : "तू यहाँ क्या कर रही है, वराकी!"

पुलोमजा, तुरन्त ही, वहाँ से पलायन कर गई। प्रवरसेन ने रत्न-

कीर्ति ने कहा : "आर्यश्रेष्ठ ! मैं स्वयं आप से एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ।"

रत्नकीर्ति ने, स्वर में सौहार्द भरकर, कहा : "पूछो, प्रवरसेन ! अवश्य पूछो।"

"वृज्जिसंघ के लिच्छवि-गण सहसा शान्ति के उपासक किस प्रकार बन गए ? लिच्छवि-वंश की पुरातन परम्परा तो ऐसी नहीं थी। स्वधर्म तथा स्वदेश के लिए युद्ध करना तो लिच्छवि-गण अपना पुण्य-कर्त्तव्य मानते थे।"

"लिच्छवि-गण के नवीन आचार के प्रति तुम्हारा विस्मयोद्गार उपयुक्त है, प्रवरसेन ! तुमने जिस समय लिच्छवि-गण का परिचय प्राप्त किया था उस समय वस्तुतः लिच्छवि-गण शान्ति का नाममात्र सुनकर सिहर उठते थे। किन्तु वह सब अब अतीत की कथामात्र है।"

"यह अभूतपूर्व परिवर्तन किस प्रकार हुआ ?"

"लिच्छवि-गण ने, शान्ति के सम्बन्ध में, महाश्रमण, सम्यक्-सम्बुद्ध, भगवान गौतम के शिक्षापद हृदयङ्गम किए हैं। लिच्छवि-गण ने, अहिंसा के विषय में, जिनश्रेष्ठ निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र का सिंहनाद श्रवण किया है..."

राजा रत्नकीर्ति, अपना कथन समाप्त न करके, निर्निमेष नयनों से प्रवरसेन का मुख देखने लगे। मानो वे जानना चाहते हों कि उनके अपने सिंहनाद का प्रवरसेन पर क्या प्रभाव पड़ा। किन्तु महामात्य के मुख-मण्डल पर एक भी रेखा इतस्ततः नहीं हुई। उनकी भावभङ्गिमा में, अविश्वास के साथ, किंचित् परिहास का पुट था। तब रत्नकीर्ति निराशा की एक दीर्घ निश्वास छोड़कर मौन हो गए।

प्रवरसेन ने कहा : "आर्यश्रेष्ठ ! आपका वक्तव्य असमाप्त ही रह गया।"

राजा रत्नकीर्ति ने क्लान्त वाणी में कहा : "मैं कह रहा था कि वृज्जिसंघ अब आर्यावर्त के अन्यान्य राष्ट्रों से पीछे नहीं रहना चाहता। धन-धान्य, सुख-समृद्धि, ऐश्वर्य-उपभोग, कला-कौशल, सौन्दर्य की उपासना, ज्ञान की गवेषणा—लिच्छवि-गण, अब, समस्त दिशाओं में एक साथ अग्रसर होने के लिए अधीर हैं।"

"क्या यह भी महाश्रमण की शिक्षा अथवा जिनश्रेष्ठ के सिंहनाद का परिणाम है ?"

"नहीं। यह उन लिच्छवियों की अभीप्सा है जिन्होंने, अपने नेत्र उन्मीलित करके, अपने चारों ओर हो रही प्रगति को अपनी आँखों से देखा है और जो, जराजीर्ण परम्परा का परित्याग करके, भविष्य के नवोदय के प्रति निष्ठावान हैं।"

"मैंने सुना है कि महाश्रमण तथा जिनश्रेष्ठ पुरातन आर्य-परम्परा के प्रतिपक्षी नहीं वरन् परिपोषक थे।"

"वे दोनों प्रव्रजित तथा परमार्थान्वेषी पुरुष थे, प्रवरसेन ! किसी भी ऐहिक एवं व्यावहारिक प्रसंग में उनके मतामत का कोई मूल्य नहीं।"

"किन्तु शान्ति-स्थापना तो ऐहिक एवं व्यावहारिक प्रसंग है, आर्यश्रेष्ठ ! सम्भव है कि इस प्रसंग में भी उन महापुरुषों ने भूल की हो।"

"मैं कोई भूल नहीं देखता।"

"यदि मगध ने वृज्जिसंघ पर आक्रमण कर दिया तो क्या लिच्छविगण, मगध के बाणवर्षण के विनिमय में, महाश्रमण तथा जिनश्रेष्ठ के वचनामृत की वर्षा करेंगे ?"

राजा रत्नकीर्ति ने, अधरकुञ्चित करके, अपना मुख परावृत्त कर लिया। किन्तु प्रवरसेन, तुरन्त ही उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते हुए, बोले : "आर्यश्रेष्ठ ! आपने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया।"

रत्नकीर्ति ने क्रुद्ध होकर कहा : "प्रवरसेन ! लिच्छविगण ने अभी शस्त्रास्त्र धारण करना नहीं छोड़ा। यदि किसी ने वृज्जिसंघ पर आक्रमण किया तो वे अपनी रक्षा करने के लिए सर्वथा समर्थ हैं। किन्तु तुम क्यों, इतनी देर से, मगध तथा वृज्जिसंघ के वैमनस्य का वर्ण-विन्यास कर रहे हो ?"

"इसलिए कि अजातशत्रु ने आर्य-परम्परा का परित्याग करके पारसीक-देश में प्रतिष्ठित असुर-आदर्श का आश्रय लिया है। मगधराज का मनोरथ है, मध्यमण्डल के समस्त स्वाधीन राष्ट्रों को ध्वस्त करके, मगध के सार्वभौम साम्राज्य की स्थापना करना।"

"मगध के विरुद्ध अवन्ति का यह मिथ्याप्रचार मैंने इसके पूर्व भी

अनेक बार सुना है। इसमें सत्य का समावेश नहीं।"

"सत्य क्या है, आर्यश्रेष्ठ!"

"अवन्ति की अभिलाषा है कि मध्यमण्डल के स्वाधीन राष्ट्र परस्पर विग्रह करके जर्जर हो जाएँ और अवन्ति, एक-एक करके, उन सबको उदरसात् कर ले।"

"इसका प्रमाण?"

"वैशाली में आने के पूर्व वत्स तथा कोसल के शासकवर्ग के साथ भी तुम्हारा साक्षात्कार।"

"साक्षात्कार तो मैंने आपके साथ भी किया है। क्या मैं वृज्जिसंघ को मगध के साथ विग्रहरत करने में सफल हो गया?"

"किन्तु वृज्जिसंघ उन अधम राष्ट्रों जैसा नहीं है।"

"अन्तर क्या है?"

"अवन्ति उन राष्ट्रों का कर्णधार है। वृज्जिसंघ का नहीं।"

प्रवरसेन पुनरेण अवाक् रह गए। यह भी उनके लिए सर्वथा अचिन्तनीय अभियोग था। वे सोचने लगे कि रत्नकीर्ति के नवीन आक्षेप पर मौन रहें अथवा कुछ कहें। राजा रत्नकीर्ति ने प्रश्न किया: "कोसलराज विदूरथ के देहान्त के उपरान्त, कोसल का शिशु सम्राट क्या राजमाता अवन्तिपुत्री की आज्ञा का पालन नहीं करता?"

प्रवरसेन ने उत्तर दिया: "कोसल की राजमाता, अवन्ति के राजकुल में जन्म लेने के अनन्तर, अनेक वर्ष तक कोसल की युवराज्ञी एवं महादेवी रह चुकी हैं।"

"क्या इसी कारण उनकी शिराओं में अवन्ति के राजकुल का शोणित नहीं रहा?"

"किन्तु, आर्यश्रेष्ठ! मगधराज की पट्टमहिषी वजिरादेवी भी तो कोसल के राजकुल की सन्तान हैं। तो क्या मगधराज......

"महाराज अजातशत्रु वैदेहीपुत्र समर्थ पुरुष हैं।"

"और मगध के राजकुल की दुहिता, देवी पद्मावती, का वरण करने वाले वत्सराज उदयन?"

"वत्सराज की पट्टमहिषी, देवी वासवदत्ता, अवन्ति के राजकुल की

सन्तान हैं।"

प्रवरसेन हँसने लगे। उस हँसी में व्यङ्ग अथवा परिहास नहीं था। केवल अनुकम्पा थी। राजा रत्नकीर्ति के विलक्षण बुद्धि-विलास ने प्रवरसेन को चकित कर दिया था। वे कहने लगे: "आर्यश्रेष्ठ! आपके समान सर्वविद्यासम्पन्न, सर्वगुणनिधान शिष्य पाकर आचार्य विरूपाक्ष धन्य हो गए।"

कटाक्ष की अवगणना करके रत्नकीर्त्ति ने पूछा: "प्रवरसेन! मैं यह जानना चाहता हूँ कि, वृज्जिसंघ का मन्तव्य, जानकर, अवन्ति अपने कुचक्र से विरत होगा या नहीं?"

"आर्यश्रेष्ठ का आशय कौन से कुचक्र से है? अवन्ति ने एक कुचक्र का प्रवर्तन तो नहीं किया। तीन-तीन कुचक्रों का आविष्कार तो आप अभी-अभी कर चुके है। न जाने आप कितने अन्य कुचक्रों से परिचित हैं।"

"मल्लराष्ट्र के साथ मैत्री करने का मनोरथ अवन्ति को त्याग देना चाहिए।"

"किसलिए?"

"वृज्जिसंघ उस सन्धि को स्वीकार नही करेगा।"

"किन्तु सन्धि तो मल्लराष्ट्र तथा अवन्ति के मध्य हो रही है, आर्य-श्रेष्ठ! वे दोनों स्वाधीन राष्ट्र है।"

"वह सन्धि वृज्जिसंघ के विरुद्ध है।"

"यह आपका भ्रम है। अवन्ति में वृज्जिसंघ के प्रति किसी प्रकार का वैरभाव विद्यमान नहीं।"

"मल्लराष्ट्र में वृज्जिसंघ के प्रति वैरभाव विद्यमान है।"

"अवन्ति उस वैरभाव को दूर करने की चेष्टा करेगा।"

"अथवा मल्लराष्ट्र को वृज्जिसंघ पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित करेगा?"

"अवन्ति किसी राष्ट्र की आक्रमणात्मक प्रवृत्ति का पोषण नहीं करता।"

"वृज्जिसंघ के लिच्छवि-गण अवन्ति का मनोभाव नहीं देख पाएँगे। वे देख पाएँगे अवन्ति का बाह्य आचरण। मल्लराष्ट्र वृज्जिसंघ के प्रति

शत्रुत्व का पोषण करता है। मल्लराष्ट्र को अवन्ति के साथ सन्धि-सूत्र में आबद्ध देखकर, लिच्छवि-गण में अवन्ति के विरुद्ध विक्षोभ की सृष्टि होगी।"

"आपके कथनानुसार तो वह विक्षोभ पहिले ही विद्यमान है।"

"विक्षोभ में वृद्धि होगी।"

"वृज्जिसंघ के असंयम का अवरोध करना अवन्ति का दायित्व नहीं, आर्यश्रेष्ठ ! वृज्जिसंघ ने यदि असंयम का आचरण किया तो वह, शीघ्र ही, अपने विनाश को आमन्त्रित करेगा।"

प्रवरसेन उठ कर खड़े हो गए। सन्धिवार्ता आरम्भ होने के पूर्व ही असफल हो चुकी थी।

किन्तु राजा रत्नकीर्ति, कोपाविष्ट हो कर, अपने आसन पर उपासीन रहे। रस एवं संस्कार के आचार्य रत्नकीर्ति, गमनोद्यत अतिथि के प्रति प्रत्युत्थान की आर्य-परम्परा को भी नहीं निभा सके। न ही उन्होंने पुलोमजा को बुला कर आदेश दिया कि वह अनङ्गरेखा द्वारा प्रवरसेन के आतिथ्य का आयोजन करे।

प्रवरसेन ने, द्रुतपद, रत्नकीर्ति के आगार से निष्क्रमण किया। तब राजा रत्नकीर्ति ने पुलोमजा को बुलाकर कहा : "पुलोमे ! महाराज अजातशत्रु वैदेहीपुत्र के दूत को सादर मेरे आगार में ले आओ।"

: ३ :

श्रावण मास समुपस्थित है। निबिड़ निदाघ द्वारा नीरसीकृता वृज्जि की वसुंधरा, वारिवर्षण के प्रथम शीकर-सम्पात का स्पर्श पाकर, आपन्नसत्त्वा होने लगी है। अपने-अपने क्षेत्र एवं केदार में लोष्ट-भेदन-कर्म का समापन करके बीजवपन के लिए व्यग्र हैं, वृज्जि संघ के कर्मठ कृषीवल। अपराह्न वेला अतिवाहित हो चली। सूर्यास्त होने में अभी एक मुहूर्त का विलम्ब है। पूर्वदिशि के क्षितिजकूल पर उदीयमान हस्तिकाय बलाहकमाला, आकाशपथ का अतिक्रमण करके, प्राची की क्षितिजप्राचीर को प्रछन्न करने के लिये अग्रसर हो रही है। अवनितल पर आकीर्ण है अंशुमालि का अवशिष्ट किरणजाल। मानो, प्रवास से प्रत्यावर्तित प्रणयी का प्रथम परिरम्भण करके, कोई विरहविताड़ित वामा अपने व्रीडारक्त वक्त्र पर अवगुण्ठन आलम्बित करने का अलस प्रयास कर रही हो।

ऐसे समय में, कोटिग्राम से वैशाली की ओर जानेवाले वणिक्पथ के पूर्व पार्श्व पर, वनप्रान्त की एक वीथिका का अवलम्बन लेकर, पदयात्रा-रत हैं आयुष्मान उदय एवं अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र। श्रमण ने अपने काषाय-वस्त्र का परित्याग करके वृज्जिभूमि के साधारण ग्रामीण गृहपति का वेश धारण किया है। अनिरुद्ध एक लिच्छवि-सुभट-सुलभ सुवेष से सुसज्जित हैं। शिर पर शिरस्त्राण। कलेवरार्ध पर लौह-कञ्चुक। वामस्कंध से शरासन आलम्बित। दक्षिण स्कन्ध पर तुङ्गायित तूणीर। कटिबंध में कृपाण। एक हाथ में शक्तिशूल। दूसरे में चर्मफलक।

आयुष्मान उदय ने कहा: "कोटिग्राम में तुम्हारे द्वारा सम्पादित संगठन-कार्य सर्वथा स्तुत्य है, सौम्य!"

अनिरुद्ध बोले: "भन्ते; पाटलिग्राम से वैशाली की ओर यातायात करने वाले मागध कोटि-ग्राम होकर जाते हैं। कुछ काल से यातायात करने वाले मागधों की संख्या में अपूर्व वृद्धि हो रही है। कोटि-ग्राम में मागधों का उच्छृंखल आचरण देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे वृज्जि महाजनपद का यह अंचल मगध-साम्राज्य में समाविष्ट हो गया हो। मागधों के असह्य उत्पात के कारण मेरे लिये अपने संगठन का संयम स्थिर रखना, दिन-प्रति-दिन, दुस्साध्य होता जा रहा है।"

"अब अधिक दिन संयम न रखना होगा, सौम्य! मागधों को दण्ड देकर वृज्जिसंघ से विनिर्वासित करने की वेला शीघ्र आ रही है।"

"वैशाली के संगठन का क्या समाचार है, भन्ते! अनेक दिन से मैं देवी के साथ साक्षात्कार नहीं कर पाया।"

"वत्सला का संगठन-कार्य भी अत्यन्त सुचारु रूप से सम्पन्न हो रहा है। अब तुमको उचित है कि कोटिग्राम के निकट अपना आवास त्याग कर वैशाली के समीपवर्ती आवास में चले आओ।"

"किन्तु भन्ते! मगध का प्रथम प्रहार तो इस अंचल पर ही आपातित होगा। क्या, उस अकस्मात्-वृत्त की अपेक्षा में, मेरा यहाँ रहना आवश्यक नहीं?"

"मागध आक्रमण का निरोध कोटिग्राम में सम्भव नहीं। इस स्थल पर युद्ध करके तुम्हारे लिच्छवि मागध-सैन्य का गत्यवरोध ही कर पायेंगे।

उस अवसर का लाभ उठाकर तुम्हें वैशालीदुर्ग की संरक्षा का दायित्व अपने हाथ में लेना होगा। अतएव, तुमको अभी से वैशाली के निकट रह कर वत्सला को परामर्श देना चाहिये कि वह उस दुर्दिन के निमित्त किस प्रकार दुर्ग के दुर्बल-स्थलों पर अपने संगठन का सन्निवेश करे। दुर्गरक्षा अतीव दुष्कर कार्य है, सौम्य ! उसका रहस्य न इस श्रमण को ज्ञात है, न लिच्छवि-वंश के नारीरत्न को। वह कार्य तो तुम जैसे अप्रतिहत दुर्गपाल को ही करना होगा।"

"आपका आदेश शिरोधार्य है, भन्ते ! किन्तु उसके पूर्व मैं एक बार मिथिला की ओर जाना चाहता हूँ। मगधराज के समारम्भ से यह निश्चित है कि वह दीर्घकाल तक वैशालीदुर्ग का पर्यवसन करने के लिए प्रस्तुत होकर ही जाह्नवी को पार करेगा। पर्यवसन-काल में यह अतीव आवश्यक होगा कि मिथिला की ओर से वैशाली में प्राप्त होने वाले समर-संभार का पथ अनवरुद्ध रहे।"

"वत्सला से वार्त्तालाप करके तुम समयोचित समर-संभार का मात्रा-परिमाण निश्चित कर लो। तदुपरान्त ही तुम मिथिला के संगठन को यथेष्ट परामर्श दे सकोगे।"

"मिथिलावर्ती संगठन के विषय में आपका क्या विचार है, भन्ते !"

"वह संगठन सर्वापेक्षा सुदृढ़तर है। तुम्हारे मातुलकुल के अप्रतिम प्रताप के कारण। उनकी सम्पूर्ण सहायता प्राप्त करके, उस समस्त अञ्चल में, द्रुतगति से संगठन का प्रसार हो रहा है। संगठन सर्वथा शिक्षित, अनुशासित एवं शत्रु द्वारा दुर्भेद्य है।"

अनिरुद्ध के मुख से संतोषानुभूति का एक निश्वास निकला। उन्होंने अन्य कोई प्रश्न श्रमण से नहीं पूछा। न श्रमण ने ही अन्य समाचार सुनाया। वे दोनों मौन रहकर पथ पार करने लगे।

कुछ क्षण उपरान्त अनिरुद्ध ने परितापपूर्ण वाणी में कहा : "भन्ते ! यदि अवन्ति के साथ वृज्जिसंघ का मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हो जाता तो वैशाली को दैव के इस दुर्विपाक के लिए प्रस्तुत न होना पड़ता।"

आयुष्मान उदय ने, अनिरुद्ध की ओर दृष्टिपात किए बिना ही, शान्त स्वर में उत्तर दिया : "सौम्य ! यह तुम्हारा भ्रम है कि अवन्ति

का अवलम्बन ग्रहण करके वृज्जिसंघ का त्राण हो सकता है।"

"भ्रम क्यों है, भन्ते ! अवन्ति में अपार शक्ति का समारोह है। अवन्ति द्वारा आक्रान्त मगध वृज्जिसंघ की ओर अभिमुख होने का साहस नहीं करता।"

"मगध ने भर्ग जनपद की स्वाधीनता को ध्वस्त किया तब अवन्ति की वह अपार शक्ति कहाँ गई थी, सौम्य ! भर्ग तो अवन्ति द्वारा आश्वासन-प्राप्त राष्ट्र था।"

"यही संशय अनेक बार मेरे मानस में भी जन्म लेता है, भन्ते ! किन्तु समाधान किसी दिन नहीं मिला।"

"अवन्ति सबल होकर भी दुर्बल है। समर्थ होकर भी असमर्थ। अवन्ति के नेत्रों में विस्फारण देखा जा सकता है, बुद्धि में व्यवसाय नहीं। अवन्ति के स्वर में उत्तेजना मिलती है, कर्म में उत्साह नहीं मिलता। अवन्ति में नीति का नैपुण्य है, किन्तु ध्येय की साधना नहीं। और साधना के अभाव में, अवन्ति का समस्त सम्बल एक निष्फल परिग्रह के अतिरिक्त कुछ नहीं रह जाता। उस परिग्रह के दुर्वह भार से भ्रान्त अवन्ति का पतन भविष्य में अवश्यम्भावी है।"

अनिरुद्ध ने अचिन्तनीय आशंका से काँप कर पूछा : "तब आर्यावर्त का त्राण किस प्रकार होगा, भन्ते ! उस ओर से पारसीक असुरसाम्राज्य की म्लेच्छवाहिनी। इस ओर मगध के अनार्य आततायी की कुत्सित कुचक्ररचना। अवन्ति के अतिरिक्त आर्यावर्त के इस शत्रुसमवाय का विरोध करने में अन्य कौन सक्षम है ?"

आयुष्मान उदय ने अविचलित रह कर उत्तर दिया : "कोई भी नहीं, सौम्य ! अवन्ति भी नहीं।"

"तब तो पारसीक साम्राज्य द्वारा सम्पादित आर्यावर्त की परतन्त्रता, अथवा मगध द्वारा अनुष्ठित आर्य-परम्परा का विनाश, अनिवार्य है, भन्ते !"

"अनिवार्य। सूर्योदय एवं सूर्यास्त की भाँति अनिवार्य।"

"फिर......

अनिरुद्ध कुछ कहें उसके पूर्व ही एक आर्तनाद से वनप्रान्त का वातास

विद्ध हो गया। वणिक्पथ की ओर से आया था किसी त्रसित पुरुष का रोमहर्षक चीत्कार। अनिरुद्ध, तुरन्त ही स्कन्ध से शरासन उतार कर, शरसंधान के लिये समुद्यत होने लगे। किन्तु, उनका वारण करते हुए, आयुष्मान उदय ने कहा : "शरसंधान का समय अभी भी अनवाप्त है, सौम्य!"

तब वे दोनों, द्रुतपद, वणिक्पथ की ओर अग्रसर हुए। वन के वृक्ष-वृन्द एवं लतागुल्म से अपने-आपको आवृत रख कर। पथ के सन्निकट जाकर वे, विटपवरूथ द्वारा व्युत्पन्न एक विविक्त स्थान में संरूढ़ हो गये। उस स्थान से वे वणिक्पथ का दृश्य देख सकते थे, किन्तु वणिक्पथ पर से किसी के लिये भी उनका आभास दुष्प्राप्य था। विशेषकर, आसन्न महावृष्टि के पूर्व घिरते हुए अन्धकार के कारण।

पथ के मध्य में, बहुमूल्य वडवा पर आरूढ़ एक सार्थवाह भयभीत एवं कातर दृष्टि से इतस्ततः देख रहा था। और उसको चतुर्दिक घेर कर खड़े थे कतिपय कृषीवलवेषी भीमकाय पुरुष।

वडवा का मार्ग रोक कर खड़े हुए पुरुष ने सार्थवाह को सम्बोधित करके कहा : "वैशाली के अबोध लिच्छवि-गण को प्रवञ्चित करके जो सुवर्ण तू उज्जयिनी ले जा रहा है, उसका समर्पण किए बिना तेरे प्राणों का त्राण नहीं हो सकता।"

सार्थवाह ने, यथासाध्य दृप्त कंठ से, उत्तर दिया : "मैं प्रवञ्चक नहीं, सुविख्यात सार्थवाह हूँ।"

पुरुष ने, उसका तिरस्कार करते हुए कहा : "सार्थवाह और प्रवञ्चक में प्रभेद क्या होता है, रे तस्कर!

सार्थवाह इस प्रश्न का प्रत्युत्तर देने में असमर्थ रहा। अपने जीवन में उसने प्रथम वार सुना था यह प्रश्न। आज तक किसी ने उसको तस्कर कहकर नहीं पुकारा था।

तब वडवा के पार्श्व में खड़े एक अन्य पुरुष ने सार्थवाह का भुजबंध पकड़ कर कहा : "अवरोहण कर। देखें तेरी गोणी में कितने सुवर्ण हैं।"

गोणी का नाम सुनकर सहसा सार्थवाह को क्रोध आ गया। भृकुटि-द्वय को कुञ्चित करके, वह बोला : "गोणी से आपका क्या प्रयोजन है?"

उत्तर दिया प्रथम पुरुष ने : "गोणी में जो सुवर्ण है वह वृज्जि-संघ की सम्पत्ति है। और हम वृज्जिसंघ की संतान हैं।"

"किन्तु वह सुवर्ण मुझे अपने पण्य के विनिमय से प्राप्त हुआ है। तीन शकटभार था मेरा पण्य।"

"क्या-क्या पण्य था ?"

"पारसीक देश से भृगुकच्छ में आयात बहुमूल्य वस्त्र, प्रसाधन-द्रव्य, चित्रविचित्र शय्यास्तरण, द्राक्षारस की सुगन्धित सुरा......

"सुन लिया। इसी व्यर्थ वस्तु-समुदाय को तू पण्य कहता है ?"

"पूर्व समय में मैं अवन्ति, मत्स्य तथा चेदि में प्रादुर्भूत पण्य लेकर वैशाली आया करता था। किन्तु कतिपय वर्ष से, लिच्छवि महाभाग पारसीक पण्य के अतिरिक्त अन्य किसी पण्य का क्रय नहीं करते।"

"पण्य किस देश का है, यह जानना हमारा प्रयोजन नहीं। हम तो केवल यही चाहते है कि व्यर्थ वस्तु-संग्रह के निमित्त वृज्जिसंघ का सुवर्ण वृज्जिभूमि के बाहर न जाए।"

"किन्तु पण्य का आयात करने के लिए सुवर्ण का निर्यात अनिवार्य है।"

"कैसे अनिवार्य है ? पण्य के विनिमय में क्या तू पण्य नहीं ले जा सकता ?"

सार्थवाह हँसने लगा। फिर वह बोला : "उज्जयिनी में विक्रय करने योग्य पण्य जिस दिन वैशाली में उपलब्ध होगा उस दिन अवश्य ले जाऊँगा।"

प्रत्युत्तर में, वडवा के पृष्ठ देश पर खड़े पुरुष ने सार्थवाह के शिर पर दण्डप्रहार किया। सार्थवाह का उष्णीष उत्पतित होकर पथ-पांशु में जा गिरा। प्रहार में प्राबल्य नहीं था। तो भी सार्थवाह रुदन करने लगा।

प्रहारकर्त्ता पुरुष ने सार्थवाह की भर्त्सना करते हुए कहा : "उज्जयिनी ले जाने योग्य पण्य तुझे कुशीनगर में मिलेगा। लूटने के लिए लिच्छवि, मैत्री करने के लिये मल्ल।"

सार्थवाह ने रोते-रोते कहा : "मैंने तो कुशीनगर कभी देखा भी

नहीं। मल्लों से मेरा क्या सम्बन्ध है ?"

प्रथम पुरुष ने उत्तर दिया : "यह प्रश्न तू अवन्ति के महामात्य प्रवरसेन से पूछेगा तो वह तुझे समझा देगा कि मल्लों से तेरा क्या सम्बन्ध है।"

प्रवरसेन का नाम सुनकर सार्थवाह प्रसन्न हो उठा और अहंकार के भाव से बोला : "आर्य प्रवरसेन तो मेरे मित्र हैं। अर्थात् मेरी नवोढा भार्या के मातुल के पितृव्य के जमाता के भगिनिपति के मित्र हैं।"

"तभी तो प्रवरसेन का गूढ़पुरुष तू, वर्ष-प्रतिवर्ष, वैशाली में आता है।"

अब की बार सार्थवाह अवाक् रह गया। वह अविश्वास के स्वर में बोला : "गूढ़ पुरुष ! मैं ! ! उज्जयिनी के नगरश्रेष्ठी का जामाता ! ! !"

"हाँ, तू ! वृज्जिसंघ के दुर्बल-स्थलों का समाचार ले जाकर तू मल्लों को देता है। और वैशाली में कितवकला द्वारा उपार्जित सुवर्ण भी। तू वृज्जिसंघ का शत्रु है।"

"वृज्जिसंघ का शत्रु ! मैं ! ! राजा रत्नकीर्ति के राजप्रासाद में जाकर पण्य विक्रय करने वाला उज्जयिनी का सुविख्यात सार्थवाह ! ! !"

"विश्वासघात करने के लिए ही तू आर्यश्रेष्ठ राजा रत्नकीर्ति का विश्वासपात्र बना है।"

"असम्भव अभियोग ! धर्मावतार राजा रत्नकीर्ति के साथ तो पशु भी विश्वासघात नहीं करेगा।"

"किन्तु तू तो पशु से भी निम्नतरकोटि का जन्तु है। अवन्ति का सरीसृप। जहाँ तेरा पोषण होता है वहीं तू दंशन भी करता है।"

वडवा के पार्श्व में खड़े पुरुष ने धक्का देकर सार्थवाह को अश्वपर्याण से पातित कर दिया। और धरा पर विलुण्ठित सार्थवाह करुण स्वर में विलाप करने लगा।

विटपवरूथ में अनिरुद्ध की करमुष्टि सहसा अपने कृपाण पर निबद्ध हो गई। किन्तु श्रमण ने, सर्वथा शान्त रहकर, अनिरुद्ध से अनुरोध किया कि वे किसी प्रकार की चेष्टा न करें।

उस ओर, वड़वा के पर्याण में न्यस्त गोणी को उतारकर खोलते हुए प्रथम पुरुष ने कहा : "गोणी सुवर्ण-समुच्चय से आकण्ठ आपूर्ण है।"

भूमि पर से उठकर, पुरुष की ओर भागता हुआ सार्थवाह चीत्कार

करने लगा : "तीन शकटभार पण्य का मूल्य है यह सुवर्ण ! मेरे जीवन-भर का उपार्जन !!"

सार्थवाह के वक्ष पर पादप्रहार करके उसे पुनरेण भूविलुण्ठित करता हुआ पुरुष बोला : "तेरा उपार्जन ! यह क्यों नहीं कहता कि लिच्छविगण को वञ्चित करके सञ्चित किया हुआ पापार्जन है ?"

सार्थवाह ने विवाद के लिए प्रस्तुत होकर पूछा : "पण्यविक्रय पाप कैसे हो गया ?"

"सबके लिए पाप नहीं है। किन्तु अवन्ति के अधीश्वर, अवन्ति द्वारा अर्जित सुवर्ण का प्रयोग समस्त आर्यावर्त में पापाचार का प्रसार करने के लिए करते हैं।"

प्रथम पुरुष के आदेश से एक अन्य पुरुष ने सार्थवाह की गोणी अपने स्कन्धदेश पर स्थापित कर ली। सुवर्ण का हरण होते देखकर सार्थवाह क्रन्दन कर उठा। फिर वह अपने मस्तक का ताडन करता हुआ बोला : "यदि मुझे ज्ञात होता कि वृज्जिसंघ में अब दस्युवृत्ति का भी पोषण होता है तो मैं एकाकी यात्रा नहीं करता। राजकुमारी पुलोमजा ने मेरा पण्य-क्रय करते समय कहा था कि शक्तिहीन शिशु भी, सुवर्ण का शकटभार लेकर, वृज्जिभूमि के किसी भी वणिक्पथ पर, अर्द्ध-रात्रि के अन्धकार में भी, अबाध यात्रा कर सकता है।"

प्रथम पुरुष ने जाते-जाते रुककर कहा : "अवन्ति के इस अधम वणिक् ने हम जैसे ललाम लिच्छवियों को दस्यु कहने की धृष्ठता की है। दस्युदेश के इस गूढ़पुरुष को इस जघन्य अपराध का दण्ड मिलना चाहिए।"

एक अन्य पुरुष ने कटिबन्ध से कृपाण निकालकर निवेदन किया : "आर्य ! आप आदेश दीजिए। मैं इसी क्षण इस नरककीट का कण्ठ-कर्तन किए देता हूँ।"

सार्थवाह ने उत्क्रोश किया : "हाँ, मेरा कण्ठकर्तन कर दो ! सुवर्ण के बिना शून्य इस शरीर का अब मैं क्या करूँगा !!"

प्रथम पुरुष ने कहा : "तू जीवित रहा तो उज्जयिनी में जाकर प्रवर-सेन को समाचार देगा कि वृज्जिसंघ अब जागृत हो गया है। और अवन्ति

का कोई अन्य वञ्चक अथवा गूढ़पुरुष भविष्य में वृज्जिसंघ की ओर दृष्टिपात नहीं करेगा। अन्यथा उसे भी तेरी भाँति मल्लों की सहायता करने का भरपूर मूल्य हम लिच्छविगण दे देंगे।"

सार्थवाह ने तर्जना की : "मल्ल-फल्ल मैं कुछ नहीं जानता। अपना सुवर्ण खोकर मैं उज्जयिनी नहीं जाऊँगा। जाऊँगा राजा रत्नकीर्ति के निकट। राजकुमारी पुलोमजा के समीप आर्तनाद करूँगा। राजा रत्नकीर्ति धर्मावतार हैं। राजकुमारी पुलोमजा असित का त्राण करने वाली देवी। वे दुष्ट दस्युदल का दलन करेंगे। और मुझे मेरा अपहृत सुवर्ण देंगे। वे नहीं चाहते कि उज्जयिनी का सुप्रसिद्ध सार्थवाह स्वदेश में जाकर वृज्जिसंघ के विरुद्ध अवन्ति में आवेश की सृष्टि करे।"

"आवेश में आकर अवन्ति वृज्जिसंघ का क्या कर लेगा, रे वणिक्!"

"अवन्ति की अवगणना करने का साहस आर्यावर्त में कौन अभागा करेगा?"

"यह सब बकवाद तू कुशीनगर में जा के कर। वहाँ अवन्ति के वेतन-भोगी भृत्यों का समवाय मिलेगा तुझे। अवन्ति के अन्न से पोषित कुशीनगर के मल्ल मानते हैं कि अवन्ति की अवगणना नहीं की जा सकती। किन्तु वृज्जिसंघ के लिच्छवि-गण अवन्ति का तिरस्कार और मान-मर्दन करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहते हैं। यह समाचार तू, आर्यश्रेष्ठ राजा रत्नकीर्ति की ओर से, अपने महामात्य और राजन्य दोनों को, देना।"

कृपाणहस्त पुरुष ने कृपाण कोष में रख लिया और, एक क्षुरिका निकाल कर, वह प्रथम पुरुष से बोला : "इस नीच वणिक् की नासिका का छेदन कर देता हूँ। अपना नासिकाविहीन मुख प्रवरसेन को दिखला कर यह उसे स्पष्टतया सूचित कर देगा कि लिच्छविगण मल्लों के मित्र अवन्ति की क्या दुर्दशा कर सकते हैं।"

वह क्षुरिका घुमाता हुआ सार्थवाह की ओर अग्रसर हुआ। उसकी दृढ़प्रतिज्ञ मुद्रा देखकर सार्थवाह ने दोनों हाथों से अपनी नासिका को आच्छादित कर लिया। फिर वह प्रथम पुरुष के चरणों में शिर रखकर अनुनय करने लगा : "त्राहि माम्! मैंने इसी वर्ष एक नवयौवना वणिक्-पुत्री का वरण किया है। मेरी नासिका न रही तो वह भी मेरे आवास

में न रहेगी। और मैं अन्य भार्या कहाँ से लाऊँगा ?"

प्रथम पुरुष ने हँसते हुए कहा : "उज्जयिनी की वेश्याएँ क्या हुईं, रे वणिक् ! अवन्ति में तो प्रत्येक नारी वेश्यावृत्ति करती है। प्रवरसेन के मित्र को एक-न-एक मिल ही जायगी। अथवा कुशीनगर के मल्ल तुझे अपनी दुहिता दे देंगे। उनकी सेवा में नष्ट हो रही तेरी नासिका...

पुरुष कुछ और भी कहना चाहता था। किन्तु उसके अनेक सहचर, एक स्वर में बोले : "आर्य ! कोटिग्राम की ओर से अश्वारोही आ रहे हैं।"

तब, उस पुरुष का आदेश पाकर, उसके सहचरों ने, क्षिप्रहस्त से सार्थवाह का उष्णीष खोलकर, उसे एक वृक्ष से बाँध दिया। और फिर वे सब वणिक्पथ के पश्चिम की ओर प्रसारित वनप्रदेश में प्रविष्ट हो गये। वडवा के ह्रेषित से पथप्रान्त गूँज उठा।

अनिरुद्ध ने आयुष्मान उदय से कहा : "भन्ते ! वृज्जिसंघ का गौरव ग्रसित हो गया। लिच्छवि-गण लाञ्छित हो गये।"

श्रमण हँसने लगे। वे कुछ बोले नहीं। कुछ क्षण उपरान्त दश अश्वारोहियों का एक दल, कोटिग्राम की ओर से, उस स्थल के समीप आया। उनके अश्व प्लुतगति से प्रधावमान थे। किन्तु सार्थवाह का करुणाक्रन्दन एवं वडवा का ह्रेषित सुनकर वे रुक गये। अश्वारोहियों के अग्रणी ने, वृक्ष के निकट जाकर, सार्थवाह से प्रश्न किया : "कौन है तू ?"

सार्थवाह ने मुख खोलने के पूर्व बद्धाञ्जलि होने की चेष्टा की। किन्तु वृक्ष से बंधे होने के कारण उसके हाथ उदर-प्रान्त से ऊपर न उठ सके। तब वह बोला : "आर्य ! मैं उज्जयिनी का सुविख्यात सार्थवाह हूँ। पण्यविक्रय करके, वैशाली से कोटिग्राम जा रहा था। दस्युदल ने मेरे समस्त सुवर्ण का अपहरण कर लिया......

अग्रणी ने हँसकर कहा : "तुझे दस्युदल से बचना था तो तू वृज्जिसंघ में किस लिए आया, रे वणिक् !"

सार्थवाह ने विस्मित होकर पूछा : "क्या आप वृज्जि महाजनपद के वासी नहीं हैं ?"

"नहीं, मैं वृज्जि का व्रात्य नहीं, मगध का कुलीन क्षत्रिय हूँ।"

"मगध तो वृज्जिसंघ का शत्रुराष्ट्र है। आप यहाँ क्या कर रहे हैं? क्या आपको बन्दी होने का भय नहीं?"

"तू अवन्ति का वासी है ना। इसीलिए ऐसी बात करता है। अवन्ति के लिए आर्यावर्त के अन्यान्य राष्ट्रों मे परस्पर प्रीति असह्य है।"

"यह सब राजनीति का प्रसंग है, आर्य! मैं कुछ नहीं जानता। आप कृपा करके मुझे बन्धन से मुक्त कर दीजिये।"

"अवन्ति के वणिक् को मैं मुक्त कर दूं! मैं मागध हूँ। तुझे तो कोई मल्ल ही मुक्त कर सकता है। कुशीनगर संदेश भेज दे। वृज्जिसंघ में तेरा मुक्तिदाता तुझे नहीं मिलेगा। अथवा किसी स्वदेशद्रोही को खोज।"

मागध अग्रणी, अपने सभी साथी अश्वारोहियों को लेकर, वैशाली की ओर अग्रसर हो गया। सार्थवाह पुनः क्रन्दन करने लगा। इसी समय वृष्टि आरम्भ हुई और वह शिख से लेकर नख तक जलसिक्त हो चला। वनप्रदेश और वणिक्पथ अब सर्वथा जनविहीन था।

तब, आयुष्मान उदय की आज्ञा प्राप्त करके, अनिरुद्ध विटपविरूथ से बाहर निकले और सार्थवाह के समीप जा पहुँचे। एक शस्त्रास्त्रसज्जित पुरुष को मौनभाव से अपने बन्धन खोलते देखकर सार्थवाह ने प्रश्न किया: "तुम भी दस्यु हो क्या?"

अनिरुद्ध ने उत्तर नही दिया। सार्थवाह ने फिर पूछा: "अथवा मागध?"

"वृज्जिसंघ में क्या दस्यु एवं मागध के अतिरिक्त अन्य मनुष्य नहीं होते?"

"होते तो आज मेरी यह दुर्दशा क्यों होती?"

बन्धन खुलते ही सार्थवाह लुढककर गिरने लगा। अनिरुद्ध ने, अपना बाहुद्वय प्रसारित करके, उसे आश्रय देते हुए कहा: आप तो सर्वथा श्रांत प्रतीत होते है, गृहपति! वडवा पर आरोहण करने में मैं आपकी सहायता कर देता हूँ। फिर आप अपने गन्तव्य की ओर चले जाएँ।"

सार्थवाह बोला: "मैं शीत से विजडित हुआ जा रहा हूँ। और क्षुधा से आर्त। तुरन्त ही शुष्क वस्त्र एवं आहार उपलब्ध न हुए तो मै जीवित

नहीं रहूँगा ।"

"मेरे पास वस्त्र हैं। आहार भी। किन्तु आपको कुछ दूर चलकर मेरे आवास तक जाना होगा।"

"एक घूँट आसव पिला दो। आवास तक चलूँगा।"

"मेरे पास आसव नहीं है, गृहपति !"

"तो क्या तुम लिच्छवि नहीं हो ?"

"हूँ तो लिच्छवि ही।"

"तुम कैसे लिच्छवि हो ? वैशाली में तो प्रत्येक लिच्छवि आसव की कूपी साथ लेकर घर से निकलता है। वह आसवपान के बिना एक क्षण अतिवाहित करना भी हेय समझता है।"

अनिरुद्ध मौन रहे। सार्थवाह सत्य कह रहा था। तब उन्होंने सार्थवाह को उठाकर वडवा के पृष्ठ पर स्थापित कर दिया। और अश्व की वल्गा पकड़ कर वे वनप्रदेश की ओर जाने लगे। सार्थवाह ने भयभीत होकर पूछा : "उस ओर कहाँ जा रहे हो ?"

"इस वन के भीतर ही मेरा आवास है।"

"तब तो तुम सज्जन पुरुष नहीं हो सकते।"

"नहीं, मैं सज्जन पुरुष नहीं हूँ। सज्जन पुरुष तो वे थे जिन्होंने आपको, सुवर्णभार से मुक्त करके, वृक्ष के आलिंगनपाश में संश्लिष्ट कर दिया।"

सार्थवाह सावधान हो गया। वह आशा से अनुप्राणित होकर बोला : "तुम उन्हें जानते हो ? कौन थे वे ?"

"रत्नकीर्ति के वेतनभोगी भृत्य।"

सार्थवाह का अवशिष्ट शिष्टाचार भी विस्मृत हो गया। वह कुपित होकर बोला : "तुम अवश्य कोई उन्मादग्रस्त पुरुष हो।"

"क्यों ?"

"धर्मावतार राजा रत्नकीर्ति के विरुद्ध कोई उन्मादग्रस्त पुरुष ही दस्युवृत्ति का दोष लगा सकता है।"

अनिरुद्ध के हाथ से वल्गा छूट पड़ी। वडवा खड़ी रह गई। और अनिरुद्ध आगे बढ़ गये। उनको इस प्रकार जाता हुआ देखकर सार्थवाह ने चीत्कार किया : "मुझ एकाकी को मृत्यु के मुख में छोड़ कर तुम कहाँ

जा रहे हो ?"

अनिरुद्ध ने मुख मोड़ कर कहा : "धर्मावतार राजा का स्मरण करो, गृहपति ! वह तुरन्त ही आपको दर्शन देकर आपका त्राण करेगा।"

"मुझे राजा के परित्राण की आवश्यकता नहीं। तुम्हारी ही सहायता चाहिए।"

"किन्तु मैं तो उन्मादग्रस्त हूँ।"

"हुआ करो। मुझे तुमसे अपनी दुहिता का विवाहनहीं करना। केवल अन्न-वस्त्र की आकांक्षा है। उज्जयिनी लौट कर तुम्हारे लिये यथोचित पारितोषिक प्रेषित करूँगा। मैं मुषित हो गया तो क्या, मेरी नवोढा नवयौवना भार्या तो नगरश्रेष्ठी के श्वसुर के मातुल के श्यालक की पत्नी की भगिनी की......

अनिरुद्ध हँसने लगे। विटपवरूथ से आगे आकर आयुष्मान उदय ने कहा : "यह अवन्ति का महाभाग वणिक्पुत्र है, सौम्य ! इसकी अवहेलना मत करो।"

श्रमण की ग्रामीण वेशभूषा को लक्ष्य करके, सार्थवाह उनके अशिष्ट व्यवहार पर क्रुद्ध हो उठा। फिर उनकी तर्जना करता हुआ वह बोला : "क्यों रे कृषक ! तू इतना भी नहीं जानता कि उज्जयिनी के सुविख्यात सार्थवाह का नाम किस प्रकार लिया जाता है ?"

अनिरुद्ध ने सार्थवाह से कहा : "गृहपति ! इनकी अवज्ञा करना आपके लिए कल्याणकारी न होगा।"

सार्थवाह ने भयभीत होकर पूछा : "यह कौन है ?"

"मेरे शास्ता।"

"किन्तु शस्त्रास्त्र तो तुमने धारण किए हैं।"

अनिरुद्ध कुछ कहें उसके पूर्व ही श्रमण ने कह दिया : "अवन्ति के सार्थवाह से विवाद मत करना, सौम्य ! शस्त्र की अनुपस्थिति में शासन की बात इसके लिये सर्वथा दुर्विज्ञेय है।"

सार्थवाह ने कुछ नहीं कहा। अनिरुद्ध वडवा की वल्गा पकड़ कर अग्रसर हुए। सबसे आगे आयुष्मान उदय चल रहे थे।

कुछ काल के उपरान्त, वे एक पर्णकुटी के सन्मुख जा पहुँचे। कुटी

का द्वार अपावृत करके अनिरुद्ध ने अन्तर में प्रवेश किया। एक क्षण के अनन्तर कुटी तैलप्रदीप के प्रकाश से भर गई। आयुष्मान उदय भी भीतर चले गये। तब अनिरुद्ध ने बाहर आकर सार्थवाह को वडवा से उतार लिया, और वे उसे कुटी में ले गये।

कुटी का तल तृणास्तरण से आच्छादित था। आयुष्मान उदय एक ओर खड़े सिक्त वस्त्र परिवर्तित कर रहे थे। उनको सम्बोधित करके सार्थवाह ने कहा : "यहाँ तो आसव अवश्य होगा। एक घूँट दे दो। नहीं तो मैं मर जाऊँगा।"

श्रमण ने कहा : "तुम अपने साथ आसव लेकर क्यों नहीं चले, गृहपति ?"

"दो कूपी लेकर चला था। मार्ग में पान कर लिया। कोटिग्राम जाते ही और उपलब्ध हो जाता। अर्धयोजन ही रह गया था अध्वान्त।"

अनिरुद्ध ने सार्थवाह को एक अङ्गोच्छक, अधोवस्त्र तथा उत्तरीय प्रदान किए। वह वस्त्र-परिवर्तन करते-करते बोला : "आहार क्या-क्या है ? भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य---कौन-कौनसा पदार्थ प्रस्तुत करोगे ?"

अनिरुद्ध ने उत्तर दिया : "इस प्रकार का कुछ भी नहीं। केवल भर्जित चणक, लवणकण तथा स्वच्छ जल उपलब्ध हैं।"

"यह क्या मनुष्य का भोजन है ?"

"तो न खाइये।"

सार्थवाह जिह्वा से अपने अधरोष्ठ का लेहन करता हुआ बोला : "न खाऊँ तो क्या प्राण दे दूं ? इस समय जो मिलेगा वही खाऊँगा। इच्छानुकूल भोजन तो उज्जयिनी में ही प्राप्त होता है, अन्यत्र नहीं।"

अनिरुद्ध ने, एक पत्रविरचित पात्र में कतिपय भर्जित चणक एवं लवणकण रख कर, सार्थवाह के सम्मुख कर दिये। सार्थवाह ने चणक-चर्वण करते-करते प्रश्न किया : "अवन्ति के प्रति लिच्छवि-गण सहसा इतने रुष्ट क्यों हो गये ?"

अनिरुद्ध ने उत्तर दिया : "जो लिच्छवि रुष्ट है, वे यह कहते हैं कि अवन्ति ने मल्लराष्ट्र से मैत्री स्थापित करके वृज्जिसंघ से शत्रुता की है।"

"मल्लराष्ट्र से वृज्जिसंघ का क्या वैमनस्य है ?"

"वह एक पुरानी गाथा है।"

"मैं पुरानी गाथा सुनने का रसिक हूँ। अवश्य सुनूँगा।"

अनिरुद्ध ने आयुष्मान उदय की ओर देखा। श्रमण ने मुस्करा कर कह दिया: "गृहपति को वह गाथा सुना दो, सौम्य!"

तब अनिरुद्ध कहने लगे: "आज से तीस वर्ष पूर्व, कुशीनगर के एक महाबली मल्ल, आर्य बन्धुल, कोसलराज प्रसेनजित के सेनापति-पद पर आरूढ़ थे। एक दिन उनकी परमरूपवती भार्या, मल्लिका देवी, ने आपन्न-सत्वा होकर, दोहद प्रगट किया कि वे वैशाली जाकर लिच्छवि-गण की अभिषेक-पुष्करिणी में स्नान करना चाहती हैं। सेनापति ने देवी को समझाया कि उस पुष्करिणी में किसी अलिच्छवि का स्नान करना निषिद्ध है......

सार्थवाह ने बीच ही में प्रश्न किया: "क्यों निषिद्ध है?"

"वह लिच्छवि वंश की परमपूज्या, पुण्यसलिला पुष्करिणी है।"

"उस पुष्करिणी में जल है अथवा अन्य कुछ?"

"जल ही है।"

"जल में तो कोई भी स्नान कर सकता है। लिच्छवि-गण को क्या अधिकार है कि वे पुष्करिणी में स्नान का निषेध करें? अवन्ति में एक भी पुष्करिणी ऐसी नहीं जिसमें स्नान करना निषिद्ध हो।"

अनिरुद्ध ने फिर आयुष्मान उदय की ओर देखा। श्रमण ने कहा: "आगे सुनाओ, सौम्य! अवन्ति का सार्थवाह लिच्छवि-परम्परा से परिचित नहीं है। प्रश्न तो करेगा ही। आशंकाएँ भी उठायेगा।"

तब अनिरुद्ध ने आगे कहना आरम्भ किया: "देवी मल्लिका अपने हठ पर अटल रहीं और अन्त में बन्धुल सेनापति, उनको रथारूढ़ करके, श्रावस्ती से चलते हुए प्रत्यूष के समय पश्चिमद्वार से वैशाली में प्रविष्ट हुए। पुष्करिणी के प्रहरी, उस महाबली मल्ल का प्रहार पाकर, पलायन कर गये। और देवी मल्लिका ने निर्बाध होकर पुष्करिणी में स्नान किया......

सार्थवाह बोला: "स्नान करती हुई सुन्दरी का लावण्य द्विगुणित हो जाता है। उज्जयिनी की सुन्दरियाँ जब सिप्रा में स्नान करती हैं तो

उज्जयिनी के रसिक नागर......

किन्तु सार्थवाह की अवहेलना करके, अनिरुद्ध कहते गये : "लिच्छवियों को जब तक बंधुल मल्ल के दुराचार का समाचार मिला तब तक कोसल के सेनापति, मल्लिका देवी को रथारूढ़ करके, वैशाली दुर्ग का पश्चिमद्वार पार कर चुके थे। आर्यश्रेष्ठ महाली ने, पञ्चशत लिच्छवि योद्धाओं को साथ लेकर, उनका अनुधावन किया। किन्तु लिच्छवि-गण जिस समय उनके समीप पहुँचे, उस समय तक वे गण्डकी पार करके, उस पार खड़े मल्ल सैन्य में मिल चुके थे। नदी के पश्चिमतट पर, लिच्छवि-गण तथा मल्लगण के मध्य, महान संग्राम हुआ। अनेक मल्ल मारे गये। अनेक लिच्छवि भी। स्वयं आर्यश्रेष्ठ महाली का ओष्ठ, क्षत-विक्षत होकर, दो भागों में विभक्त हो गया......

सार्थवाह ने संवेदना से द्रवित होकर कहा : "तब तो वे कई दिवस तक अपनी प्रिया का अधरामृत पान करने में असमर्थ रहे होंगे ?"

अनिरुद्ध का धैर्य नष्ट हो गया। वे मौन होकर आयुष्मान उदय की ओर देखने लगे। श्रमण हँस रहे थे।

सार्थवाह ने कहा : "मल्लगण बड़े ही दुष्ट प्रतीत होते हैं। सज्जन पुरुष किसी व्यक्ति का ओष्ठ क्षत-विक्षत नहीं करते। अवन्ति ने मल्ल-राष्ट्र से मैत्री करके महान अनर्थ किया है। मैं उज्जयिनी में जाकर अपनी नवोढा प्रिया से कहूँगा कि वह अवन्ति के इस अनर्थ का विरोध करे। वह तुरन्त मेरी बात समझ जायेगी। अपने अधरोष्ठ पर मेरे अधरोष्ठ का चुम्बन उसे अत्यन्त प्रिय है। वह अपनी ननंद से कहेगी, ननद अपनी भगिनी से, भगिनी अपने पति से, पति अपने भगिनीपति से, भगिनीपति अपने भागिनेय से तथा भागिनेय अपने जामाता अर्थात् नगरश्रेष्ठी से। नगरश्रेष्ठी महामात्य का मित्र है......आ......आ......मुझे तो नींद आ रही है।"

अनिरुद्ध ने तृणास्तरण पर एक शय्यासन डाल दिया। और सार्थवाह, उस पर लम्बायमान होकर, एक क्षण उपरान्त गाढ निद्रा में निमग्न हो गया। उसके दोनों नासिका-रन्ध्रों से शुद्ध षडज स्रवित हो रहा था।

सार्थवाह को स्वप्नलोक में गया देखकर, अनिरुद्ध ने आयुष्मान उदय

से कहा : "यह तो विचित्र प्राणी है, भन्ते !"

आयुष्मान उदय ने उत्तर दिया : "वृज्जिसंघ के वीर लिच्छवि को यह विचित्र प्रतीत होता है। किन्तु अवन्ति में यह किंचित्‌मात्र भी विचित्र नहीं। उज्जयिनी में ऐसे ही विचित्र प्राणियों का समवाय राष्ट्र के शासन का भार वहन करता है। और अधुना आर्यावर्त के परित्राण का भार भी।"

अनिरुद्ध अवाक् रह गये। उन्होंने श्रमण से पूछा : "अवन्ति के शासक क्या वणिक् हैं, भन्ते !"

श्रमण ने उत्तर दिया : "जन्म से तो वे क्षत्रिय ही कहे जाते हैं, किन्तु गुण-कर्म से वे वणिक् हैं।"

"ऐसा क्यों ?"

"अवन्ति वाणिज्य-प्रधान-राष्ट्र है। वहां के वणिक्‌पुत्र दूर-दूर के देशों एवं द्वीपों से व्यापार करते हैं। पश्चिमी समुद्र के तट पर उनके कई विख्यात खातनगर विद्यमान हैं, जहाँ से गमनागम करने वाले यान-पात्र प्रचुर पण्यद्रव्य का आयात-निर्यात करते हैं। वाणिज्य द्वारा वित्तार्जन ही अवन्ति में सर्वश्रेष्ठ आजीविका गण्य होती है। सार्थवाह राज्यसभा में सर्वोच्च सन्मान प्राप्त करते हैं। अवन्तिराज का अवरोध वणिकाङ्गनाओं से आपूर्ण है। वणिक्‌कन्याओं का वरण करके वहाँ के क्षत्रिय-वृन्द अपने-आपको महाभाग मानते हैं। अतएव अवन्ति में वणिक्‌धर्म का ही प्राधान्य है।"

"वणिक्‌धर्म का गुण क्या है, भन्ते !"

"वित्तैषणा। वित्त की तुला पर तोल कर ही वणिक् पाप एवं पुण्य का निर्णय करता है। वित्त की अवहेलना करनेवाले व्यक्ति को वह महा-मूर्ख मानता है। समादर करनेवाले को सर्वगुणसम्पन्न। वित्त-प्राप्ति से उच्चतर आशा उसके जीवन में नहीं होती। वित्तह्रास से बढ़कर व्यसन भी नहीं।"

"अवन्ति में क्षात्रधर्म का क्या स्थान है, भन्ते !"

"वही जो वृज्जिसंघ में कृषीवल-धर्म का रहा है। कृषीवल के बिना राष्ट्र का जीवनयापन सम्भव नहीं। अतएव उसका समुचित रक्षण एवं भरणपोषण विधेय है। इसी प्रकार अवन्ति के शासक मानते हैं कि क्षात्र-

तेज को चमत्कृत किए बिना उनके वित्त एवं वैभव की रक्षा दुष्कर है। अतएव समय-समय पर क्षत्रियोचित हुँकार उठती ही रहनी चाहिये। किन्तु उससे अधिक कुछ नहीं। यदि क्षात्रधर्म के अनुसरण का समय आया तो अवन्ति खोजने पर भी नहीं मिलेगा।"

"और श्रामण्य तथा ब्राह्मण्य का स्थान, भन्ते!"

"श्रामण्य वहाँ नगण्य है। जो भी मुष्टिमेय श्रमण वहाँ हैं उनको देखकर अवन्ति के शासक विस्मित होते हैं, स्तम्भित रह जाते हैं। क्यों कोई पुरुष पूर्ण यौवन की वेला में संसार का त्याग करे? नवयौवना प्रमदा के साथ रुचिकर रतिसुख से विरत हो? विविधरस भोजन से विरक्त होकर पिण्डपात के लिये एक गृह से दूसरे गृह के द्वार पर जाए? अवन्ति का शासकवर्ग ये प्रश्न पूछता रहता है। किन्तु इन प्रश्नों का समाधानकारक उत्तर उन्हें किसी दिन नहीं मिलता। वित्त-संग्रह और इन्द्रिय-सौख्य के परे किसी और तत्त्व को कभी सत्य और श्रेयस्कर माना हो तो उत्तर मिले।

"अवन्ति का ब्राह्मण-वर्ग वैसा ही है जैसा वृज्जिसंघ का गृहपतिवर्ग। यहाँ के गृहपति पण्य का क्रय-विक्रय करते हैं। अवन्ति के ब्राह्मण धर्माधर्म के विधिनिषेध का।"

"तब तो, भन्ते! अवन्ति के साथ मैत्री स्थापित करके वृज्जिसंघ लाभान्वित नहीं हो सकता।"

"यदि वृज्जिसंघ में वत्सला एवं अनिरुद्ध का शासन होता तो उस वृज्जिसंघ के साथ मैत्री स्थापित करके अवन्ति लाभान्वित हो सकता था।"

"और रत्नकीर्ति के शासन में, भन्ते!

"केवल रत्नकीर्ति लाभान्वित होगा।"

"किन्तु रत्नकीर्ति तो अवन्ति का शत्रु है, भन्ते! उसके साथ मैत्री-सम्बन्ध की स्थापना करने प्रवरसेन क्यों आए?"

"इसलिए कि शत्रु को मित्र एवं मित्र को शत्रु मानना अवन्ति के शासकवर्ग के लिए अनिवार्य है।"

"यह तो मनुष्य की बुद्धि का विलक्षण विपर्यय है, भन्ते!"

"मनुष्य की बुद्धि जब-जब केवल प्रवृत्ति-प्रधान होती है तब-तब

उसमें इसी प्रकार का विपर्यय दृष्टिगोचर होता है। निवृत्ति में अवस्थित हुए बिना मनुष्य की बुद्धि सत्य का साक्षात्कार नहीं कर सकती, असत्य को ही सत्य कह कर ग्रहण करती है।"

अनिरुद्ध मौन हो गये। श्रमण के कथन में निहित सारसत्य पर विचारमग्न हो कर।

निद्राभिभूत सार्थवाह ने पार्श्व-परिवर्तन किया। और वह सोता-सोता आक्रोश कर उठा: "धर्मावतार राजा रत्नकीर्ति के राजत्व में दस्यु-दल का दलन होता है। धर्मावतार राजा रत्नकीर्ति......

नवम अंक

मार्गशीर्ष मास के उत्तरपक्ष की प्रतिपदा। पूर्वाह्न व्यतीत होते-होते, वैशाली के राजपथ पर, रथादि यान-संचालन नितान्त निषिद्ध हो गया। आज, मगध महाजनपद के महाप्रतापी सम्राट, कुणीक अजातशत्रु वैदेही-पुत्र, वृज्जिसंघ की महानगरी का आतिथ्य ग्रहण करने आ रहे हैं।

वृज्जिसंघ के आर्यश्रेष्ठ, राजा रत्नकीर्ति, तथा वृज्जि महाजनपद की जनपद-कल्याणी, राजकुमारी पुलोमजा, ने मगधराज का स्वागत करने के लिए, अष्टकुलिक के महामात्य-गण को अपने साथ लेकर, कोटिग्राम तक प्रत्युद्गमन किया है। लिच्छवि-कुलों की ललाम ललनाओं का एक वृन्द भी, मगधराज की कम्बुग्रीवा को कुसुमदाम से कुवलयित करने के लिए, कोटिग्राम गया है। वृज्जिभूमि पर मगधराज का पदार्पण होते ही, लिच्छवि-वंश के विशिष्ट वृद्ध, उनको आशीर्वाद देकर, उनके अध्वपरिश्रम का परिहरण करेंगे।

राजपथ के पार्श्व-द्वय पर प्रतिष्ठित प्रासादमाला के उत्तुङ्ग सौध-शृङ्ग, सुधास्नान के समापन से, शुभ्रद्युति हैं। अनेकाभ आलिम्पन से आलिखित। विविधवर्ण पताकांशुक से प्रसाधित। गवाक्षों तथा वातायनाग्रों पर उपासीन प्रमदा-परिवार के, अगरुधूम-विलोलित नीलालकजाल से लसित, लावण्य-लोल मुखमण्डल, शरद्श्यामला सरसी में पुण्डरीक-से प्रफुल्लित हैं। अधरोष्ठ पर निविष्ट ताम्बूलरस के किञ्जल्क से कुंकुमित। सुगन्धित-सुरा-सिक्त श्वासानिल से सुरभित। असिताञ्जन से अङ्कित पक्ष्मल अक्षियुगल के अलिकुल से अलंकृत।

राजपथ का पण्य-विपणि-समवाय अपूर्व रूप से परिष्कृत तथा प्रोज्ज्वलित है। वणिक्पुत्रों के विविध परिधान तथा प्रसाधनचातुर्य से चमत्कृत। पद-पद पर, मङ्गल-जलकुम्भ-मण्डित रम्भाविरचित तोरणद्वार प्रस्थापित

किए गए हैं। प्रभञ्जन का प्रत्येक प्रवाह तूर्यवाद्य की ध्वनि से मुखरित तथा काश्मीरज-धूलि से सुगन्ध-सिञ्चित है।

वैशाली के आरक्षिपुरुष तथा राजगृह से नवागत गूढापसर्प-श्रेणी पार्श्वद्वय पर प्रतिपल प्रत्याप्लावित जनसमवाय को अनुशासित करने में व्यस्त हैं। मगध के सन्धिविग्रह-महामात्य ने रत्नकीर्ति से आशंका निवेदन की है कि वृज्जिसंघ तथा मगध के मध्य पूर्वसमय में विद्यमान वैमनस्य से विमूढीकृत कोई अधम लिच्छवि महाराज अजातशत्रु के प्राण-हरण का प्रयत्न न कर बैठे। जिस लाजा एवं पुष्पदल की मगधराज पर वर्षा की जायगी, उसका सम्यक् निरीक्षण करके ही विशिष्ट वराङ्गनाओं में वितरण किया गया है। गूढ-विष से विदिग्ध लाजा-पुष्प से अजातशत्रु का अमङ्गल निवारण करने के निमित्त।

शृङ्गाटक पर स्थित गणिकालय के सम्मुख अजातशत्रु की शिविका आते ही, गणिका अनङ्गरेखा, सुवर्णस्थाली में सुसज्जित प्रदीपमाला द्वारा, मगधराज की आरती उतारेगी; महाराज के गलदेश में, अलभ्य अति-मुक्तक की माला न्यस्त करेगी और, मगधराज के मुख में, अपने हाथ से मृगमोद-सुवासित ताम्बूलपत्र अर्पित करेगी। अतएव मगधराज के आगमन का सुसमाचार सुनने के लिए आतुर अनङ्गरेखा, अभिनव वस्त्रालङ्कार धारण करके, प्रमदवन की राजपथाभिमुख वीथि को अपने नूपुर एवं करधनी के कूजित से ध्वनित करती हुई, वारम्वार प्रासाद की ओर प्रत्यावर्तित हो जाती है।

आर्य पद्मकीर्ति के प्रासाद-द्वाराट्टालक पर मगधराज की प्रतीक्षा में उपासीन सुन्दरी-समवाय की एक सदस्या ने सखी से पूछा : "हला! मगधराज के अवरोध में, हमारी जनपद-कल्याणी के समान स्वर्णवर्णा, सर्वगुण-सम्पन्ना, अखिल-शिल्प-निपुणा कुलाङ्गनाएँ कितनी होंगी ?"

सखी ने तिरस्कारपूर्वक शिर-स्पन्दन करके उत्तर दिया : "एक भी नहीं।"

"तब तो मगधराज का अन्तःपुर श्मशान के समान शून्य है।"

"इसी कारण मगधराज, व्यग्र होकर, वैशाली में आ रहे हैं।"

मगधराज के आगमन का कारण जानने के लिए उत्सुक तृतीय रमणी

ने द्वितीया से पूछा : "हला ! मगधराज किस लिए आ रहे हैं ?"

द्वितीया ने उत्तर दिया : "राजकुमारी पुलोमजा की अप्रतिम रूप-गुणसम्पदा आर्यावर्त के दिग्दिगन्त में विख्यात है, और......

प्रथमा ने असहिष्णु होकर कहा : "आर्यावर्त में ही नहीं, अखिल जम्बुद्वीप में हमारी जनपदकल्याणी की ख्याति, जनश्रुति बनकर, व्याप्त है। राजकुमारी जब पारसीक-पुरी में गई थीं तो उनके प्रथम दर्शन से ही मदनम्लान पारसीक सम्राट ने उनका पाणि-मर्दन करने की उत्कट आकांक्षा प्रगट की थी। किन्तु धर्मावतार राजा रत्नकीर्ति की अनुमति न होने के कारण, पितृ-परायणा पुलोमजा ने उस महीप की अवगणना कर दी।"

राजकुमारी के गुणगान में त्रुटि होते देखकर चतुर्थ कामिनी कुनमुना उठी : "पारसीक सम्राट का पाणिग्रहण राजकुमारी किस लिए करतीं ? उनकी देहयष्टि का दर्शन करने के लिए तो देवेन्द्र शक्र, प्रत्येक प्रदोष में, अपने विमान पर आरूढ होकर, राजप्रासाद के निकट आकाश-विचरण करता है।"

तृतीया ने, पुनरेण, द्वितीया से प्रश्न किया : "क्या मगधराज, राजकुमारी के पादपद्मों में अपना किरीट न्यस्त करके, राजकुमारी के अधरोष्ठ पर एक पल के लिए प्रस्फुटित स्मित की याचना नहीं करेंगे ?"

द्वितीया ने उत्तर दिया : "करेंगे और अवश्य करेंगे। अन्यथा मगधराज का जीवन-धारण व्यर्थ हो जाएगा।"

"उस अपूर्व वेला में, जबकि मगधराज निर्निमेष नयनों से राजकुमारी की आननश्री का अवलोकन कर रहे होंगे, राजकुमारी की भ्रूचाप से कटाक्षवाण विनिर्गत हुआ तो ?"

"क्षत-विक्षत-हृदय मगधराज, मदन-ज्वर से तप्त होकर, तिमिङ्गल के समान तिलमिलायेंगे।"

"और मगधराज ने राजकुमारी से विवाह करने का आग्रह किया तो ?"

"राजकुमारी उनको सुरतरण में अवतीर्ण होने का आमन्त्रण देंगी।"

"मगधराज क्या उत्तीर्ण हो सकेंगे ?"

"अशक्य है। असम्भव है। अखिल जम्बुद्वीप के श्रेष्ठतम पुरुषसमवाय से सुरतरण करके जो अपराजेय रही हैं, उनको, मूढ़ मगध के अप्रगल्भ अवनिपति भला किस प्रकार प्रसन्न कर सकेंगे ?"

"जनश्रुति है कि मगधराज ने, वैशाली में आने का आयोजन करने के पूर्व, कौशाम्बी तथा काम्पिल्य के कई विख्यात काम-शास्त्राचार्यों को, प्रभूत वेतन प्रदान करके, छः मास तक सुरतरण-नैपुण्य की शिक्षा ग्रहण की है।"

"तो क्या हुआ ? हमारी राजकुमारी समस्त आचार्य-गण की एक आचार्या हैं। राजकुमारी के साथ सुरतरण करने के पूर्व, मगधराज यदि गणिका अनङ्गरेखा को ही परास्त कर दें तो उनकी शिक्षा सफल हो जाएगी। गणिका राजकुमारी की सुशिष्या है। किन्तु गणिका का सुरत-चातुर्य, राजकुमारी के सुरतचातुर्य की तुलना में शशि के सन्मुख दीपालोक जैसा है।"

"तब तो मगधराज को, असफल-मानोरथ ही, राजगृह की ओर लौटना पड़ेगा।"

"सो मैं नहीं कहती। राजकुमारी धर्मसंघ की अनन्य उपासिका भी तो हैं। सम्भव है कि वे, अजातशत्रु के प्रति करुणा से आर्द्रचित्ता होकर, राजगृह के अन्तपुर को अपनी पदरज से पवित्र करने के लिए प्रस्तुत हो जाएँ।"

"वैशाली शून्य हो जाएगी। राजकुमारी द्वारा कामकला में अशिक्षित लिच्छवि ललनाएँ, लिच्छवि पुरुषों का पथप्रदर्शन करने में असमर्थ हो जाएँगी। वैशाली में पुनरेण वह युग लौट आएगा जब लिच्छवि ललना अपने नपुंसक पति को भी आर्यपुत्र कह कर पुकारने के लिए विवश थी। राजप्रासाद में पुनः उस लिच्छवि-कुल-कलङ्किनी वत्सला जैसी किसी पुरुष-पूजा-परायण पापिष्ठा का प्रभुत्व हो जाएगा। मलिनकुल मैथिली के गर्भ से गिरा हुआ वह दुष्टबुद्धि दुर्गपाल अब इस संसार में नहीं रहा तो क्या ? उसका ही कोई सहोदर, शिर उन्नत करके, लिच्छवि-गण को पुनः रक्त-पात-परायण करने का पापप्रयत्न करने लगेगा।"

"भय नहीं, सखि ! भय नहीं। धर्मावतार राजा रत्नकीर्ति के राजत्वकाल में ऐसा अधर्माचार अचिन्तनीय है।"

"किन्तु उनके राजत्व के उपरान्त ?"

"तब तक तू विगतयौवना वृद्धा हो जाएगी। तब तू स्वयं ही सुरत-रण के आमन्त्रण की अवहेलना करने लगेगी। अनागत की चिन्ता करके क्यों अकारण ही आर्त हो रही है ?"

वृद्धावस्था का उल्लेख, सो भी अपने विषय में सुन कर, तृतीया का अञ्जनाङ्कित अक्षियुगल आर्द्र हो गया। तब वह, अपने लोध्ररेणु-आरक्त कपोलों को, अश्रुप्रवाह द्वारा कृष्णकाय होने से बचाने के लिए, द्रुतपद, द्वाराट्टालक की प्रसाधनशाला में चली गई।

शृङ्गाटक के प्राङ्गण में, कौतूहल-शाला के समक्ष संरूढ़ एक तरुण लिच्छवि ने अपने सहचर से प्रश्न किया : "सौम्य ! अवन्ति से आगत सुवर्णभार तथा शस्त्रास्त्र से विमोहित मल्लगण क्या अब भी अपना म्लेच्छाचार नहीं छोड़ेंगे ?"

द्वितीय तरुण ने उत्तर दिया : "मलराष्ट्र के धर्मद्रोही क्षत्रिय-गण विनाश-काले-विपरीत-बुद्धि हैं। उनको आशा थी कि अवन्ति के पाप-परामर्श का प्रत्याख्यान करने वाला वृज्जिसंघ आर्यावर्त में मित्रविहीन रह जाएगा और वे, उस पर आक्रमण करके, उसे भी अपने राष्ट्र के समान, अवन्ति का क्रीतदास बना डालेंगे। किन्तु उनको यह ज्ञात नहीं था कि जाह्नवी की जलधार पर सतत सावधान रहने वाली मगध की अपराजेय नौसेना, गण्डकी का धर्षण करके, उनकी क्षुद्रकाय तरणियों को, एक क्षण में, रसातल पहुँचा सकती है। उनको यह ज्ञात नहीं था कि मगध की महाबल चतुरङ्गिणी, केवल वृज्जि महाजनपद की रक्षा के लिए ही नहीं, अपितु मल्ल महाजनपद के मानमर्दन के लिए भी प्रतिपल प्रस्तुत है।"

"तब तो आशा करनी चाहिए कि, वृज्जिसंघ की भाँति, मल्लगण में भी शीघ्र ही सुबुद्धि का उदय होगा।"

"मल्लगण का कल्याण तो इसी में है कि वे हमारे वीरशिरोमणि किन्तु शान्ति-सम्राट राजा रत्नकीर्ति की अद्वितीय दूरदर्शिता को स्वीकार करके, लिच्छवि-कुल-तिलक के पादपद्मों में शरणापन्न हों।"

एक अन्य तरुण ने प्रथम तरुण को सम्बोधित किया : "सौम्य ! आर्य-श्रेष्ठ रत्नकीर्ति की गुणगाथा का श्रवण करके मेरी श्रोत्रवृत्ति कभी भी तृप्तिलाभ नहीं कर पाती। मैंने उन गुणनिधान के अखिल जीवनचरित् का आद्योपान्त अध्ययन किया है। किन्तु उनकी दूरदर्शिता का रहस्य मैं अभी तक हृदयङ्गम नहीं कर सका। यदि तुम वह रहस्य मुझे समझा दो तो मुझ पर तुम्हारी असीम अनुकम्पा होगी।"

प्रथम तरुण ने, संशय-शंकित नेत्रों से, एक बार तृतीय तरुण की ओर देखा। उसका मन कह रहा था कि राजा रत्नकीर्ति की दूरदर्शिता से अनभिज्ञ यह पच्चीस वर्ष का पुरुष या तो कोई स्वदेशद्रोही शठ है अथवा कोई वज्रमूर्ख बालक। ऐसे रासभ के समक्ष अपनी रसना से राजा रत्नकीर्ति का पुण्यस्तवन स्रवित करना शब्दशक्ति का अपव्यय होगा—यह विचार करके वह मौन हो गया।

किन्तु द्वितीय तरुण ने, अपने सहचर को मौन देखकर, विनीत वाणी में अनुनय की : "सौम्य ! मगधराज के आगमन में अभी विलम्ब है। इस अवकाश को यदि राजा रत्नकीर्ति की गुणचर्चा करके अतिवाहित किया जाए तो पुण्य का ही नहीं, प्रज्ञा का भी प्रसार होगा। तुम राजा की अपरिमेय गुणसम्पदा से पूर्णरूपेण परिचित हो। वैशाली के अज्ञजनों को तुम अवश्य अनुगृहीत करो।"

अपनी यथायोग्य प्रशंसा सुनकर, प्रथम तरुण का वक्ष-विस्तार, अनायास ही, द्विगुणित होने के लिए तत्पर हो गया। तब उसने, अपना श्रीमुख शब्दायित करके, अपने चारों ओर खड़े मूर्ख-समवाय को मन्द-बुद्धि-विहीन बनाने का धर्मयज्ञ प्रारम्भ किया। वह कहने लगा : "राजा रत्न-कीर्ति जिस समय वृज्जिसंघ के राज्यासन पर शोभायमान हुए, उस समय लिच्छवि-गण, युद्धरत रह कर अथवा युद्ध का आयोजन करते हुए, वृज्जि-महाजनपद के धनजन का क्षय किया करते थे। दूरदर्शी राजा रत्नकीर्ति ने, एक क्षण में, यह गूढ़ तत्त्व हृदयङ्गम कर लिया कि लिच्छवि-गण को, अपनी सुरक्षा के लिए भी, युद्ध करने की आवश्यकता नहीं। उस समय वृज्जिसंघ के शत्रु दो राष्ट्र थे—मगध एवं मल्लराष्ट्र। राजा ने समस्त तथ्यातथ्य का सूक्ष्म अन्वीक्षण करके निर्णय किया कि मगध के साथ

वृज्जिसंघ के वैमनस्य का कोई अपरिहार्य कारण नहीं। युद्ध के उन्माद से मतिभ्रष्ट लिच्छवि-गण ने, एक समय, भागीरथी पार करके मगध की पैतृक भूमि, पाटलिग्राम, में अपने दुर्ग का निवेश कर लिया था। धर्मावतार अजातशत्रु की केवल यही इच्छा थी कि लिच्छवि-गण अपनी भूल को स्वीकार करके, पाटलिग्राम से अपने सन्निवेश का अपसरण कर लें। तदनन्तर वृज्जिसंघ तथा मगध के मध्य दुर्भेद्य शान्ति की स्थापना सम्भव थी। अतएव राजा रत्नकीर्ति ने, स्वेच्छा से, पाटलिग्राम की भूमि मगध को लौटा दी......

तृतीय तरुण ने शंका उपस्थित की : "किन्तु, सौम्य ! पाटलिग्राम पर तो मगध का अकस्मात् आक्रमण हुआ था। इसी कारण कई शत लिच्छवि सुभट भी हताहत हुए थे और......

प्रथम तरुण ने, कोपाविष्ट होकर, उच्चस्वर में उत्तर दिया : "वैशाली के राजपथ पर कौन यह अपप्रचार कर सकता है कि धर्मावतार अजातशत्रु ने पाटलिग्राम लेने के लिए बलप्रयोग किया था ? और कौन यह मृषावाद कर सकता है कि राजा रत्नकीर्ति ने बलप्रयोग का सबल विरोध नहीं किया ? अवन्ति के असुर तथा मल्लराष्ट्र के म्लेच्छ ही इस प्रकार का मिथ्याप्रलाप करते हैं मर्यादा-पुरुषोत्तम अजातशत्रु के विरुद्ध। हमारे राजा रत्नकीर्ति के विरुद्ध भी। वैशाली के शृङ्गाटक पर ऐसी भ्रान्त धारणा का प्रचार करने वाले देशद्रोही को, तुरन्त ही, दण्ड मिलना चाहिए।"

तृतीय तरुण ने, बद्धाञ्जलि होकर, प्रथम तरुण से प्रार्थना की : "सौम्य ! तुम मुझ जैसे मूढमति पर कुपित मत हो। मैं महान मूर्ख हूँ। इसी कारण सत्य एवं मिथ्या में विभेद नहीं कर पाता। मैंने स्वधर्म अथवा स्वदेश से द्रोह करके वह बात नहीं कही थी। तुम मुझ पर विश्वास करो। मैं उभयपक्ष से सुजात, कुलीन लिच्छविपुत्र हूँ। उस वराकी वत्सला का विपथगामी अनुयायी नहीं। उस दुष्टबुद्धि दुर्गपाल अनिरुद्ध का अनुयायी भी नहीं। इस उत्सव के उपरान्त तुम मेरे आवास को अपने पद-रज से पवित्र करना। राजकुमारी पुलोमजा की परमोपासिका मेरी प्रिया से संलाप करके तुम्हारा सारा भ्रम दूर हो जाएगा। वह अपने

पाणिपल्लव द्वारा पानपात्र आपूरित करके तुमको पान कराएगी। उसके प्रवाल-मणि-सन्निभ अधरोष्ठ देखकर तुमको पूर्ण प्रत्यय हो जाएगा कि अहर्निश उस देवाङ्गना के अधरामृत का आस्वादन करने वाले मेरे इस महामहिम मुख से, स्वधर्म अथवा स्वदेश के विरुद्ध, विद्वेषवाक्य नहीं निकल-सकते। मैंने जो कुछ कहा, वह समस्त भ्रान्ति-वश ही कहा है। तुम मुझ पर कुपित मत हो, सौम्य!"

प्रथम तरुण ने, तृतीय तरुण को पश्चाताप-परायण देखकर, उसे क्षमा कर दिया। तब उसने राजा रत्नकीर्ति की दूरदर्शिता की पुण्यकथा पुनरेण प्रारम्भ की। वह बोला: "मगध के साथ मैत्री करके वृज्जिसंघ को दो महान लाभ हुए है। प्रथमतः, मगध के प्रति सतत सावधान रहने के लिए जिस लिच्छवि सैन्य का प्रयोजन रहा करता, वह वैशाली में प्रत्यागत हो गया। अपनी-अपनी प्रिया के प्रेमालिङ्गन से पृथक् रहकर अनेक लिच्छवि पुरुष जिस नरकयातना का भोग करने के लिए विवश रहा करते, वह निःशेष हो गई। लिच्छवि पुरुष प्रत्येक रात्रि का प्रथम याम गीत-वाद्य-नृत्य तथा द्यूत में, द्वितीय याम सुरा एवं रूपाजीवा के उन्मुक्त उपभोग में और तृतीय याम अपनी प्रणयिनी के परिरम्भण-पाश में व्यतीत करने के लिए समर्थ हुए। वैशाली की कोई भी कुलाङ्गना अब, समरहत पति के विरह में पाण्डुर होकर, विकल क्रन्दन नहीं करती। अब वैशाली के प्रत्येक प्रासाद से, रात-रात भर, प्रणयगीत की पुण्यध्वनि प्रसार पाती है......

अपने वर्णन-वैदग्ध्य से आत्मविभोर होकर तरुण ने अपने नेत्र निमीलित कर लिए। मानो, मन-ही-मन, वह अपनी प्रिया को अपने अङ्क में आरोपित करके, अन्यत्र अनुपलब्ध अधरमधु का पान कर रहा हो।

किन्तु, दूसरे क्षण, द्वितीय तरुण ने, उसके स्कन्ध का पाणिस्पर्श करके, उसे स्वप्नदेश से प्रत्यावर्तित कर लिया। द्वितीय तरुण ने पूछा: "और द्वितीय लाभ?"

प्रथम तरुण ने, नेत्रोन्मीलन करके, गद्गद् वाणी में, कहा: "द्वितीय लाभ! वह और भी अनुपम है। एक प्रकार से अचिन्तनीय! एकमात्र राजा रत्नकीर्ति ही उसका चिन्तन कर सकते थे। उस लाभ के फल-

स्वरूप, वृज्जिसंघ का विजयध्वज, निकट भविष्य मे ही, निखिल आर्यावर्त पर उत्तोलित होगा। पारसीक सम्राट भी राजा रत्नकीर्ति का दासानुदास कहलाने मे गर्व अनुभव करेगे और......

तृतीय तरुण ने अधीर होकर पूछा : "किन्तु वह लाभ क्या है ?"

प्रथम तरुण ने, पुनरेण, नेत्र निमीलित करके, कहा : "यह न पूछो, सौम्य ! यह तुम मुझसे न पूछो। उस सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि की कल्पनामात्र से मेरा रोम-रोम पुलकायमान हो जाता है। उसका वर्णन करने के योग्य वाणी......

किन्तु इसके पूर्व कि वह तरुण कुछ और कहता अथवा उसके सहचर कुछ और सुनने का हठ करते, राजपथ का दक्षिणावर्ती प्रान्त जयनाद से जीवन्त होने लगा। जनसमवाय ने, श्वासोच्छ्वास निरुद्ध करके, उस ओर कर्णपात किया। अगणित कण्ठ, एकस्वर होकर, मुहुर्मुहु मन्त्रोच्चार कर रहे थे : "मगध-सम्राट अजातशत्रु वैदेहीपुत्र की जय ! अनिन्द्य सुन्दरी मगध-महिषी वजिरादेवी की जय !! धर्मावतार राजा रत्नकीर्ति की जय ! प्रणय की पुष्करिणी राजकुमारी पुलोमजा की जय !"

शृङ्गाटक पर अधीरता का अतल, असीम सागर उद्वेलित होने लगा। प्राङ्गण मे प्रस्तुत पुरुष-समवाय, परस्पर शान्ति की प्रार्थना करता हुआ, कोलाहल कर उठा। आर्य पद्मकीर्ति का प्रासाद-द्वाराट्टालक, मगधराज का प्रथम दर्शन पाने के लिए स्पर्धमान सुन्दरियों के किङ्किणी-स्वन के कारण, कुतप-कक्ष मे परिणत हो गया। गणिकालय के कुसुमदालकीर्ण देहलीद्वार पर, ऊर्ध्वश्वास अनङ्गरेखा, व्यग्रभाव से, अपनी वाराङ्गनावाहिनी को व्यूढ करने लगी।

पुरुष-समवाय अपने जयघोष से शृङ्गाटक के प्राङ्गण को प्रकम्पित करने के लिए अधीर था। प्रासाद-द्वार पर उपासीन सुन्दरी-समवाय अक्षत एव पुष्पदल के वर्षण के लिए। अनङ्गरेखा, अपने पार्श्वद्वय पर उपस्थित किशोरवय वाराङ्गनाद्वय की बाहुलताओ पर आरोपित, स्वर्णस्थालियो मे प्रस्तुत प्रदीपमाला, पुष्पहार तथा ताम्बूलपत्र की ओर, बारम्बार, दृष्टिपात कर रही थी।

अन्ततः, वैशाली-वासियो का नेत्रोत्सव शृङ्गाटक के निकट आ गया।

एक रजत-रचित, सुवर्ण-दण्ड-मण्डित, रत्नखचित, आतपत्र-आच्छादित शिविका पर आरूढ़ थे मगधराज अजातशत्रु तथा राजा रत्नकीर्ति। जैसे जन्म-जन्मान्तर के ज्वलन्त-कीर्ति मित्र हों। शिविका का भार वहन करने वाले द्वादश वाहकों के वस्त्राभरण भी अवर्णनीय थे।

मगधराज, मुख पर एक मधुर मुस्कान धारण करके, निर्निमेष नेत्रों से इतस्ततः दृष्टिपात करते हुए, अपने मुकुट-मण्डित मस्तक के ईषत्-स्पन्दन द्वारा, सौधोत्संग पर संरूढ रमणी-रत्नों का अधीर अभिवादन स्वीकार कर रहे थे। पथप्रान्त में उपस्थित पुरुष-समवाय की ओर उन्होंने एक बार भी नहीं देखा। मानो वे जानते हों कि वैशाली में उनकी विजय अथवा पराजय का निर्णय लिच्छवि-गण का ललना-वृन्द ही करेगा।

अजातशत्रु के वाम पार्श्व पर उपासीन राजा रत्नकीर्ति की दृप्त दृष्टि पथ-प्रान्त में खड़े और जयघोष करते हुए पुरुष-समवाय पर निबद्ध थी। जयघोष का स्वर जिस ओर भी तनिक मन्द होने लगता था उसी ओर प्रधावमान होता हुआ उनका कुञ्चित भ्रूभङ्ग, भीषण भर्त्सना कर उठता था। सब ओर हो रहे प्रयास से सर्वथा सन्तुष्ट होकर, राजा रत्नकीर्ति ने भी अपना नयनद्वय सुन्दरी-समवाय के मुखकमलों पर निविष्ट किया। अपने अधरोष्ठ को स्मितद्युति से स्फीत करके। और, अकस्मात् ही, उनके करकमलद्वय द्वारा उत्क्षिप्त उत्फुल्ल कुसुमकोरकों से आहत किशोरियों के कपोल कहने लगे कि वृज्जिसंघ के आर्यश्रेष्ठ अद्वितीय लक्ष्यवेधी धनुर्धर हैं।

प्रथम शिविका का अनतिदूर अनुसरण करती हुई द्वितीय शिविका पर शोभायमान थीं मगधराज की पट्टमहिषी, कोसलराज-दुहिता वजिरादेवी, तथा वृज्जि महाजनपद की जनपद-कल्याणी, राजकुमारी पुलोमजा। पुलकायमान पुलोमजा, मुहुर्मुहु अपना बाहुलताद्वय अन्तरिक्ष में प्रसारित करके, उस अमूर्त हर्षोल्लास को आलिङ्गनाबद्ध-सा कर रही थी। राजकुमारी के गर्वान्वित नयनों में उन्माद का उन्मेष था। मानो वह वक्ष विस्फारित करके कह रही हो कि त्रिपुर-सुन्दरी भी यदि इच्छा करे तो आज पुलोमजा की रूपश्री से स्पर्धा करके देख ले। मगध की महादेवी,

किन्तु, व्रीडाभिभूत-सी अवनतमुख उपासीन रहीं। पुलोमजा, वारम्वार, उनका कुलाङ्गना-सुलभ लज्जा से आरक्त आननेन्दु उन्नमित करके, उनको वैशाली-वासियों के स्वागत-समारोह से अवगत कराना चाहती थीं। किन्तु अपनी चिबुक पर से पुलोमजा का पाणिस्पर्श अपसरित होते ही, वजिरादेवी पुनः अपना मुख अवनत कर लेती थीं।

शिविकाद्वय, गणिकालय के समक्ष पहुँच कर, रुक गया। स्वेदस्नात शिविकावाहकों ने, अत्यन्त सावधानी के साथ, अपना-अपना भार भूमि-तल पर आरोपित कर दिया। और गणिका अनङ्गरेखा, अपनी सहचरियों को साथ लेकर, मगधराज की ओर अग्रसर हुई।

वजिरादेवी ने पुलोमजा से पूछा : "शुभे ! ये देवी कौन हैं ?"

पुलोमजा ने, पुलकित वाणी में, उत्तर दिया : "आर्यावर्त में उर्वशी का अवतार, वृज्जिसंघ का विलक्षण वैभव, गणिका अनङ्गरेखा !"

मगध-महिषी किसी अज्ञात आशंका से काँप उठीं। उनके मुख से, अनायास ही निकला : "गणिका ! मगधराज की आरती उतारेगी !!"

पुलोमजा का ध्यान अन्यत्र था। उसने कह दिया : "हाँ, देवि ! वृज्जिसंघ के विशिष्ट अभ्यागत की आरती उतारने का परम-सौभाग्य, सर्वसम्मति से, गणिका अनङ्गरेखा ने ही प्राप्त किया है।"

वजिरादेवी का आत्मसंयम, सहसा, स्खलित हो गया। पुलोमजा उनका वारण करे उसके पूर्व ही वे, अपनी शिविका से अवरोहण करके, मगधराज की शिविका की ओर धावमान हो गईं। शृङ्गाटक पर महान कोलाहल उत्थापित हुआ। मगध की पट्टमहिषी का यह आचरण सर्वथा अनपेक्षित था।

मगधराज ने, वजिरादेवी को अपने समीप आया देखकर, अपने आसन से उत्थान किया। मगधराज से अनतिदूर, प्रज्वलित प्रदीप-माला-पूर्ण स्वर्णस्थाली अपने हाथ में लिए अनङ्गरेखा, अपने स्थान पर विजड़ित हो गई। राजा रत्नकीर्ति ने, ससंभ्रम मुख परावृत्त करके, पुलोमजा की ओर दृष्टिपात किया। पुलोमजा भी अपनी शिविका से अवरोहण करके उसी ओर आ रही थी।

तब अजातशत्रु ने वजिरादेवी को सम्बोधित किया : "देवि ! यह

क्या व्यापार है ?"

वजिरादेवी ने, तर्जनी से अनङ्गरेखा की ओर संकेत करके, कहा : "आर्यपुत्र ! वह स्त्री तो गणिका है ।"

"मुझे ज्ञात है, देवि !"

"आर्यपुत्र ! गणिका मगध के महामहिम सम्राट की आरती नहीं उतार सकती । यह अनाचार है ।"

अजातशत्रु अपनी भीरु भार्या की ओर देखकर, एक बार, मुस्कराए। फिर वे बोले : "देवि ! यह हमारा देश, मगध महाजनपद, नहीं । तुम्हारी मातृभूमि, कोसल, भी नहीं । यह वृज्जि महाजनपद है । वंशगौरव पर गर्वान्वित लिच्छवि-गण का देश । यहाँ मगध अथवा कोसल की आचार-परम्परा विधेय नहीं हो सकती । यहाँ लिच्छवि-गण की आचार-परम्परा के अनुरूप ही करणीय कर्म का अनुष्ठान उपादेय है । हम लिच्छवि-गण की आचार-परम्परा का अपमान नहीं कर सकते । किसी भी स्वाधीन राष्ट्र की आर्य-परम्परा का अपमान करना, हमारे मत में, पाप-कृत्य है ।"

मगध-महिषी मौन हो गई । तब अजातशत्रु ने, गणिका की ओर अभिमुख होकर, कहा : "अनङ्गरेखे ! तुम आओ ! अपने करणीय कर्म का समापन करो !"

शृङ्गाटक मगधराज की जयध्वनि से प्रतिध्वनित हो उठा ।

किन्तु, दूसरे ही क्षण, सब ओर एक घोर निस्तब्धता छा गई । अनङ्गरेखा, अपने हाथ की सुवर्णस्थाली को सहचरी के हाथ में देकर, गणिकालय के द्वार की ओर लौट रही थी ।

राजा रत्नकीर्ति ने, कुपित होकर, चीत्कार किया : "अनङ्गरेखे !!"

राजकुमारी पुलोमजा ने उच्चस्वर उत्क्रोश किया : "अनङ्गरेखे !!!"

अनङ्गरेखा रुक गई । फिर वह, राजा रत्नकीर्ति की ओर अभिमुख होकर, आर्द्रस्वर में बोली : "आर्यश्रेष्ठ की आज्ञा ?"

रत्नकीर्ति ने कहा : "तुमने अपना कर्त्तव्य कर्म नहीं किया ।"

पुलोमजा ने भर्त्सना की : "अखिल वैशाली के वासियों के सन्मुख तुमने मगधराज की अवगणना की है । तुमने वृज्जिसंघ के आर्यश्रेष्ठ का अपमान किया है ।"

अनङ्गरेखा ने, पुलोमजा की ओर मुख फेर कर, विनीत वाणी में निवेदन किया : "राजकुमारि ! मैं एक नगण्य गणिका हूँ। आर्यवृन्द का मनोरञ्जन करके आजीविका उपार्जन करने वाली अकिञ्चन रूपाजीवा। मैं मगध के महान सम्राट की अवगणना करने का दुःसाहस कहाँ से पाऊँगी ? वृज्जिसंघ के आर्यश्रेष्ठ का अपमान करना मेरे लिए अचिन्तनीय विषय है। आप मुझ दीनहीन पर कुपित न हों, राजकुमारि !"

पुलोमजा ने, गणिका के नम्र निवेदन की अवगणना करके, कहा : "वृज्जिसंघ की आचार-परम्परा के अनुसार, वैशाली के विशिष्ट अभ्यागत की आरती उतारना तुम्हारा पुण्यकर्त्तव्य है। तुम अपने कर्त्तव्य की पूर्ति करो।"

अनङ्गरेखा ने, सुवर्णस्थाली की ओर दृष्टिपात किए बिना ही, उत्तर दिया : "आज मैं एक गर्हित गणिका मात्र हूँ। किन्तु एक दिन मैं कपिलवस्तु के अग्रगण्य क्षत्रियकुल की कुलदुहिता थी। उस दिन मैंने आर्यावर्त की पति-परायणा कुलवधू के किसलय-कोमल हृदय को देखा था। उस हृदय में प्रतिपल पल्लवित, पति के लिए कल्याण-कामना देखी थी। मुझे ज्ञात है कि पति के अनिष्ट की आशंका मात्र से आर्यावर्त की कुलवधू काँप-काँप जाती है। इसीलिए, मगध की व्रीडा-प्रवण महिषी, इस अगणित जनसमवाय के समक्ष, अपनी शिविका से अनायास अवरोहण करके, पति के परित्राण के लिए प्रधावमान हो चलीं। मगध की महादेवी के प्रति मेरे द्वारा किसी अवज्ञा का आचरण न हो, इसी विचार से मैं आरती उतारने से विरत हुई हूँ।"

पुलोमजा ने, अपना अधरोष्ठ कुञ्चित करके, अनङ्गरेखा की ओर से मुख परावृत्त कर लिया। फिर उसने, गणिकालय की एक परिचित परिचायिका को अपने समीप आहूत करके, आदेश दिया : "हञ्जे ! तुम इसी समय राजप्रासाद में जाओ। जाकर भाण्डागारिक को मेरी ओर से सन्देश दो कि वह, तुरन्त ही, आरती का समस्त समारम्भ राजप्रासाद के मुख्यद्वार पर प्रस्तुत करे। मैं अपने हाथों से मगधेश्वर की आरती उतारूँगी।"

वजिरादेवी को साथ लेकर पुलोमजा पुनः अपनी शिविका पर जा

बैठी। वाहक-गण ने पुनः शिविकाद्वय को प्रोत्थित किया। और मगधराज की शोभायात्रा पुनः राजपथ पर अग्रसर हो चली।

किन्तु शृङ्गाटक पर सम्भूत जन-समवाय अब सर्वथा मौन था। वातायनाग्रों और द्वाराट्टालकों पर उपासीन कान्तावृन्द की किङ्किणमाल भी मौन थी।

और गणिकालय के द्वार पर पाषाण-प्रतिमा-सी विजडित थी अव-नत-मुख अनङ्गरेखा।

शृङ्गाटक का अतिक्रमण हो जाने पर पथ-पार्श्व पर खड़े जनसमवाय ने, राजा रत्नकीर्ति द्वारा प्रोत्साहित होकर, पुनः मगधराज अजातशत्रु का जयघोष किया। राजा रत्नकीर्ति, राजकुमारी पुलोमजा और मगधमहिषी का जयघोष भी। किन्तु शृङ्गाटक पर घटित घटना के कारण, न जाने क्यों, वह समस्त समारोह, सहसा, निस्वाद-सा हो गया।

उसी दिन अपराह्ण की अन्तिम वेला में वृज्जिसंघ की परिषद का सन्निपात हुआ। संस्थागार में आमन्त्रित महाराज अजातशत्रु का अभि-नन्दन करने के निमित्त।

लिच्छविगण की पूज्य प्रवेणी-पुस्तक के विधानानुसार, कोई भी अलिच्छवि, किसी भी अवसर पर, संस्थागार की पुण्यभूमि में प्रवेश पाने का पात्र नहीं था। किन्तु राजा रत्नकीर्ति ने, एकमात्र राजकुमारी पुलो-मजा से ही परामर्श करके, उस पूज्य परम्परा की अवहेलना कर दी। उन्होंने वैशाली की वीथि-वीथि में घोषणा करवा दी कि संस्थागार में मगधराज का स्वागत करने के लिए परिषद के सदस्य समस्त लिच्छवि-वृद्ध प्रस्तुत रहें। कई एक लिच्छवि-वृद्धों ने इस अभूतपूर्व अनाचार की आलोचना भी की। किन्तु अपने आवास के एकान्त में। संस्थागार में अपना आसन ग्रहण करते समय सबके मुख पर राजा रत्नकीर्ति का स्तुतिवाद ही था।

अन्ततः राजा रत्नकीर्ति ने, मगधराज को अपने साथ लेकर, संस्था-गार में पदार्पण किया। परिषद में उपस्थित आर्य सुनक्खत ने, हठात्, लिच्छवि-वृद्धों से अनुरोध किया कि वे सब, अपने-अपने आसन से उत्थान करके, अभ्यागत का स्वागत करें। और परिषद के समस्त सदस्यों ने

एक साथ उपस्थान किया। यह आचरण भी लिच्छवि-परम्परा के प्रतिकूल था। अद्यप्रभृति, वृज्जिसंघ के आर्यश्रेष्ठ का स्वागत करने के लिए भी, लिच्छवि-वृद्ध संस्थागार में उपस्थान नहीं करते थे।

मगधराज को, वृज्जिसंघ के राज्यासन के समीप एवं अनुरूप एक अन्य आसन पर उपासीन होने के लिए आमन्त्रित करके, प्रसन्नमुख राजा रत्नकीर्ति ने परिषद को सम्बोधित किया : "आर्यवृन्द ! आज वृज्जिमहाजनपद में एक अपूर्व उत्सव उपस्थित है। अनेक वर्ष के अनन्तर, आज मगध के महान सम्राट, पुनर्वार भागीरथी पार करके, वैशाली में पधारे हैं। यह वैशाली का सौभाग्य है, वृज्जिसंघ का सौभाग्य है, लिच्छविगण का सौभाग्य है।

"वृज्जिसंघ के संस्थागार में, सिंहासन पर सुशोभित ये प्रतापशाली पुरुष केवल मगध के महामहिम महीपति महाराज अजातशत्रु ही नहीं हैं। ये वैदेहीपुत्र भी हैं। वैदेही पुत्र !! वैशाली का लिच्छवि-कुल इनका मातुलकुल है। इनकी शिराओं में, मागध पिता के रक्त से सम्मिश्रित होकर, लिच्छवि माता का रक्त भी प्रवाहित है। गण्डकी तथा जाह्नवी के सुविख्यात सङ्गम के समान, ये मागध राजवंश के साथ लिच्छविवंश के सङ्गम का प्रतीक हैं। जब तक इनकी पदरज से धरा का प्राङ्गण पवित्र रहेगा तब तक संसार का कोई शक्ति-संघात लिच्छवि वंश को मगध के राजवंश से विलग नहीं कर सकता।

"विलग करने के प्रयत्न भूतकाल में हुए हैं, वर्तमान में हो रहे हैं और भविष्य में होते रहेंगे। एक समय था, जब उन प्रयत्नों की प्रेरणा से पथभ्रष्ट होकर, लिच्छवि-वंश ने मगध के राजवंश से द्रोह किया था। परस्पर कलह के कारण भागीरथी की पावन जलधारा उस समय वृज्जिसंघ और मगध के निर्दोष क्षत्रियों के रक्त से कलुषित हो गई थी। लिच्छवि-गण का यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि वे समरांगण में अवतीर्ण होकर ही मगधराज का साक्षात्कार कर सकते हैं। उस भ्रान्ति ने, अनेक वर्ष तक, प्राची का पावन प्राङ्गण अपावन कर दिया था।

"किन्तु वह समय अब नहीं रहा। वह भ्रान्ति अब नष्ट हो चुकी। वृज्जिसंघ तथा मगध के मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय अब परस्पर रक्तपात के

प्रति अनुरक्त नहीं रहे। अब मगध के सम्राट वृज्जिसंघ के संस्थागार में लिच्छविगण द्वारा प्रदत्त प्रभूत सन्मान ग्रहण कर रहे हैं। वृज्जिसंघ और मगध के मध्य अब कलह का कोई कारण नहीं रहा। अनेक दिन से विलग हुए शान्ति के सहचर पुनः प्रेमपाश में आवद्ध हैं।

"इस प्रेमपाश को विच्छिन्न करने के प्रवल प्रयत्न हो रहे हैं। आज आर्यावर्त के आंगन में कुछ शक्तियाँ विद्यमान हैं जो नहीं चाहतीं कि वृज्जिसंघ और मगध परस्पर शान्ति के साथ जीवनयापन करें, सुख और समृद्धि का, रस और संस्कार का उपभोग करें। वे शक्तियाँ स्पृहाशील हैं कि मगध तथा वृज्जिसंघ के मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय पुनः परस्पर रक्तपात में रत हो जाएँ। मगध और वृज्जिसंघ का यह महामिलन उस कुचक्र की ओर से पूर्णतया सावधान है। मगध और वृज्जिसंघ का शक्ति-संघात उस कुचक्र का व्यूह-भेदन करने के लिए पूर्णतया पर्याप्त है।

"मैं आज वृज्जिसंघ के संस्थागार में उपस्थान करके सिंहनाद करता हूँ कि मगध और वृज्जिसंघ सम्पूर्ण आर्यावर्त में चिरन्तन शान्ति की स्थापना के लिये संगठित प्रयत्न करेंगे। शान्ति के विरुद्ध कुचेष्टा का प्रथमतः प्राची में अन्त होगा, फिर मध्यमण्डल में, तदनन्तर आर्यावर्त में, और अन्ततः अखिल जम्बुद्वीप में। कुचेष्टाकारी यदि साहस-सम्पन्न हैं, शक्ति-सम्पन्न हैं, नीतिसम्पन्न हैं तो मगध और वृज्जिसंघ के इस अपराजेय शक्तिसंघात का सामना करें।"

राजा रत्नकीर्ति का सिंहनाद सुनकर संस्थागार में उपस्थित लिच्छवि-वृद्ध हर्ष से गद्गद् हो गये। सबने, एक ही क्षण में, मगधराज के मुख की ओर देखा। उस मुख पर हर्ष नहीं था। भावना-सुलभ भव्य उन्माद भी नहीं। उस मुख पर संकल्प की शान्ति कान्तिमान थी।

मगधराज का वह संकल्प क्या है, यह जानने का अवकाश किसी लिच्छवि-वृद्ध को नहीं था। अतएव उसको जानने का प्रयास भी कौन करता ?

वैशाली महानगर संध्या के अन्धकार में अन्तर्हित होने लगा। एक और संध्या विलास-लिप्सा से विद्ध विभावरी में परिणत हो चली।

प्रत्येक लिच्छवि-वृद्ध, मगधराज से दो क्षण आलाप करके, संस्थागार

से निकल, सीधा अपने घर चला गया। प्रत्येक को मगधराज के लिए गणिकालय में आयोजित अनङ्गरेखा के नृत्य में सर्वप्रथम प्रस्तुत होने की चिन्ता थी। इसके परे उसके जीवन में न कोई प्रेरणा रह गई थी, न पराक्रम।

: २ :

आज रात को मगध के सम्राट, वैशाली के गणिकालय में, अनङ्ग-रेखा के साथ विविक्तवास कर रहे हैं।

वैशाली के लिच्छविगण के लिए, आज संध्या के समय से ही, गणिकालय के समस्त द्वार अनपावृत हैं। आज रात, गणिकालय के प्रमदोद्यान एवं प्रासाद में, अभूतपूर्व शान्ति का साम्राज्य है। गणिकालय में निरन्तर निवास करने वाली तथा नवागता, प्रत्येक कमनीय कामिनी, आज अभिसारिका बनकर किसी-न-किसी लिच्छवि वृद्ध अथवा तरुण के पैतृक आवास में प्रविष्ट है। मगधराज के साथ स्पर्धारत होकर प्रत्येक कुलीन लिच्छवि पुरुष आज रूपाजीवा के यौवन-रस का यथेच्छ उपभोग करेगा।

पूर्वरात्रि में, अनङ्गरेखा का नृत्य निहारते समय, मगध का तरुण शाक्यतरुणी की अर्धनग्न तन्वी तनलता पर आसक्त हो गया था। संगीत का समारोह समाप्त होने पर, मगधराज ने, अपना वाणीद्वार पुलोमजा की कर्णलता के निकट लेजा कर, कहा था : "राजगृह के निशान्त में देशदेशान्तर की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियाँ विद्यमान हैं, राजकुमारि ! किन्तु वैशाली की गणिका-जैसी लावण्य की निर्झरिणी एक भी नहीं।"

पुलोमजा ने, वैशाली के भाग्योदय और अपने आचार्यत्व पर आत्म-विभोर होकर, उत्तर दिया था : "मगधराज ! लिच्छविगण की ओर से वृज्जिसंघ की राजकुमारी आपको निमन्त्रण देती है कि आप, आगामी त्रियामा को अनङ्गरेखा के आगार में अतिवाहित करके, इस देवाङ्गना की देहलता पर अनवरत विकसित विविध कुसुमावलि का निश्चिन्त चयन करें।"

राजप्रासाद के प्रहरीगण द्वारा चतुर्दिक पर्यवेक्षित गणिकालय के सर्वसुन्दर कक्ष में प्रवेश करते समय तक, महाराज अजातशत्रु अपने मुख पर अभिसाराकांक्षा अभिव्यक्त करते रहे। किन्तु कक्ष में प्रविष्ट होकर,

अजातशत्रु ने, अंगुलिमात्र से भी, अनङ्गरेखा के किसी अङ्ग का स्पर्श नहीं किया। विलक्षण वेषभूषा धारण करके मधुरहास का प्रपात-सा प्रवाहित करती हुई अनङ्गरेखा ने, मगधराज को मौन पाकर, प्रश्न किया: "महाराज! क्या अब तक भी आपने इस दासी का अपराध क्षमा नहीं किया?"

अजातशत्रु ने, शान्त गम्भीर वाणी में, पूछा: "कौन-सा अपराध, अनङ्गरेखे!"

"महाराज! कल आपकी शोभायात्रा शृङ्गाटक पर आई तो इस दासी के द्वारा आपका स्वागत सम्पन्न नहीं हो सका।"

"उस अपराध के लिए मैं तुम्हारा चिरकृतज्ञ रहूँगा, अनङ्गरेखे! तुमने, सहसा साहस का प्रदर्शन करके, मेरी हृदयेश्वरी की लाज रख ली।"

अनङ्गरेखा मुस्कराने लगी। तब अजातशत्रु ने पूछा: "तुम्हारे मुखारविन्द पर अलसाती हुई इस स्मितज्योत्स्ना का क्या रहस्य है, अनङ्गरेखे!"

अनङ्गरेखा ने उत्तर दिया: "महाराज! एक गणिका के गर्हित आवास में, प्रकाशित रूप से प्रवेश करके, क्या आप अपनी हृदयेश्वरी के हृदय पर असह्य आघात नहीं कर रहे?"

"हृदयेश्वरी की आज्ञा लेकर ही मैंने गणिकालय के द्वार का अतिक्रमण किया है।"

"अद्भुत हैं मगध की महामना महिषी, महाराज! साधारण स्त्री अपने स्वामी को इस प्रकार अवैध अभिसार का परामर्श कभी नहीं दे सकती।"

"अनङ्गरेखे! मैं अभिसार की आकांक्षा लेकर तुम्हारे आवास में नहीं आया। मैं तो तीर्थयात्रा करने आया हूँ।"

अनङ्गरेखा अवाक् रह गई। अजातशत्रु ने कहा: "वैशाली का यह गणिकालय, एक समय, धर्मसंघ की अनन्य उपासिका, अम्बा आम्रपाली, का निवास स्थान था। धर्मसंघ में प्रव्रजित अम्बा आम्रपाली की पदरज से पवित्रीकृत इस आवास को मैं तीर्थस्थान ही मानता हूँ।"

"किन्तु, महाराज! महर्षियों और महाश्रमणों के लिए भी दुर्लभ धर्मबुद्धि एवं धर्मचक्षु के धनी आपने वेश्यागमन जैसे अकीर्तिकर आशय का आश्रय क्यों लिया?"

"अनङ्गरेखे ! धर्मसाधना तो गोपन रहकर ही महाफलदायिनी होती है। धर्मसाधक के लिये, संसार के साधारण नरनारीवृन्द द्वारा प्रदत्त कुख्याति अपार पुण्यसंचय के समान है।"

अनङ्गरेखा ने अजातशत्रु के चरणों में अपना मस्तक न्यस्त करके कहा : "आप धन्य हैं, महाराज ! पापपङ्क में आकण्ठ निमज्जित मैं भी आज, आपकी पदरज अपने शिर पर धारण करके, धन्य हो गई।"

अपने दक्षिण हस्त का करतल अनङ्गरेखा की मूर्धा पर रख कर अजातशत्रु ने आशीर्वाद दिया : "भगवान दशबल के शिक्षापद इहलोक एवं परलोक में तुम्हारा पथ प्रदर्शन करें।"

अनङ्गरेखा ने अपना मुख ऊपर उठाया तो उसके नयनों से अश्रु की धारा बह रही थी। उसकी ओर करुणा की दृष्टि से देखते हुए अजातशत्रु ने कहा : "अनङ्गरेखे ! आज की त्रियामा के तीनों याम मैं ध्यानस्थ रह कर ही व्यतीत करना चाहता हूँ। किन्तु वैशाली में तुम्हारे अतिरिक्त किसी को यह ज्ञात नहीं होना चाहिये।"

अनंगरेखा ने उत्तर दिया : "महाराज ! अपकी साधना का यह गुह्यभेद मेरे मानसगह्वर से कभी निर्गत नहीं होगा।"

"गुह्यभेदन की एक आशंका है, अनंगरेखे ! इस क्षण, वैशाली के अनेक लिच्छवि गणिकालय से गुञ्जायमान गीत-वाद्य की स्वरलहरी सुनने के लिये श्वासोच्छ्वास रुद्ध किये बैठे हैं। वे यह जानने के लिये लालायित हैं कि मगधराज के अनुरोध से अनङ्गरेखा अपनी विपञ्ची वीणा पर कौनसा स्वरग्राम क्वणित करेगी, अपने कोकिल-कंठ से कौन से राग का आलाप ध्वनित करेगी। उनके सम्यक् समाधान के लिये एक न एक उपक्रम होना आवश्यक है। अन्यथा मेरे जीवन के गोपनीय प्रसंग का अगोपन हो जायगा।"

"महाराज ! यह दासी आपकी सेवा के लिये सर्वथा प्रस्तुत है। आप आदेश दीजिये। दासी यथासाध्य उसका पालन करेगी।"

"अनङ्गरेखे ! तुम मेरे कक्ष से अनतिदूर किसी अन्य कक्ष में उपासीन होकर अपनी विलक्षण वीणा से स्वरमाधुर्य की मन्दाकिनी बहा दो। अपने कंठ से कूजित किसी विरहविह्वल काकली के द्वारा वैशाली के वियन्मंडल

में बहते वातास को विकल कर दो। एक प्रहर पर्यन्त। तदनन्तर, मेरे कक्ष का दीप निर्वापित होते ही, तुम सो जाना। प्रातःकाल के पूर्व मेरे कक्ष में आने का कष्ट तुम न उठाना, अनङ्गरेखे! गतरात्रि को, अपने इस अतिथि का मनोरंजन करते-करते, तुम निद्रादेवी से उऋण होना भूल गई थीं। तुम्हारे कुसुम-कोमल कलेवर को विश्राम की आवश्यकता है।"

"महाराज! पूर्व जन्म में संचित पापपुंज के कारण, मेरा यह जन्म तो कष्ट-सहन के लिये ही हुआ है। अन्यथा पाप से मेरी मुक्ति नहीं हो सकती। प्रत्येक रात्रि में मैं, वासना से विताड़ित लिच्छवियों के मनोरंजनार्थ, इस शरीर को स्नात करती हूं, सज्जित करती हूँ, प्रसाधित एवं सुवासित करती हूँ, चमत्कृत करती हूँ, नर्तित करती हूँ। मैंने इस क्लिष्ट कर्त्तव्य के सम्पादन में भी कभी कष्ट नहीं माना। तो क्या मैं एक रात मगध के राजर्षि की सेवा में रहकर कष्ट का अनुभव करूँगी? नहीं, महाराज! आप मेरे कष्ट का किंचित्मात्र विचार न करें। किन्तु मेरे कारण आपकी शांति स्खलित होती है तो मैं प्रातःकाल पर्यन्त किसी अन्य कक्ष में अपना यह कलुपित कलेवर तिरोहित किए रहूँगी।"

मगधराज मुस्कराकर मौन हो गये। और अनङ्गरेखा, अपनी करधनी की किंकिणमाल को मुखरित होने से विरत करती हुई, प्रथम कक्ष के पार्श्ववर्ती एक अन्य कक्ष में चली गई।

अनङ्गरेखा का मानस इस विलक्षण पुरुष के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति से परिप्लावित हो गया। इस दिन के पूर्व, उसको ऐसा संयम-सम्पन्न पुरुषश्रेष्ठ एक ही मिला था। वह था धर्मसंघ में प्रव्रजित उसका पुराना प्रणयी। किन्तु उदय को एक दृष्टि से देखकर ही मन में प्रतीति होती थी कि वह संसार के साधारण जीवन से दूर, बहुत दूर, चला गया है। रूपवती रमणी के प्रति उसकी अप्रवृत्ति को संयम नहीं कहा जा सकता था। संयम वहाँ होता है जहाँ वासना हो। जिसका शरीर वासना से नितान्त शुद्ध हो गया, उसके लिये संयम का शृंखलाबंधन उपादेय नहीं।

और ये मगधराज? क्या ये भी उदय के समान वासनाविहीन हैं? इन्हें देखकर तो ऐसा नहीं लगता।

उदय के प्रत्येक शब्द में, उसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म चेष्टा में, शांति का

अपरिमेय, परिपूर्ण सागर अचल था। उदय के एक दृष्टिपात से स्नात उसके वासनाविदग्ध गात्र शीतल हो गये थे।

मगधराज के शब्दों मे वह शांति-प्रदायिनी शक्ति नहीं। उनके शब्द सुनकर पाप विस्मृत नहीं होता, पाप की आत्मचेतना ही बढ़ती है। उनके आचरण में शांति का आवरण है, महाशून्य का मूक मोहन नहीं। उनके दृष्टिपात का स्पर्श पाकर गात्र शीतल नहीं होते, शिथिल हो जाते हैं।

किन्तु, फिर भी, मगधराज विलक्षण हैं। वैशाली में तो सर्वथा विलक्षण। लिच्छवि-वंश के किसी वृद्ध ने भी, किसी दिन, ऐसे दुर्भेद्य संयम का परिचय नहीं दिया। लिच्छवि तरुण तो उसकी छायामात्र का आलिंगन करके अपना अहोभाग्य मानते हैं। आज वह मगधराज के कक्ष में गई तो उसको पूर्ण विश्वास था कि एक कटाक्ष से वह उनका हृदय क्षत-विक्षत कर देगी। उसकी आकांक्षा थी कि मगधराज को मदनोन्मत्त करके वह मान करेगी। किन्तु हुआ सर्वथा विपरीत। मगधराज ने उसके रूप-यौवन का मान-मर्दन कर दिया। विलक्षण पुरुष हैं वे......

अनङ्गरेखा ने, उपासीन होकर, वैशाली में विख्यात अपनी विपञ्ची वीणा को अंक में आरोपित किया। शृङ्गार-स्वन उत्पन्न करने की अभ्यस्त उसकी अंगुलियाँ, मध्य स्थान पर मध्यम लय का आश्रय लेकर पञ्चम स्वर की मूर्छना मुखरित करने के लिये प्रेरित हुई। किन्तु मगधराज के अनुरोध का अनुस्मरण हो जाने के कारण तन्त्री तुरन्त झंकृत न हो सकी। उन्होंने विरहकातर करुण रस की सृष्टि करने का आदेश दिया था। एक क्षण के लिये अनंगरेखा किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गई।

विरह-कातर करुण-रस! संगीत के गणित की सहायता से विपञ्ची की विविध तन्त्रियों से क्रन्दन कराया जा सकता है। मन्द्र स्थान पर विलम्बित लय का आश्रय लेकर निषाद स्वर नुदित होते ही वीणा रुदन कर उठेगी। किन्तु वह यंत्रवत् वीणावादन क्या इस अपूर्व अवसर के उपयुक्त होगा? नहीं, कदापि नहीं।

पर विपञ्ची के स्वर को सजीव करने के लिये हृदय में विरहवेदना कहाँ है? किसका विरह वह वेदना जगायेगा?

अनंगरेखा ने, सहसा, अपने मानसपट पर अमिट अंकित, किन्तु

विस्मृति की तिरस्करिणी से तिरोहित, एक चित्र को अनावृत किया। उस चिरतरुण चित्र को, जिसे कपिलवस्तु की किसी मधुयामिनी में, एक प्रणयविह्वल पुरुष की मधुराकृति अटल रेखाओं में आंक गई थी। वह पुरुष अब प्रणयविह्वल नहीं रहा। महाशून्य की शरण लेकर शांत हो गया। वह मधुराकृति अब मुखर नहीं रही। उदासीनता के उदधि में उतर कर उन्मना हो गई। किन्तु मानसपट पर अंकित वह चित्र अब भी विह्वलता से विद्ध था। उस चित्र से अब भी माधुर्य का निर्झर बह रहा था। उसका अवलोकन करते ही अनंगरेखा का हृदय विरहव्यथा से विकल हो गया।

वीणा का क्वणित क्रन्दन करने लगा। और कुछ काल उपरान्त, कोकिलकंठा की कालील ने गणिकालय का प्रत्येक पाषाण द्रवित कर दिया। द्रवित हो गये, प्रमदोद्यान के विटपवरूथ और लतागुल्म के केलिकुंज। नीड-नीड में प्रणय-केलिरत पक्षी-युगल द्रवित हो गये। द्रवित हो गया शृङ्गाटक पर का स्तब्ध वातास। चिरविरक्त वियन्मण्डल द्रवित होने लगा।

रूपाजीवा के आलिंगन में आबद्ध प्रियतम के प्रति कोपाविष्ट, लिच्छवि ललना ने यह करुण क्रन्दन सुना। एक क्षण उसके मानस की अचल असूया विचलित होकर विरह-वेदना से विगलित हो गई। पति को भर्त्सित करने की चिंता में उत्तप्त उसके निर्मम नयन-युगल, विवश-से, अश्रुमोचन करने लगे।

एक पल के समान अतिवाहित हो गया वह एक प्रहर। तब मगधराज के कक्ष में प्रदीप निर्वापित हुए। अनंगरेखा ने अपनी अंगुलियाँ अचल कर लीं। उसके कंठ का कलरव मूक हो गया। नेत्र उन्मीलित करके अनंगरेखा ने एक बार इतस्ततः दृष्टिपात किया। कक्ष का कोना-कोना कारुण्य से कण्टकित था। और अश्रुजल से आविल हो गया था उसके कुचकलश-द्वय पर कसा हुआ कौशेय का स्तनकंचुक।

उसने आसन से उठकर कांस्यफलक के दीर्घाकार दर्पण पर दृष्टिपात किया। और अपने वपु की वेशभूषा का अवलोकन करके उसका मानस असामंजस्य की अनुभूति से विद्ध हो गया। नयननीर द्वारा नितांत शीतलीकृत शरीर पर पिहित, विविध वर्णी वस्त्र तथा मणि-माणिक्य-मण्डित

शुद्ध सुवर्ण के विभूषण, अनंगरेखा को हिमशिला पर बलात् आरोपित अनल-ज्वाल-से लगने लगे। उसके शरीर में व्याप्त शांति के कारण, वस्त्राभूषण की कांति कुण्ठित हो गई थी। वैसे ही जैसे हिमवाष्प से विरूपीकृता वह्निशिखा।

दूसरे क्षण, अनंगरेखा के ललाट पर चमत्कृत चूड़ामणि च्युत हो गया। स्थानभ्रष्ट हो गई उसके सीमंत पर सर्पायमान पीतकांति पत्र-पाश्या। लुप्त हो गये कर्णलता-द्वय में दोलायमान मरकत के मकराकृति कुण्डल। अपहृत हुआ, कंबुकंठ से आनाभि-आलम्बित, शतयष्टि हीरकहार। कटितट पर सतत मुखरित मेखला, कक्ष-कुट्टिम पर अंतिम क्वणित करके मूक हो गई। प्रगण्डयुगल से विलंबित केयूर विकीर्ण हो गये। विदूरित हुए प्रकोष्ठद्वय पर वेष्टित वलयकंकण। तिरोहित हुए कराग्रों पर कुसुमित अंगुलीयक। चरण-ग्रंथिया को ग्रथित करने वाले पादांगद भूविलुंठित हो गये। स्खलित हो गये पादांगुलियों में पिहित नुपूर।

तदनन्तर अनंगरेखा ने, सिन्दूरद्युति कौशेय का स्तनपट्ट उतार कर, कार्पास वस्त्र का कञ्चुक धारण किया। हरितद्युति कौशेय के चण्डातक को अपसरित करके उसने एक शुभ्रवर्ण शाटिका से अपने शरीर के अधोभाग को आगुल्फ आवृत कर लिया। और अन्त में, कवरीपाश से विमुक्त उसकी केशराशि, स्कन्धद्वय का स्पर्श करती हुई, आनितम्ब आकीर्ण हो गई।

कक्ष का प्रदीप निर्वापित करके, अनंगरेखा अपने पर्यङ्क की ओर अग्रसर हुई। उसका शान्त शरीर, तूल-गर्भित तल्प पर शिथिल होकर, सुषुप्ति में समा जाने के लिए स्पृह्यमाण था।

किन्तु सहसा, न जाने क्यों, उसके मानस में सुप्त एक अन्य स्पृहा अकस्मात् जाग उठी। अनंगरेखा की इच्छा हुई कि, एक बार पार्श्ववर्ती कक्ष के कूल पर जाकर, ध्यानावस्थित मगधराज के दर्शन करे। अजातशत्रु ने स्वयं कहा था कि वे रमण अथवा शयन करने के लिए गणिकालय में नहीं आए हैं। अनंगरेखा यह जानने के लिए आतुर हो गई कि वे एकान्तवासी मनीषी, प्रहर-प्रति-प्रहर जागृत रह कर, किस प्रकार निशा-यापन कर रहे हैं।

अलिन्द में जाकर, अनंगरेखा निःशब्द पद से मगधराज के कक्ष की ओर चल पड़ी। निविड निशीथ में निमज्जित था गणिकालय का प्रत्येक प्रान्त। नितान्त थे निस्तब्ध दिग्दिगन्त। प्रणयकेलि से क्लान्त विहग-युगल सो गए थे। और अनिल के अचल हो जाने से अविचल थे कानन के कुसुम एवं किसलय।

प्रथम कक्ष का एक द्वार और दो गवाक्ष उस अलिन्द की ओर अपावृत होते थे। अपने कक्ष के निकटतम गवाक्ष पर जाकर, अनंगरेखा ठिठक गई। कक्ष के गर्भ से दो कण्ठों के निम्नस्वर वार्त्तालाप की क्षीण ध्वनि निर्गत हो रही थी। एक कण्ठ के स्वर को अनङ्गरेखा ने पहचान लिया। वह मगधराज का स्वर था। शान्त एवं गम्भीर। किन्तु दूसरे कण्ठ के विषय में वह निश्चय नहीं कर पाई कि किसका है। इस क्षण के पूर्व वह स्वर उसने कभी नहीं सुना था।

अपरिचित कण्ठ कह रहा था : "पाटलिपुत्र के पतन का समाचार सुनकर, राजा रत्नकीर्ति ने वैशाली में सन्निपात-भेरी नहीं बजवाई। अतएव मैं कह नहीं सकता कि, स्वदेश रक्षा के लिए शस्त्रास्त्र से सज्जित होकर, समवेत होने का सामर्थ्य लिच्छवि-गण में अब अवशिष्ट है अथवा नहीं।"

मगधराज ने कहा : "किन्तु उस सामर्थ्य के विषय में निश्चय हुए बिना हमारी सेना के लिए जाह्नवी पार करना उचित नहीं होगा। लिच्छवि-गण यदि युद्ध के लिए तत्पर हो गए तो मागध सेना का ध्वंस अनिवार्य हो जायगा।"

अपरिचित कण्ठ ने कोई उत्तर नहीं दिया। कक्ष में समुपस्थित दोनों पुरुष अब मौन थे। किन्तु बाहर अलिंद में अवरूढ़ अनङ्गरेखा का मानस मौन नहीं रहा। उसका अन्तर आक्रोश कर उठा कि जिस मगधराज को मनीषी मानकर वह अपना मस्तक नत करने आई थी, वह वस्तुतः एक मिथ्याचारी मोघपुरुष है। गणिकालय में तीर्थयात्रा करने नहीं आया था अजातशत्रु। वह वैशाली के विध्वंस के लिए कुचक्र रचने आया था। अनङ्गरेखा की इच्छा हुई कि उसी क्षण शृङ्गाटक पर जाकर वैशाली के वास्तुहृदय में प्रविष्ट उस दस्यु के विरुद्ध उद्घोष करे, और सोए हुए

वृज्जिसंघ को जगा दे।

इसी समय मगधराज ने अपने सहचर से प्रश्न किया : "पाटलिग्राम का पुराना दुर्गपाल क्या कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ ?"

अपरिचित पुरुष ने उत्तर दिया : "अंगुत्तराप में हमारे अनेक सैनिकों का वध करके वह लुप्त हो गया। सुनक्खत की गूढ़-प्रणिधि ने सिर पटक लिया, किन्तु उसका कोई सन्धान अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। सुनक्खत का विचार है कि वन के किसी हिंस्र पशु ने उसके प्राण ले लिये होंगे।"

"क्या वह वत्सला से साक्षात्कार करने भी नहीं आया ?"

"वत्सला के आवास में यातायात करने वाले स्त्री-पुरुषों का पूर्ण सावधानी से अनुसरण किया जाता है। वह कभी बाहर जाती है तो उसकी प्रत्येक चेष्टा का चार-वृत्तान्त मुझे प्राप्त होता है। किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि वत्सला ने, सहसा, सब ओर से सन्यास ले लिया है। वैशाली में जो कुछ हो रहा है, उसके विषय में मुख खोलकर, एक भी शब्द कहते उसको किसी ने नहीं सुना।"

"कौन जाने यह सन्यास है अथवा संयम ? यदि वह दुर्गपाल जीवित है तो मैं वत्सला की ओर से सतत सशङ्क ही रहूँगा।"

अज्ञात पुरुष ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सुनक्खत का नाम सुनकर अनङ्गरेखा आपाद-मस्तक सिहर उठी। उसने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि राजा रत्नकीर्ति का अन्तरंग मित्र और राजकुमारी पुलोमजा का प्रतिपल परामर्शदाता, मगधराज का गूढ़ पुरुष है। सुनक्खत ही तो कौशाम्बी जाकर उसे वैशाली में लाया था। उसे वैशाली की गणिका बनाने का सर्वाधिक श्रेय यदि किसी को प्राप्त था तो सुनक्खत को। सुनक्खत के ही प्रयत्न से अधिकतर लिच्छवि-वृद्ध राजकुमारी पुलोमजा का पक्ष लेने के लिए तत्पर हुए थे। किन्तु......

मगधराज ने प्रश्न किया : "उस श्रमण के विषय में आपका क्या विचार है ? उसको वैशाली में विद्यमान रहने देकर, राजा रत्नकीर्ति के विरुद्ध प्रकाशित रूप से प्रचार करने देना क्या वांछनीय है ?"

अज्ञात पुरुष बोला : "धर्मसंघ से निर्वासित होने के उपरान्त, वैशाली का कोई गृहस्थ उसको अपने आवास में आमन्त्रित नहीं करता। न कोई उसके शिक्षापद सुनने जाता है। गौतमक चैत्य में प्रातः और संध्या के समय जाने वाले दस-बीस वृद्धों एवं निरीह स्त्री-पुरुषों को देखकर वह चैत्य के मण्डप में दो क्षण बकवाद कर लेता है। उसमें मैं कोई दोष नहीं देखता, महाराज ! इसके विपरीत एक लाभ की ही आशा है। सम्भव है कि श्रमण के द्वारा हमें एक दिन उस दुर्गपाल का कुछ सन्धान मिल जाए। वत्सला के किसी दुर्भेद्य रहस्य का उद्घाटन भी उस ओर से सम्भव है।"

"किन्तु मुझे दोष दिखाई देता है। इस समय, सौभाग्य से, वैशाली का वातावरण रत्नकीर्ति के अनुकूल है। किन्तु दुर्दैव से, किसी अकस्मात् घटना के कारण, यदि वह वातावरण प्रतिकूल हो जाए तो श्रमण के रूप में वह स्फुलिंग ही शृङ्गाटक पर सिंहनाद करके, वैशाली में आग लगा सकता है। अतएव समय अपने हाथ में रहते हुए ही उस श्रमण का दमन होना चाहिए।"

"दमन के एक मार्ग का अवलम्बन हम ले चुके, महाराज ! धर्मसंघ से निर्वासित श्रमण का दंशन अत्यन्त दुर्बल हो गया है। किन्तु दंशन की क्षमता का सर्वथा शमन नहीं हुआ। वह शमन उत्पन्न करने के लिये कोई अन्य उपाय विचार करके खोजना होगा।"

"क्या उसको वृज्जि महाजनपद से निर्वासित नहीं किया जा सकता ?"

"निर्वासन-दण्ड को वह अमान्य कर देगा। उसको पकड़ कर यदि वृज्जि महाजनपद के बाहर भी छोड़ दिया जाए तो वह पुनः लौट आवेगा। भय का नाममात्र नहीं जानता वह।"

"तो उसे काराग्रस्त करो।"

"जब तक वह कोई गुरुतर अपराध न करे तब तक वृज्जिसंघ का दण्ड-विधान इस विषय में विवश है, महाराज !"

मगधराज का स्वर सहसा किंचित् असहिष्णु हो गया। वे बोले : "मैं मगध के संधिविग्रह-महामात्य, आर्य वर्षकार, की क्षमता का साक्षात्कार करने के लिये वैशाली में आया हूँ। वृज्जिसंघ के विनिश्चय-महा-

मात्य की विवशता पर विवाद करने के लिये नहीं। यदि पाँच वर्ष से अधिक समय तक परिश्रम करने के उपरान्त भी आर्य वर्षकार एक तुच्छ श्रमण के विषय में विवशता का बोध करते हैं, तो वे एकशत वर्ष में भी वृज्जिसंघ को ध्वस्त नहीं कर सकेंगे।"

एक बार फिर से अनङ्गरेखा आपाद-मस्तक सिहर उठी। आर्य वर्षकार!!! एक क्षण उसको विश्वास नहीं हुआ कि, अन्धकार के आवरण में तस्कर की भाँति तिरोहित होकर, वृज्जिसंघ के विरुद्ध मगधराज से मिलकर षड्यंत्र करने वाला यह अज्ञात पुरुष वृज्जिसंघ का विनिश्चय-महामात्य वर्षकार ब्राह्मण है। वही वर्षकार जिसको मगधराज ने, मस्तक मुण्डन-पूर्वक, मगध महाजनपद से आजीवन निर्वासित कर दिया था। वही वर्षकार जिसने अजातशत्रु को आमूल उच्छेद करने की शपथ राजगृह के जनगण के समक्ष ग्रहण की थी। वही वर्षकार जो एक दिन पाटलिग्रामस्थ मागध दुर्ग का उपलम्भोपाय लिच्छवि दुर्गपाल पर प्रगट करके वृज्जिसंघ का विशिष्ट विश्वासपात्र बना था। वही वर्षकार जिसके कृच्छ्र जीवनयापन की कथा वैशाली की वीथि-वीथि में विख्यात थी।

मगधराज ने एक क्षण मौन रहकर अधिकारपूर्ण स्वर में आदेश दिया: "श्रमण का उपांशुवध वाञ्छनीय है। मेरे वैशाली से लौटते ही उसकी इहलोकलीला समाप्त हो जानी चाहिये।"

आर्य वर्षकार ने उत्तर दिया: "जो आज्ञा, महाराज! वही होगा जो आप वाञ्छनीय समझते हैं।"

अनङ्गरेखा पर मानो वज्रपात हुआ। उदय का उपांशु-वध! उस उदय का, जिसके प्रणय में प्रमत्त होकर उसने कपिलवस्तु में वे अपूर्व अहर्निश व्यतीत किये थे! जिसको खोजने के लिये वह कोसल, मल्ल, वृज्जि तथा मगध के ग्राम-ग्राम में, नगर-नगर में जोगन बनकर घूमी थी! जिसका सन्धान मिलते ही वह उसी क्षण पाटलिग्राम की ओर प्रधावित हुई थी! जिसकी चरम सिद्धि का परिचय मिलते ही वह उस सिद्धि के प्रति श्रद्धापरायण बनी थी! और जिसके लिए करुण-क्रन्दन करके आज, कुछ क्षण पूर्व, उसको वैराग्यानुभूति का प्रथम साक्षात् संकेत उपलब्ध हुआ था! उसका उपांशु-वध वह नहीं होने देगी। तन में प्राण रहते

कभी नहीं। वह अपने प्राण देकर उदय की रक्षा करेगी।

मगधराज एवं महामात्य की मन्त्रणा सुनने का धैर्य अब अनङ्गरेखा के पास नहीं रहा। उसी क्षण गौतमक चैत्य में जाकर उदय को सावधान करने के लिए व्यग्र हो उठी वह। और वह प्रासादतल से प्रमदोद्यान में जाने वाली सोपान-श्रेणी की ओर अग्रसर हो गई।

गणिकालय के सिंहद्वार को पार करके, अनङ्गरेखा शृंगाटक पर पदार्पण करना चाहती थी कि द्वार पर संरूढ़ प्रहरी ने, आगे बढ़कर, उसका मार्ग रोक लिया। और वह कर्कश स्वर में बोला : "कौन है तू? कहाँ से आ रही है? कहाँ जा रही है?"

अनङ्गरेखा ने दृप्त कण्ठ से उत्तर दिया : "मैं वैशाली की गणिका अनङ्गरेखा हूँ।"

स्तम्भित-सा प्रहरी एक पद पीछे की ओर हट गया। फिर उसने पूछा : "आप इस समय कहाँ जा रही हैं, देवि!"

"मुझसे यह प्रश्न पूछने का अधिकार तुमको किसने दिया?"

इस प्रश्न का उत्तर प्रहरी को ज्ञात नहीं था। वह बद्धाञ्जलि होकर आर्त वाणी में बोला : "देवि! इस दास की धृष्ठता क्षमा करें। मैं वृज्जि-संघ का वेतनभोगी भृत्य हूँ। आर्य सुनक्खत की आज्ञा के बिना मैं किसी को इस द्वार का अतिक्रमण नहीं करने दूँगा।"

"आर्य सुनक्खत को सूचना दे देना कि अनङ्गरेखा गणिकालय के बाहर गई थी।"

"देवि! आप प्रासाद में पधारिये। मैं इसी क्षण आर्य सुनक्खत के समीप सूचना पठाता हूँ। वे जैसा उचित समझेंगे, वैसा करेंगे।"

"किन्तु मेरे पास समय नहीं है, प्रहरी! मुझे इसी क्षण जाना होगा।"

"मैं सर्वथा विवश हूँ, देवि!"

"किन्तु मैं तो विवश नहीं हूँ। मैं सर्वथा समर्थ हूँ।"

अनंगरेखा अग्रसर हुई। प्रहरी ने पुनः उसका मार्ग अवरुद्ध कर लिया। तब अत्यन्त शांत स्वर में अनंगरेखा ने कहा : "प्रहरी! इस समय यदि पर्वतराज हिमालय भी मेरा मार्ग रोकने आए तो मैं नहीं रुकूँगी। मैं जाऊँगी ही। इसी क्षण जाऊँगी। तुम मेरे मार्ग से हट जाओ। यदि

अंगुली के नखाग्र से भी तुमने मेरे किसी अंग का स्पर्श किया तो अकारण ही तुम्हारे प्राण संकट में पड़ जायेंगे। अनंगरेखा की क्षमता से तुम अवगत हो। हठ मत करो। हट जाओ।"

प्रहरी ने अपना शिर अवनत कर लिया। अनंगरेखा एक क्षण में सिंहद्वार का अतिक्रमण कर गई। प्रहरी को पुनः इतना साहस न हुआ कि आगे बढ़कर उसका पथ अवरुद्ध कर दे।

राजपथ पर आकर अनंगरेखा नगर-दुर्ग के दक्षिण द्वार की ओर प्रधावनमान हुई। दैनन्दिन नृत्य करने की अभ्यस्त उसकी देह में शैथिल्य का लेशमात्र नहीं था। और उसके उदय के ऊपर आसन्न संकट की आशंका ने उसके गात्रों में किसी अपूर्व स्फूर्ति का संचार कर दिया। आज यदि सेना का श्रेष्ठ सैन्धव भी उसके साथ धावमान होने की स्पर्धा करता तो वह परास्त हो जाता। अनंगरेखा का चूर्ण चिकुरभार राजपथ के द्रुतवाही प्रभञ्जन में प्रवाहमान था।

अनंगरेखा को इतना ज्ञात था कि उसका उदय गौतमक चैत्य की अवस्थानशाला में निवास करता है। समय-समय पर गणिकालय में आनेवाला कोई पुरुष, उदय का समाचार उसके पास ले आता था। उदय के उन्माद का समाचार। अभी तक वह उदय के विषय में सब कुछ सुनकर भी मौन रही थी। उसीकी कुचेष्टा के कारण धर्मसंघ में निर्वासित उदय को लेकर, यदि कोई उसके साथ परिहास भी करता था तो वह मुँह नहीं खोलती थी। न उसने कभी उदय के विषय में किसी से कोई प्रश्न पूछा था, न कभी गौतमक चैत्य में जाकर उससे क्षमा माँगने की चेष्टा की थी। किन्तु अपनी भयानक भूल का पश्चात्ताप प्रतिपल उसके हृदय में विद्यमान रहा था। विशेषकर इसीलिए कि उदय ने एक वार भी किसी के सन्मुख उस भूल का उल्लेख करके उसकी भर्त्सना नहीं की थी।

अवस्थानशाला का मुख्यद्वार अपावृत था। किन्तु परिवेण में पदार्पण करते ही अनंगरेखा असमंजस में पड़ गई। अवस्थानशाला में चारों ओर एकाधिक आवास थे। निश्चित रूप से यह जाने विना कि उदय कौन से आवास में है वह किसी आवास की ओर जाना नहीं चाहती थी।

उसे भय था कि अन्धकार में वह भूल से किसी अन्य परिव्राजक का एकांत भँग न कर दे। परिवेण में खड़ी-खड़ी वह सोचने लगी कि किस प्रकार उदय का आवास खोजे।

अन्त में मन-ही-मन एक निश्चय करके, अनंगरेखा ने परिवेण के चतुर्दिक प्रसरित अलिन्द पर अवरोहण किया। वह चाहती थी कि प्रत्येक आवास के द्वार पर जा कर देखे कि भीतर कौन है। किसी-न-किसी में सोए हुए उदय को वह अवश्य पा लेगी।

आवास कवाट-हीन थे। अतएव उनके गर्भगृह का सूक्ष्मनिरीक्षण करना उसके लिये कष्टसाध्य नहीं हुआ। निःशब्द पद से अलिन्द पर अग्रसर होकर होती हुई वह प्रत्येक आवास के समक्ष एक क्षण के लिए अवस्थान करने लगी।

अनंगरेखा ने एक-एक करके प्रथम अलिन्द के द्वादश आवास देख लिये। वे सब-के-सब सर्वथा शून्य थे। आबासतल पर प्रधावमान मूषिक-वृन्द के अतिरिक्त, उनमें किसी प्राणी का संकेत उसे नहीं मिला।

द्वितीय अलिन्द के समस्त आवास भी जनहीन थे। अनङ्गरेखा का हृदय निराशा से निर्जीव-सा होने लगा। वह शीघ्रातिशीघ्र उदय के समीप उपस्थित होने के लिए आतुर थी। उससे यह अनुरोध करने के लिए कि वह तुरन्त ही उस अवस्थानशाला का परित्याग करके अपने प्राणों का परित्राण करे। उसके पास अब अधिक समय नहीं था। वह जानती थी कि सुनक्खत्त अथवा उसके अनुचर किसी भी क्षण वहाँ आकर उसका समस्त अध्यवसाय असफल कर सकते हैं।

तृतीय अलिन्द का अतिक्रमण करते-करते अनंगरेखा के हृदय में आशा की अन्तिम किरण भी टिमटिमाने लगी। आठ आवास देख लिए, किन्तु सबके-सब सर्वथा रिक्त थे। अब उसका संयम भी शिथिल होने लगा। उसकी इच्छा हुई कि उदय का नाम लेकर चीत्कार करे। वह जहाँ भी होगा, चला आएगा। और वह अपना सन्देश उससे कह देगी।

किन्तु नवम आवास के सम्मुख संरूढ़ होते ही अनङ्गरेखा का हृदय हर्षोद्रेक से उत्फुल्ल हो गया। आवासभूमि के मध्यप्रान्त में, पृष्ठभित्ति की ओर अभिमुख, एक शाक्य-श्रमण ध्यानाविष्ट-सा उपासीन था। अनंग-

रेखा ने तुरन्त पहचान लिया कि वह उदय है। उसका अपना उदय ! वसन्त की उस विभावरी में, यानपात्र की हर्मिका से जिस ध्यानाविष्ट मूर्ति को उसने एक मुहूर्त तक निर्निमेष नयनों से निहारा था, वह भी इसी की प्रतिमूर्ति थी। अनङ्गरेखा के हृदयतल में अवतरित हो चुकी थी वह मूर्ति। संसृति के प्रतिपल प्रत्यावर्तन में प्रतिष्ठित होकर भी परिपूर्णतया परिनिवृत्त पुरुष की मूर्ति थी वह। महानाद करते हुए महोदधि के मध्य में मेरुशिखर-सी शान्त।

अनंगरेखा ने आवास में प्रवेश किया। और उदय से अनतिदूर खड़ी होकर वह क्षीण कण्ठ से कूक उठी : "उदय ! ध्यानावस्थित होने का समय नहीं है यह। पलायन करने की वेला है।"

श्रमण ने मुख मोड़ कर एक क्षण अपने पीछे खड़ी नारी को देखा। फिर वे शान्त स्वर में बोले : "अनिले ! तुम ! इस समय ! यहाँ !"

अनङ्गरेखा ने श्रमण के और समीप जाकर व्यग्रभाव से कहा : "उदय ! तुम्हारे प्राण संकट में हैं। अजातशत्रु का अनुचर वर्षकार......

वाक्य पूरा होने के पूर्व ही अनङ्गरेखा के मुख से एक आर्तनाद निर्गत हुआ। दूसरे क्षण वह एक छिन्नमूल वृक्ष की भाँति निरावलम्ब-सी भूमितल पर गिर पड़ी।

श्रमण ने ससंभ्रम अपने आसन से उत्थान किया। मुख परावृत्त करते ही उन्होंने देखा कि अनंगरेखा का शुभ्रवसनावृत शरीर अधोमुख होकर उनके पादपद्मों के निकट शायमान है। कमनीय कामिनी की दक्षिण कुक्षि में असिपुत्रिका आकुंचित थी। किन्तु आघातकारी का किंचित्मात्र सन्धान उनको अपने आवास में नहीं मिला। अनंगरेखा पर आक्रमण करके वह तडित् की नाईं तिरोहित हो गया था।

तब, आयुष्मान उदय ने, उपासीन होकर, अनंगरेखा की अचल देह को ऊर्ध्वमुख किया। नवयौवना नारी का शरीर अपनी प्रतिजंघा पर न्यस्त करके, वीतराग पुरुष ने पुकारा : "अनिला ! अनिला !!"

अनंगरेखा ने नेत्रोन्मीलन करके कहा : "तुम्हारे प्राण संकट में हैं, उदय ! तुम......"

मरणासन्न नारी की नेत्रद्युति से एक क्षण के लिए वह तमसावृत

आवास आलोकित हो उठा। किन्तु दूसरे ही क्षण वह नेत्रद्युति निर्वापित हो गई। जैसे कोई प्रवातस्थ प्रदीप पल भर के लिए प्रचण्डतर प्रोज्ज्वलित होकर परिनिर्वाण को प्राप्त हो गया हो। अनंगरेखा का प्राणहीन मस्तक श्रमण के ऊरुदेश पर विलुण्ठित हो गया। और उस पर से परितः प्रकीर्ण अनंगरेखा के मेचक मूर्धजजाल ने आवास में कारागस्त अन्धकार को और भी कृष्णकाय कर दिया।

अनंगरेखा के निर्जीव पंजर का परित्याग करके आयुष्मान उदय ने उत्थान किया और वे, धीरपद से, परिवेण में निकल आये। वहाँ उनके अतिरिक्त कोई अन्य मानवप्राणी नहीं था। तब परिवेण को पार करके उन्होंने अवस्थानशाला के मुख्यद्वार का अतिक्रमण किया। सहसा चैत्य का प्राङ्गण दण्डप्रदीप के प्रकाश से आलोकित हो उठा। और वहाँ पर समुपस्थित आर्य सुनक्खत, खड्गहस्त प्रहरियों के साथ, अवस्थानशाला की ओर अग्रसर होने लगे।

प्रभात होते-होते समस्त वैशाली में यह प्रवाद प्रचारित हो गया कि धर्मसंघ से निर्वासित उदय भिक्षु ने निर्दोष अनंगरेखा का असिपुत्रिका के आघात से अकारण व्यापादन किया है। वैशाली के वासियों ने दल-पर-दल आकर अवस्थानशाला का परिवेण आपूरित कर दिया। गौतमक चैत्य का प्रशस्त प्रांगण भी।

उस जनसमवाय में वत्सला नहीं थी। अजातशत्रु के वैशाली आगमन के पूर्व आर्य सुनक्खत ने उनको परामर्श दिया था कि वे, कुछ काल के लिए, मिथिला चली जाएँ तो उनकी उपस्थिति से उद्भूत, राजा रत्नकीर्ति और राजकुमारी पुलोमजा का त्रास दूर हो जायगा। वे चली गई थीं और उनके मिथिलावास का समाचार सुन कर वैशाली के समीप से चले गए थे अज्ञातवासी अनिरुद्ध।

मध्याह्न व्यतीत हुआ। अपराह्न भी। सर्वथा मौन आयुष्मान उदय, अनंगरेखा की रक्तरंजित देह के निकट, अपने आवास में उपासीन रहे। वृज्जिसंघ के शस्त्रास्त्र-सज्जित सुभट, आवास का द्वारदेश अवरुद्ध करके, अवरूढ थे।

अपराह्न की अन्तिम वेला व्यतीत होते-होते, वृज्जिसंघ की विनिश्चय-

शाला में धर्मासनस्थ आर्य वर्षकार ने एकमात्र साक्षी, आर्य सुनक्खत, का साक्ष्य श्रवण करके, अवरुद्ध अपराधी के विरुद्ध अपना दण्डनिर्णय निवेदित किया। तब डिण्डिमघोष के द्वारा वैशाली की वीथि-वीथि को विज्ञापित किया गया कि अनंगरेखा के अवसान से अवसन्न वैशाली-वासी, यदि इच्छा करें तो, उस आततायी श्रमणास्पद पर प्रस्तरखण्ड तथा लगुड का प्रहार करते हुए उसको नगर के दक्षिणद्वार से निर्वासित कर सकते हैं; यदि वैशाली के न्यायप्रिय निवासी अपने निर्बाध अधिकार का उपभोग करने से विरत रहे तो वधकर्माधिकारी विवश हो श्रमण को शूलविद्ध करेंगे।

प्रदोष के समय, उत्तेजित जनसमवाय ने प्रस्तर-प्रक्षेप तथा लगुडाघात से क्षतविक्षत आयुष्मान उदय को नगर के दक्षिणद्वार से निर्वासित कर दिया। प्रचुर प्रताड़ना से शिथिलित श्रमण का शरीर महापथ की पांसु-राशि में पतित हो गया। और कुछ समय उपरान्त, दक्षिणद्वार के बाहर बसने वाले चाण्डालवृन्द ने, उस शरीर को प्राणहीन समझ कर पांशु-पुञ्ज पर फेंक दिया जिससे कि, शर्वरी में संचार करने वाला शृगालसंघ उस पापिष्ठ पुरुष के मांस का स्वच्छन्द भाव से कवल कर सके।

किन्तु शृगालसंघ के समुपस्थित होने से पूर्व ही एक अश्वारूढ़ पुरुष, पांशुपुञ्ज से यत्नपूर्वक उत्थापित श्रमण के शरीर को अपने अंक में आरोपित करके तिमिर में तिरोहित हो गया।

दशम अंक

वैशाली के संस्थागार में वृज्जिसंघ की परिषद का सन्निपात है। वृज्जिसंघ तथा मल्लराष्ट्र के मध्य सद्य-समुपस्थित विग्रहाशङ्का पर विचार करने के लिए। विसंवाद का कारण अकस्मात् ही उपस्थित हो गया।

गणिका अनङ्गरेखा के नाटकीय निधन का समाचार, दावानल के समान, समस्त प्राची में प्रसारित हो गया था। शाक्यसंघ के श्रमण से गणिका का निकट सम्पर्क होने के कारण। राजगृह तथा चम्पा में उस घटना की चर्चा चली थी। कुशीनगर और पावा में भी। सर्वत्र एक विवाद-सा होने लगा था। जितने मुख उतने मत। कोई शाक्यदुहिता अनिला के साथ उदय लिच्छविपुत्र की प्रणयगाथा पर प्रमुग्ध था। कोई वैशाली की विख्यात वारांगना के नखशिख का शृङ्गारमय वर्णन सुनाकर रसविहीन श्रमण की निन्दा करता था। कोई आयुष्मान उदय की उग्र तपश्चर्या का स्तुतिवादन। किसी का मत था कि श्रमण ने ही गणिका की हत्या की है। किसी का विश्वास था कि अनंगरेखा का हत्यारा, अवश्य ही, अजातशत्रु का कोई अनुचर था। इस विवाद के कारण, चिरबन्धुत्व के बन्धन में आबद्ध बन्धुगण के मध्य भी, कहीं-कहीं मनो-मालिन्य हो गया था।

इस रोमांचकारी घटना के प्राय: एक मास उपरान्त, एक मध्याह्न में, कतिपय लिच्छवि पुरुष, कतिपय मल्ल पुरुषों के साथ एक ही नौका पर आरोहण करके, गण्डकी पर पारगमन कर रहे थे। पूर्ववर्ती तट से पश्चिम-वर्ती तीर की ओर। अन्यान्य विषय की चर्चा करते-करते, वे सब, अनायास ही, अनंगरेखा के उपाख्यान पर वार्त्तालाप करने लगे।

एक मल्ल पुरुष ने, विश्वास के स्वर में, कहा: "शाक्यश्रमण सर्वथा निरपराध थे। यदि वे अनंगरेखा पर आसक्त होते तो अपने पूर्वाश्रम में

ही उसका परिणयन कर सकते थे। वैराग्य-प्रवण महापुरुष के द्वारा एक वारवनिता पर बलात्कार की बात मैं नहीं मान सकता। कोई अन्य जन मानता है तो मुझको समझाए।"

द्वितीय मल्ल पुरुष बोला : "तुम्हारे पास इसका क्या प्रमाण है कि श्रमण का वैराग्य परिपक्व हो गया था। और अपरिपक्व वैराग्य तो अनंगरेखा जैसी अनिन्द्य सुन्दरी के समक्ष स्थिर नहीं रह सकता। भगवान के अप्रतिम प्रभाव से जो विरक्ति उदय लिच्छविपुत्र के मानस में उद्भूत हुई थी, वह भगवान के न रहने पर विभ्रष्ट हो गई। अन्यथा उदय लिच्छविपुत्र, शाक्यसंघ का श्रमण होकर, एक वारवनिता के साथ यान-पात्र पर एकाकी यात्रा नहीं करता।"

एक लिच्छवि पुरुष ने शंका उपस्थित की : "वैशाली में तो यह सुना जाता है कि वारांगना ने ही श्रमण के साथ प्रवञ्चना करके उनको अपने यानपात्र पर आरूढ़ किया था। श्रमण को ज्ञात ही नहीं था कि उस यान-पात्र पर कोई योषित भी यात्रा कर रही है।"

दूसरे लिच्छवि पुरुष ने पूछा : "तो फिर श्रमण के उत्तरासंग पर वीर्यमोचन का मालिन्य कहाँ से आया ?"

प्रथम लिच्छवि पुरुष ने उत्तर दिया : "तुम तो वैशाली में रहते हो, सौम्य ! तुमको तो यह विदित है कि शाक्यसंघ के साधारण श्रमण अत्यन्त असंयम का जीवन व्यतीत करते हैं। वे वैशाली की कुलवीथियों में जाकर कुलस्त्रियों को दूषित करते हैं। महावन तथा आम्रवन के निभृत निकुञ्जों में भी वे, मद्यपान करके, मदनोन्मत्त कुलकुमारियों के साथ मैथुनरत देखे जाते हैं। उन श्रमणास्पदों के लिए एक उत्तरासंग को वीर्य-मोचन से मलिन कर डालना कौनसा दुस्साध्य कार्य है ? वे यदि करें तो कूटागारशाला के परिवेण को भी वीर्यमोचन करके परिप्लावित कर दें।"

द्वितीय लिच्छवि ने कहा : "छिः छिः !! तुम तो धर्मसंघ के प्रति विद्वेष का पोषण करते हो। अन्यथा धर्मसंघ के विरुद्ध ऐसा मिथ्याप्रचार नहीं करते। क्या तुमको ज्ञात नहीं कि हमारी राजकुमारी पुलोमजा स्वयं धर्मसंघ की परम उपासिका हैं ? वृज्जि महाजनपद की जनपद-कल्याणी

द्वारा पूजित धर्मसंघ की निन्दा करना किसी लिच्छवि को शोभा नहीं देता।"

प्रथम लिच्छवि हँसने लगा। फिर उसने कहा : "राजकुमारी पुलोमजा धर्मसंघ के प्रति जितनी श्रद्धा का प्रदर्शन करती हैं, उससे अधिक श्रद्धा का पोषण वे भगवान मन्मथ के लिए करती हैं। क्या तुम्हें ज्ञात नहीं कि राजकुमारी द्वारा राजोद्यान में आमन्त्रित लिच्छवि कुलपुत्र तथा कुलकुमारियाँ, सुराप्रमत्त होकर, रात-रात भर, भगवान मन्मथ की आराधना करते हैं ?"

द्वितीय लिच्छवि बोला : "राजकुमारी के वैयक्तिक जीवन पर व्याख्यान देने की आवश्यकता नहीं, सौम्य ! मैं तो इतना ही जानता हूँ कि राजकुमारी के कारण ही आज, अखिल आर्यावर्त में, वृज्जिसंघ का शीश उन्नत है, लिच्छवि-वंश का विमल यश विस्तृत है। राजकुमारी के विरुद्ध तुम्हारा यह अपप्रचार यदि आर्य सुनक्खत ने सुन लिया तो वैशाली में तुम्हारा वास सुखकर नहीं रहेगा।"

प्रथम लिच्छवि ने कहा : "तुम मेरे कारण भयभीत मत हो, सौम्य ! मेरी गणना राजकुमारी के अनन्य उपासकों में है। तुमने यदि किसी वैशाली-वासी के समक्ष मेरी निन्दा की तो तुम्हारा ही उपहास होगा। वैशाली में सबको विदित है कि मैंने अपनी समस्त पैतृक सम्पत्ति को पान-पात्र में ढालकर पी लिया। वैशाली में सब जानते हैं कि मैं अपनी पति-परायणा पत्नी की पादप्रहार द्वारा पूजा करके नित्यप्रति नित्यनूतन रूपाजीवा का अधरामृत पान करता हूँ। मेरे जैसे पराक्रमी कुलपुत्र के विरुद्ध तुम्हारे जैसे कूपमण्डूक का कुत्सावाद सुनेगा कौन ?"

लिच्छवि पुरुषों का वार्त्तालाप सुनकर मल्ल पुरुष सन्न रह गए। प्रथम मल्ल ने कहा : "इनकी बातें सुनकर तो ऐसा प्रतीत होता है कि लिच्छवि-गण की वैशाली और वेश्यावेश्म में अब अधिक अन्तर नहीं रह गया।"

द्वितीय मल्ल पुरुष बोला : "कोई अन्तर नहीं रह गया। मैं तो अपनी आँखों से सब-कुछ देखकर आया हूँ। पद-पद पर पानागार। वीथि वीथि में वारांगना-निलय। घर-घर में द्यूतशाला। इसी कारण तो

लिच्छवि-गण ने पितृघातक, अनार्य, आततायी अजातशत्रु का स्वागत करने में बाधा का बोध नहीं किया।"

लिच्छवि-गण की निन्दा सुनकर एक तृतीय लिच्छवि पुरुष उत्तेजित हो उठा। वह कहने लगा: "और कुशीनगर की भी तो कहिए! कल तक कोसल के वणिक्पुत्र, एक कार्षापण शुल्क देकर, मल्ल-वधू-वृन्द के साथ रमण करते रहे। अब अवन्ति के असुर भी, एक सुवर्ण देकर, मल्ल-कन्याओं का मन्थन करने लगे। वैशाली में यदि व्यभिचार होता है तो वह लिच्छवि-गण के पुरुषत्व का प्रतीक है। लिच्छवि-गण, नपुंसक मल्ल-कुल के समान, परदेशी पुरुषों से अपनी स्त्रियों का मदनज्वर नहीं उतरवाते।"

एक तृतीय मल्ल पुरुष भी क्रोधाविष्ट हो गया। वह व्यंग करता हुआ बोला: "तो राजगृह का वह राजन्य किस लिए वैशाली में आया था, सौम्य! मैंने तो यही सुना है कि वैशाली के असंख्य पुरुष भी, जब पाँच वर्ष तक अनवरत परिश्रम करके, पुंश्चली पुलोमजा का मदनज्वर शान्त नहीं कर पाए तो राजा रत्नकीर्ति को, निराश होकर, मगध के वन्य वृषभ की शरण लेनी पड़ी।"

चतुर्थ मल्ल पुरुष ने कहा: "किन्तु मगध के वृषभ को वैशाली की कुक्कुरी से समागम करके सन्तोष नहीं हुआ। इसीलिए राजा रत्नकीर्ति ने उसको वैशाली के गणिकालय में आमन्त्रित किया था।"

पंचम मल्ल पुरुष बोला: "तब उस कुक्कुरी ने, क्रुद्ध होकर, मृग-नयनी अनंगरेखा की कुक्षि में असिपत्रिका आरोपित कर दी। और, अपने अपराध का आरोपण कर दिया एक निरपराध, निरीह श्रमण पर।"

नौका पर आरूढ़ दश लिच्छवि पुरुष, एक साथ, हुंकार कर उठे। प्रत्युत्तर में आठों मल्ल पुरुषों ने भी गर्जना की। दूसरे क्षण दोनों दलों के कृपाण कोष से निकल आए।

शस्त्रसम्पात के पूर्व ही, एक मल्ल पुरुष ने अपने सहचरों को परामर्श दिया: "गण्डकी की पावन जलधारा अधम लिच्छवि-रक्त से अपवित्र न होने पाए। इस नौका को गण्डकी के गर्भ में निमज्जित कर दो। लिच्छवि जलमग्न होने योग्य हैं।"

नौका का केवट, दोनों दलों के मध्य में उपस्थान करके, अनुनय करने लगा : "आर्यवृन्द ! आप सब समृद्ध पुरुष हैं। अपने विवाद के आवर्त में मुझ अकिंचन की आजीविका को निमज्जित मत कीजिए।"

एक लिच्छवि ने नाविक की भर्त्सना थी : "वृज्जिसंघ का नौजीवी होकर, लिच्छवि-गण के समक्ष, तू मल्लराष्ट्र के इस श्वान-समवाय को आर्य कहकर क्यों सम्बोधित करता है, रे दासीपुत्र !"

एक अन्य लिच्छवि पुरुष ने केवट को, अर्धचन्द्र देकर, नौका से गिरा दिया। वह गण्डकी की जलधार में प्रवाहमान होकर रुदन करके लगा।

तब सब-के-सब मल्लपुरुषों ने, एक साथ, नौका पर ताण्डव करना आरम्भ कर दिया। नौका परिस्पन्दित हुई और जल में निमज्जित हो गई। दोनों दलों के पुरुष जल-संतरण में सुदक्ष थे। गण्डकी की धारा रण-प्राङ्गण में परिणत हो गई। नदी का नील जल मल्ल तथा लिच्छवि के मिश्रित शोणित से लोहिताभ हो चला। उस मुहूर्तव्यापी समर में नौ लिच्छवि और पाँच मल्ल पुरुष मारे गए।

अवशिष्ट लिच्छवि-पुरुष, नदी को पूर्वाभिमुख पार करके, वैशाली के राजप्रासाद में जा पहुँचा। राजा रत्नकीर्ति, उसके मुख से मल्लगण द्वारा कथित राजकुमारी की निन्दा सुनकर, क्रोध से कांप उठे। राजा के मत में लिच्छवि-गण ने, मल्लगण का म्लेच्छाचार अनेक वर्ष तक सहन करके, अखण्ड धैर्य का परिचय दिया था। किन्तु अब, अन्ततः, वह समय आ गया था कि लिच्छवि-गण, अपात्र के प्रति क्षमाभाव का परित्याग करने के लिए, सर्वथा विवश हो गए थे। मल्लगण को यथोचित दण्ड देने का निश्चय करके राजा रत्नकीर्ति ने, परिषद को समाहूत करने के लिए, वैशाली में सन्निपात-भेरी बजवा दी।

परिषद का पूर्व-कृत्य समाप्त होते ही, राजा रत्नकीर्ति ने, राज्यासन से उत्थान करके, वृज्जिसंघ के वृद्धों को सम्बोधित किया : "आर्यवृन्द ! आज जिस प्रसंग पर परामर्श करने के लिए, वृज्जिसंघ की यह प्रचण्ड परिषद संस्थागार में समाहूत हुई है, वह आप सबको भली भाँति विदित है। हमारे प्रतिवेशी देश के प्रभु, मल्लगण, अनेक वर्ष से अनाचार-रत रहे हैं। अनेक वर्ष तक वे वृज्जिसंघ के साथ विश्वासघात करते आए हैं।

बंधुल मल्ल का म्लेच्छाचार आप सबको स्मरण है। उस अकारण अपराध की मार्जना न करके, मल्लगण ने लिच्छवि-गण के साथ रण किया। उस रण में अनेक निरपराध लिच्छविगण को अपने प्राण विसर्जन करके पड़े। और वृज्जिसंघ का विभाजन हुआ। उस समय मल्लगण दुर्बल थे, इसलिए लिच्छवि-गण ने, उनके अपराध की अवगणना करके, उनको क्षमा कर दिया।

"*किन्तु मल्लगण की बुद्धि तो उसी दिन भ्रष्ट हो गई थी जिस दिन* उन्होंने, कोसलराज के वेतन-भोगी भृत्य, बन्धुल सेनापति, को उसके कौकृत्य के लिए भर्त्सित न करके, भ्रातृवत लिच्छविगण के विरुद्ध उसकी सहायता की थी। तदनन्तर वे, निरन्तर ही, लिच्छविगण की क्षमाशीलता को कापुरुषता कह कर, लिच्छवि-गण के प्रति कुत्सा का व्यवहार करते रहे हैं। किन्तु लिच्छवि-गण, फिर भी, अपने क्षमाव्रत से विरत नहीं हुए।

"सम्प्रति मल्लगण दुर्बल नहीं रहे। सम्प्रति उनके राष्ट्र में कोसल तथा अवन्ति से, अपार धनराशि का आयात हो रहा है। नाना प्रकार के प्रचण्ड शस्त्रास्त्र का प्रचुर आयात भी। उसी आयात के बल पर मल्लगण मोहान्ध हो गए हैं। अब एक साधारण मल्ल पुरुष का यह दुःसाहस होने लगा है कि लिच्छवि पुरुषों के समक्ष, लिच्छवि-गण की पावन पयस्विनी पर, वृज्जिसंघ के राजा को कुक्कुर, वृज्जिमहा जनपद की जनपद-कल्याणी को कुक्कुरी, लिच्छवि-गण को श्वानसमवाय तथा, लिच्छवि-गण की मातृभूमि, वैशाली को वेश्यावेश्म कहकर पुकारे......

परिषद में कोलाहल होने लगा। लिच्छवि-वृद्ध उत्तेजित होकर मल्ल-गण के म्लेच्छाचार की निन्दा कर रहे थे। राजा रत्नकीर्ति ने, अपना भुजद्वय उद्यत करके, परिषद को शान्त रहने का आदेश दिया। फिर वे, अपने स्वर को प्रखरतर करके, कहने लगे : "अधुना लिच्छवि-गण के लिए एक ही मार्ग अवलम्बनीय है। लिच्छवि-गण अपने क्षमाव्रत की प्रवारणा करें। विदेशी वैभव से विमूढ मल्लगण अब क्षमा के पात्र नहीं रहे। यदि लिच्छवि-गण अब भी मल्लगण के प्रति क्षमा का व्यवहार करते रहे तो मल्लगण का यह विश्वास कि लिच्छवि-गण कापुरुष हैं, एक घोर कुपरिणाम का रूप धारण करेगा। अवन्ति तथा कोसल द्वारा प्रोत्साहित

मल्लगरण, वृज्जिसंघ के विध्वंस के लिए, दृढव्रती हैं। यदि लिच्छवि-गरण ने, समय रहते, इस कुचक्र का प्रतीकार नहीं किया तो वृज्जिसंघ पर एक भीषरण विभीषिका का आविर्भाव होगा, वृज्जिसंघ पर अभूतपूर्व अनय-व्यसन का आपात अनिवार्य हो जाएगा......

परिषद, एक स्वर से, गर्जना कर उठी : "मल्लगरण का, तुरन्त ही, दमन होना चाहिए।"

परिषद को, पुनरेरण शान्त करके, राजा रत्नकीर्ति ने सिंहनाद किया : "आर्यवृन्द को यह विदित है कि मैं रक्तपात से घृणा करता हूँ। वृज्जिसंघ तथा मगध के मध्य चलने वाले अनवरत रक्तपात का शमन करके मैंने, अखिल आर्यावर्त में, अपनी शान्ति-प्रियता का प्रचार किया है। किन्तु मेरी शान्ति-प्रियता का यह अर्थ नहीं कि मैं वृज्जिसंघ के प्रति अवगरणना एवं अपमान को, मौन रहकर, सहन कर लूँ। यदि आत्मसम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करते-करते शान्ति की सुरक्षा सम्भव नहीं तो मैं, स्वयं ही, सर्वप्रथम, लिच्छविगरण को यह प्रेरणा दूँगा कि वे रणप्रांगरण में अवतीर्ण होने के लिए प्रस्तुत हो जाएँ।

"मैं मल्लगरण को भी सावधान कर देना चाहता हूँ। मल्लगरण ने यदि ऐसा समझा कि वृज्जिसंघ मित्रविहीन है तो यह उनकी भयानक भूल होगी। यह सत्य है कि वृज्जिसंघ ने, मल्लगरण के समान, साम्राज्य-लोलुप शक्तियों की दासता स्वीकार नहीं की। किन्तु इसी कारण किसी को यह नहीं समझ लेना चाहिए कि वृज्जिसंघ की शक्ति का क्षय हो गया है। वृज्जिसंघ की शक्ति में वृद्धि ही हुई है।

"आज मगध का महातेजस्वी राजवंश, वृज्जिसंघ की सहायता के लिए, सतत् सावधान है, अहर्निश उद्यतदण्ड है। यदि मल्लगरण तथा उनके पृष्ठपोषक राष्ट्रों ने वृज्जिसंघ के साथ विग्रह करने की भूल की तो उनको मगध महाजनपद की सम्पूर्ण शक्ति का सम्पात भी सहन करना पड़ेगा। मगध के महाप्रतापी महाराज, अजातशत्रु वैदेहीपुत्र, वैशाली का आतिथ्य ग्रहण करके, अपने श्रीमुख से यह आश्वासन मुझे दे गए हैं। वह आश्वासन वैसा आश्वासन नहीं है जैसा कि, एक समय, अवन्ति के कुचक्रपरायरण कापुरुषों ने अपने मित्र, भर्ग-गरण, को दिया था। उस आश्वासन में दृढ़ता

है, दम्भ नहीं। वृज्जिसंघ के शत्रु सावधान हो जाएँ।"

राजा रत्नकीर्ति अपना वक्तव्य अभिव्यक्त करके राज्यासन पर उपासीन हो गए। उनका मुखमण्डल उत्तेजना के आवेश से आरक्त था। उनके नासिका-रन्ध्र, श्वाच्छोच्छ्वास की द्रुतगति के कारण, स्पन्दमान थे। उनकी करमुष्टियाँ, राज्यासन की काञ्चनकाय को चूर्ण करने के लिए, चेष्टायमान होने लगीं।

परिषद ने राजा के भाषण का मुक्तकण्ठ से अनुमोदन और अभिनन्दन किया। परिषद में प्रस्तुत लिच्छवि-वृद्ध, अवर्णनीय रूप से, मल्लगण के प्रति विक्षुब्ध थे। वे वृद्ध, व्यग्रभाव से, व्याक्रोश करने लगे कि लिच्छवि-गण को, तुरन्त ही, गण्डकी का सन्तरण करके, मल्लगण का मान-मर्दन करना चाहिए। उन वृद्धों के मत में अब समय आ गया था कि लिच्छवि-गण, मल्लगण को प्रचण्ड दण्ड देकर, पुरातन वैर का शोध करें।

किन्तु उन वृद्धों में से एक भी ऐसा नहीं था जिसने, आर्यश्रेष्ठ महाली के साथ गण्डकी पार करके, बन्धुल मल्ल का अनुधावन किया हो। उनमें से किसी वृद्ध ने, उस पुराने युद्ध में, कई शत लिच्छवि-गण को प्राण-विसर्जन करते नहीं देखा था। उनमें से किसी वृद्ध के शरीर पर, उस युद्ध में वरण किये हुए व्रण-किण विद्यमान नहीं थे। जिस समय वह युद्ध हुआ था, उस समय उन वृद्धों में से अधिकतर, या तो विदेश में विद्योपार्जन कर रहे थे अथवा, अपने आवास में उपासीन रहकर, आर्यश्रेष्ठ महाली की निन्दा। स्वयं राजा रत्नकीर्ति ने, इस अवसर के पूर्व, कभी उस युद्ध को यथोचित कहकर स्वीकार नहीं किया था। उस युद्ध की चर्चा होते ही वे कहा करते कि वह परंपरा के अनुयायी लिच्छवि-गण द्वारा कृत पाप-कृत्य था। आज उसी युद्ध का स्मरण करके राजा रत्नकीर्ति और उनके भक्त लिच्छवि-वृद्ध, अकस्मात ही, अपने मानस में वीररस का संचय करने लगे।

तब वृज्जिसंघ के दण्डबल-महामात्य, आर्य सुनक्खत, ने अपने आसन से उत्थान करके, परिषद को सम्बोधित किया: "आर्यश्रेष्ठ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। यदि परिषद उचित काल समझे तो परिषद,

मल्लगण के आसन्न आक्रमण का निरोध करने के निमित्त, वृज्जिसंघ के कोश-बल-सचय का समारम्भ करे। यह ज्ञप्ति है।"

राजा रत्नकीर्ति ने, राज्यासन से उत्थान करके, ज्ञप्ति का अनुमोदन किया। वे बोले : "आर्यवृन्द! आर्य मुनक्खत द्वारा प्रज्ञापित ज्ञप्ति इस अवसर के सर्वथा अनुकूल है। वृज्जिसंघ का कोश, इस समय, अनापूर्ण है। लिच्छविगण के जीवन मे, रस एवं संस्कार का सचय करने के लिए, राज्य को अपार धन व्यय करना पड़ा है। उस व्यय के फलस्वरूप लिच्छवि-गण को जो अपूर्व लाभ हुआ उसकी साक्षी यह परिषद स्वयं है।

"पूर्व समय मे, लिच्छवि-गण मौन रहकर ही मल्लगण द्वारा अन-वरत आपातित अपमान को सहन करते रहते थे। किन्तु, आज, लिच्छवि-गण मे आत्मसम्मान की चेतना जागृत है। यह लिच्छवि-गण के संस्कार-सम्पन्न होने का लक्षण है। मै संस्कार-सम्पन्न लिच्छवि-गण से यह आशा करता हूँ कि वे, राज्य के रिक्त कोश को पुनरेण आपूर्त करके, नवविधान के प्रति अपनी असीम कृतज्ञता को चरितार्थ करेंगे।

"कोश-संचय के बिना बल-संग्रह सम्भव नही। अब वह युग व्यतीत हो चुका जब कि वृज्जिसंघ का राजा, सन्निपात-भेरी बजवाकर, एक क्षण में, असंख्य शस्त्रास्त्र-सज्जित लिच्छवि-गण को युद्ध के लिए कटि-बद्ध किया करता। आपको विदित है कि वृज्जिसंघ के वर्तमान राजा उस हृदयहीनता का पोषण नही करते। वर्तमान राजा की आकांक्षा है कि लिच्छवि-गण के रस-सम्पन्न जीवन मे एक क्षण का भी व्याघात उपस्थित न हो। राजा नही चाहते कि एक भी लिच्छवि तरुण, एक पल के लिए भी, अपनी प्रणयिनी के प्रेमालिंगन का परित्याग करके कटि पर कृपाण तथा स्कन्ध पर शरासन का बीभत्स भार वहन करे। रणभूमि में जाकर रक्त-स्नान करने का जघन्य परामर्श, राजा लिच्छवि-गण को नहीं दे सकते।

"राजा का परामर्श है कि राज्य, प्रचुर धन का व्यय करके, वेतन-भोगी सेना का संग्रह करे। वेतन-प्राप्ति की आशा से वृज्जि महाजनपद के कृषीवल, स्वदेश-रक्षा के लिए, शस्त्रास्त्र धारण करेंगे। वेतन मिलने पर, मगध के अपराजेय क्षत्रिय भी, वृज्जिसंघ के लिए प्राणविसर्जन करने

से विरत नहीं होंगे। यह आश्वासन भी मुझे मगध के महाप्राण महाराज, अजातशत्रु वैदेहीपुत्र, ने अपने श्रीमुख से दिया है। अतएव वृज्जिसंघ की परिषद को, अपने कर्त्तव्य की पूर्ति के पुण्य अवसर पर, पश्चात्-पद नहीं रहना चाहिए।"

राजा रत्नकीर्ति का प्रथम शिक्षापद सुनकर लिच्छवि-वृद्ध सशंक हो उठे थे। वे एक दूसरे का मुख देखने लगे थे। राजकोश में समर्पित करने के लिए धन किसके पास था? अधिकांश लिच्छवि-कुल, रस एवं संस्कार का सचय करने के लिए, गणिकालय, पानागार तथा द्यूतशाला में जाकर, अपनी पैतृक सम्पत्ति का स्वाहा कर चुके थे। उनकी भोग्य-भूमि पर, क्षेत्र तथा केदार में कृषिकर्म करने वाले कृषीवल भी, अब अधिक शुल्क अथवा कर प्रदान करने योग्य नहीं रह गए थे। कृपीवल कहने लगे थे कि शुल्क अथवा कर में और वृद्धि की गई तो वे कृषिकर्म का त्याग कर देंगे। अतएव उन कुलमुख्यों को यह भय था कि ऋण-लेख्यों में लिखित समय के अनुसार उनकी भोग्य-भूमि पर वणिक्पुत्रों का अधिकार हो जाएगा।

किन्तु राजा के दूसरे शिक्षापद का श्रवण करके वे वृद्ध, पुनरेण, राजा के प्रति श्रद्धा-सम्पन्न हो गए। उन सबका भी यह विश्वास था कि रस एवं संस्कार के अनन्य सेवक लिच्छवि-गण को रक्तपात जैसा जानपद कर्म शोभा नहीं देता। भगवान तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म भी यही आदेश देता था। राजकुमारी पुलोमजा द्वारा प्रस्तुत धर्मव्याख्या भी इसी ओर संकेत कर रही थी। लिच्छवि-गण के लिए उचित नहीं था कि वे, अपने आवास में अश्रुमोचन करती हुई वरांगना-वृन्द की ओर से मुख परावृत्त करके, रणप्रांगण जैसी पापस्थली की ओर प्रयाण करें। वह जघन्य कर्म तो उन कृषीवलों द्वारा ही करने योग्य था जो, अनवरत वसुन्धरा का वक्ष विदीर्ण करते रहने के कारण, क्रूर बन चुके थे और जो रस तथा संस्कार से सर्वथा विहीन थे।

किन्तु उन कृपीवलों को देने के लिए कोश कहाँ से आएगा?

परिषद, मृत्युदण्डित मनुष्य के समान, अवसन्न होकर उपासीन रही। किसी वृद्ध की बुद्धि में विचार की एक वीचि भी व्यक्त नहीं हो सकी।

वे सबके सब, मन-ही-मन, यह प्रार्थना कर रहे थे कि धर्मावतार राजा रत्नकीर्ति अथवा अपने बुद्धिबल के लिए सुविख्यात आर्य सुनक्खत, किसी उपयुक्त मन्त्रणा का प्रवहण प्रस्तुत करके, उन सबको विमूढ़ता की वैतरणी से उत्तीर्ण कर दें।

तब आर्य सुनक्खत ने, अपने आसन से उत्थान करके, परिषद को सम्बोधित किया: "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। परिषद को विदित है कि वैशाली के अभ्यन्तर तथा बाह्यान्तर, और वृज्जि महाजनपद के प्रत्येक ग्राम, निगम एवं नगर में, अनेक चैत्य प्रतिष्ठित हैं। परम्परा के प्रताप से उन चैत्यों के कोष्ठागारों में अपरिमेय धन-राशि का संचय होता रहा है। चैत्यों के उपासकों द्वारा दान में प्रदत्त भोग्य-भूमि से समाहृत शुल्क एवं कर भी चैत्यों को प्राप्त होते रहते हैं। परिषद वृज्जिसंघ के समाहर्ता-महामात्य को आदेश देती है कि महामात्य, चैत्यों की धनराशि को राजकोश में निविष्ट करके, बलसंग्रह के लिए उसका उपयोग करें। जिस आर्य को यह स्वीकार हो, वे मौन रहें। जिस आर्य को यह स्वीकार न हो, वे बोलें।"

चैत्यों की धनराशि का संकेत सुनते ही परिषद के लिच्छवि-वृद्ध स्वप्न-लोक में विचरण करने लगे। बलसंग्रह का प्रसंग उनसे विस्मृत हो गया। उनको केवल यही स्मरण रहा कि राजकोश पुनः अपार धनराशि से आपूर्त हो जाएगा। और वे राजकोश का एक ही समुचित उपयोग मानते थे—सुरा एवं सुन्दरी का संग्रह।

उनके पास अब सुरा के क्रय के लिए कार्षापण भी नहीं रह गए थे। सुन्दरी का सेवन भी सुकर नहीं रह गया था। विशेषकर पारसीकपुरी से आयात की हुई सुरा तथा उत्तरापथ से उपलब्ध सुन्दरी के सेवन के लिए पर्याप्त द्रव्य का अभाव था। गणिकालय में सुन्दरी-समवाय के निवासयोग्य स्थान का भी अभाव होने लगा था। और उज्जयिनी के सार्थवाह नित्यनूतन सुन्दरी-वृन्द लेकर वैशाली में आते थे। पारसीक सुरा के भाण्ड लेकर भी।

यदि चैत्यों की सम्पत्ति राजकोश में आ गई तो सुरा एवं सुन्दरी का अनवरत आयात सुकर हो जाएगा। चैत्यों की अवस्थानशालाओं का

नवनिर्माण होने पर, सुन्दरी-समवाय के निवास-योग्य स्थान का भी अभाव नहीं रहेगा। फिर प्रत्येक चैत्य के गर्भगृह में मन्मथ-मूर्ति की प्रस्थापना की जाएगी। प्रत्येक चैत्य का प्रांगण नूपुर के रणन से प्रतिध्वनित हो उठेगा। प्रत्येक चैत्य के सभामण्डप में सुसंस्कृत लिच्छवि-गण आपानक एवं उत्सव-समाज का समारोह करेंगे।

राजा रत्नकीर्ति ने, राज्यासन से उत्थान करके, कहा : "आर्यवृन्द ! एक समय था जब वृज्जि महाजनपद के स्त्री तथा पुरुष, प्रातःकाल तथा प्रदोष-वेला में, दल-पर-दल, इन चैत्यों में उपासना करने जाया करते। एक समय था जब देशदेशान्तर से आगत परिव्राजक इन चैत्यों की अवस्थानशालाओं में निवास किया करते। उस समय यह सर्वथा संगत था कि चैत्यों के कोष्ठागार धनराशि से आपूर्ण रहें।

"किन्तु अब वह समय नहीं रहा। अब युगपरिवर्तन हो चुका है। आज लिच्छवि-गण अपनी पुराण-परम्परा का अन्ध अनुसरण नहीं करते। आज रस तथा संस्कार का युग उपस्थित है। अब लिच्छवि-गण नवीन उपासना-गृहों में आराधना करने लगे हैं। लिच्छवि-गण का सर्वश्रेष्ठ उपासना-गृह अब वैशाली के शृङ्गाटक पर विद्यमान है जहाँ लावण्यवती ललनाएँ लिच्छवि-गण के जीवन में रस एवं संस्कार का सतत संचय करती हैं। लिच्छवि-गण फिर किसी दिन इन चैत्यों की ओर अभिमुख नहीं होंगे।

"नवीन युग की छाया चैत्यों पर भी पड़ चुकी है। चैत्यों के गर्भगृहों में प्रतिष्ठित देवता अब धूलि-धूसरित हैं। चैत्यों के सभामण्डप तथा प्रांगण प्रायः जनशून्य। चैत्यों की अवस्थानशालाओं में अब परिव्राजकों का अनवरत निवास नहीं रहता। जो एक-दो परिव्राजक यदाकदा उस ओर आते हैं उनको यदि वञ्चक कहा जाए तो अतिशयोक्ति की आशंका नहीं। ऐसे ही एक परिव्राजक के हाथ से वैशाली में वैभवभूता, देवी अनंगरेखा, की हत्या का कुत्सित काण्ड परिषद को विदित ही है। भविष्य में पुनः ऐसे ही अनेक काण्ड हो सकते हैं।

"आज वृज्जिसंघ संकटापन्न है। यदि वृज्जिसंघ सत्ताशील न रहा तो अवन्ति के अनुचर, ब्रह्मावर्त के हिंस्र ब्राह्मण, वृज्जिमहाजनपद में आकर

इन चैत्यों पर अपना प्रभुत्व प्रस्थापित करेंगे। चैत्यों के गर्भगृह यज्ञधूम से धूमिल हो जाएँगे। चैत्यों के प्रांगण पशुबलि की शोणित-धार से अपवित्र होंगे। चैत्यों के सभामण्डप वेदमन्त्र की मण्डूकध्वनि से विदीर्ण होने लगेंगे। चैत्यों की अवस्थानशालाओं में पाखण्ड-पाठन के निमित्त पाठशालाएँ खुलेंगी।

"किन्तु यदि वृज्जिसंघ सुदृढ़ रहा तो, आवश्यकतानुसार, फिर किसी दिन, वृज्जि महाजनपद में अनेक चैत्यों का नवनिर्माण हो सकेगा। वृज्जिसंघ की सेवा ही परिषद का परम पुनीत कर्त्तव्य है। परिषद को, वृज्जिसंघ की सेवा के लिए, किसी भी करणीय कृत्य से विमुख नहीं होना चाहिए।"

आर्य सुनक्खत ने प्रतिज्ञा का एक अनुश्रावण किया। परिषद ने मौन रहकर प्रतिज्ञा को धारण कर लिया।

लिच्छवि-वृद्धों के मुख से शान्ति की एक दीर्घ निश्वास उच्छ्वसित हुई। प्रत्येक वृद्ध अपनी भूल पर पश्चाताप करने लगा कि उसने, आर्य सुनक्खत के परिषद में प्रस्तुत रहते, एक क्षण के लिए भी, विमूढ़ता का अनुभव क्यों किया।

आर्य सुनक्खत साधारण पुरुष नहीं थे। वे वृज्जिसंघ का वैभव थे। उनके अध्यवसाय से ही राजा रत्नकीर्ति तथा राजकुमारी पुलोमजा ने वैशाली में निवास करना स्वीकार किया था। उनकी कर्त्तव्य-निष्ठा के कारण ही, रस एवं संस्कार की साक्षात सरस्वती, देवी अनंगरेखा, ने गणिकालय को विभूषित किया था। उनके नीति-नैपुण्य के फलस्वरूप ही वृज्जिसंघ तथा मगध के मध्य शाश्वत शान्ति की स्थापना हुई थी। उनके परिश्रम के परिणामस्वरूप ही मगध के महाप्रतापी महाराज ने, वैशाली में आकर, लिच्छवि-गण का आतिथ्य-ग्रहण किया था। उनके चातुर्य से प्रचोदित होकर राजा रत्नकीर्ति ने मगधाधिप के श्रीमुख से वे आश्वासन अर्जित किए थे जिनके बल पर वृज्जिसंघ, अवन्ति द्वारा आवर्तित अनाचार-चक्र से, परित्राण पा रहा था। और अब उन महान मनीषी ने, अनायास ही, वृज्जिसंघ की पूज्य परिषद को एक विकट धर्म-संकट से मुक्त किया था।

प्रत्येक लिच्छवि-वृद्ध का मानस, आर्य सुनक्खत के लिए श्रद्धा से गद्गद् हो गया। प्रत्येक लिच्छवि वृद्ध की इच्छा होने लगी कि वह, उसी क्षण, आर्य सुनक्खत के चरणों में अपना मस्तक अवनत कर दे।

आर्य सुनक्खत ने, पुनः अपने आसन से उत्थान करके, परिषद को सम्बोधित किया : "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। परिषद को विदित है कि वैशाली के वणिक्पुत्रों ने, लिच्छवि-गण द्वारा रस एवं संस्कार का संचय होते समय, विदेश से आयात किए हुये प्रभूत पण्य का क्रयविक्रय करके, अतुल सुवर्णराशि का संग्रह किया है। परिषद वणिक्-पुत्रों को आदेश देती है कि वे, लिच्छवि-गण के आश्रय में अर्जित अपनी धनराशि को, तुरन्त ही, वृज्जिसंघ के रक्षणार्थ, राजकोष में अर्पित करें। जो वणिक्पुत्र परिषद के इस आदेश की अवहेलना करेगा, उसको सर्वस्व-हरण-पूर्वक वृज्जि महाजनपद से आजीवन निर्वासित किया जाएगा। जिस आर्य को यह स्वीकार हो, वे मौन रहें। जिस आर्य को यह स्वीकार न हो, वे बोलें।"

परिषद ने मौन रहकर इस प्रतिज्ञा को भी धारण किया। तब आर्य सुनक्खत ने एक अन्य प्रतिज्ञा प्रस्तुत करने के लिए उत्थान किया। और लिच्छवि-वृद्ध, सहसा, उनके प्रति असहिष्णु से हो उठे।

वृद्धगण अपने महामूल्य समय में से प्रायः दो घटिका संस्थागार में अतिवाहित कर चुके थे। अब उनकी कामना थी कि परिषद का सन्निपात समाप्त होना चाहिए। अब उनका इन्द्रियग्राम शिथिल हो चुका था। मानस विरक्त। मस्तिष्क शून्य। आसव के दो-चार चषक, कण्ठ-द्वार से उदर में प्रेषित किए विना वे परामर्श करने के लिए असमर्थता का बोध करने लगे थे।

इसके अतिरिक्त, उन वृद्धों की प्रेयसी वारांगनाएँ भी, गणिकालय के गवाक्षों में उपासीन होकर, उनके प्रत्यागमन-पथ की ओर निर्निमेष नयनों से निहार रही थीं। यदि उनके प्रत्यागमन में विलम्ब हुआ तो वे यौवनमदोन्मत्त मन्मथकन्याएँ, प्रचुर अश्रुमोचन करके, अपने नीलाम्बुज-नेत्रों के कृष्णाञ्जन से, अपने लोध्र-रेणु-अरुण कपोलों को कर्दमित कर लेंगी। यदि उन्होंने, तुरन्त ही, उन प्रियतमाओं को अपने प्रेमालिंगन में

आबद्ध नहीं किया तो वे, प्रणयकुपिता होकर, अपने कबरी-पाश में ग्रथित पुष्पदाम को प्रसादतल पर प्रकीर्ण करती हुईं, पदाघात से पददलित करने लगेंगी।

रस के अगाध रहस्य का अन्वीक्षण करते-करते वे इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे कि अवनितल पर सुरा के सदृश कोई अन्य रस नहीं। संस्कार का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण करके उनको विगतसंशय विश्वास हो गया था कि मर्त्यलोक में, मन्मथपुत्री के रतिमन्थन से उद्भूत सीत्कार के समान, अन्य संस्कार नहीं। अतएव उनकी परोपकार-परायण बुद्धि ने प्रश्न पूछा कि वैशाली के कण-कण को रस एवं संस्कार से समृद्ध करने वाले लिच्छवि-गण अपने संस्थागार को क्यों शुष्क एवं शून्य रखते हैं ?

संस्थागार में केवल दो ही वस्तुएँ थीं। शलाका-पेटिका तथा प्रवेणी-पुस्तक। दोनों ही रस से विहीन एवं संस्कार-शून्य युग के प्रतीक। रस एवं संस्कार का युग-प्रवर्तन हो जाने पर, संस्थागार में उन पुराण-प्रतीकों का क्या प्रयोजन ?

दूसरे क्षण, उन वृद्धों का हृदय-हंस एक सुन्दर स्वप्न के मानसरोवर में मज्जन करने लगा। उस दिन का स्वप्न जिस दिन शलाका-पेटिका का स्थान पानपात्र और सुराभाण्ड से पूरित किया जाएगा; जिस दिन प्रवेणी-पुस्तक के सुवर्णासन पर आर्यावर्त की कोई अद्वितीय सुन्दरी सुशोभित होगी। वह सुन्दरी जिस की स्मित का एक-एक स्फुरण प्रवेणी-पुस्तक के कोटि-कोटि विधान को विधुन्वित कर दे। वह कमनीय कान्ता जिसके कुटिल भ्रूभंग से सुञ्चित एक-एक कटाक्ष शत-शत शलाकाग्रहण को विगर्हित कर दे।

यह भी तो रस एवं संस्कार के युगानुरूप नहीं था कि परिषद का प्रत्येक सदस्य, मुहूर्त उपरान्त मुहूर्त, एकाकी ही अपने आसन पर उपासीन रहे। प्रत्येक वृद्ध के क्रोड़ में यदि एक किशोरी का किसलय-कोमल कलेवर कुसुमित होता तो प्रत्येक वृद्ध, परिषद को अपूर्व परामर्श देकर गौरव की पराकाष्ठा पर प्रतिष्ठित करने में सहायक होता।

प्रत्येक स्वप्नद्रष्टा को विश्वास होने लगा कि आर्य सुनक्खत का ध्यान इस ओर आकर्षित होते ही वे, तुरन्त ही, शलाका-पेटिका तथा

प्रवेणी-पुस्तक को पुरीषपुञ्ज पर प्रक्षिप्त करवा देंगे। अतएव प्रत्येक वृद्ध, एक अपूर्व आशा से, आर्य सुनक्खत का मुख देखने लगा।

राजा रत्नकीर्ति ने भी अपना तन्द्राविजृम्भित वाणीद्वार अनपावृत करके आर्य सुनक्खत की ओर देखा। आर्य सुनक्खत पहले से ही राजा की ओर देख रहे थे। दोनों महापुरुषों की नेत्रद्युति का मधुर मिलन सम्पन्न होते ही, आर्य सुनक्खत मुखरित हो गए: "आर्यश्रेष्ठ ! पूज्य परिषद मुझको श्रवण करे। वैशाली के कर्मकार-गण ने, लिच्छविगण के द्वारा रस एवं संस्कार का संग्रह होते समय, प्रचुर वेतन प्राप्त करके अपनी स्त्रियों के कृष्ण कलेवर काञ्चन के आभरणों से पीतद्युति कर दिए हैं। परिषद कर्मकार-गण को कठोर आदेश देती है कि वे, तुरन्त ही, उस काञ्चन-राशि को राजकोश में अर्पित करें। जो कर्मकार इस आदेश की अवगणना करे उसको, उसी क्षण, शूलविद्ध किया जाए। जिस आर्य को यह स्वीकार हो, वे मौन रहें। जिस आर्य को यह स्वीकार नहीं हो, वे बोलें।"

वृद्ध-गण ने मौन रहकर इस प्रतिज्ञा को भी धारण किया। तब परिषद का सन्निपात विसर्जित हो गया। और लिच्छवि-वृद्ध, द्रुतपद से, गणिकालय की ओर गम्यमान हुए।

: २ :

वैशाली के राजप्रासाद का एक सुसज्जित आगार। देवी वत्सला एक आसन पर उपासीन हैं। एकाकिनी। गहन चिन्ता के भार से भस्मीकृता-सी। द्वारदेश की ओर वारम्वार उन्मुख उनका दृष्टिपात सूचित करता है कि वे किसी के आगमन की प्रतीक्षा कर रही हैं। व्यग्र भाव से। अपने हृदय में उद्वेलित उद्‌गार का अविलम्ब उद्‌घोष करने के लिए।

दक्षिण-दिशा की ओर अपावृत गवाक्ष के अतिरिक्त, आगार के समस्त वातायन अवरुद्ध हैं। रात्रि का प्रथम याम अभी भी अतिवाहित नहीं हुआ। किन्तु नवागत माघ-मास के हिमशीत से आगार में अचल अनिल भी अवसन्न है। निवातस्थ तैलप्रदीप की शुभ्र-शिखा पर ऊर्ध्वोन्मुख है कृष्णलोहित धूम्र का कुञ्चित उत्स्रवण। प्रभञ्जन के प्रतिकूल प्रधावमान प्रमदा के शीश पर शिखरायमाण कुञ्चित केशराशि के

समान ।

द्वारदेश की ओर से आती हुई परिचारिका ने नम्र निवेदन किया : "भद्रे ! आर्यश्रेष्ठ इस समय अत्यधिक व्यस्त हैं । आप यदि अन्य किसी दिन......

वत्सला ने, परिचारिका की प्रार्थना सुनने के पूर्व ही, उच्चस्वर से कहा : "मैं तो स्वेच्छा से राजप्रासाद में नहीं आई । राजा के द्वारा आहूत होकर ही मैंने यहाँ पदार्पण किया है । राजा ने स्वयं ही यह समय मेरे साथ साक्षात्कार के लिए सुनिश्चित किया था ।"

उत्तर दिया आगार में प्रवेश करती हुई राजकुमारी पुलोमजा ने : "राजा के समय-असमय की विवेचना परिचारिका के समक्ष मत कर, वत्सला !"

परिचारिका, उसी क्षण, चली गई । देवी वत्सला ने पुलोमजा से कहा : "तो तुमसे ही पूछती हूँ, पुलोमजे ! राजा ने समय सुनिश्चित करके असमय क्यों किया ?"

पुलोमजा ने, एक आसन्दिका पर अपना स्थूलायमान शरीर स्थापित करके, प्रतिप्रश्न किया : "वत्सला ! तेरा शिष्टाचार क्या सर्वथा नष्ट हो चुका ?"

देवी वत्सला ने, किंचित् चकित होकर, कुपित-सी पुलोमजा की ओर देखा । फिर वे बोलीं : "मेरा शिष्टाचार ? क्या मैंने कोई धृष्ठता की है ?"

पुलोमजा ने उत्तर दिया : "धृष्ठता करके स्वीकार न करना उद्दण्डता कहलाती है ।"

देवी वत्सला मौन रहीं । पुलोमजा की ओर से प्रवाहित प्रसाधन-द्रव्य तथा सुरा की मिश्रित सुगन्ध ने उनको असहिष्णु कर दिया था । उस विक्षिप्त व्यक्ति से वार्त्तालाप करने में उनको आत्मग्लानि का बोध होने लगा ।

पुलोमजा ने कहा : "जिस समय तू वृज्जिसंघ की राजकुमारी थी, तब मैं सदैव तुझको 'आप' कहकर सम्बोधित किया करती । और तू है कि वृज्जिसंघ की वर्तमान राजकुमारी को, वृज्जि महाजनपद की जनपद-

कल्याणी को, 'तुम' कहकर ही सम्बोधित किए जा रही है।"

देवी वत्सला ने, हँसकर, उत्तर दिया : "मैंने क्या तुमसे अनुरोध किया था कि तुम मुझको 'आप' कहकर पुकारो ? तुमने ही, स्वेच्छा से, विदेश से प्रत्यागत होने पर, सहसा, मुझको अपूर्व शैली में सम्बोधित करना आरम्भ किया था।"

"मैंने तेरी प्रतिष्ठा के प्रति सावधान होकर ही वैसा किया था।"

"तुम मृषावाद कर रही हो। तुमने ईर्ष्या से दग्ध होकर, व्यंग करने के लिए ही, उस अभूतपूर्व आचरण का अवलम्बन लिया था। तुम्हारे अतिरिक्त मेरे शैशव की किसी सहचरी ने मेरे प्रति 'आप' का प्रयोग नहीं किया।"

"तेरी कोई अन्य सहचरी शिष्टाचार से अवगत होती, तभी तो ऐसा करती।"

जुगुप्सा के ज्वार से देवी वत्सला का मुखमण्डल कठोर हो उठा। वे, पुलोमजा का तिरस्कार करती हुई, बोलीं : "तुम और शिष्टाचार!! वह तो उसी दिन सम्भव होगा जिस दिन पारसीकपुरी के असुर-वृन्द आर्य कहलाने का अधिकार प्राप्त कर लेंगे। किन्तु वह दिन अभी नहीं आया। कभी आएगा भी नहीं। अतएव तुम अपने शिष्टाचार को सुरापात्र में घोलकर पी जाओ, पुलोमजे! वृज्जिसंघ में उसकी आवश्यकता नहीं है।"

पुलोमजा ने, उत्थान करके, अपने पृथुल पदाघात से प्रासादतल को प्रकम्पित कर दिया। फिर वह, तर्जनी से द्वार की ओर संकेत करती हुई, बोली : "निकल जा! इसी क्षण! मेरे आवास में आकर मेरा ही अपमान! तेरा इतना साहस!!"

किन्तु देवी वत्सला अपने आसन पर अचल उदासीन रहीं। वे शान्त स्वर में बोलीं : "तुम्हारा आवास! अधिक सुरापान का यही परिणाम होता है, पुलोमजे! तुम्हें स्मृतिभ्रंश का रोग हो गया। अन्यथा तुम वृज्जिसंघ के राजप्रासाद को अपना आवास कहने की भूल नहीं करतीं। तुम तो तुच्छ-से-तुच्छतर लिच्छवि को भी यहाँ से नहीं निकाल सकतीं। मैं तो आर्यश्रेष्ठ महाली की दुहिता हूँ। यह आर्य पद्मकीर्ति का पैतृक प्रासाद

नहीं है। और न मैं ही तुम्हारी वेतनभोगी भृत्या।"

पुलोमजा, भूपतित होकर परिस्पन्दन करती हुई, चीत्कार करने लगी : "परिचारक ! परिचारक !! परिचारक !!!......

किन्तु किसी परिचारक के आने से पूर्व ही राजा रत्नकीर्ति ने आगार में प्रवेश किया। पुलोमजा को विगत-वसना-सी देखकर वे बोले : "यह क्या काण्ड है, पुलोमजे !"

पुलोमजा ने वत्सला की ओर संकेत करके आर्तनाद किया : "इस दासीपुत्री ने मेरा अपमान किया है।"

"दासीपुत्री ! यह तो वत्सला है।"

"हाँ, इसी ने तो। दुष्ट महाली की दारिका ने।"

दूसरे क्षण, पुलोमजा के वाम कपोल पर राजा के दक्षिण करतल का चपेटाघात हुआ। फिर वे गर्जना कर उठे : "दासीपुत्रि ! गुरूजन का नाम इस प्रकार लिया जाता है ?"

देवी वत्सला ने, पुलोमजा का परित्राण करने के लिए, उत्थान किया। वे जानती थीं कि राजा रत्नकीर्ति प्रचण्ड क्रोधी है। किन्तु, इसी समय, पुलोमजा भयभीत होकर भाग गई। उसके मुख से एक शब्द भी और नहीं निकला।

राजा रत्नकीर्ति, मुस्कराते हुए, देवी वत्सला के निकट आए और उनके मस्तक पर अपना करतल न्यस्त करते हुए बोले : "वत्सले ! इस उन्मादिनी के विरुद्धाचरण को विस्मृत कर देना। मैं इसकी ओर से क्षमा-प्रार्थी हूँ।"

देवी वत्सला ने अपना शिर अवनत कर लिया। उनके मुख से एक शब्द भी नहीं निकला। अश्रुजल के कारण उनका कण्ठ अवरुद्ध था।

तब राजा ने, एक आसन पर उपासीन होकर, देवी वत्सला से कहा : "वत्सले ! तुम खडी क्यों रह गईं ? आसन ग्रहण करो।"

देवी वत्सला पुनः उसी आसन पर उपासीन हो गईं। राजा रत्नकीर्ति ने प्रश्न किया : "तुमको यहाँ आए कितना समय हो गया ?"

देवी वत्सला ने उत्तर दिया : "मैं तो आपके द्वारा सुनिश्चित समय पर ही आई थी। आपके आने में अत्यधिक विलम्ब हुआ है।"

"तुमने अपने आगमन की सूचना मेरे पास क्यों नहीं प्रेषित की ?"

"मैंने अनेक बार आपको सूचित करने का प्रयत्न किया। किन्तु परिचारिका ने, मुहुर्मुहु, लौटकर यही कहा कि आप, अधिक व्यस्त होने के कारण, आज मुझसे साक्षात्कार नहीं कर सकते।"

राजा ने आक्रोश किया : "कौन थी वह परिचारिका ? मैं अभी उसको इस उद्दण्डता का दण्ड देता हूँ।"

देवी वत्सला ने कहा : "आप अब वह प्रसंग भूल जाइए। मैं अब यह जानना चाहती हूँ कि आपने किसलिए मुझको राजप्रासाद में आहूत किया है।"

राजा एक क्षण के लिए मौन रहे। फिर वे गम्भीर होकर बोले : "मुझे समाचार मिला है कि तुम राजकोश-संचय के सम्बन्ध में परिषद द्वारा प्रज्ञापित प्रतिज्ञा-त्रय का प्रतिरोध कर रही हो।"

देवी वत्सला ने, शान्त वाणी में, उत्तर दिया : "समाचार सर्वथा सत्य है। मैं वैशाली के नगर-त्रय की वीथि-वीथि में जाकर प्रतिज्ञा-त्रय का प्रतिरोध कर रही हूँ।"

"किन्तु क्यों ?"

"प्रतिज्ञा-त्रय पूज्य प्रवेणी-पुस्तक द्वारा अप्रज्ञप्त है।"

"तुम प्रवेणी-पुस्तक की ऐसी अनन्य उपासिका कब से हो गई ?"

"मैं तो सदैव पूज्य प्रवेणी-पुस्तक की उपासना करती रही हूँ।"

"क्या उसी उपासना के उपलक्ष्य में तुम नर्तकी बनकर पाटलिग्राम के मागध दुर्ग में गई थीं ?"

"मैं उस पापकृत्य का प्रायश्चित्त कर चुकी हूँ।"

"परिषद के लिच्छवि-वृद्ध भी यदि पापकृत्य कर रहे हैं तो समय आने पर वे भी प्रायश्चित्त कर लेंगे।"

"किन्तु वृद्धों के पापकृत्य के कारण तो, वह समय आने के पूर्व ही, वृज्जिसंघ का विध्वंस हो जाएगा।"

"तुमको वृज्जिसंघ की इतनी चिन्ता किस लिए है ? अब तो तुम राजकुमारी नहीं रहीं।"

"किन्तु मैं लिच्छवि पिता की सन्तान तो हूँ। मैंने लिच्छवि माँ का

स्तन्यपान तो किया है।"

"तो क्या लिच्छवि-मर्यादा का त्राण करने के लिए ही तुम, अहर्निश, वणिक्ग्राम का पर्यटन करती रहती हो? क्या लिच्छवि-मर्यादा की रक्षा करने वाले कर्मकार-ग्राम में वास करते हैं? क्षत्रिय-ग्राम में नहीं?"

"क्षत्रियग्राम की वर्तमान अवस्था का अवलोकन करके तो मुझे यही कहने के लिए विवश होना पड़ेगा।"

राजा रत्नकीर्ति मौन हो गए। रस और संस्कार से समृद्ध क्षत्रिय-ग्राम पर उनको गुरुतर गर्व था। इसलिए क्षत्रिय-ग्राम के विषय में देवी वत्सला से विवाद करना उन्होंने उचित नहीं समझा। प्रसंग का परि-वर्तन करने के लिए उन्होंने प्रश्न किया: "क्या तुमको यह ज्ञात है कि वृज्जिसंघ इस समय मल्लगण द्वारा आक्रान्त है?"

देवी वत्सला ने उत्तर दिया: "मुझे तो अभी तक मल्लराष्ट्र की ओर से किसी अभियान का समाचार नहीं मिला।"

"वह समाचार प्राप्त होने में अब अधिक विलम्ब नहीं है।"

"मेरा विचार है कि वैसा समाचार किसी दिन भी नहीं मिलेगा।"

"क्या तुम्हारे विचार में अवन्ति द्वारा प्रोत्साहित होकर भी मल्लगण गण्डकी के उस पार ही आसीन रहेंगे?"

"अवन्ति ने वृज्जिसंघ के विरुद्ध अभी तक किसी राष्ट्र का प्रोत्साहन नहीं किया।"

"तब अवन्ति ने वृज्जिसंघ के शत्रु, मल्लराष्ट्र, से मैत्री किस लिए की है? अवन्ति के अनुचर, कोसल तथा वत्स, कुशीनगर की ओर शस्त्रास्त्र किसलिए प्रेषित कर रहे हैं?"

"मगध की विजिगीषु-वृत्ति का विरोध करने के लिए। अवन्ति के सन्धि-विग्रह-महामात्य वृज्जिसंघ के साथ भी मगध के विरुद्ध मैत्री करने के लिए वैशाली में आए थे।"

"यह तो मैं जानता हूँ कि प्रवरसेन का आशय क्या था?"

"तब आप ही बतलाइए।"

"मगध के साथ युद्ध की आकांक्षा का पोषण करने वाले अवन्ति को अपार सैन्यबल की आवश्यकता है। और अवन्ति के अधीश्वर यह भी

नहीं चाहते कि अवन्ति-वासियों को किसी युद्ध में प्राणोत्सर्ग करना पड़े। अतएव अवन्ति का सन्धि-विग्रह-महामात्य देश-देश के सैन्यबल का क्रय करता फिर रहा है। वैशाली में आने के पूर्व उसको विश्वास था कि लिच्छवि-गण भी, अवन्ति के सुवर्ण पर लुब्ध होकर, अपने सैन्य-बल का विक्रय कर देंगे। मैंने उससे कह दिया कि लिच्छविगण, मल्लगण के समान, विक्रेय नहीं हैं।"

देवी वत्सला हँसने लगीं। फिर वे बोलीं : "आपका अनुमान ही स्वीकार कर लेती हूँ। आप कहते हैं कि मल्लगण ने, अवन्ति के हाथों में, अपना आत्म-विक्रय कर दिया। तब तो वृज्जिसंघ को मल्ल-राष्ट्र की ओर से किंचित भी आशङ्का नहीं।"

रत्नकीर्ति ने, क्षुण्ण होकर, पूछा : "तुमने यह निष्कर्ष कैसे निकाला ?"

वत्सला ने उत्तर दिया : "मगध से युद्ध करने के लिए क्रीत मल्लगण मगध से ही युद्ध करेंगे। वृज्जिसंघ के साथ नहीं।"

"यह तुम्हारी भूल है। वृज्जिसंघ से वैरशोध करने के लिए ही मल्लगण, अवन्ति के साथ मैत्री करके, शक्ति-संचय कर रहे हैं।"

"इसका अर्थ यह हुआ कि मल्लगण अवन्ति के हाथों विक्रीत नहीं हुए। विक्रीत वस्तु का उपयोग तो उसका क्रेता ही करता है। आपके कथनानुसार, अवन्ति ने मल्लगण का क्रय इसलिए किया है कि वे मगध के साथ विग्रह करें। यदि मल्लगण, अवन्ति के उद्देश्य की अवगणना करके, अपने उद्देश्य की पूर्ति करते हैं तो वे विक्रीत किस प्रकार हो गए ?"

"किन्तु अवन्ति तथा मल्लगण का उद्देश्य एक ही है।"

"क्या अवन्ति की भी यह आकांक्षा है कि वृज्जिसंघ का विध्वंस हो ?"

"अवश्यमेव। वृज्जिसंघ द्वारा अपने अनार्य अनुरोध की अवहेलना को असह्य मान कर, अवन्ति अब वृज्जिसंघ को भी ध्वस्त करने के लिए कटिबद्ध है।"

"और मैं यदि यह कहूँ कि आपने ही, दुराग्रह करके, अवन्ति तथा मल्लगण के मध्य यह मैत्री करवाई है तो आप क्या उत्तर देंगे ?"

"मिथ्याप्रचार का कोई उत्तर नहीं होता।"

"यह मिथ्याप्रचार नहीं। मैंने सत्य का ही अनुसन्धान करके यह

कहा है। अवन्ति के महामात्य, कुशीनगर जाने के पूर्व, वैशाली में आए थे। महामात्य की यही इच्छा थी कि वृज्जिसंघ जैसे महान राष्ट्र के साथ ही अवन्ति की मैत्री स्थापित हो। आप यदि उनका अपमान न करते, और आप यदि पारसीक साम्राज्य तथा मगध का पक्ष लेकर उनके साथ व्यर्थ विवाद न करते, तो वे मल्लगण के साथ मैत्री नहीं करते।"

"तो क्या मैं महामात्य की मन्त्रणा स्वीकार कर लेता ?"

"मेरे मत में अवन्ति की मैत्री का कुछ मूल्य होता तो मैं कह देती कि महामात्य की मन्त्रणा आपको स्वीकार कर लेनी चाहिए थी। किन्तु मैं तो स्वयं अवन्ति की मैत्री को महामारी से भी अधिक घातक मानती हूँ......

देवी वत्सला की यह बात सुनकर राजा रत्नकीर्ति का मुख प्रफुल्लित हो उठा। अवन्ति के विरुद्ध एक शब्द का श्रवण करते ही उनकी श्रोत्रवृत्ति अपार तृप्ति का अनुभव करती थी। वे, अपने स्वर में स्नेह भर कर, देवी वत्सला से बोले : "तुम सत्यशः लिच्छवि पिता की पुत्री हो, वत्सले ! तुमने सत्यशः लिच्छवि माँ का स्तन्यपान किया है।"

देवी वत्सला ने कहा : "आप मेरे विषय में भूल कर रहे हैं। मैं अवन्ति के साथ मित्रता करना वाञ्छनीय नहीं मानती। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि अवन्ति के साथ शत्रुता करना वाञ्छनीय है। मेरे मत में अवन्ति की मित्रता भी अकल्याणकर है, शत्रुता भी। अवन्ति से दूर रहना ही, मेरे मत में, श्रेयस्कर है।"

"किन्तु अवन्ति के साथ शत्रुता कौन करता है ?"

"आप करते हैं। आप अनेक दिन से करते रहे हैं। आप वृज्जिसंघ की परिषद के साधारण सदस्य बने उस दिन से; आप अष्टकुलिक के सन्धि-विग्रह महामात्य बने उस दिन से; आप वृज्जिसंघ के राज्यासन पर आरूढ़ हुए उस दिन से। आप, एक क्षण भी, अवन्ति के विरुद्ध विष का वमन करने से विरत नहीं हुए।"

"मैं क्यों अवन्ति के साथ शत्रुता करने लगा ?"

"इसलिए कि आप पारसीक असुर-साम्राज्य के अन्ध अनुचर हैं। इसलिए कि आप पितृघातक, अनार्य अजातशत्रु का अनुगमन करने में गर्व

का अनुभव करते हैं।"

राजा रत्नकीर्ति हँसने लगे। फिर वे बोले : "यह भी तुम्हारा नवीन अनुसन्धान जान पड़ता है। तुम अभी जाकर, वैशाली के वणिक्-ग्राम में, सिंहनाद करो कि आर्य पद्मकीर्ति अपनी मौत नहीं मरे, अपितु मेरे द्वारा उनका उपांशुवध हुआ था।"

देवी वत्सला मौन रहीं। राजा रत्नकीर्ति ने कहा : "मुझको यह ज्ञात नहीं था कि तुम मल्लगण के प्रति इतनी अनुरक्त हो। अन्यथा मैं तुमको राजप्रासाद में आने का कष्ट नहीं देता।"

देवी वत्सला ने प्रश्न किया : "आपका मल्लगण के प्रति क्या मनोभाव है?"

रत्नकीर्ति ने उत्तर दिया : "मैं मल्लगण से घोर घृणा करता हूँ।"

"कब से?"

"जब से वे वृज्जिसंघ के प्रति वैमनस्य का पोषण करने लगे हैं।"

"बन्धुल मल्ल ने लिच्छविगण की अभिषेक-पुष्करिणी दूषित की उस समय भी क्या आपका यही मनोभाव था?"

"वह पुरानी घटना है। मुझको स्मरण नहीं।"

"किन्तु वैशाली के अनेक लिच्छवि-वृद्धों को स्मरण है। आर्यश्रेष्ठ महाली, जिस समय, पञ्चशत लिच्छवि सुभट साथ लेकर, गण्डकी को पार कर रहे थे उस समय आप, अपने प्रासाद के अन्तर्गर्भ में, शय्यातल्प पर शाययान थे। आर्यश्रेष्ठ महाली जिस समय मल्लगण के साथ घोर युद्ध कर रहे थे, उस समय आप सुगन्धित जल से स्नान कर रहे थे। आर्यश्रेष्ठ महाली जिस समय, मल्लगण को पलायमान करके, हताहत लिच्छवि योद्धाओं की सुश्रुषा एवं दाहसंस्कार करवाने में व्यस्त थे, उस समय आप दीर्घकाय दर्पण के सम्मुख उपस्थान करके केशविन्यास कर रहे थे। वैशाली के वासी जिस समय, मल्लगण को परास्त करके प्रत्यागत योद्धाओं का स्वागत करने के लिए, नगर के पश्चिमवर्ती द्वार की ओर प्रधावमान थे, उस समय आप, स्वादिष्ट भोजन करके, ताम्बूल-चर्वण करते हुए, अपने चार-चाटुकारों से कह रहे थे कि महाली एक रक्तपिपासु नरपिशाच है। क्या आपको यह सब स्मरण है?"

"मैंने मिथ्या तो नहीं कहा। महाली वस्तुतः रक्तपिपासु नरपिशाच था।"

"नरपिशाच जब अपने-आपको देवता समझने की भूल करता है तो प्रकृत देवता उसको नरपिशाच-सा प्रतीत होता है।"

"तो क्या, तुम्हारी दृष्टि में, मैं नरपिशाच हूँ?"

"यदि उससे भी जघन्य जीवयोनि कोई है तो उसमें आपका जन्म हुआ है। मनुष्य का शरीर धारण करके ही तो कोई मनुष्य नहीं हो जाता।"

"पाटलिग्राम में लिच्छवि दुर्ग का निवेश किसने किया था?"

"लिच्छवि-कुल-तिलक आर्यश्रेष्ठ महाली ने।"

"उस दुर्ग के कारण, दीर्घ नौ वर्ष तक, भागीरथी की जलधार लिच्छवि-गण के शोणित से लोहित-वर्ण होती रही......

"लिच्छवि-वीरों के शोणित का स्पर्श करके भागीरथी धन्य हो गई।"

"उस रक्तपात का अन्त किसने किया?"

"आर्य पद्मकीर्ति के कुपुत्र, लिच्छवि-कुलाङ्गार, वृज्जिसंघ के जन्म-जात द्रोही और वैशाली के विध्वंसक राजा रत्नकीर्ति ने।"

राजा रत्नकीर्ति हँसने लगे। फिर करुण दृष्टि से देवी वत्सला की ओर देखते हुए, वे बोले : "पुलोमजा ने, अनेक वार, मुझसे कहा था कि महाली की दारिका विक्षिप्त है। मैंने कभी उसके वचन पर विश्वास नहीं किया। मैं सर्वदैव यह समझता रहा कि तुम्हारे प्रति असूया से प्रेरित होकर ही पुलोमजा ऐसा कह रही है। किन्तु आज अपने कानों से तुम्हारा प्रलाप सुनकर मुझे पुलोमजा के वचन पर प्रत्यय करना पड़ रहा है।"

देवी वत्सला ने, मौन रहकर, आसन से उत्थान किया और राजा रत्नकीर्ति की ओर एक वार भी दृष्टिपात किए विना, वे द्वार की ओर चल पड़ीं। उनके मानस में दुर्दमनीय क्रोध ताण्डव कर रहा था। उनका मन कहने लगा कि यदि वे, एक पल भी, उस स्थान पर रुकीं तो उनके हाथ से राजा रत्नकीर्ति की हत्या हो जाएगी। उनके पास कोई शस्त्रास्त्र नहीं था। किन्तु राजा रत्नकीर्ति जैसे गलित-विगलित लम्पट वृद्ध के लिए उनके क्षत्रिय-नारी-सुलभ करपाश का एक गलग्रह पर्याप्त था। वे

किसी भय के कारण वह शुभ कार्य सम्पन्न करने से विरत नहीं हुईं। राजा रत्नकीर्ति के समान शठ के शोणित से अपने हाथ रञ्जित करने में उन्हें ग्लानि का बोध हुआ। उस कितव के निकट रहने से उनके गात्र कण्टकित हो गए थे।

किन्तु देवी वत्सला द्वार तक पहुँचें उसके पूर्व ही राजा रत्नकीर्ति ने, पीछे से आकर, पूछ लिया : "तुम मेरे प्रश्न का उत्तर दिए बिना ही जा रही हो।"

देवी वत्सला ने, मुख परावृत्त करके, राजा रत्नकीर्ति की ओर देखा उनके अग्निवर्ण अक्षियुगल से स्फुलिंग झर रहे थे। राजा रत्नकीर्ति, भयभीत होकर, दो पद पीछे की ओर अपसरित हो गए।

देवी वत्सला ने, हुङ्कार करके, पूछा : "कौन से प्रश्न का उत्तर ?"

राजा रत्नकीर्ति ने, साहस-संचय करके, उत्तर दिया : "मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम मल्लगण के पक्ष में मिथ्याप्रचार करने से विरत होगी अथवा नहीं।"

"तन में प्राण रहते, मैं वैशाली की वीथि-वीथि में सिंहनाद करूँगी कि स्वदेशद्रोही, कुलघातक राजा रत्नकीर्ति का आमूल उच्छेद करो।"

"वैशाली-वासी तुम पर विश्वास नहीं करेंगे।"

"मुझ पर विश्वास नहीं करेंगे ! आर्यश्रेष्ठ महाली की दुहिता पर विश्वास नहीं करेंगे !!"

"वह समय अब नहीं रहा जब महाली आर्यश्रेष्ठ कहलाता था। अब वैशाली के बालक भी जानते हैं कि महाली कौन था।"

"वे कौन थे ?"

"अवन्ति का वेतनभोगी अनुचर।"

देवी वत्सला की शिराओं में पुनरेण लिच्छवि शोणित संक्षुब्ध होने लगा। और वे, उसी क्षण, द्वार का अतिक्रमण कर गईं। वे, शीघ्रातिशीघ्र, राजप्रासाद के दूषित वातावरण से निकल जाने के लिए व्यग्र थीं।

किन्तु राजप्रासाद के सिंहद्वार पर आर्य सुनक्खत ने उनका पथ अवरुद्ध कर लिया। सिंहद्वार के पार, राजप्रासाद के प्राङ्गण में, कई शत

सुभट, अपनी-अपनी कृपाण को कोश से निर्गत करके, सावधान संरूढ़ थे।

सुभट-समवाय की वेशभूषा देख कर देवी वत्सला के शिर पर मानो वज्रपात हो गया। वे, नेत्र विस्फारित करके प्रांगण की ओर देखती हुईं, सिंहद्वार पर विजडित हो गईं। वे सुभट लिच्छवि नहीं थे। वे मागध थे।

आर्य सुनक्खत ने, देवी वत्सला के स्कंधदेश का स्पर्श करके, कहा : "वत्सले ! राजाज्ञा के कारण मैं तुमको बन्दी करने के लिए विवश हूँ।"

देवी वत्सला ने, जुगुप्सा से अधरोष्ठ कुञ्चित करके, पूछा : "मागध शत्रु की सहायता से ?"

"मागध तो लिच्छविगण के मित्र हैं।"

"और मैं ?"

"वृज्जिसंघ के शत्रु, मल्लगण, की मित्र। स्वदेश-द्रोहिणी।"

"स्वदेश-द्रोहिणी को बन्दी करने के लिए क्या वैशाली में लिच्छवि नहीं रहे ?"

"मैं लिच्छवि हूँ।"

"तब तो श्मशान का श्वान भी अपने आप को लिच्छवि कह सकता है।"

"मैं तुमसे विवाद करने नहीं आया। तुमको बन्दी बनाने आया हूँ।"

"तब विलम्ब क्या है ? आप अपने कर्त्तव्य का पालन कीजिए।"

"सर्वप्रथम तुम अपने शस्त्रास्त्र का समर्पण कर दो।"

"यदि मेरे पास शस्त्रास्त्र होते तो मगध की चतुरंगिणी भी मेरा पथ अवरुद्ध करने में असफल रहती।"

"राजा की हत्या करने के लिए क्या तुम निरस्त्र ही आई थीं ?"

"भय नहीं, महामात्य ! चाण्डाल भी जिसको शूलविद्ध करने में ग्लानि का बोध करेगा उस नराधम के रक्त से अपने हाथ दूषित करने मैं नहीं आई।"

"वृज्जिसंघ के आर्यश्रेष्ठ के लिए अपशब्द का व्यवहार करके तुम अपने अपराध को गुरुतर मत बनाओ।"

"मेरे हितचिन्तन का कष्ट न करके आप अपना करणीय कर्म ही

करें।"

आर्य सुनक्खत, मौन रह कर, देवी वत्सला की ओर देखने लगे। तब देवी वत्सला ने, अपने दोनों हाथ सुनक्खत की ओर अग्रसर करके, कहा : "यदि आपको मेरे समीप आने में भय लगता है तो निगडबन्धन मुझे दीजिए। मैं स्वयं अपने प्रकोष्ठ वलयित किए देती हूँ।"

तब आर्य सुनक्खत ने देवी वत्सला के मणिबन्ध-द्वय पर निगडबन्धन बाँध दिया। मागध सुभट-समवाय से घिरी हुई देवी वत्सला, एक शब्द भी बोले विना, कारागार में चली गई।

दूसरी ओर, डिण्डिमघोष के साथ, वैशाली की वीथि-वीथि में घोषणा होने लगी कि आर्यश्रेष्ठ रत्नकीर्ति की हत्या के लिए राजप्रासाद में प्रविष्ट छद्मवेशी वत्सला को बन्दी कर लिया गया है।

प्रभात होते-होते, वैशाली में सर्वत्र ही, एक प्रवाद का प्रसार हो चुका था। अनेक लिच्छवि-वृद्धों को, विश्वस्त रूप से, विदित हुआ था कि वृज्जिसंघ के भूतपूर्व राजा, महाली, अवन्ति के वेतनभोगी गूढपुरुष थे; अवन्ति के मित्र, मल्लराष्ट्र, का लिच्छवि पराक्रम से परित्राण करने के लिए महाली ने, वृज्जिसंघ को मगध के साथ विग्रहरत किया था। पाटलिग्राम में महाली द्वारा निविष्ट लिच्छवि दुर्ग का एकमात्र प्रयोजन यही था कि वृज्जिसंघ, दीर्घकाल तक, मगध से युद्ध करता रहे और अवन्ति, अपने प्रबल पार्ष्णिग्राह से मुक्त होकर, उत्तरापथ में अपने साम्राज्य का विस्तार कर सके।

महाली का स्वदेशद्रोह उन पत्रों से सिद्ध होता था जो अवन्ति के सन्धि-विग्रह—महामात्य ने, समय-समय पर, अपने भृत्य के प्रति प्रेषित किए थे और जो, अकस्मात् ही, राजप्रासाद के एक गूढ़भित्ति-संचार का जीर्णोद्धार करवाते समय राजा रत्नकीर्ति को प्राप्त हो गए थे। राजा ने निर्णय किया था कि वे समस्त पत्र वृज्जिसंघ की परिषद में प्रस्तुत किए जाएँ। इसीलिए, महाली की दारिका, वत्सला, राजा की हत्या करने के लिए राजप्रासाद में प्रविष्ट हुई थी।

वैशाली के वासी महाली की निन्दा करने लगे। वत्सला की भी। साथ ही वे आर्य सुनक्खत की सावधानी की प्रशंसा कर रहे थे। यह किसी

ने नहीं सुना कि वैशाली के अन्तर्दुर्ग में मागध सैन्य प्रवेश पा चुका है।

: ३ :

जिस रात सुनक्खत ने, वैशाली में, देवी वत्सला को बन्दी किया, उसी रात के अन्तिम याम में अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र ने आयुष्मान उदय से पूछा : "भन्ते ! मल्लगण के विषय में हमारे संगठन के लिए क्या मनोभाव ग्रहण करना उचित होगा ?"

आयुष्मान उदय, मिथिला के एक साधारण आवास में, शय्या पर उपासीन थे। उपधान का आश्रय लेकर। उनका शरीर, जो एक समय सुदृढ़ एवं सर्वसौष्ठव-सम्पूर्ण था, अब क्लान्त एवं दुर्बल दीख पड़ता था। पीडा-पाण्डुर मुखमण्डल अगणित व्रण-किण के कारण विकृत-सा हो गया था। किन्तु उनकी शान्त, समाधिस्थ-सी भाव-भङ्गिमा अब भी पूर्ववत थी। और पूर्ववत थी उनके नेत्रयुगल से निरन्तर निस्यन्दित निष्ठा की निर्मल निर्झरी।

मैथिलीपुत्र का प्रश्न सुन कर श्रमण मौन रहे। उनकी शय्या के समीप ही, एक पीठिका पर उपासीन, अनिरुद्ध कहने लगे : "भन्ते ! मल्लगण के प्रति प्रकोप का प्रादुर्भाव होने के पूर्व मुझे पूर्ण विश्वास हो गया था कि, निकट-भविष्य में ही, हमारा संगठन रत्नकीर्ति को अपदस्थ करने में सफल हो जाएगा। किन्तु इस प्रकोप के आवर्त में गिर कर हमारा संगठन, विदेह जनपद के अतिरिक्त अन्यत्र सर्वत्र ही, आमूल आकम्पित हो उठा। वैशाली के जिस लिच्छवि-समवाय को स्वयं देवी वत्सला ने शिक्षित एवं अनुशासित किया था, वह भी, अकस्मात् ही, किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गया। उस समवाय के कतिपय सदस्य तो यह भी कहने लगे कि रत्नकीर्ति पर अविश्वास करके उन्होंने स्वदेशद्रोह किया है।"

श्रमण ने, परिमित-सा, प्रश्न पूछा : "कारण ?"

मैथिलीपुत्र ने विस्तरशः उत्तर दिया : "भन्ते ! मल्लगण के प्रति लिच्छवि-मात्र का मनोभाव, अनेक वर्ष तक, घोर घृणा से घूर्णित रहा है। अवन्ति के साथ मल्लगण की मैत्री का समाचार सुन कर लिच्छविगण आतङ्कित हो उठे हैं। उनको आशङ्का है कि मल्लराष्ट्र वृज्जिसंघ का विध्वंस करने के लिए समारम्भ कर रहा है। वे यह भी जानते हैं कि

अवन्ति द्वारा परिपोषित तथा प्रोत्साहित मल्ल-गण का प्रथम प्रहार भी विलास-विगलित वृज्जिसंघ सहन नहीं कर सकेगा। अतएव उनको विश्वास हो गया है कि वृज्जिसंघ को भी, तुरन्त ही, किसी सम्बल-सम्पन्न राष्ट्र की मैत्री का संग्रह करना चाहिए।"

"प्रस्तुत परिस्थिति में वह मित्रराष्ट्र एक मात्र मगध ही हो सकता है।"

"भन्ते! अधिकांश लिच्छवि-गण का भी यही मत है। अब वे भूत-काल के घटनाचक्र पर खेद करते हुए यह कहने लगे हैं कि वृज्जिसंघ ने मगध के साथ शत्रुता करके भयानक भूल की थी। वर्तमान में उनकी मान्यता है कि रत्नकीर्ति ने, मगध के साथ शान्ति स्थापित करके, दुर्लभ दूरदर्शिता का परिचय दिया है। उनके मत में यदि मगध भी इस समय वृज्जिसंघ पर आक्रान्त होता तो वृज्जिसंघ का त्राण असम्भव हो जाता।"

"क्या लिच्छवि-गण को यह स्मरण नहीं रहा कि वृज्जिसंघ ने स्वेच्छा से नहीं, वरन् अजातशत्रु द्वारा आक्रान्त होकर ही मगध के साथ युद्ध किया था? क्या लिच्छवि-गण को यह ज्ञात नहीं कि वृज्जिसंघ तथा मगध के मध्य जिस शान्ति की स्थापना हुई है वह रत्नकीर्ति की दूर-दर्शिता के कारण नहीं, वरन् अवन्ति द्वारा मगध के आक्रान्त हो जाने के कारण हुई है?"

"भन्ते! इस प्रकार की विवेचना करने वाले को लिच्छवि-गण अब स्वदेशद्रोही, मल्लगण का मित्र तथा अवन्ति का वेतनभोगी अनुचर कहते हैं।"

"क्या लिच्छवि-गण को यह स्मरण नहीं रहा कि कुछ वर्ष पूर्व तक मल्लगण भी वृज्जिसंघ में अन्तर्भुक्त थे?"

"लिच्छवि-गण को यह इतिहास स्मरण करवाना भी अब स्वदेश-द्रोह कहलाता है। वे तो अब यह मानने लगे हैं कि मल्लगण, अनादि काल से, उनके शत्रु रहे हैं और मगध, अनादि काल से, उनका मित्र।"

आयुष्मान उदय ने, गम्भीर होकर, अपने नेत्र निमीलित कर लिए। फिर वे, करुणार्द्र कण्ठ से, बोले: "सौम्य! लिच्छवि-गण की स्मृति भ्रष्ट हो चुकी है। स्मृति-भ्रंश के कारण उनकी बुद्धि भी नष्ट हो जाएगी।

बुद्धिनाश के परिणामस्वरूप वृज्जिसंघ का विनाश दुर्निवार्य हो उठेगा। धर्म से द्रोह करने पर जो पापचक्र प्रवर्तित होता है उसका यही परिणाम होता है। पापी का परित्राण नहीं हो सकता।"

मैथिलीपुत्र, आपादमस्तक, कांप उठे। उनको आशा थी कि आयुष्मान उदय उनका पथ-प्रदर्शन करेंगे और उनको इस अकस्मात् आपातित अनय के आवर्त से निकालेंगे। किन्तु श्रमण, सहसा, उदासीनता का भाव धारण करके, तटस्थ हो गए। अनिरुद्ध के मुख से, अनायास ही, निकल गया : "यह तो भयानक भविष्यवाणी है, भन्ते!"

श्रमण ने, अपने नेत्र उन्मीलित करके, मैत्री-मण्डित दृष्टि से मैथिलीपुत्र की ओर देखा। तब वे बोले : "सौम्य! यह भविष्यवाणी नहीं, वर्तमान स्थिति का विश्लेषण मात्र है। वर्तमान के रंगशीर्ष पर जो आख्यायिका अभिनीत हो रही है उसके पात्र तथा कथावस्तु यदि यथावत रहें तो भविष्य अवश्यमेव भयानक होगा। किन्तु कथावस्तु तथा पात्र का परिवर्तन करके भविष्य को भी परिवर्तित किया जा सकता है।"

अनिरुद्ध ने प्रश्न पूछा : "वर्तमान में किस परिवर्तन को आप प्रयोजनीय मानते हैं, भन्ते!"

"उसकी व्याख्या करना व्यर्थ है। उस परिवर्तन के निमित्त समय अपेक्षित है, साधन तथा एक नए प्रकार का संगठन अपेक्षित हैं।

"किन्तु अब अधिक समय नहीं रहा। साधन भी दुष्प्राप्य हैं। संगठन इतनी शीघ्रता से समुपस्थित नहीं हो सकेगा। अतएव वह परिवर्तन अब दुःसाध्य है।"

"तब क्या देवी वत्सला तथा मेरे लिए करणीय कर्म कुछ नहीं रह गया?"

"वत्सला वैशाली में अपना कर्त्तव्य कर्म कर रही है। तुम मिथिला में अपना कर्त्तव्य सम्पन्न करो।"

"मेरा कर्तव्य कर्म क्या है, भन्ते!"

"तुम, समय रहते, वृज्जि महाजनपद में गणराज्य का अन्त करो। लिच्छवि-गण को, सत्ता से च्युत करके, वृज्जि महाजनपद का शासन अपने हाथ में ले लो।"

"भन्ते ! ......

"गणराज्य की शासनप्रणाली में अब यह सामर्थ्य नहीं रहा कि वृज्जि महाजनपद के स्वातन्त्र्य की सुरक्षा कर सके । गणराज्य अब सुरा एवं सुन्दरी का संग्रह करने में ही समर्थ है ।

"वृज्जिसंघ में अब विवेकधर वृद्धों का सन्निपात नहीं होता । परिषद में अब चाटूक्ति-चतुर कुशीलव कोलाहल करते हैं ।

"वैशाली का संस्थागार अब भीमकर्मा महात्माओं की साधना-स्थली नहीं रह गई । संस्थागार अब लुब्ध लम्पटों की लीला-भूमि है ।

"लिच्छवि-गण अब अपनी पावन परम्परा पर आरूढ़ रह कर, समयानुकूल स्वधर्म का अनुष्ठान नहीं करते । लिच्छवि-गण अब अपनी परम्परा का परित्याग करके स्वधर्म से स्खलित हो चुके हैं ।

"लिच्छवि-गण की प्रज्ञा नष्ट हो चुकी है । लिच्छवि-गण अब शील से भ्रष्ट हैं । लिच्छवि-गण अब स्वराज्य के पात्र नहीं रहे । अतएव, वृज्जि महाजनपद में अब लिच्छवि-गण का साम्राज्य भी समाप्त हो जाना चाहिए ।"

आयुष्मान उदय मौन हो गए । अनिरुद्ध ने प्रश्न किया : "भन्ते ! क्या आप विदेह के क्षत्रियकुल को लिच्छवि-गण के विरुद्ध विद्रोह करने का परामर्श दे रहे हैं ? क्या आपका यह आदेश है कि मिथिला में वैशाली के विरुद्ध विस्फोट हो ?"

आयुष्मान उदय ने उत्तर दिया : "यदि विदेह के क्षत्रिय लिच्छवि-गण की अवगणना करने में असमर्थ रहे तो लिच्छवि-गण के साथ ही उनका भी विनाश हो जाएगा । यदि मिथिला ने, तुरन्त ही, वैशाली की प्रभुता का प्रत्याख्यान नहीं किया तो वैशाली के साथ ही मिथिला भी मिट्टी में मिल जाएगी ।"

"क्या लिच्छवि-गण के उद्धार का कोई मार्ग नहीं रहा ? क्या वैशाली का परित्राण किसी प्रकार भी सम्भव नहीं ?"

"मैं लिच्छवि-गण के विषय में सर्वथा निराश हूँ । वैशाली से सर्वथा विमुख ।"

"किन्तु देवी वत्सला को अभी भी लिच्छवि-गण से आशा है । वे

अभी भी वैशाली से विमुख नहीं हुई।"

"सौम्य ! लिच्छवि-गण में अब प्राणशक्ति का संचार नहीं होता। अब लिच्छवि-गण का कङ्काल ही अवशिष्ट है। प्राण से विहीन कङ्काल अधिक दिन तक क्रीड़ा नहीं कर सकता। प्राण कङ्काल के समान प्रथुल नहीं होता, किन्तु कङ्काल के समान भंगुर भी नहीं। प्राण किसी भी परिस्थिति में पातित हो, उसी परिस्थिति में से शक्ति का संचय कर लेता है। किन्तु कङ्काल अपने काठिन्य को ही शक्ति समझ कर सन्तुष्ट रहता है। अतएव प्राण, बारम्बार, पुष्ट होता रहता है। कङ्काल केवल क्रुद्ध। प्राण, बारम्बार, नवीन देह धारण कर सकता है। कङ्काल अपनी अवशिष्ट देह का भी परित्राण नहीं कर पाता। कङ्काल को मरना ही होता है। वत्सला ने यदि कङ्काल के प्रति आसक्ति का आचरण किया तो उसकी भी प्राण-शक्ति प्रक्षीण हो जाएगी।"

"भन्ते ! क्या मैं मिथिला में विद्रोह उत्थापित करके संघभेद करूँ ?"

"अविलम्ब। अब और समय नहीं है, सौम्य !"

अनिरुद्ध, मौन रहकर, चिन्ता-निमग्न हो गए। आयुष्मान उदय ने, शय्यात्याग करके, आवास का प्राच्याभिमुख वातायन अपावृत कर दिया। माघ का हिमशीतल पवन आवास में प्रवेश पाने लगा।

श्रमण वातायन के समीप संरूढ़ होकर अन्तरिक्ष में देखने लगे। प्रत्यूष की प्रथम किरण प्राची के क्षितिजकूल को रञ्जित करने लगी थी।

कुछ क्षण उपरान्त, आयुष्मान उदय अनिरुद्ध के समीप आए और उनके स्कन्ध का स्नेहस्पर्श करके, बोले : "सौम्य ! तुम विषादग्रस्त क्यों हो गए ?"

अनिरुद्ध ने, अवनत-मुख रहकर ही, उत्तर दिया : "संघभेद करने के पूर्व मैं देवी वत्सला से मन्त्रणा करना चाहता हूँ, भन्ते !"

"तुमको वत्सला से मिले कितना समय हो गया ?"

"चार दिन ?"

"उस समय वत्सला का कार्यकलाप क्या था ?"

"वे, वैशाली के क्षत्रियग्राम से निराश होकर, वणिक्-ग्राम तथा कर्मकार-ग्राम में संगठन करने का निश्चय कर रही थीं।"

"वह वणिक्-ग्राम में भी निराश होगी। कर्मकार-ग्राम में भी।"

"किस कारण, भन्ते!"

"वैशाली में निवास करते समय मैं भी इन दोनों ग्रामों में, बारम्बार, जाया करता था। मैंने भी वणिक्-प्रमुखों तथा कर्मकार-प्रमुखों को परामर्श दिया था कि वे क्षत्रिय-ग्राम में उत्पन्न उच्छृङ्खलता का विरोध करें। किन्तु मैं निराश होकर लौट आया।"

"प्रमुखों ने आपके परामर्श का तिरस्कार क्यों किया, भन्ते! उन दोनों ग्रामों में तो अब भी पुरातन परम्परा ही प्रतिष्ठित है। उन दोनों ग्रामों के निवासी तो अब भी अपने चैत्यों में जाते हैं, भिक्षुओं तथा परिव्राजकों का सत्कार करते हैं। फिर वे क्यों आपकी शिक्षा ग्रहण करने में असमर्थ रहे?"

"लोभ के कारण। क्षत्रियग्राम के लिच्छवि-गण जिस धनराशि का अपव्यय करते थे वह इस ग्रामद्वय में संचित हो रही थी। क्षत्रिय-ग्राम की उच्छृङ्खला का उन्मूलन होते ही इस ग्राम-द्वय के प्रभूत उपार्जन का क्षय हो जाता। क्षत्रिय-ग्राम का व्यभिचार इस ग्रामद्वय के लिए व्यापार बन गया था।"

अनिरुद्ध ने, सहसा, आशान्वित होकर कहा: "भन्ते! इस समय उन दोनों ग्रामों के लोभ पर प्रचण्ड प्रहार हो रहा है। परिषद ने प्रतिज्ञा धारण की है कि वणिक्-पुत्र अपनी सुवर्णराशि तथा कर्मकार-गण अपनी स्त्रियों के आभूषण राजकोश में अर्पित करें। प्रतिज्ञा का प्रत्याख्यान करने वालों को दण्ड दिया जाएगा। अतएव, अब तो इन दोनों ग्रामों में संगठन की सम्भावना है।"

श्रमण हँसने लगे। फिर वे बोले: "सौम्य! लोभ से उत्साह की उत्पत्ति कभी भी सम्भव नहीं। लोभ केवल भय को ही जन्म देता है। पूर्व समय में, लोभ के वशीभूत वणिक्-पुत्र तथा कर्मकार-गण अपने कर्त्तव्य से विरत रहे। अब वे भय के कारण वैशाली से पलायन करेंगे। अब वैशाली में उनके द्वारा करणीय कुछ भी नहीं रहा।"

इसी समय एक सशस्त्र लिच्छवि तरुण ने आवास में प्रवेश किया। उसकी धूलि-धूसरित देह तथा म्लान मुख यह सूचना दे रहे थे कि वह

कोई दुस्समाचार लेकर दूर से आया है। तरुण को देखते ही अनिरुद्ध ने अपने आसन से उत्थान किया। आयुष्मान उदय, पुनरेण, शय्या पर उपासीन हो गए।

तरुण ने, मैथिलीपुत्र को सम्बोधित करके, कहा : "आर्य ! वैशाली में अभूतपूर्व अनाचार हुआ है। राजा ने देवी वत्सला को, राजप्रासाद में आहूत करके, बन्दी बना लिया।"

अनिरुद्ध पर मानो वज्रपात हुआ हो। उनके नेत्रद्वय से अग्निशिखा एवं अश्रुकण, एक साथ, आविर्भूत होने लगे। और वे जड़वत खड़े रहे।

तब तरुण ने, श्रमण का आदेश पाकर, वैशाली में जो कुछ हुआ था वह सब आद्योपान्त सुना दिया।

अनिरुद्ध ने आयुष्मान उदय से कहा : "भन्ते ! मैं इसी क्षण वैशाली की ओर यात्रा करना चाहता हूँ।"

श्रमण ने पूछा : "किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ?"

"देवी को बन्धन से मुक्त करना है।"

"किन्तु एकाकी ही वैशाली में जाकर क्या तुम वत्सला को मुक्त कर पाओगे ?"

"मुक्त नहीं कर पाया तो अपने प्राण दे दूंगा। राजप्रासाद के प्रांगण में ताण्डव करूँगा।"

"क्षत्रिय पुरुष सर्वदैव ताण्डव करने में समर्थ है, सौम्य ! क्षत्रिय पुरुष को अपने प्राणों का भी मोह नहीं होता।"

अनिरुद्ध ने, कातर होकर, पूछा : "तो मैं क्या करूँ, भन्ते !"

श्रमण ने उत्तर दिया : "मिथिला में ही रह कर संघभेद करो।"

"और देवी वत्सला की बन्धनमुक्ति ?"

"वत्सला स्वयं समर्थ है। वह निष्क्रिय रह कर कारागार में शाय-मान होने वाली नहीं है।"

अनिरुद्ध ने, अपनी कटि से आलम्बित कृपाण पर अपनी करमुष्टि आबद्ध करके, श्रमण के चरणों में मस्तक अवनत कर दिया।

आयुष्मान उदय, नेत्र निमीलित करके, ध्यानस्थ हो गए।

प्राची के क्षितिज-तट पर, बालरवि का अंगारक अपनी अरुणिमा

विकीर्ण कर रहा था।

: ४ :

कारागार के द्वार पर सावधान मागध परिपाल को देखकर देवी वत्सला कवाट के निकट चली आईं।

रात्रि का तृतीय याम व्यतीत हो चुका था। देवी वत्सला ने, उस समय तक, कारागार में पदचार करते-करते, दो अहोरात्र अतिवाहित कर दिये थे। न उनको कारागार के बाहर संसार का कोई सन्देश मिला था, और न उनका ही कोई समाचार कारागार के बाहर जा सका था। अब, अकस्मात्, इस नवीन मागध परिपाल को देखकर, देवी वत्सला के हृदय में, सहसा, एक आशा का उदय हुआ। परिपाल परिचित-सा प्रतीत होता था।

कवाट के निकट आकर देवी वत्सला ने देखा कि मागध सुभट का वेष धारण करके भल्लिक नायक उपस्थित है। तब देवी वत्सला ने पूछा : "वैशाली का क्या समाचार है, नायक !"

भल्लिक ने उत्तर दिया : "राजा रत्नकीर्ति राजप्रासाद में कारावरुद्ध हैं, देवि ! वृज्जिसंघ का शासन सुनक्खत ने अपने हाथ में ले लिया है।"

देवी वत्सला स्तम्भित रह गईं। उन्होंने, उत्कण्ठित होकर, पूछा : "यह सब कब और कैसे हुआ ?"

भल्लिक बोला : "आज प्रातःकाल ही सुनक्खत ने राजप्रासाद में जाकर राजा रत्नकीर्ति से प्रार्थना की कि वह राजकुमारी पुलोमजा का पाणिग्रहण करना चाहता है। राजा ने, क्रुद्ध होकर, उसकी प्रार्थना का प्रत्युत्तर चपेटाघात से दिया। तब सुनक्खत ने, मागध-सैन्य की सहायता से, राजा रत्नकीर्ति को बन्दी बना लिया।"

"पुलोमजा कहाँ है ?"

"सुनक्खत के शयनकक्ष में।"

"क्या पुलोमजा ने, पिता की अवज्ञा करके, सुनक्खत से विवाह कर लिया ?"

"राजकुमारी तो तुरन्त ही विवाह के लिए सहमत हो गई थी। किन्तु सुनक्खत ने उसके साथ विवाह नहीं किया। वह आग्रह करने लगा

रत्नकीर्ति को उसकी उद्दण्डता का दण्ड देने के लिए वह राजकुमारी को परिणीत किए बिना ही परामृष्ट करेगा।"

"क्या यह प्रस्ताव भी पुलोमजा ने स्वीकार कर लिया ?"

"हाँ, देवि !"

देवी वत्सला, एक क्षण के लिए, मौन हो गईं। फिर उन्होंने पूछा : "नायक तुम यहाँ किस प्रकार पहुँचे ?"

भल्लिक ने उत्तर दिया : "पानागार में प्रमत्त एक मागध का वध करके।"

"क्या मागध सैन्य विशृंखल है ?"

"प्रायश: विशृंखल है, देवि ! सुनक्खत ने सिंहासनारूढ़ होकर राजाज्ञा घोषित की है कि वैशाली में उत्सव मनाया जाए। मागध सैनिक, सुरा एवं सुन्दरी की खोज में, विशृंखल हो गए हैं। उन्होंने लिच्छवि-गण की अनेक कुलकन्या तथा कुलवधू दूषित की हैं।"

देवी वत्सला के नयनद्वय से अग्नि स्फुलिङ्ग झरने लगे। वे, नायक की भर्त्सना करती हुई, बोलीं : "और तुम जीवित रह कर ही यह सुसमाचार मुझको सुनाने चले आए !!"

नायक ने कहा : "देवि ! आर्य अनिरुद्ध का आदेश है कि हम, अपने समस्त बल तथा कौशल का प्रयोग करके, सर्वप्रथम लिच्छवि-वंश की कुलदेवी को कारागार से मुक्त करें।"

"आर्यपुत्र इस समय कहाँ हैं ?"

"मिथिला में नवीन शासन का संगठन कर रहे हैं।"

"नवीन शासन ?"

"हाँ, देवि ! आपके बन्धन का समाचार सुनते ही मिथिला के क्षत्रिय-कुल ने वैशाली के विरुद्ध विद्रोह किया है। वृज्जिसंघ का भेदन हो चुका है।"

देवी वत्सला के नयनों में अश्रुजल उभर आया। एक क्षण मौन रह कर, उन्होंने पूछा : "मेरे लिए आर्यपुत्र का क्या आदेश है, नायक !"

भल्लिक ने कहा : "आपको, कारागृह से मुक्त होते ही, मिथिला जाना होगा।"

वत्सला ने भूमितल पर पदाघात करके कहा : "मैं मिथिला नहीं जाऊँगी ।"

भल्लिक विस्मित होकर देवी वत्सला का मुख देखने लगा । तब देवी वत्सला ने पूछा : "नायक ! तुम किसके आदेश का पालन करोगे ? आर्य-पुत्र के आदेश का अथवा मेरे आदेश का ?"

नायक ने कातर वाणी में उत्तर दिया : "देवि ! आप अपने अकि-ञ्चन किङ्कर को धर्मसंकट में मत डालें ।"

"मेरे पास समय नहीं है, नायक ! धर्मसंकट में पड़कर किंकर्त्तव्य-विमूढ मत बनो । तुरन्त ही अपने कर्त्तव्य का निश्चय करो ।"

नायक ने, मौन रहकर, मुख अवनत कर लिया । देवी वत्सला ने, शान्त स्वर में, कहा : "यदि तुम आर्यपुत्र का आदेश पालन करना चाहते हो तो मुझको कारागार में ही छोड़कर मिथिला चले जाओ । आर्यपुत्र से कह देना कि लिच्छवि कुलों को दूषित करने वाले मागधों को वैशाली में जीवित छोड़कर, वत्सला, अपने प्राणों के परित्राण के लिए, मिथिला आना नहीं चाहती । लिच्छवि-वंश की मानमर्यादा ही मिट्टी में मिल गई तो मैं प्राण धारण करके क्या करूँगी ?"

नायक ने, एक क्षण चिन्तन करके, उत्तर दिया : "देवि ! मैं भी आपको काराग्रस्त छोड़कर मिथिला नहीं जाऊँगा । आप अपना आदेश दीजिए ।"

"तुम्हारे संगठन में कितने लिच्छवि हैं ?"

"रात्रि के प्रथम याम में मैं इस ओर आया तब तक पाँच शत थे । अभी तक दो-तीन शत और आ गए होंगे ।"

"संगठन तो क्षयग्रस्त था, नायक ! तुम वृद्धि का समाचार दे रहे हो ।"

"राजप्रासाद में घटित काण्ड को देखकर हमारे सहचरों का मोह दूर हो गया, देवि ! अब वे आपके संकेत पर प्राण-विसर्जन करने के लिए उद्यत हैं ।"

"उन सबके शौच्याशौच्य की परीक्षा हो चुकी ?"

"नायक पिलिन्दि वह कार्य सम्पन्न कर रहे हैं । पूर्व अनुशासन-

प्रणाली के अनुसार ।"

"तुम्हारे सगठन का सन्निपात कहाँ होगा ?"

"वणिक्-ग्राम मे ।"

"वहाँ क्यों ?"

"देवि ! वहाँ अभी तक मागध सैन्य ने पदार्पण नहीं किया है ।"

"वणिक्पुत्र क्या हमारे पक्ष मे हैं ?"

"वे भयभीत है, देवि ! अपनी धनराशि को प्रच्छन्न करने के अतिरिक्त उनका कोई अध्यवसाय मैने नहीं देखा ।"

"तुम्हारे सगठन का सधान किसी वणिक्पुत्र को तो नही मिला ?"

"उस ओर से हम सर्वथा सावधान है ।"

"क्षत्रिय-ग्राम मे मागध सैन्य की सख्या कितनी है ?"

"तीन सहस्र से अधिक नही है ।"

"अन्तर्दुर्ग में कितने हैं ?"

"प्राय: एक सहस्र ।"

"अवशिष्ठ मागध ?"

"गणिकालय मे, पानागारो मे, वारवेश्मो मे तथा लिच्छवि शयनागारों में ।"

देवी वत्सला, अश्रुमोचन करती हुई, बोलीं : "नायक ! लिच्छवि शयनागारों में जिस दिन रूपाजीवा ने प्रवेश पाया था उसी दिन मुझे विश्वास हो गया था कि एक दिन, उन शयनागारों में, दस्युदल का प्रवेश भी होकर रहेगा ।"

नायक मौन रहा । वत्सला ने पूछा : "मुझको मुक्त करने की क्या योजना है ?"

भल्लिक बोला : "एक प्रहर के उपरान्त कोई मागध परिपाल मेरा स्थान लेने आएगा । उस समय आप मागध परिपाल का वेष धारण करके अन्तर्दुर्ग के दक्षिण-द्वार का अतिक्रमण कर जाएँ । द्वारदेश पर हमारे सहचर सतत सावधान है ।"

"अभिज्ञान ?"

"जय सप्तशील ?"

"अग्रभूमि ?"

"क्षत्रियग्राम के पश्चिम द्वार पर नायक पिलिन्दि आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"और तुम, नायक ! तुम कब और कैसे आओगे ?"

"आप मेरी चिन्ता मत करें, देवि ! मैं मागध परिपाल का मस्तक अपने साथ लेकर यथाशीघ्र आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा।"

"तुम शीघ्रातिशीघ्र आना, नायक ! सम्भव है कि पिलिन्दि नायक, मेरा आदेश न मान कर, मुझको मिथिला ले जाने का हठ कर बैठे। तब मुझे नायक पिलिन्दि का निरोध करना पड़ेगा।"

देवी वत्सला ने सस्मित दृष्टि से भल्लिक की ओर देखा। उस दृष्टि में नायक के लिए स्नेह का सम्पुट था। नायक पुलकायमान हो उठा।

: ५ :

उस हेमन्त-रात्रि का अन्तिम याम अतिवाहित होने के पूर्व, वैशाली के शृंगाटक पर, वृज्जिसंघ की चिरमौन सन्निपात-भेरी पुनरेण प्रध्मापित हो उठी।

क्षत्रिय-ग्राम की वीथि-वीथि में उद्घोष उत्थापित था :

"लिच्छवि-वृन्द ! देवी वत्सला ने, लिच्छवि सैन्यबल साथ लेकर, राजप्रासाद का पर्यवसन किया है !! लिच्छवि-कुलों को दूषित करनेवाले दस्युदल का दलन करो !!!

"लिच्छवि-वृन्द ! अराजकता का अन्धतामिस्र तिरोहित हो चुका !! स्वातन्त्र्य-परित्राण के लिए शस्त्रास्त्र धारण करो !!!

"लिच्छवि-वृन्द ! पाटलिग्राम के भूतपूर्व दुर्गपाल, आर्य अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र, पुनरेण पराक्रम-परायण हैं !! वृज्जिसंघ के सिंहध्वज की छाया में सन्निपात करो !!!"

लिच्छवि शयनागारों में सुप्त अथवा बलात्काररत मागधों का संहार आरम्भ हो गया। वैशाली के पानागार तथा वेश्यावेश्म सुराप्रमत्त मागध सैनिकों के शोणित-स्नात शव-समूह से संकुल हो उठे। गणिकालय के गवाक्ष-गवाक्ष से मृत्यु को प्राप्त होते हुए मागधों का आर्तनाद निकल रहा था।

और वैशाली के शृंगाटक पर, अनेक वर्ष के उपरान्त, पुनरेण शस्त्रास्त्र-सज्जित लिच्छवि सुभट समवेत थे। लिच्छवि-गण का वह समवाय, सिंह-ध्वज का जयघोष करता हुआ, अन्तर्दुर्ग की ओर अग्रगर होने लगा। अन्तर्दुर्ग के प्रत्येक प्रान्त से परिचित देवी वत्सला, अपने तीन शत सुशिक्षित एवं अनुशासित सुभट साथ लेकर, मागध सैन्य का संहार कर रही थीं।

प्रभात की प्रथम किरण प्रस्फुटित होते-होते, अन्तर्दुर्ग में अवशिष्ट मागध सुभट, पिञ्जर में अवरुद्ध पक्षीकुल की भाँति, राजप्रासाद के प्राङ्गण में पर्यवसित हो गए। प्राङ्गण की प्राचीरों पर देवी वत्सला के लक्षवेधी धनुर्धर, शरसन्धान करके, सावधान थे।

तब पुलोमजा-पुरस्सर सुनक्खत ने राजप्रासाद के सिंहद्वार पर आकर, मागध सैन्य को आदेश दिया : "सुभट-वृन्द ! शस्त्रसम्पात संरुद्ध करो।"

सुनक्खत, पुलोमजा को साथ लेकर, प्राङ्गण के मध्यप्रान्त में चले आए। प्रांगण के द्वाराट्टालक पर देवी वत्सला, सान्नाह्य वेष धारण किए, शरसन्धान करके, संरूढ़ थीं। सुनक्खत ने, मुख उन्नत करके, देवी वत्सला को सम्बोधित किया : "वत्सले ! तुम्हारी विजय हुई। सुनक्खत की पराजय। अब रक्तपात का कोई प्रयोजन नहीं रहा। मैं, मागध सैन्य को साथ लेकर, वैशाली से निष्क्रमण करने के लिए प्रस्तुत हूँ।"

देवी वत्सला ने उत्तर दिया : "मागध सैन्य यदि आत्मसमर्पण करना स्वीकार करे तो मैं भी उन्हें प्राणदान देने के लिए प्रस्तुत हूँ। किन्तु आपको वैशाली से प्रस्थान करने का सुयोग अभी नहीं मिल सकता।"

"वैशाली में मेरा अब कोई प्रयोजन नहीं है।"

"किन्तु वैशाली को आप से प्रयोजन है।"

प्राचीर पर खड़े नायक पिलिन्दि ने देवी वत्सला से कहा : "देवि ! आप इस नराधम को 'आप' कहकर सम्बोधित न करें। यह स्वदेश-द्रोही, स्वधर्म-द्रोही, मित्रद्रोही शठ है। लिच्छवि-गण की आकांक्षा है कि इस श्वान को, इसी क्षण, शृंगाटक पर ले जाकर शूलविद्ध किया जाय।"

देवी वत्सला ने पिलिन्दि से कहा : "नायक ! उचित समय पर वृज्जिसंघ की परिषद इनका सम्यक् विचार करेगी। इस समय इनका

बन्धन ही प्रयोजनीय है।"

पुलोमजा ने देवी वत्सला को सम्बोधित किया : "देवि ! यदि आप आर्यपुत्र की प्राण-रक्षा का वचन दें तो मैं इनको आत्मसमर्पण का परामर्श दे सकती हूँ।"

प्राचीर पर उपस्थित लिच्छवि धनुर्धर अट्टहास कर उठे। नायक भल्लिक ने पुलोमजा से पूछा : "तू कौन से आर्यपुत्र की प्राणरक्षा चाहती है ? वैशाली में तेरे अनेक आर्यपुत्र हैं।"

पुलोमजा ने, प्रकुपित होकर, देवी वत्सला से कहा : "देवि ! वृज्जि-संघ की राजकुमारी का अपमान करने वाले को दण्ड मिलना चाहिए।"

नायक धनञ्जय ने, देवी वत्सला को सम्बोधित किया : "देवि ! पारसीकपुरी की यह उच्छिष्ट वाराङ्गना वृज्जिसंघ की राजकुमारी नहीं हो सकती।"

देवी वत्सला मौन रहीं। तब पुलोमजा ने सुनक्खत से कहा : "आर्य-पुत्र ! यह दस्युदल युद्ध किए बिना अपनी धृष्ठता से विरत नहीं होगा। आप अपने सैन्य को शस्त्र-सम्पात का आदेश दीजिए।"

सुनक्खत, मौन रह कर, सिंहद्वार की ओर प्रत्यागमन करने लगे। पुलोमजा ने उनका अनुसरण किया। नायक भल्लिक ने चीत्कार करके कहा : "सुनक्खत ! यदि तू अपने स्थान से एक पद भी अग्रसर हुआ तो मेरा बाण तेरा वक्ष वेध देगा।"

सुनक्खत ने, मुख परावृत्त करके देवी, वत्सला की ओर देखा। तब देवी वत्सला ने भल्लिक से कहा : "नायक ! इनका वक्ष तो राज-प्रासाद की ओर है। तुम क्या इनके पृष्ठ पर प्रहार करोगे ?"

नायक ने उत्तर दिया : "देवि ! इस दुष्ट का समस्त शरीर विदीर्ण करने योग्य है।"

"किन्तु, नायक ! सन्धि के उद्देश्य से समुपस्थित शत्रु का हनन लिच्छवि-मर्यादा के विपरीत है। इनको अपने स्थान पर लौट जाने दो। इनके बन्धन का अवसर भी तुम्हें शीघ्र ही प्राप्त होगा।"

सुनक्खत और पुलोमजा राजप्रासाद में चले गए। तब देवी वत्सला ने प्रांगण में उपस्थित मागध सैन्य को सम्बोधित किया : "मागध-वृन्द !

अपने पाप के प्रायश्चित-स्वरूप तुम आत्मसमर्पण करो। मैं वचन देती हूँ कि लिच्छविगण तुम्हारे प्राणों का हनन कभी नहीं करेंगे। तुमको जीवित रह कर भागीरथी के पार चले जाने का अवसर मिलेगा।"

मागध सैन्य नेतृत्व-विहीन हो चुका था। उस सैन्य के सुभट एक दूसरे का मुख देखने लगे। तब एक मागध ने देवी वत्सला से कहा : "देवि! हम भागीरथी के पार जाने के लिए प्रस्तुत हैं। किन्तु हम अपने शस्त्रास्त्र समर्पित नहीं करेंगे।"

देवी वत्सला ने उत्तर दिया : "शस्त्रास्त्र का समर्पण किए विना तुम प्राण धारण नहीं कर सकते।"

दूसरे क्षण, मागध सैनिक शर-सन्धान करने लगे। राजप्रासाद का प्रांगण मागध रक्त से रञ्जित होने वाला था।

किन्तु शस्त्रसम्पात के पूर्व ही राजा रत्नकीर्ति ने, सिंहद्वार के उत्संग पर उपस्थान करके, उच्चस्वर से उद्घोष किया : "लिच्छवि-वृन्द! मागध-वृन्द! परस्पर रक्तपात मत करो। तुम्हारे परस्पर रक्तपात से अवन्ति का असुरसाम्राज्य ही लाभान्वित होगा। वृज्जिसंघ तथा मगध की हानि होगी। प्राची में अवन्ति के असुरसाम्राज्य का प्रसार होगा। परस्पर रक्तपात मत करो।"

देवी वत्सला ने चीत्कार किया : "आप मौन रहकर तुरन्त ही राज-प्रासाद में चले जाइए। यदि आपने एक क्षण भी विलम्ब किया तो मैं आपके प्राणों की रक्षा नहीं कर सकूँगी।"

राजा रत्नकीर्ति, भयभीत होकर, उत्संग से प्रस्थान करने लगे। किन्तु उसी क्षण किसी लक्ष्यवेधी लिच्छवि धनुर्धर ने, अपना वाण उनकी ओर उड्डीयमान करके, उनका मस्तक छेद दिया। मरने के पूर्व राजा रत्न-कीर्ति को आर्तनाद करने का भी अवसर नहीं मिला।

तब भीषण युद्ध होने लगा। किन्तु मागध सैन्य अधिक समय तक शस्त्रसम्पात नहीं कर पाया। शृंगाटक की ओर से आने वाले खड्गहस्त लिच्छवि समवाय ने प्रांगण का प्रवल धर्षण किया। और प्रांगण की भूमि, एक पल में, मागधों के शवसमूह से पट गई।

लिच्छवि सुभट, एक स्वर से, उद्घोष कर रहे थे : "देवी वत्सला

की जय ! देवी वत्सला की जय !!"

देवी वत्सला ने, अपना धनुष उद्यत करके, उच्चस्वर से कहा : "लिच्छवि-वृन्द ! वृज्जिसंघ की जय बोलो ! सिंहध्वज का जयघोष करो ! वैशाली में किसी व्यक्ति का जयघोष अप्रज्ञप्त है।"

किन्तु लिच्छवि समवाय ने देवी वत्सला के अनुरोध की अवहेलना कर दी। लिच्छवि-गरण पूर्ववत उद्घोष करते रहे : "देवी वत्सला की जय !!!"

तब देवी वत्सला ने, द्वाराट्टालक से अवरोहण करके, राजप्रासाद में प्रवेश किया। नायक भल्लिक आदि द्वादश लिच्छवि महायोद्धा उनके साथ थे।

किन्तु राजप्रासाद के कोने-कोने का सन्धान कर लेने पर भी उनको सुनक्खत अथवा पुलोमजा का कोई सन्धान नहीं मिला। राजप्रासाद की एक पुरानी परिचारिका ने देवी वत्सला को सूचित किया कि वे दोनों, वर्षकार ब्राह्मरण के साथ, राजप्रासाद के गुप्तद्वार से पलायन कर गए हैं।

तब नायक भल्लिक और द्वादश अन्य लिच्छवि सुभट, द्रुतवाही अश्वों पर आरोहण करके, कोटिग्राम की ओर प्रधावमान हो गए।

: ६ :

वैशाली में जिस दिन वत्सला की विजय हुई, उसी दिन मध्याह्न के समय, मिथिलापति अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र ने, अधीर होकर, आयुष्मान उदय से कहा : "भन्ते ! पूर्वाह्न भी चला गया। किन्तु अभी तक देवी का कोई समाचार नहीं मिला। आप आज्ञा दें तो मैं स्वयं वैशाली की ओर यात्रा करूँ।"

आयुष्मान उदय, भोजन करके, शय्या पर विश्राम कर रहे थे। अनिरुद्ध की अभ्यर्थना सुनकर वे उपासीन हो गए। उनके अधरोष्ठ पर स्मित की एक क्षीण रेखा उदय होकर तुरन्त ही अस्त हो गई। तब वे स्नेह-सूचक स्वर में बोले : "सौम्य ! वत्सला तो सर्वथा समर्थ है। सुनक्खत के द्रोहाचार ने वैशाली में तुम्हारे संगठन को पुनरेण प्राणान्वित कर दिया है। तुम वत्सला की चिन्ता मत करो। तुमको मिथिला में अभी अनेक करणीय कर्म करने हैं।"

अनिरुद्ध सहसा कातर हो उठे। वे अश्रु-विह्वल वाणी मे कहने लगे : "भन्ते ! सुनक्खत स्वेच्छाचारी है। मागध नृशस म्लेच्छ। देवी के प्रति उनकी प्रतिहिंसा भी आपको विदित है। यदि देवी का कोई अमगल हो गया तो मिथिला मे मेरा समस्त समारम्भ असफल हो जाएगा।"

श्रमण ने उत्तर दिया : "सौम्य ! यदि वत्सला स्वय इस समय इस स्थान पर उपस्थित होती तो वह कहती कि तुमने यह समस्त समारम्भ उसके लिए नही, वृज्जि महाजनपद के परित्राण के लिए किया है। यह समारम्भ तो उसी अवस्था मे व्यर्थ हो सकता है जब कि तुम, दुराग्रह करके, इसे व्यर्थ करने पर कटिबद्ध हो जाओ।"

मैथिलीपुत्र ने, मौन रह कर, अपना मुख अवनत कर लिया। श्रमण के कथन मे सार था। किन्तु देवी वत्सला के लिए उनकी अपनी विह्वलता भी उनको विवश किए दे रही थी।

श्रमण बोले : "सौम्य ! यह समय विमूढ होने का नही है। कार्पण्य के कारण यदि तुम अपने कर्त्तव्य से विरत हो गए तो न वृज्जि महाजन-पद का स्वातन्त्र्य सुरक्षित रह पाएगा न वत्सला प्राण धारण कर सकेगी। तुमको किसी भी पल यह समाचार प्राप्त होने वाला है कि अजातशत्रु की चतुरगिणी भागीरथी के उत्तरवर्ती तीर पर अवतरण कर रही है।"

अनिरुद्ध ने, प्रनोद्-प्रताडित के समान, उपस्थान किया। उन्होने अभी तक इस आशका को अपने मानस मे स्थान नही दिया था। मिथिला मे, वैशाली के विरुद्ध, विद्रोह व्युत्थापित करने के क्षण से लेकर, उनका मन एक ही चिन्ता से अभिभूत था : क्या देवी वत्सला उनके द्वारा सम्पादित सघ-भेद को स्वीकार करेगी ?

मैथिलीपुत्र को ज्ञात था कि देवी वत्सला वृज्जिसघ की उत्कट उपा-सिका है। वृज्जिसघ की शासनप्रणाली का परित्राण करने के उद्देश्य से ही वे गूढ-सगठन-कार्य करने के लिए कटिबद्ध हुई थी। मैथिलीपुत्र को विश्वास था कि, सघभेद द्वारा वृज्जिसघ के पुनरोत्थान की प्रतीति हो जाने पर, देवी वत्सला सघभेद को भी स्वीकार कर लेगी।

किन्तु विदेह जनपद का क्षत्रियकुल वृज्जिसघ की शासनप्रणाली का समर्थक नही था। उनकी आकाक्षा थी कि वृज्जि महाजनपद मे पुनरेण

वंशानुगत राज्य की स्थापना की जाए। इसी आकांक्षा से प्रेरित होकर उन्होंने अनिरुद्ध के आह्वान का अनुसरण किया था। वे चाहते थे कि अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र एक नवीन राजवंश के प्रतिष्ठाता-पुरुष बनें। इसीलिए उन्होंने, विद्रोह के उपरान्त, तुरन्त ही अनिरुद्ध को मिथिलापति कहकर सम्बोधित करना आरम्भ कर दिया था। अनिरुद्ध के विपरीत अनुरोध की अवहेलना करके। अब वे चाहते थे कि अनिरुद्ध, शीघ्र ही, वृज्जि महाजनपद के महीपति बनकर, वैशाली में सिंहासनारूढ हो जाएँ।

आयुष्मान उदय की मन्त्रणा के अनुसार, नवीन राजवंश के रक्त में लिच्छवि-गण का रक्त, विदेह के क्षत्रिय-कुल के रक्त से संगम करके, वैशाली तथा मिथिला की परम्परागत प्रतिकूलता का परिशोध कर सकता था। रक्त का वह संगम अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र की शिराओं में हो चुका था। उनके पिता उभयपक्ष से सुजात लिच्छविपुत्र थे। उनकी माँ मिथिला के क्षत्रियकुल की कुलदुहिता। अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र ने लिच्छवि-दुहिता, वत्सला, का वरण किया था। इस मिथुन-संयोजन से जिस सन्तान की उत्पत्ति होती उसके प्रति वैशाली के लिच्छवि-गण तथा मिथिला का क्षत्रियकुल, एक समान, सन्तोष का अनुभव कर सकते थे।

श्रमण ने, इसी योजना के अनुरूप, अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र को समुत्तेजित तथा समुत्साहित किया था। अनिरुद्ध ने भी, वत्सला के बन्धन का समाचार सुन कर, तात्कालिक विक्षोभ की प्रेरणा से, श्रमण के आदेश का पालन किया था। किन्तु अब वे, सहसा, सशंक होने लगे कि देवी वत्सला वंशानुत राज्य की स्थापना को स्वीकार करेंगी अथवा नहीं। यदि देवी वत्सला सहमत न हुई तो वे क्या करेंगे? किस ओर जाएँगे? देवी वत्सला के साथ वैशाली की ओर? अथवा......

विपरीत सम्भावना के चिन्तनमात्र से अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र आतङ्कित हो उठे। उनकी यह दशा देख कर आयुष्मान उदय ने कहा: "सौम्य! मैं आज ही, इसी समय, मल्ल-भूमि की ओर प्रस्थान करना चाहता हूँ। कुशीनगर में कतिपय कालयापन करके मैं श्रावस्ती जाऊँगा। श्रावस्ती से कौशाम्बी। मगध के विरुद्ध मण्डल-प्रोत्साहन किए विना वृज्जि महाजन-पद का संकट टलेगा नहीं।"

अनिरुद्ध और भी विचलित हो गए। आयुष्मान उदय के मिथिला में रहते उनको आशा थी कि वे देवी वत्सला के परम्परा-प्रेम पर विजय पा लेंगे। यदि श्रमण चले गए तो एकाकी उनके लिए वह कार्य सुदुष्कर हो जाएगा। अनिरुद्ध कातर होकर श्रमण की ओर देखने लगे। उनके मुख से एक शब्द भी नहीं निकला।

आयुष्मान उदय ने कहा : "सौम्य ! तुम मोह से मुक्त होकर उत्थान करो। मिथिला के दुर्ग को एक दीर्घकाल-व्यापी पर्यवसन के लिए प्रस्तुत करना तुम्हारा प्रथम कर्त्तव्य है। और अब तुम्हारे पास अधिक समय नहीं रहा।"

मैथिलीपुत्र ने विस्मित होकर पूछा : "मिथिला का पर्यवसन ! ! क्या वृज्जि महाजनपद में अब गृहयुद्ध की ज्वाला जलेगी ?"

श्रमण ने उत्तर दिया : "गृहयुद्ध नहीं, सौम्य ! वैशाली का लिच्छवि-साम्राज्य चिरकाल के लिए विच्छिन्न हो चुका। लिच्छवि-गण अब विदेह जनपद को जीतने के लिए नहीं आएँगे। लिच्छवि-गण तो अब वैशाली का त्राण करने के लिए भी सक्षम नहीं। यदि वैशाली किसी दिन पुनरेण स्वतन्त्र हुई तो मिथिला की सहायता से ही होगी। किन्तु अजातशत्रु, वैशाली का धर्षण करते ही, मिथिला की ओर प्रयाण करेगा। तुम मगध की महाबलशाली सेना से संग्राम करने के लिए प्रस्तुत हो जाओ। विचिकित्सा से विरत होकर मिथिला में शक्ति का संग्रह करो।"

"भन्ते ! वैशाली में तो सुनक्खत सिंहासनारूढ़ है। वह अजातशत्रु का अभिन्न मित्र है। फिर अजातशत्रु किसलिए वैशाली का धर्षण करेगा ?"

"सौम्य ! मगधेश्वर ने अपना सुशिक्षित सैन्य इसलिए वैशाली में नहीं भेजा कि उसका वेतनभोगी भृत्य, सुनक्खत, वृज्जि महाजनपद का उपभोग करे। सुनक्खत के अनाचार द्वारा वृज्जिसंघ पर कठोर आघात करना ही उसका उद्देश्य है। आघात के कारण आकुल वैशाली पर शीघ्र ही मगध का आक्रमण होगा।"

"इस अवस्था में मुझको तुरन्त ही, सैन्य संग्रह करके, वैशाली की ओर प्रयाण करना चाहिए।"

"नहीं। वैशाली के स्वदेश-भक्त लिच्छवि-गण को, तुरन्त ही, वैशाली का त्याग करके मिथिला में सन्निपात करना चाहिए। वैशाली की रक्षा अब असम्भव है। वर्षकार ब्राह्मण वैशाली-दुर्ग के गम्भीर एवं दुर्बल स्थलों से सम्यक् परिचित हो चुका है। वैशाली का अविलम्ब पतन अब दुर्निवार्य है। विदेह की स्वल्प शक्ति का वैशाली मे अपव्यय करके तुम विदेह की पराजय भी दुर्निवार्य कर दोगे।"

"भन्ते ! वैशाली का पतन तो वृज्जि महाजनपद की पराजय के समान होगा। वैशाली के पतन की कल्पना करके ही मेरे गात्र विगलित होने लगते है।"

"सौम्य ! वैशाली को एक बार अपने पाप का प्रायश्चित करना ही पड़ेगा। तुम प्रायश्चित से परिशुद्ध वैशाली के पुनरोत्थान की कल्पना करो। साथ ही, उस कल्पना को चरितार्थ करने का समारम्भ। वह समारम्भ मिथिला में ही सम्भव है, अन्यत्र नहीं।"

"वैशाली का पुनरोत्थान किस प्रकार हो सकेगा ?"

"वैशाली पर अधिकार करते ही अजातशत्रु मिथिला की ओर अग्रसर होगा। मिथिला में तुम्हारे पास इतनी शक्ति नहीं कि तुम, दुर्ग से निष्क्रमण करके, समरांगण में मगधेश्वर से युद्ध करो। तुम्हें दुर्ग में पर्यवसित होकर समय अतिवाहित करना होगा। तब एक दिन यह संभव हो सकेगा कि मगध के दस्युदल को, वैशाली से ही नहीं, अपितु वृज्जि महाजनपद से भी पलायमान किया जा सके। मल्लगण, कोसल तथा वत्स के प्रोत्साहित होते ही अजातशत्रु को राजगृह की ओर प्रत्यावर्तन करना पड़ेगा।"

"भन्ते ! क्या आपको पूर्ण आशा है कि मल्लगण, कोसल तथा वत्स, वृज्जि महाजनपद के स्वातन्त्र्य की रक्षा के लिए, समुत्थान करेंगे ? वृज्जिसघ ने उन तीनों राष्ट्रों से द्रोह किया है। क्या वे उस अपराध को क्षमा कर देंगे ?"

"मल्लगण के विषय में तो मुझको पूर्ण विश्वास है कि वे मेरे अनुरोध को अमान्य नहीं करेंगे। कोसल तथा वत्स के विषय में मैं अभी से कुछ नहीं कह सकता। श्रावस्ती तथा कौशाम्बी में जाकर स्थिति का

अवलोकन करना होगा।"

अनिरुद्ध, अविश्वास के भाव से, श्रमण का मुख देखने लगे। श्रमण का विश्लेषण उनके अपने विश्वास से विपरीत था। वे बोले : "भन्ते! लिच्छवि-गण के प्रति घोर घृणा से घूर्णित मल्लगण तो, वृज्जि महा-जनपद को पददलित होता देखकर, उत्सव का समारोह करेंगे। कोसल और वत्स कदाचित्......

आयुष्मान उदय ने बीच में ही कहा : "यह भी तुम्हारी भूल है, सौम्य! कोसल तथा वत्स पर अनेक दिन से अवन्ति की छाया है। उन राष्ट्रों में अवन्ति के आचार का प्रसार होता रहा है। अतएव उन राष्ट्रों की व्यवसाय-बुद्धि का क्षय हो चुका है। किन्तु मल्लराष्ट्र को अवन्ति द्वारा प्रभावापन्न हुए अभी अधिक समय नहीं हुआ। मल्लगण में अभी भी प्राण-शक्ति अवशिष्ट है। उस प्राणशक्ति में विवेक का समावेश होते ही वह, वृज्जि महाजनपद के परित्राण के लिए, व्यग्र हो उठेगी।"

अनिरुद्ध, सर्वथा सन्न रहकर, मौन हो गए। श्रमण ने पुनः कहना आरम्भ किया : "अवन्ति की छाया मृत्यु की छाया है। अवन्ति के आचार का प्रवेश जिस-जिस राष्ट्र में होता है, वही राष्ट्र जर्जर हो जाता है। तब अवन्ति उस जर्जरता के विरुद्ध विक्रोश करके उस राष्ट्र का विनाश करने में सहायता करता है। भर्ग जनपद को जिस समय मगध ने पद-दलित किया उस समय मैं कौशाम्बी में था। उस घटना के कुछ काल उपरान्त, मैंने श्रावस्ती में वर्षावास किया था। दोनों देशों के मनीषी, राजपुरुष, तथा वणिक्पुत्र एक स्वर से कह रहे थे कि भर्गदेश, अपनी भ्रष्टता के भार से ही, भूविलुण्ठित हुआ है। मैंने, कौशाम्बी तथा श्रावस्ती में, अवन्ति के अनेक सार्थवाह-वृन्द से, बारम्बार, पूछा कि भर्ग जनपद का व्यसन देखकर, भर्गगण का मित्रराष्ट्र, अवन्ति, उदासीन क्यों रहा? सब का यही उत्तर था कि भर्गगण ने अपने स्वातन्त्र्य का दुरु-पयोग किया है और ऐसे अपात्र के परित्राण के लिए अवन्ति अपनी शक्ति का अपव्यय नहीं कर सकता। तुमको यह तो स्मरण है कि कुछ काल पूर्व अवन्ति ने ही, वत्स के शासन-तन्त्र को भ्रष्ट बतलाकर, वत्स के विरुद्ध भर्गगण के विद्रोह का समर्थन किया था और भर्ग गणराज्य की

स्थापना में सहायता दी थी।"

"भन्ते! तब अवन्ति, अकस्मात् ही, भर्गगण की भर्त्सना किसलिए करने लगा?"

"इसलिए कि भर्ग जनपद के शासकवर्ग ने अवन्ति के सार्थवाह-समवाय को, अपमानित करके, तुरन्त ही, अपने राज्य से नहीं निकाला। भर्ग जनपद का शासकवर्ग अवन्ति के अनाचार से अपनी प्रजा का परित्राण नहीं कर पाया। और अवन्ति के सार्थवाह-वृन्द ने, अपने द्वारा विस्तृत अनाचार का समाचार अवन्ति के शासक-वृन्द को देकर आग्रह किया कि भर्ग जनपद जैसा भ्रष्ट राष्ट्र अवन्ति का मित्र बनने योग्य नहीं। अवन्ति का स्पर्श मात्र ही ऐसा है कि एक आचारवान राष्ट्र को भी भ्रष्ट कर दे। आचारविहीन राष्ट्र के लिए तो अवन्ति का सम्पर्क घातक सिद्ध होता है। वैशाली में भी सुरा तथा सुन्दरी का प्रचार करने वालों में अवन्ति के सार्थवाह किसी की तुलना में पश्चातपद नहीं रहे। अब वे ही सार्थवाह, वैशाली को विध्वस्त होते देखकर, कहेंगे कि भ्रष्टाचार के कारण वैशाली का परित्राण असम्भव था।"

"किन्तु भर्गगण के पतन से तो अवन्ति के शत्रु-राष्ट्र, मगध, की शक्ति में वृद्धि हुई है। क्या अवन्ति का शासकवर्ग इतने सहज सत्य का भी साक्षात्कार नहीं कर सकता?"

"सौम्य! बुद्धि का विपर्यय हो जाने पर, सहज सत्य का साक्षात्कार भी, दिन-प्रतिदिन, सुदुष्कर होता जाता है। अवन्ति का शासकवर्ग, उत्तरापथ तथा मध्यमण्डल में पर्यटन करके, राष्ट्र-राष्ट्र के शासकवर्ग के साथ सुरापान करके, राष्ट्र-राष्ट्र की सुन्दरियों से समागम करके, सन्तुष्ट हो जाता है कि उसने पारसीक असुरसाम्राज्य तथा मागध अनार्यतन्त्र का विरोध करने के लिए जो कुछ करणीय था, वह कर लिया है। पारसीक अथवा मागध सेना जब किसी राष्ट्र पर आक्रमण करने के लिए अग्रसर होती है तो वह शासकवर्ग क्रुद्ध आक्रोश भी करता है। किन्तु रथारोहण करके देश का भ्रमण करने तथा विशद शब्दोच्चारण के अतिरिक्त किसी कर्म की कल्पना ही अवन्ति का शासकवर्ग नहीं कर सकता। कोई अन्य कर्म करने का मनोबल तथा अध्यवसाय आज अवन्ति में सर्वथा

अनुपस्थित है ।"

अनिरुद्ध एक क्षण के लिए चिन्तित हो गए । फिर उन्होंने पूछा : "तब तो, भन्ते ! राजा रत्नकीर्ति ने अवन्ति का तिरस्कार करके अनुचित नहीं किया ।"

श्रमण ने उत्तर दिया : "रत्नकीर्ति ने यदि वृज्जिसंघ की रक्षा के लिए अवन्ति का तिरस्कार किया होता तो मैं भी मुक्तकण्ठ से रत्नकीर्ति के कृत्य की प्रशंसा करता । किन्तु रत्नकीर्ति तो वृज्जि महाजनपद को अपनी मातृभूमि नहीं मानता । उसकी मातृभूमि है पारसीक देश । उसने अवन्ति का तिरस्कार इसलिए किया कि अवन्ति पारसीक असुरसाम्राज्य का शत्रुदेश है । उस तिरस्कार में स्वदेशप्रेम का तेज नहीं, परराष्ट्र-प्रेम की तुच्छता थी । तुच्छता को कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता ।"

अनिरुद्ध मौन रह कर श्रमण की वाणी पर विचार करने लगे । श्रमण के विश्लेषण में कभी भूल नहीं हुई थी । उनकी भविष्यवाणी में भी नहीं । किन्तु उनका यह विश्लेषण और भी अपूर्व था, अद्भुत था ।

मैथिलीपुत्र अभी तक यह मानते रहे थे कि पारसीक असुर-साम्राज्य तथा अजातशत्रु का अनार्यतन्त्र ही आर्यावर्त के अरिमण्डल में अन्तर्भुक्त हैं । आज प्रथमवार उनका अन्तर आक्रोश करने लगा कि आर्यावर्त का शत्रु एक और भी है । अवन्ति । ऐसा शत्रु जिसके प्रति आर्यावर्त अभी तक सावधान नहीं हुआ था । ऐसा शत्रु जिसको मित्र मान लेने की भूल अखिल आर्यावर्त में व्याप्त थी । उस मित्ररूपी शत्रु के विरुद्ध आर्यावर्त को अविलम्ब सावधान करने के लिए आतुर अनिरुद्ध ने श्रमण को सम्बोधित किया : "भन्ते ! अवन्ति के विषय में सत्य का प्रचार, शीघ्रातिशीघ्र, समस्त आर्यावर्त में होना चाहिए । अन्यथा अवन्ति का आश्रय लेकर विश्रब्ध आर्यावर्त का त्राण असम्भव हो जाएगा ।"

आयुष्मान उदय, शय्या से उत्थान करके, अपना चीवर तथा भिक्षापात्र लेने के लिए आवास के एक कोने की ओर अग्रसर हो गए । अनिरुद्ध के परामर्श का प्रत्युत्तर देते हुए उन्होंने कहा : "मैं यदि वृज्जि महाजनपद का परित्राण करने में सफल हुआ तो इस सत्य का प्रचार भी मैं करूंगा । अन्यथा......

श्रमण अपना वाक्य पूरा करते इसके पूर्व ही अध्वधूलि-धूसरित देवी वत्सला ने आवास में प्रवेश किया। देवी की देह सांग्रामिक वेष से विभूषित थी। मुख पर अध्वश्रम से उद्‌भूत स्वेदजल। अनिरुद्ध, उनको देखते ही, हर्षातिरेक से हत-बुद्धि-से हो गए। देवी वत्सला ने आवास के कोने में मौन अवरूढ़ आयुष्मान उदय को नहीं देखा। श्रमण ने चीवर तथा भिक्षापात्र उठाने के लिए अग्रसर अपना हाथ अपसारित कर लिया था।

अनिरुद्ध द्वारा प्रस्तुत पीठिका की अवहेलना करती हुई देवी वत्सला बोलीं: "आर्यपुत्र! वैशाली का विनाश उपस्थित हो गया, और आप मिथिला में मङ्गल मना रहे हैं! यह कैसा अविचार है, आर्यपुत्र!"

मैथिलीपुत्र ने, मुस्कराकर, उत्तर दिया: "देवि! मैं प्रतिपल तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। तुम्हारी ही चिन्ता में व्यस्त था। तुम आ गई। वैशाली के विषय में भी परामर्श करेंगे। उसके पूर्व तुम स्नान-भोजन से निवृत्त हो लो।"

देवी वत्सला ने, असहिष्णु होकर, कहा: "आर्यपुत्र! राजगृह का राजन्य वैशाली में प्रवेश करता रहे और मैं स्नान भोजन करूं!! मेरा स्नान-भोजन उसी समय सम्पन्न होगा, जब राजगृह का राजन्य ससैन्य भागीरथी की जलधार में निमज्जित हो जाएगा।"

अनिरुद्ध अवाक् रह गए। उनके मुख से केवल एक ही शब्द निकला: "अजातशत्रु!!!"

देवी वत्सला ने चीत्कार किया: "हाँ, वृज्जिसंघ का जन्मजात शत्रु!! लिच्छवि-वंश का शत्रु!!! वह इस समय कोटिग्राम को पद-दलित करके वैशाली की ओर अग्रसर हो रहा है। मेरा स्थान भी इस समय वैशाली में था। किन्तु आपकी सहायता के बिना मैं वैशाली की रक्षा नहीं कर सकती। आपको, तुरन्त ही, वैशाली ले जाने के लिए आई हूँ।"

अनिरुद्ध, विमूढ़ होकर, आयुष्मान उदय की ओर देखने लगे। तब आयुष्मान उदय अपने स्थान से चलकर देवी वत्सला के निकट आ गए। देवी वत्सला ने, बद्धाञ्जलि होकर, उनका अभिवादन किया।

श्रमण ने उनसे पूछा: "वर्षकार ब्राह्मण इस समय कहाँ है?"

वत्सला ने उत्तर दिया : "अपने स्वामी के शिविर में। सुनक्खत तथा पुलोमजा भी। अनुधावन में किंचित् विलम्ब हो जाने के कारण नायक भल्लिक उन तीनों को बन्दी नहीं बना सके।"

"और राजा रत्नकीर्ति ?"

"उनका शव अभी तक राजप्रासाद के उत्संग में पड़ा है। कोई लिच्छवि उस शव का स्पर्श करना स्वीकार नहीं करता।"

"वैशाली पर इस समय किसका अधिकार है ?"

"हमारे संगठन का। भल्लिक नायक को दुर्गपाल नियुक्त करके आई हूँ।"

"भल्लिक नायक के प्रति आदेश प्रेषित कर दो कि वह, अपने संगठन का सैन्य साथ लेकर, तुरन्त ही, मिथिला में चला आए।"

"भन्ते ! ! !"

"वैशाली के लिए अब यही शुभ है, भगिनी ! वैशाली के प्रायश्चित्त का समय आ गया। वैशाली ने मुक्तकण्ठ से मगधराज की महिमा गाई है। अब, कुछ समय के लिए, वैशाली मगधराज के महामहिम शासनतन्त्र का भी उपभोग कर ले।"

देवी वत्सला ने, श्रमण की ओर से मुख परावृत्त करके, अनिरुद्ध को सम्बोधित किया : "आर्यपुत्र ! मैं यह क्या सुन रही हूँ ?"

अनिरुद्ध ने, संक्षिप्त शब्दों में, वत्सला को श्रमण की योजना से अवगत कर दिया। सब सुनकर देवी वत्सला ने, शान्त स्वर में, कहा : "आर्यपुत्र ! आप वैशाली-विजय के लिए मिथिला में शक्ति-संग्रह कीजिए। आप मैथिली माँ के पुत्र हैं। किन्तु मैं पराभव के समय वैशाली से परांगमुख नहीं हो सकती। मैंने वैशाली-वासिनी लिच्छवि माँ का स्तन्यपान किया है। जिस धरा पर मेरा जन्म हुआ है, जिस धरा के अन्न-जल से मेरे शरीर का पोषण हुआ है, जिस धरा के क्रोड़ में मैंने क्रीड़ा की है, जिस धरा के वैभव का मैंने उपभोग किया है, उस धरा के लिए, उस धरा पर ही, मेरा देहपात भी अमृतत्व-प्राप्ति के समान होगा। तन में प्राण धारण करते मैं अपनी वैशाली अजातशत्रु को नहीं दूँगी। आप मेरे साथ नहीं जा सकते, न जाएँ। किन्तु आपका आशीर्वाद तो मेरे साथ जा सकता

है, आर्यपुत्र !"

वत्सला ने, जानुपात करके, अपना मस्तक मैथिलीपुत्र के चरणों में अवनत कर दिया। उनके उत्तप्त अश्रुपात से मैथिलीपुत्र के पादाग्र प्रतप्त हो उठे। अनिरुद्ध के नयनयुगल से भी अश्रुजल की निर्झरी बह रही थी।

तब अनिरुद्ध ने, देवी वत्सला के भुजमूल-द्वय को अपने करतलद्वय में आबद्ध करके, उनको ऊपर उठाते हुए, आर्द्रकण्ठ से, कहा : "देवि ! मैं भी तुम्हारे साथ जाऊँगा।"

वैशाली की ओर प्रस्थान करने के पूर्व, अनिरुद्ध तथा वत्सला ने, आयुष्मान उदय के चरणों में अवनत होकर, उनकी पदरज को अपने-अपने मस्तक पर धारण किया। श्रमण का मुख करुणा से आर्द्र था। कक्ष के द्वार की ओर जाते हुए लिच्छवि-युगल को रोककर, वे बोले : "यदि अन्तिम क्षण तक भी तुम दोनों, वृज्जि महाजनपद के परे अखिल आर्यावर्त को देख पाओ, लिच्छवि-परम्परा के परे मूल आर्य परम्परा का साक्षात्कार कर सको, तो तुरन्त ही वैशाली के उत्तरद्वार से महावन की कूटागारशाला में चले आना। वहाँ मैं तुम दोनों की प्रतीक्षा करूँगा।"

अनिरुद्ध तथा वत्सला, मौन रहकर, चले गए। आयुष्मान उदय, पुनरेण शय्या पर उपासीन होकर, ध्यानावस्थित होने लगे।

: ७ :

वैशाली-दुर्ग के दक्षिणवर्ती द्वाराट्टालक पर अवरूढ़ अनिरुद्ध मैथिली-पुत्र ने, दुर्गद्वार से लेकर दूर-दूर तक अवकीर्ण मागध अनीकिनी का अवलोकन करके, देवी वत्सला से कहा : "देवि ! यह मागध सैन्य तो मानो शरभ-संघ है जो सुपक्व सस्य को उदरसात् करने के लिए सहसा उमड़ पड़ा है। वैशाली में पिञ्जरावरुद्ध मुष्टिमेय लिच्छवि सुभट इसके साथ कितने दिन तक युद्ध कर सकेंगे ?"

देवी वत्सला ने उत्तर दिया : "आर्यपुत्र ! जब तक एक भी स्वदेश-प्रेमी और स्वातन्त्र्य का अनन्य उपासक लिच्छवि प्राण धारण करता है तब तक वृज्जिसंघ का सिंहध्वज धराशायी नहीं होगा।"

"देवि ! दुर्ग में संगृहीत खाद्यान्न कितना है ?"

"मुझे ज्ञात नहीं, आर्यपुत्र !"

"आयुधागार मे शस्त्रास्त्र ?"

"मैने आयुधागार का निरीक्षण नही किया ।"

"शस्त्रास्त्र धारण करने वाले लिच्छवि सुभट-समवाय की सख्या ?"

"मै नहीं जानती । वैशाली के प्रत्येक लिच्छवि को स्वदेश के लिए बलिदान देने का आह्वान है ।"

अनिरुद्ध ने देवी वत्सला की ओर देखा । लिच्छवि-सुभट-सुलभ सानाह्य वेश से आपाद-मस्तक आवेष्टित देवी वत्सला, प्रदोष के प्रक्षीण प्रकाश मे, परिपूर्णतया प्रशान्त होकर खडी थी । एक क्षण के लिए, उनका नयनयुगल अनिरुद्ध के नेत्रद्वय से उलझ गया । अनिरुद्ध ने देखा कि उनकी दृष्टि, मर्त्यलोक का अतिक्रमण करके, किसी अन्य लोक की ओर आबद्ध है । उस लोक मे जीवन की लालसा नही थी । मृत्यु का भय भी नही । उस लोक मे केवल अमृतत्व का ही अजस्र, अविकल, अनन्त आह्वान था । उस लोक मे आरूढ देवी वत्सला से ऐहिक प्रश्न पूछने के कारण, अनिरुद्ध का अन्तर अनुताप से भर गया ।

नायक भल्लिक ने, द्वाराट्टालक पर आरोहण करके, देवी वत्सला से निवेदन किया : "देवि ! विपक्षी की वाहिनी ने दुर्ग का उत्तरवर्ती द्वार भी अवरुद्ध कर लिया । अब वैशाली के बालापत्य तथा स्त्री एव वृद्ध नगर से निष्क्रमण करने मे नितान्त असमर्थ है ।"

देवी वत्सला मौन रही । भल्लिक ने फिर कहा . "देवि ! क्षत्रिय-नगर के समस्त कूप, वापी तथा तडाग विष से दूषित है । पानीय जल का एक बिन्दु भी क्षत्रिय-नगर मे अवशिष्ट नही रहा ।"

देवी वत्सला ने मुख नही खोला । अन्त मे भल्लिक बोला : "देवि ! अन्तर्दुर्ग मे पदार्पण करके आप लिच्छवि सैन्य का निरीक्षण कीजिए ।"

तब अनिरुद्ध ने भल्लिक से पूछा : "नायक ! कर्मकार-ग्राम मे कर्मकार सैन्य कितना है ?"

भल्लिक ने उत्तर दिया · "आर्य दुर्गपाल ! कर्मकार-गण कह रहे है कि लिच्छवि तथा मागध क्षत्रिय-प्रभुओ द्वारा उत्पादित उत्पात मे वे सर्वथा उदासीन है । एक भी कर्मकार शस्त्रास्त्र धारण करने के लिए प्रस्तुत नही ।"

"और वणिक्-ग्राम में ?"

"वणिक्-पुत्र कह रहे हैं कि वे केवल पण्य-विक्रय करना जानते है, शस्त्रास्त्र धारण करना नहीं। वे लिच्छवि-गण को भी पण्यविक्रय करेंगे, मागध-गण को भी। जो उन्हें पण्य का यथोचित मूल्य देगा उसी को वे अपना पण्य विक्रय करेंगे।"

"क्षत्रिय-ग्राम के लिच्छवि-गण क्या कहते हैं ?"

"अधिकांश लिच्छवि-गण का अभिमत है कि देवी वत्सला ने ही, दुराग्रह करके, वैशाली पर विभीपिका व्युत्पन्न की है। राजा रत्नकीर्ति अथवा राजा सुनक्खत का राजत्व होता तो महाराज अजातशत्रु कभी भी भागीरथी को पार नहीं करते। उन शान्तिप्रिय राजाओं का उच्छेद कर के देवी वत्सला ने उत्पात किया है। अब देवी वत्सला ही अपने कुकृत्य का फल भोगें।"

"अन्तर्दुर्ग में कितने लिच्छवि सुभट हैं ?"

"एक सहस्र से अधिक नहीं हैं, आर्य दुर्गपाल !"

अनिरुद्ध ने पापाण-प्रतिभा के समान शान्त तथा अविचल देवी वत्सला को सम्बोधित किया : "देवि ! अब इस द्वाराट्टालक पर हमारा प्रयोजन नहीं। वैशाली में सर्वत्र ही शत्रु का कृत्यपक्ष व्याप्त है। हम को यथाशीघ्र अन्तर्दुर्ग में चले जाना चाहिए।"

देवी वत्सला ने, मुख से एक शब्द भी उच्चारण किए विना, द्वाराट्टालक से अवरोहण किया। वे, रथारूढ़ हो कर, कर्मकार-ग्राम की ओर चल पड़ीं। अनिरुद्ध तथा भल्लिक, अश्वारूढ होकर, रथ के पार्श्वद्वय पर चल रहे थे।

कर्मकार-ग्राम का अतिक्रमण करती हुई देवी वत्सला ने भल्लिक से पूछा : "नायक ! क्या कर्मकार-ग्राम जनशून्य है ?"

भल्लिक ने उत्तर दिया : "नहीं, देवि ! कर्मकार-ग्राम जन-संकुल है। किन्तु भयभीत। भय के कारण कर्मकार-ग्राम नीरव हो गया है, देवि !"

"ग्राम में एक भी दीप का आलोक नहीं है, नायक !"

"ग्राम के निवासी सशङ्क हैं कि दीप के आलोक का लक्ष्य करके,

मागध उन पर चलयन्त्र द्वारा परिक्षिप्त अस्त्र आपातित करेंगे।"

तब देवी वत्सला ने अनिरुद्ध से कहा : "आर्यपुत्र ! एक समय था जब वैशाली के कर्मकार, स्वदेश पर आसन्न अनय-व्यसन का संकेत मात्र पा कर, साग्रामिक सम्भार समुपस्थित करने के लिए, अहर्निश परिश्रम किया करते।"

अनिरुद्ध मौन रहे। वे, पाटलिग्राम के दुर्ग में, अनेक वर्ष तक, वैशाली के कर्मकार-वृन्द की कर्त्तव्य-निष्ठा देख चुके थे। वे उन कर्मकारो द्वारा विनिर्मित रथ एव अश्वपर्याण पर आरोहण कर चुके थे। उन्होने उन कर्मकारों द्वारा विरचित वारबाण धारण किया था। शिरस्त्राण तथा सानाह्य पदत्राण भी। उन्होंने अपनी कटि पर उन कर्मकारों द्वारा सिद्ध किए हुए शरासनों पर अगणित शरसन्धान भी किए थे।

मगध द्वारा पाटलिग्राम के लिच्छवि दुर्ग पर प्रबल पराक्रम देख कर, दुर्गस्थ तथा वैशालीवासी कर्मकार शस्त्रास्त्र धारण करने लिए हठ किया करते थे। मगधराज द्वारा प्रदीयमान प्रभूततर वेतन के प्रलोभन का उन्होंने, बारम्बार, प्रत्याख्यान किया था। वे कर्मकार वृज्जिसंघ के लिए जीवन धारण करते थे। वे वृज्जिसंघ के लिए मरण का वरण करने से पराङ्मुख नहीं होते थे।

वणिक्-ग्राम का निरीक्षण करती हुई देवी वत्सला ने नायक भल्लिक से पूछा : "नायक ! अन्धकार में अवसन्न वणिक्-ग्राम मे यह आराव कैसा है ?"

नायक ने उत्तर दिया : "देवि ! वणिक्-पुत्र, अपना-अपना सुवर्ण-भार भूगर्भस्थ करने के लिए, क्षिति का खनन कर रहे है।"

तब देवी वत्सला ने अनिरुद्ध से कहा : "आर्यपुत्र ! एक समय था जब वैशाली के वणिक्-पुत्र, वृज्जिभूमि के कण मात्र के विनिमय में, अपने समस्त सुवर्णभार का समर्पण करते हुए स्वर्गिक सुख का अनुभव किया करते।"

अनिरुद्ध मौन रहे। उनको स्मरण था कि अजातशत्रु ने जब प्रथम-बार वृज्जिसंघ पर आक्रमण किया था, तो वैशाली के वणिक्-पुत्र, अपरि-मित सुवर्णभार लेकर, आर्यश्रेष्ठ महाली के समक्ष समुपस्थित हुए थे।

उस समय प्रत्येक वणिक्-पुत्र सशङ्क था कि आर्यश्रेष्ठ उसके सुवर्ण-भार को अस्वीकार न कर दें। उस समय वैशाली के सार्थवाह, उत्तरापथ तक यात्रा करके, अपने धन के व्यय से, लिच्छवि सैन्य के लिए विविध शस्त्रास्त्र तथा चल एवं स्थित यन्त्र लाए थे।

जिस समय, दीर्घकाल-व्यापी युद्ध की विभीषिका में, लिच्छवि-गण मगध के प्रबल प्रहार सहन कर रहे थे, उस समय वैशाली के वणिक्-पुत्रों ने क्षत्रिय-नगर के शृङ्गाटक पर समवेत होकर, आर्यश्रेष्ठ महाली से, शस्त्रास्त्र धारण करने की आज्ञा माँगी थी। उस समय वणिक्-पुत्रों की आकांक्षा थी कि वे भी पाटलिग्राम में जाकर स्वदेश के लिए युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त करें।

क्षत्रिय-ग्राम के शृङ्गाटक पर अपना रथ रोककर, देवी वत्सला ने नायक भल्लिक से पूछा : "नायक ! आलोकहीन क्षत्रियग्राम में यह कोलाहल क्यों हो रहा है ?"

भल्लिक ने उत्तर दिया : "देवि ! पानीय जल के अभाव में लिच्छवि-गण ने सुरापान द्वारा अपनी तृषा को तोषित किया है। लिच्छवि-गण सुरा-प्रमत्त होकर कोलाहल कर रहे हैं।"

तब देवी वत्सला ने अनिरुद्ध से कहा : "आर्यपुत्र ! एक समय था जब लिच्छवि-गण, वृज्जिसंघ के विग्रहरत होते ही, सुरा के भाण्ड नष्ट करके, सुरा का अन्तिम विन्दु जलसङ्कर में प्रवाहित कर देते थे।"

अनिरुद्ध मौन रहे। उनको स्मरण था कि मगध के साथ युद्ध आरम्भ हुआ तब वैशाली के उदक-परिवाहों से उत्थित सुगन्धित सुरा की सुवास ने उनके नासिकारन्ध्र आपूरित कर दिए थे। उस समय कौशाम्बी तथा उज्जयिनी के सार्थवाह, विक्रयार्थ आनीत सुरा का समस्त पण्यभार लेकर, निराश ही वैशाली से लौट गए थे।

लिच्छवि सुभट-समवाय के साथ उन्होंने, पाटलिग्राम के लिच्छवि-दुर्ग में, अनेक वर्ष व्यतीत किए थे। उन्होंने अपनी आँखों से देखा था कि लिच्छविसुभट, काष्ठ के उपधान का उपाश्रय लेकर, तृणशय्या पर शयन करते थे। उस समय, पाटलिग्राम के लिच्छवि-दुर्ग में योषित मात्र का प्रवेश निषिद्ध था। तरुण-तरुण लिच्छवि-गण ने, यौवन की मध्याह्न-

वेला में, मगध द्वारा वारम्वार प्रेषित सुन्दरी-समवाय का तिरस्कार किया था।

देवी वत्सला ने, अन्तर्दुर्ग के मुख्य द्वार पर पहुँच कर, रथ से अवरोहण किया। अनिरुद्ध तथा भल्लिक भी, अपने अश्वद्वय से अवतरण करके, उनके समीप उपस्थित हुए।

मैथिलीपुत्र ने देवी वत्सला से कहा : "देवि ! तुम राजप्रासाद में जाकर कुछ क्षण तक विश्राम करो। तुमने, कारागार से निर्गत होकर, अभी तक स्नान-भोजन भी नहीं किया है। तुम राजप्रासाद में जाओ, देवि ! मैं लिच्छवि सुभट-समवाय को चरमोत्सर्ग के लिए व्यूढ एवं बद्ध-परिकर करूँगा।"

देवी वत्सला बोलीं : "आर्यपुत्र ! स्नान-भोजन मेरे किस लिच्छवि-पुत्र ने किया है ? विश्राम किस लिच्छवि-पुत्र को मिला है ? लिच्छवि-पुत्र अब मागध शत्रु के शोणित-सागर में ही स्नान करेंगे। लिच्छवि-पुत्र अब मागध कटक का कवल करेंगे। लिच्छवि-पुत्र अब अमृतत्व की शय्या पर ही शायमान होने के लिए लालायित हैं। मैं भी लिच्छवि-पुत्री हूँ। मैं भी लिच्छवि-पुत्रों का अनुगमन करूँगी।"

अनिरुद्ध मौन हो गये। वत्सला ने उनसे प्रश्न किया : "आर्यपुत्र ! मागध शत्रु कब इस ओर आएगा ? मैं उसका आतिथ्य करने के लिए अधीर हूँ। मागध शत्रु कब आएगा, आर्यपुत्र !"

अनिरुद्ध ने, विस्मय-भरी दृष्टि से, देवी वत्सला को निहारा। किन्तु देवी के प्रश्न का उत्तर न देकर उन्होंने नायक भल्लिक से पूछा : "नायक ! अन्तर्दुर्ग में कोई दुर्बलस्थल तो नहीं है ?"

नायक ने उत्तर दिया : "आर्य दुर्गपाल ! प्रत्येक दुर्बलस्थल का सन्धान करके उसको दृढ़ किया जा चुका है।"

"राजप्रासाद के सुरुङ्गसंचार ?"

"पुण्यसलिला पुष्करिणी के जल से परिप्लावित हैं।"

"अन्तर्दुर्ग के अन्य द्वार ?"

"मुख्यद्वार के अतिरिक्त समस्त द्वार प्राचीर में परिणत किए जा चुके हैं। परिखा को पार करने वाले समस्त संक्रम भी नष्ट कर दिये

गए हैं।"

"नायक ! मागध शत्रु अग्निवाणवर्षण करेगा।"

"अन्तर्दुर्ग के समस्त अग्निवल्लभ स्थल जलसिञ्चन से आर्द्र हैं।"

"परिखा जल से परिपूर्ण है, नायक !"

"आकण्ठ एवं अभितः परिपूर्ण है।"

"तब मुख्यद्वार के संक्रम को भी नष्ट करके उस द्वार को भी प्राचीर में परिणत कर दो।"

संक्रम भङ्ग कर दिया गया। द्वार को प्राचीर में परिणत किया जाने लगा। अनिरुद्ध तथा देवी वत्सला, उसी स्थल पर निरन्तर उपस्थान करके, लिच्छवि-पुत्रों का पुरुषार्थ देख रहे थे।

तब क्षत्रियदुर्ग से एक हृदय-विदीर्ण करने वाला आर्तनाद उत्थापित हुआ। अनेक नारीकण्ठ, एक साथ, आक्रोश कर रहे थे।

अनिरुद्ध तथा देवी वत्सला ने, प्राचीर पर आरोहण करके, क्षत्रिय-ग्राम का अवलोकन किया। दूसरे क्षण, अन्तर्दुर्ग के दक्षिणतट पर लिच्छवि स्त्री-पुरुषों का अपार जनसमवाय समवेत होने लगा। जन-समवाय की अस्त-व्यस्त वेश-भूषा देखकर प्रतीत होता था कि वे सब, अपने-अपने शयनागार से द्रुतनिष्क्रमण करके आ रहे हैं। लिच्छवि पुरुषों के कलेवर उत्तरीय-विहीन थे। लिच्छवि ललनाएँ स्तनांशुक धारण करना भूल गई थीं। लिच्छवि बालक, जनसमवाय में भ्रान्त होकर, रुदन करते हुए, अपने माता-पिता को खोज रहे थे।

देवी वत्सला ने, जनसमवाय को शान्त करके, पूछा : "यह क्या काण्ड है ?"

एक लिच्छवि ललना ने उत्तर दिया : "मागध सैन्य, चारों ओर से क्षत्रिय-ग्राम में प्रवेश करके, लिच्छवि-वंश का आबाल-वृद्ध वध कर रहा है।"

देवी वत्सला ने, भर्त्सना के स्वर में, कहा : "आप पलायन करके इस ओर क्यों आए ?"

एक लिच्छवि पुरुष ने उत्तर दिया : "अन्तर्दुर्ग में शरण पाने के लिए।"

"अन्तर्दुर्ग कब तक मागधशत्रु का निरोध करेगा ?"

"अन्तर्दुर्ग में आप हैं। हम, आपका सानिध्य पाकर, धैर्य धारण करेंगे।"

"मैं कौन हूँ ?"

"वैशाली की महामहिम माता। ममता की मन्दाकिनी।"

"तो मेरे आदेश से आप सब, इसी क्षण प्रत्यावर्तन करके, मागध-शत्रु का पथरोध करें। मैं अपना सैन्य लेकर आपकी सहायता के लिए आ रही हूँ।"

जनसमवाय पुनः आर्तक्रन्दन करने लगा। किन्तु उनमें से किसी ने भी प्रत्यावर्तन की चेष्टा नहीं की।

देवी वत्सला ने नायक भल्लिक को आदेश दिया : "नायक ! प्राचीर तोड़ कर द्वार बनाओ। हमारा सैन्य क्षत्रिय-ग्राम में जाकर शत्रु से युद्ध करेगा।"

किन्तु इसके पूर्व कि भल्लिक नायक कुछ उत्तर देते अथवा आदेश के अनुष्ठान के लिए अग्रसर होते, अन्तर्दुर्ग के दक्षिण-पश्चिम प्रान्त में एक महान कोलाहल होने लगा। अनिरुद्ध, देवी वत्सला तथा भल्लिक, तुरन्त ही खड्गहस्त होकर, उस ओर प्रधावमान हो गए।

उस ओर से आते हुए एक लिच्छवि सुभट ने, देवी वत्सला को देखकर, चीत्कार किया : "उस ओर न जाइए, देवि ! उस ओर से मागध शत्रु आ रहा है।"

देवी वत्सला ने, स्तम्भित होकर, पूछा : "अन्तर्दुर्ग में मागध-शत्रु !!"

सुभट ने उत्तर दिया : "हाँ, देवि ! मागध सेना, विनिश्चय-शाला से निर्गत होकर, राजप्रासाद की ओर आ रही है।"

वत्सला ने, अनिरुद्ध की ओर देखकर, हँसते हुए कहा : "आर्यपुत्र ! वर्षकार ब्राह्मण वृज्जिसंघ के ऋण से उऋण हो गया ! विश्वास का अपूर्व विनिमय दिया है ब्राह्मण ने !"

भल्लिक ने देवी वत्सला से कहा : "देवि ! विनिश्चय-शाला में किसी सुरंगसञ्चार का सन्धान आपने मुझको नहीं दिया।"

देवी वत्सला ने उत्तर दिया : "वहाँ किसी सुरंगसञ्चार का ज्ञान

मुझको भी नहीं था, नायक !"

अनिरुद्ध बोले : "नायक ! देवी को यह स्मरण नहीं रहा कि विनि-श्चय-शाला में, अनेक वर्ष तक, वर्षकार ब्राह्मण का वास था। किन्तु अब अज्ञान को असफल करने का समय नहीं रहा, नायक ! लिच्छवि-गण को राजप्रासाद के प्रांगण की ओर समाहूत करो।"

भल्लिक नायक को उसी स्थल पर छोड़कर, अनिरुद्ध तथा देवी वत्सला, द्रुतपद से, राजप्रासाद की ओर चल पड़े। कुछ क्षण उपरान्त, भल्लिक नायक द्वारा अनुशासित लिच्छवि धनुर्धर राजप्रासाद के प्रांगण की प्राचीर पर उपस्थान करने लगे। उनके विकट वाणवर्षण की अव-हेलना करता हुआ मागध सैन्य प्रांगण का पर्यवसन कर रहा था।

: ८ :

युद्ध करते-करते क्षत-विक्षत हुई देवी वत्सला ने अपने पार्श्व में उप-स्थित और शोणितस्नात अनिरुद्ध से कहा : "आर्यपुत्र ! सोपानश्रेणी पर शस्त्रसम्पात हो रहा है। मागध शत्रु हर्म्यतल पर पदार्पण किया चाहता है। आइए, मरण के पूर्व सिंहध्वज को प्रणाम कर लें।"

अनिरुद्ध ने उत्तर दिया : "देवि ! तुम सिंहध्वज को प्रणाम करो। मैं मागध शत्रु का पथरोध करता हूँ।"

"आप लिच्छवि-वंश के प्रताप-प्रतीक को प्रणाम नहीं करेंगे, आर्यपुत्र !"

"प्रथम तुम प्रणाम करो, देवि। तदनन्तर मैं करूँगा।"

"मेरे साथ क्यों नहीं, आर्यपुत्र !"

अनिरुद्ध मुस्कराने लगे। फिर वे बोले : "देवि ! मैं मैथिली माँ का पुत्र हूँ। उभयपक्ष से सुजात लिच्छवि-दुहिता के साथ सिंहध्वज को प्रणाम करना मेरे लिए उचित नहीं।"

देवी वत्सला हँसने लगीं। फिर वे, अनिरुद्ध के भुजदण्ड से अपनी बाहुलता वेष्टित करके, उनको हर्म्योत्संग पर उन्नतशीर्ष सिंहध्वज की ओर ले चलीं।

माघ कृष्णपक्ष की चतुर्थी के चन्द्रमा ने, त्रपा से त्रस्त तारावलियों के साथ विहार करने के लिए, व्योमप्राङ्गण में प्रवेश किया।

ध्वजप्रणाम सम्पन्न हो जाने पर देवी वत्सला ने, अनिरुद्ध के चरणों में अपना मस्तक अवनत करके, अभ्यर्थना की : "आर्यपुत्र ! आप अपनी इस दासी को आशीर्वाद दीजिए कि वह, जन्मान्तर में भी लिच्छवि देह धारण करके, मैथिली माँ से संजात आपके नवावतार की सहधर्मिणी बने।"

अनिरुद्ध मैथिलीपुत्र देवी वत्सला की प्रार्थना का प्रत्युत्तर नहीं दे पाए। सोपान-श्रेणी-द्वार की ओर से आए एक शूलप्रास ने, सहसा, उनका वक्ष विदीर्ण कर दिया। उनके वक्ष-स्थल से स्रवित शोणित देवी वत्सला के सीमन्त में सिन्दूर भर रहा था।

देवी वत्सला ने, मुख उन्नमित करके, विगत-प्राणपति के भू-पातित होते हुए भीमकर्मा कलेवर को निहारा। दूसरे क्षण वे, सिंहनी के समान उत्पतन करके, सोपान-श्रेणी-द्वार के समीप जा पहुँचीं। उनकी करमुष्टि में कसी हुई कृपाण कुमुदबन्धु के किरणजाल से केलि कर रही थी।

देवी वत्सला पर एक साथ आघात करते हुए अनेक मागध-सुभट, एक स्वर से, जयनाद कर उठे : "महाराज अजातशत्रु की जय !!"

देवी वत्सला के छिन्नमस्तक कबन्ध ने भी जयघोष किया : "वृज्जिसंघ के सिंहध्वज की जय !!!"

समापना

प्रत्यूष की प्रथम किरण ने महावन की कूटागार-शाला का स्पर्श किया तब आयुष्मान उदय, संघाराम के द्वारदेश पर खड़े, वैशाली के राजप्रासाद की ओर देख रहे थे। हर्म्योत्संग पर सतत उत्तोलित सिंहलांछनाङ्कित लिच्छवि-ध्वज के स्थान पर मगधराज अजातशत्रु का मञ्जिष्ठवर्ण विजय-ध्वज देखकर उन्होंने अपना मुख परावृत्त कर लिया।

कूटागार-शाला से निष्क्रमण करते हुए वर्षकार ब्राह्मण ने श्रमण को सम्बोधित किया : "भन्ते ! अब आप पुनरेण धर्मसंघ में सम्मिलित हो जाएँ। अब आपके लिए धर्मसंघ से दूर रहने का कोई कारण नहीं रहा। संघस्थविर आपको स्वीकार करेंगे।"

आयुष्मान उदय, मौन रहकर, ब्राह्मण का मुख देखते रहे। वर्षकार ने फिर कहा : "भन्ते ! धर्मसंघ के अनन्य उपासक महाराज अजातशत्रु की जय धर्मसंघ की ही जय है।"

श्रमण ने, शान्त भाव से, उत्तर दिया : "ब्राह्मण ! संघ की जय हो सकती है। किन्तु धर्म की पराजय हो गई।"

"भन्ते ! धर्म तथा संघ तो दो नहीं।"

"ब्राह्मण ! शास्ता ने जब धर्मसंघ की स्थापना की, तब धर्म तथा संघ दो नहीं थे। किन्तु अजातशत्रु की दुर्बुद्धि के कारण अब वे चिर-दिन के लिए विलग हो गए। भविष्य में वे फिर कभी एक नहीं होंगे।"

"भन्ते ! संघ के विना धर्म की हानि ही होगी, वृद्धि नहीं।"

ब्राह्मण ! धर्म के विना संघ इस धरा पर भाररूप रह जाएगा। एक समय आएगा, जब संघ अखिल आर्यावर्त पर आधिपत्य प्राप्त कर लेगा। वह आर्यावर्त के अधःपतन की पराकाष्ठा होगी। आर्यावर्त पर दस्युदल ताण्डव करेगा। और उस ताण्डव में से पुनरेण धर्म का उदय

होगा।"

"तथागत के धर्म का, भन्ते !"

"तथागत ने किसी नवीन धर्म का प्रचार नहीं किया, ब्राह्मण ! तथागत आर्यावर्त के सनातन आर्यधर्म के ही अनुगामी थे। तथागत ने सनातन आर्यधर्म को ही, वितण्डावाद के वाग्जाल से निकाल कर, पुनरेण प्राणान्वित किया था।"

"तब ब्रह्मावर्त के ब्राह्मणों ने तथागत का तिरस्कार किसलिए किया, भन्ते ?"

"ब्रह्मावर्त के ब्राह्मण सनातन आर्यधर्म का विस्मरण कर चुके हैं। वे यज्ञाग्नि-शिखा की ही उपासना करते हैं। मानव के गूढ़मानस में अन्तर्हित अमृतत्व का अन्वेषण नहीं करते। वे यज्ञाग्नि में पार्थिव द्रव्य-समूह की आहुति देकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। अपने अन्तर में ज्ञानाग्नि प्रज्ज्वलित करके काम-तृष्णा की आहुति नहीं देते। तथागत ने उनसे कहा था कि अमृतत्व का अन्वेषण करो, अन्तर में ज्ञानाग्नि प्रज्ज्वलित करो। वे तथागत के शिक्षापदों को हृदयङ्गम नहीं कर सके। उन्होंने तथागत की साधना का साक्षात्कार नहीं किया।"

"किन्तु संघ तो तथागत के शिक्षापद को हृदयङ्गम कर चुका है; संघ तो तथागत की साधना को स्वीकार करता है।"

"संघ तथागत का नाम लेकर केवल अपने अहंकार को पुष्ट करता है।"

"क्या संघ में एक भी स्थविर अथवा भिक्षु तथागत द्वारा प्रज्ञापित धर्म के तथ्य को नहीं जानता ?"

"संघ में अभी भी अनेक भिक्षु हैं, अनेक स्थविर हैं जो धर्म के तथ्य को जानते हैं, जो उस तथ्य से तादात्म्य प्राप्त करने के लिए साधना कर रहे हैं।"

"वे धर्मप्राण स्थविर और भिक्षु मौन क्यों हैं, भन्ते ?"

"ब्राह्मण ! धर्म का तथ्य ग्रहण करने वाला बहुधा मौन ही रहता है। बोधि-प्राप्ति के उपरान्त भगवान के चित्त में भी वितर्क हो उठा : 'मैंने गम्भीर, दुर्दर्शनीय, दुर्विज्ञेय, शान्त, उत्तम, तर्क द्वारा अप्राप्य तथा प्रवीण

पण्डितों द्वारा विशेष धर्म को प्राप्त किया है। यह जनता काम-तृष्णा में रमणशील है, काम-रत है, काम में प्रसन्न है। काम में रमणशील जनता के लिए यह कार्य-कारण-रूपी प्रतीत्य-समुत्पाद दुर्दर्शनीय है। संस्कारों का शमन, सभी मन्त्रों का त्याग, तृष्णा का क्षय, वैराग्य, चित्त-निरोध और निर्वाण भी दुर्दर्शनीय हैं।'"

संघाराम के द्वार पर अश्व से अवरोहण करते हुए अवन्ति के सार्थवाह ने, वर्षकार ब्राह्मण का अभिवादन करके, कहा : "आर्य महामात्य ! यह क्या काण्ड है ? आपके विद्यमान रहते वैशाली का विध्वंस हो गया ! अनेक दिन तक जानपद जीवन-यापन करने वाली वैशाली ने अभी तो रस एवं संस्कार का संचय किया था !"

ब्राह्मण मुस्कारने लगे। सार्थवाह फिर बोला : "आर्य महामात्य ! मैं धर्मावतार राजा रत्नकीर्ति की खोज कर रहा हूँ। वे लिच्छवि-प्रताप के प्रतीक है। मैं उनको अपने साथ उज्जयिनी ले जाऊँगा। उज्जयिनी में उनका विमल यश विस्तृत है। अवन्ति के अधीश्वर, वृज्जिसंघ के पुनरोद्धार के लिए, धर्मावतार राजा रत्नकीर्ति की सहायता करेंगे। राजा के विद्वेषी, दुष्ट प्रवरसेन, का देहान्त हो चुका। अब उज्जयिनी में कोई भी धर्मावतार राजा रत्नकीर्ति का विरोध नहीं करेगा।"

आयुष्मान उदय ने सार्थवाह को सम्बोधित किया : "सौम्य ! राजा रत्नकीर्ति अब इस संसार में नहीं हैं। उनका भी देहान्त हो चुका।"

सार्थवाह ने श्रमण की बात पर ध्यान नहीं दिया। वह उनकी ओर देखकर बोला : "तुमको मैंने कहीं देखा है।"

श्रमण ने उत्तर दिया : "हाँ, अवश्य देखा है। जिस दिन राजा रत्नकीर्ति के दस्युदल ने, पथप्रान्त में तुम्हारे सवर्ण-भार का हरण करके, तुमको वृक्ष से बाँध दिया था, उस दिन मैं तुम्हारे मुक्तिदाता के साथ था।"

"तुम्हारा वह सहचर कहाँ है ?"

"मैं भी उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

"मैं उसी को अपने साथ उज्जयिनी ले जाऊँगा। उज्जयिनी की लावण्यवती ललनाएँ उसके रूप एवं पौरुष पर प्राण दे देंगी।"

"वैशाली में जाकर उसकी खोज करो। यदि वह तुमको मिल जाए, तो उससे मेरे साथ साक्षात्कार करने का अनुरोध करना।"

सार्थवाह ने, एक वार, वैशाली की ओर देखा। वैशाली का वियन्मण्डल धूम्रसमूह से समाच्छादित था। जैसे समस्त नगर में अग्निदाह व्याप्त हो।

तब, वह अवन्ति का सार्थवाह, अपने अश्व की ओर अग्रसर हुआ। जाते-जाते उसने कहा: "वैशाली को शान्त हो जाने दो। तब मैं तुम्हारे सहचर की खोज करूँगा।"

सार्थवाह, अश्वारोहण करके, पश्चिम दिशा की ओर चला गया।

वर्षकार ब्राह्मण ने श्रमण से कहा: "भन्ते! आप भी अब उज्जयिनी जाइए। मगधराज शीघ्र ही अवन्ति की ओर भी अभियान करेंगे।"

श्रमण मौन रहे। वर्षकार ब्राह्मण फिर बोला: "आप वृज्जिसंघ का त्राण नहीं कर सके। सम्भव है आप अवन्ति को सावधान कर पाएँ।"

आयुष्मान उदय ने कहा: "प्रवृत्ति-परायण अवन्ति का अहंकार जब तक अक्षुण्ण है, तब तक कोई भी अवन्ति को सावधान नहीं कर सकता। अहंकार के विनाश के लिए अनय-व्यसन आवश्यक होता है, ब्राह्मण! अनय-व्यसन के आपात से ही अहंकार का क्षय होता है।"

शब्दार्थ-सूची

अ

अंतराष्टक—माघ के अन्त और फाल्गुन के प्रारम्भ में चार-चार दिन।

अजित केशकम्बली—बुद्ध के समकालीन एक तीर्थङ्कर।

अनय-व्यसन—अत्याचार।

अनुश्रावण—प्रतिज्ञा की पुनरावृत्ति।

अन्य-तैर्थिक (तीर्थिक)—दूसरे सम्प्रदाय से सम्बन्धित।

अपरिहाणीय-धर्म—जिस धर्म का हनन अनुचित है।

अभिषेक-पुष्करिणी—जिस सरोवर में स्नान करके क्षत्रिय मूर्धाभिषिक्त होते थे।

अभिन्न-सन्निपात—बारम्बार सभा करने वाले।

अरत्नि—चौबीस अंगुल के बराबर एक मान।

अर्हत्—जीवन्मुक्त मनुष्य का बौद्ध नाम।

अर्धोरुक—जांघिए के समान वस्त्र।

अल्प-आबाध—आरोग्यवान।

अल्प-आतङ्क—रोगरहित।

अवस्थानशाला—अतिथिशाला

अवघोष-क्रम—सन्तरी की आवाज़ का काल-विधान।

अष्टकुलिक—वृज्जिसंघ की अमात्यपरिषद का नाम।

असियष्टि खड्ग—सीधी तलवार (किरच)।

आ

आपूर्त-आचार्य—पुष्करिणी तथा कूप आदि से सम्बोधित खनन-विद्या जानने वाले।

आय-शरीर—राजकीय आमदनी (रेवेन्यु)।

आय-व्यय-गणना—बजट।

आरालिक—रसोइया।

आश्रावण—वाद्ययन्त्रों को नाट्योपयोगी बनाना।

आसनग्रहापक—बैठने का स्थान दिखलाने वाला कर्मचारी।

इ

इन्द्रकोष—दुर्ग-प्राचीर पर छोटा छज्जा।

उ

उत्संग—छज्जा ।

उद्वाहिका—कमिटी ।

उत्साहशक्ति—सफलता से उत्पन्न सामर्थ्य ।

उत्सेचक—नाव में भरा पानी उलीचने वाला ।

उत्कटिक आसन—उकड़ूँ बैठना ।

उत्तरासंग—भिक्षु की चादर ।

उपस्थान—भिक्षु-संघ की पाक्षिक सभा ।

उपांशु-उपाय—गूढ़ रक्खा जाने वाला उपाय ।

उपांशु-बध—गूढ़ तरीके से की गई हत्या ।

उपस्थायक—बुद्ध की सेवा में रहने वाला भिक्षु ।

उपजाप—घूस ।

उपसिद्धि—मुख्य सिद्धान्त से संगत गौण सिद्धान्त ।

क

कर्मवाचन—सभा में प्रस्ताव आदि प्रस्तुत करना ।

काम्बोज—काम्बोज देश का घोड़ा ।

कामुर्क—एक प्रकार का धनुष ।

क्रुद्धवर्ग—द्रोहियों का वह वर्ग जो क्रोध के कारण राज्य से विमुख होता है ।

कुप्यागार—वन से उपलब्ध राजोपयोगी द्रव्य रखने का स्थान ।

कृत्यपक्ष—परदेश-परायण लोगों का वर्ग (फिफ्थ कॉलम) ।

कोष्ठागार—अन्न इत्यादि रखने का स्थान ।

कोदण्ड—एक प्रकार का धनुष ।

ख

खेटक—ढाल ।

ग

गम्भीर-स्थल—दुर्ग के ऐसे स्थल जहाँ शत्रु फँस जाता है ।

गणपूरक—सभा में उपस्थित सदस्यों की गणना करने वाला कर्मचारी ।

गणराज्य—जिस राज्य का राजा निर्वाचित होता हो ।

गूढाजीवी—जासूसी का काम करने वाला ।

गूढापसर्प-श्रेणी—सादे कपड़ों वाले पुलिसमैन ।

गूढ-शलाका-ग्रहण—छुपा कर वोट लेना (सीक्रेट बैलट) ।

गूढ-प्रणिधि—जासूसी का महकमा ।

गूढ-पुरुष—जासूस ।

घ

घन वाद्य—धातु के बाजे जैसे झाँझ-मँजीरे ।

च

चर्मफलक—गैंडे की खाल से बनी

ढाल ।

चलयन्त्र—अस्त्र फेंकने वाले भारी यन्त्र, जैसे तोप ।

चार-रहस्य—जासूसी का रहस्य ।

चारवृत्तान्त—जासूसी से प्राप्त समाचार ।

चेतोवधानग—चित्त के भाव के अनुरूप गान और वाद्य ।

चैत्य—बुद्धकालीन मन्दिर ।

छ

छन्द-संग्रह—वोट लेना ।

ज

जनपद-कल्याणी—किसी देश की सर्वश्रेष्ठ स्त्री ।

जानपद—देहाती, गँवार ।

ज्ञप्ति—प्रस्ताव (रेजोलूशन) ।

ज्ञप्ति-द्वितीय-कर्म—जहाँ ज्ञप्ति के उपरान्त एक ही अनुश्रावण होता हो ।

ज्ञप्ति-चतुर्थ-कर्म—जहाँ ज्ञप्ति के उपरान्त तीन अनुश्रावण होते हों ।

त

तत-वाद्य—तांत और तार के बाजे ।

तीक्ष्ण—खतरनाक काम करने वाला जासूस ।

तीर्थ—नदी का घाट जहाँ से पार उतरा जाता है ।

द

दण्डबल-महामात्य—रक्षामन्त्री ।

दण्ड—चार अरत्नि अर्थात् ९६ अंगुल का मान ।

दात्रग्राहक—नाव की लग्गी सँभालने वाला नाविक ।

दुर्बल-स्थल—दुर्ग के कच्चे स्थान जहाँ से शत्रु प्रवेश कर सकता है ।

दुर्गव्यसन—दुर्ग के घिर जाने अथवा चले जाने से उत्पन्न संकट ।

द्वाराट्टालक—दरवाजे पर ऊँची अटारी ।

द्वैधीभाव—प्रकाश रूप से मित्रता करके गूढ़ शत्रुता करने की नीति ।

ध

धर्मधर—धर्म-सम्बन्धी सूत्रों का ज्ञाता भिक्षु ।

धर्मकथिक—धर्म-सम्बन्धी सूत्रों का व्याख्याकार ।

धर्मसंघ—बौद्ध भिक्षुसंघ ।

धर्मसंघाराम—बौद्ध भिक्षुओं का विहार ।

धारणा—प्रतिज्ञा का सभा में पास होना ।

न

नाराच—काँटेदार बाण ।

नागोदरिका—अंगुस्ताना ।

नाट्यकुतप—ऑर्केस्ट्रा ।

नियामक—नौका का कप्तान ।

निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र—भगवान महा-

वीर ।

नैगम—छोटे शहर अथवा कस्बे का निवासी ।

प

पदातिक—पैदल सैनिक ।

परिघट्टना—वाद्यस्वरों को कण्ठ-स्वरों से मिलाना ।

परिषद—वृज्जिसंघ के कुलमुख्यों की सभा ।

पंचाशतक—पचास सैनिकों कादस्ता

पदग—पाँव की ताल के साथ चलने वाला गीत अथवा वाद्य ।

पाशक—पांसा ।

पाराजिक-चतुष्टय—मैथुन इत्यादि चार दोष जिनके कारण भिक्षु को धर्मसंघ से निकाल दिया जाता था ।

पार्ष्णिग्राह—पीछे की ओर से चोट करने वाला शत्रु ।

पूर्ण काश्यप—बुद्ध के समकालीन एक तीर्थङ्कर ।

पौर—पुर अर्थात् प्रधान नगर का निवासी ।

पौरजानपद—नगरों तथा ग्रामों के प्रतिनिधियों की सभा (पार्ला-मेण्ट) ।

प्रधावितिका—दुर्गप्राचीर पर गाड़ी एवं पशु इत्यादि चढाने की सपाट एवं ढालवां सीढी ।

प्रतोली—दुर्गप्राचीर पर बनी गुम्बद ।

प्रवेणी - पुस्तक — वृज्जिसंघ का विधान-ग्रन्थ जिसमें प्रज्ञप्त-अप्र-ज्ञप्त का विवरण रहता था ।

प्रतिज्ञा—ज्ञप्ति स्वीकृत होने पर प्रस्तुत किया जाने वाला प्रस्ताव । आजकल इसको बिल कहते हैं ।

प्रकुध कात्यायन—बुद्ध के समका-लीन एक तीर्थङ्कर ।

प्रातिमोक्ष—भिक्षु-संघ के दुष्कृत्य-सम्बन्धी नियम, जिनके अन्तर्गत भिक्षु विविध प्रकार से दण्डनीय होता है ।

प्रज्ञप्त - अप्रज्ञप्त — विधानानुसार विधेय तथा अविधेय ।

प्रभावशक्ति—धन-धान्य से उत्पन्न सामर्थ्य ।

ब

बलाहकान्त खेटक—एक प्रकार की ढाल ।

भ

भाणवार—परिच्छेद ।

म

मक्खलि गोशाल—बुद्ध के सम-कालीन एक तीर्थङ्कर ।

मण्डलयोनि—विजिगीषु राजा के चारों ओर शत्रु-मित्र का शक्ति-सम्पात ।

मन्त्रशक्ति—योग्य मन्त्रियों द्वारा दी गई उचित मन्त्रणा से उत्पन्न सामर्थ्य ।

मण्डल-प्रोत्साहन—किसी राष्ट्र के विरुद्ध प्रतिवेशी राष्ट्रों का मित्र-मण्डल बनाकर उकसाना ।

मण्डलाग्र निस्त्रिंश—तिरछी तलवार ।

मानिवर्ग—द्रोहियों का वह दल जो अहंकार के कारण राज्य से विमुख होता है ।

मूल-गायक—नाट्यकुतप के प्रधान गायक जो स्वर-लय-ताल का नेतृत्व करते हैं। (कोरस के लीडर)

य

यक्षकर्दम—केशर ।

र

रथाति—रथ पर सवार होकर युद्ध करने वाला ।

रथाङ्ग—रथ का भीतरी भाग, जिस पर बैठा जाता है ।

रश्मि-ग्राहक—नाव के पाल की डोर संभालने वाला नाविक ।

रश्मिप्रग्रह—रथ के घोड़ों की रास।

ल

लघु-उत्थान—स्फूर्ति ।

लोहसूत्रकङ्कट—लोहे की जंजीरों का बना हुआ कवच ।

लोहपट्ट—लोहे की प्लेट से बना हुआ कवच ।

लोहजालिका—लोहे की जाली का बना हुआ कवच ।

व

वल्गा—घोड़े की लगाम ।

वारवाण—कवच ।

वाह्लीक—बलख का घोड़ा ।

वास्तुहृदय—नगर-योजना का केन्द्रस्थल ।

वास्तुकर्म—मकान इत्यादि बनाने की क्रिया ।

विनयधर—विनय-सम्बन्धी सूत्रों का ज्ञाता भिक्षु ।

विवृतक-शलाका-ग्रहण—खुले तौर पर वोट लेना । (ओपन बैलट)

विनिश्चय-शाला—न्यायालय ।

विनिश्चय-महामात्य—न्यायमन्त्री ।

विजिगीषु-वृत्ति—दूसरे देश जीतकर चक्रवर्ती सम्राट बनने की आकांक्षा एवं कर्म ।

वितत वाद्य—चमड़ा मढ़े हुए बाजे, जैसे ढोल, तबला इत्यादि ।

विमानमाला—महलों की अटारियाँ ।

श

शलाका-ग्रहण—सलाइयाँ बाँटकर वोट लेने का काम ।

शासक—नौका की दिशा का नियन्त्रण करने वाला नाविक ।

शृङ्गाटक—नगर का चौक जहाँ से चारों ओर सड़कें जाती हैं।

शौचाशौच—शुद्धि एवं अशुद्धि।

श्रुतिग्राम—स्वर की सूक्ष्म ध्वनियाँ।

स

सन्निपात—एकत्र होना।

सन्निपात-भेरी—एकत्र करने के लिए बजाया जाने वाला बिगुल।

समर-संभार—सप्लाईज़।

समाहर्ता-महामात्य—वित्त-मन्त्री।

सन्धि-विग्रह-महामात्य—विदेश-मन्त्री।

समुदय-स्थापना—राज्य के कर आदि नियत करना (रेवेन्यु सैटल-मेन्ट)

सत्री—वह जासूस जो शत्रु के दुर्ग में प्रवेश करता है।

संजय वेलयट्ठिपुत्र—बुद्ध के सम-कालीन एक तीर्थङ्कर।

सामगायक—मूलगायक का अनु-सरण करने वाले (कोरस मेम्बर)

सानाह्य—युद्धोपयोगी।

सुषिर वाद्य—फूंक से बजने वाले बाजे, जैसे बाँसुरी।

सूद—रसोइया।

सूत्रधर—बौद्ध-सूत्रों का ब्यौरा जानने वाला भिक्षु।

सैन्धव—सिन्धु देश का घोड़ा।

सौरिक—मद्य-विक्रेता।

सौधशृङ्ग—महल की अटारी।

संघट्टना—तत तथा वितत वाद्यों का मिलाना।

संघादिसेस—वे दोष जिनसे दूषित भिक्षु को, कुछ समय के लिए धर्म-संघ से अलग रहकर, प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

संस्थागार—परिषद की बैठक का स्थान।

स्थितयन्त्र—वे हथियार जो एक स्थान पर रक्खे रहकर शत्रु का रास्ता रोकते हैं।

ष

षाड्गुण्य-प्रयोग—सन्धि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय तथा द्वैधी-भाव—इन छः नीतियों का यथा-योग्य प्रयोग।

ह

हलमुख—एक अस्त्र।

हस्तिकर्ण खेटक—हाथी के कान जैसी ढाल।

हर्म्यशिखर—महल की अटारी।

हर्म्यतल—महल की सबसे ऊपर की छत।

हर्म्योत्संग—महल का छज्जा।